हिंदुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ

Life and Conditions of the People of Hindustan



मूल लेखक
के० एम० अशरफ

अनुवादक :
डा० के० एस० लाल



भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय की मानक ग्रंथों की योजना के अंतर्गत प्रकाशित
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार
1969

प्रथम संस्करण, वर्ष 1969

प्रस्तुत पुस्तक सर्व श्री एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल द्वारा प्रकाशित श्री के० ए० अशरफ की अंग्रेजी पुस्तक Life and Conditions of the People of Hindustan का हिन्दी अनुवाद है तथा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की मानक ग्रंथ योजना के अन्तर्गत, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार के शत प्रतिशत अनुदान से प्रकाशित हुई है।

मूल्य : रु० 8.15 पैसे  *Price* : Rs. 8.15 Paise

प्रधान प्रकाशन अधिकारी, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का स्थायी आयोग, शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित तथा राकेश प्रेस, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रंथ अधिक-से-अधिक संख्या में तैयार किए जाएँ। भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ में सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से प्रारंभ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नए साहित्य में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ नामक पुस्तक हिन्दी वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक श्री के० एम० अशरफ और अनुवादक डा० के० एस० लाल है। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

बाबू राम सक्सेना
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

नई दिल्ली
मार्च, 1969

विषय सूची

भूमिका ... ... 1—28

भाग 1

राजनैतिक स्थिति ... ... 29—116

भाग 2

आर्थिक स्थिति ... ... 117—167

भाग 3

सामाजिक स्थिति ... ... 168—202

परिशिष्ट :

(क) कुछ मान्य सूचनाएँ 203
(ख) दिल्ली के सुल्तानों का कालक्रम 304
(ग) ग्रंथसूची 306
पारिभाषिक शब्दावली ... ... 310—324

भूमिका

(क) अध्ययन क्षेत्र

आगामी पृष्ठों में, अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य की स्थापना से पहले, दिल्ली में मुस्लिम सुल्तानों के अन्तर्गत भारतीय सामाजिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इस काल और क्षेत्र विशेष के चुनाव के सम्बन्ध में किंचित स्पष्टीकरण आवश्यक है।

भू-भाग—हिंदुस्तान

भारतीय और चीनी समुद्र तट का सामान्यतः अच्छा ज्ञान होने के बावजूद भी आठवी शताब्दी के अरब भूगोल-वेत्ता भारत और चीनी प्रादेशिक सीमाओं के सम्बन्ध में बहुत अनिश्चित थे। सिंधु-पार के प्रदेश की बहुत थोड़ी खोज हो पाई थी और हिमालय की दर्भेद्य दीवार को बिना विचार किये ही यह मान लिया गया था कि चीन सिंधु नदी के उत्तर और उत्तर-पूर्व के किसी अनजाने प्रदेश में स्थित है। वस्तुतः कई शताब्दियों पश्चात तक कुमायूं (या कराजल) की पहाड़ियों पर सुल्तान मुहम्मद तुगलक द्वारा किये गये आक्रमण को चीनी प्रायःद्वीप के किसी क्षेत्र का अतिक्रमण माना जाता रहा। उसी तरह जब मुहम्मद बख्तियार खिलजी ने उत्तरी बगाल या असम पर आक्रमण किया तो उसका यह अनुमान था कि वह तुर्किस्तान पर चढ़ाई कर रहा है। पश्चिमी जगत ने मोटे तौर पर भारत को तीन हिस्सों में बांटा : एक तो सिंधु नदी तक, दूसरा सिंधु से गंगा तक, और तीसरा इन दोनों प्रदेशों के पार। यहां तक कि रानी एलिजाबेथ के समय तक जान फ्रेम्प्टन को पश्चिमी तट के परे और दक्कन के उत्तर में स्थित प्रदेश का इससे अधिक ज्ञान नहीं था कि इस "तीसरे भारत—ऊंचे भारत का उपनाम मलाबार है और इसका विस्तार कच्छ तक है जो गंगा नदी ही है,"[1] वहां "दालचीनी और मोती" बहुतायत से पैदा होते हैं और इस देश के राजा और निवासी 'बैल' की पूजा करते हैं।[2] फिर भी, इन बातों के आधार पर यह तथ्य तो निश्चित हो जाता है कि सिंधु-गंगा के मैदान

---

1. देखिए, फ्रेम्प्टन, 136
2. फ्रेम्प्टन, 7

शेष प्रायःद्वीप से भिन्न भौगोलिक इकाई माने जाते थे जिनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति थी।

प्रबल प्राकृतिक अवरोधों ने उत्तरी भारत को दक्षिणी भारत से अलग कर दिया है और दोनों प्रदेशों के पारस्परिक सम्पर्क के बहुत कम अवसर इतिहास में पाये जाते हैं, और ये सम्पर्क भी दोनों प्रदेशों के निवासियों के सांस्कृतिक विलयन को संभव बनाने में अशक्त प्रमाणित हुए हैं। जब तब, महत्वाकांक्षी सम्राटों ने "चक्रवर्ती" के रूप में अमरत्व प्राप्त करने के उद्देश्य से समग्र भारत को एक ही साम्राज्य के अन्तर्गत संगठित करने का प्रयत्न किया, किन्तु यातायात और प्रशासकीय नियंत्रण की कठिनाइयों ने उनकी पोषित आकांक्षाओं को पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सुल्तान मुहम्मद तुगलक का प्रसिद्ध प्रयोग — अर्थात् समग्र भारतीय साम्राज्य के केन्द्र में स्थित राजधानी की स्थापना का प्रयत्न—नितांत असफल रहा। कुछ ही शताब्दियों पश्चात् मुगल सम्राट् औरंगजेब ने पुनः दक्कन को अधिकृत करने का प्रयत्न किया और इस असम्भव उद्देश्य को पूरा करने के निरर्थक प्रयत्न में आधा जीवन शिविर-युद्धों में ही बिता दिया। अन्त में, मुहम्मद तुगलक के उत्तराधिकारियों के समान उसके उत्तराधिकारियों ने भी बुद्धिमत्तापूर्वक उत्तरी प्रदेश के स्वामित्व से ही संतोष किया। हिंदू और मुस्लिम काल के लिये यह बात एक ऐतिहासिक नियम-सा बन गई है कि उत्तरी भारत की सीमा के भीतर किसी राज्य की स्थापना उसकी शक्ति और सौष्ठव की द्योतक थी, और दक्षिण में उसका विस्तार उसके विघटन और विनाश का। हां, यह निष्कर्ष आधुनिक प्रशासन के स्वरूप पर लागू नहीं होता। इन दोनों विभागों में आस-पास के भाग तो कुछ अंश तक आपस में सादृश्य रखते हैं परन्तु ज्यों-ज्यों हम सुदूर सीमाओं की ओर अग्रसर होते जाते हैं, यह विभेद बढ़ता ही जाता है और अंततः भाषा, धार्मिक संप्रदायों, स्थापत्य, वेशभूषा, आकृति, आहार-व्यवहार आदि सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू एक दूसरे से विभिन्न दिखाई पड़ते हैं।[1] अस्तु यदि इन दो प्रदेशों (जिन्हें विन्सेन्ट स्मिथ ने ठीक ही "भौगोलिक विभाग", 'ज्याग्रफिकल कम्पार्टमेंट्स' नाम दिया है) ने अपनी एक विभिन्न और अत्यन्त पेचीदा गाथा का विकास किया तो हमें चकित नहीं होना चाहिये।[2] अतः इन बातों के आधार पर भारतीय प्रायःद्वीप के एक भिन्न सांस्कृतिक भूभाग के रूप में हिन्दुस्तान के सामाजिक विकास का अध्ययन करना अधिक सुविधाजनक है।

तथापि, हिन्दुस्तान की प्रादेशिक और सांस्कृतिक सीमा निर्धारित करते समय हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। केवल केन्द्रीय प्रशासन ही,

1. तुलना कीजिए—एलफिन्स्टन, 187।
2. तुलनीय स्मिथ 3; तुलनीय दक्षिण की द्रविड़ संस्कृति के उद्भव के लिये स्लेटर, अध्याय I, 13-41।

जो बहुधा दिल्ली में स्थापित था, व्यावहारिक रूप से देश को एक सूत्र में बांध सकता था और इसका प्रादेशिक विस्तार एक वंश से दूसरे वंश, यहां तक कि एक शासक से दूसरे शासक के काल में बदलता रहता था। नकारात्मक रूप मे, हम कह सकते है कि सच पूछा जाय तो सिंधु के पश्चिम का प्रदेश हिन्दुस्तान में सम्मिलित नही माना जाता था, क्योंकि दिल्ली के सुल्तानों का कोई प्रभावकारी राजनैतिक नियंत्रण उस पर नहीं था, चाहे इस प्रदेश के कुछ भाग को अधिकृत करने के छुटपुट प्रयत्न भले ही किये जाते रहे हों।[1] उसी तरह काश्मीर भी शेष हिंदुस्तान से अलग था और इस तरह बाहरी आक्रमणों के प्रभाव से अछूता था।[2] इसी तरह अपनी दुर्गमता के कारण राजपूताना, गोंडवाना और असम दिल्ली के सुल्तानों के प्रभावकारी हस्तक्षेप से न्यूनाधिक रूप से मुक्त रहे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि दिल्ली सल्तनत का राज्य-विस्तार समय-समय पर बदलता रहा है। उदाहरणार्थ, जब तैमूर के आक्रमण के कुछ समय पश्चात् बहलोल लोदी को राजसिंहासनासीन होने के लिये आमंत्रित किया गया, तब प्रायः प्रत्येक नगर का अपना एक स्वतंत्र शासक था और नाममात्र के सैयद शासक की राज्यसत्ता दिल्ली और उसके समीपस्थ कुछ ग्रामों तक ही सीमित थी। इसीलिये दिल्ली के हास्यप्रिय लोग कहा करते थे कि "शाह-ए-आलम" (संसार के सम्राट्) का राज्य दिल्ली से पालम (दिल्ली के पास एक ग्राम) तक फैला है।[3] दूसरी ओर मुल्तान मुहम्मद तुगलक की राज्य-सीमा सुदूर दक्कन तक पहुंच गयी और अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रीभूत राजधानी दक्षिण मे देवगिरी चुनी गई। इन दो छोरों के बीच विभिन्न प्रकार की राजसत्ताएं वर्तमान थीं जिनका राज्य विस्तार निरंकुशता और तलवार की ताकत के आधार पर निश्चित था। मोटेतौर पर हम कह सकते हैं कि हिन्दुस्तान का भू-भाग, जो लगभग समान राजनैतिक प्रभावों के अंतर्गत था, पंजाब, सिंधु की घाटी, जमुना, गंगा और गौड़ या लखनौती तक और अवध के उपजाऊ प्रदेश तक फैला था और इसमें पश्चिम के कई सुदृढ़ दुर्ग जैसे अजमेर, बयाना, रणथंभौर, ग्वालियर और कालिंजर सम्मिलित थे। इसमें हिमालय का प्रदेश, जहां हिंदू शासक बिना किसी हस्तक्षेप के शासन कर रहे थे, सम्मिलित नही था और पर्वतों की उपत्यका में स्थित एक विशाल भू-खण्ड और कटेहर के अधिकांश हिस्से, आधुनिक रुहेलखण्ड और अवध की तराई वाले प्रदेश के संबंध में

---

1. सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के एक सेनानायक द्वारा गजनी विजय के लिए तुलनीय ता० फी० प्रथम, 125।
2. शेरशाह के विरुद्ध शरणागार के रूप में कश्मीर के बारे मे मुगलों के रोचक वर्णन तुलनीय अ० ना०, प्र०, 169।
3. तुलनीय ता० दा०, 6।

जानने का प्रयत्न ही नहीं किया गया ।[1] तथापि, राजनैतिक भू-भाग कठिनाई से ही सांस्कृतिक प्रभाव क्षेत्रों के समुचित माप कहे जा सकेंगे, क्योंकि कालान्तर में राजपूताना के दुर्गम प्रदेशों ने भी अपने पड़ोसियों की संस्कृति को इतनी अच्छी तरह आत्मसात कर लिया कि एक राजपूत और मुगल में अन्तर बताना असंभव नहीं तो कठिन तो अवश्य हो गया ।

समीक्षान्तर्गत काल (1200-1550 ई०)

समीक्षान्तर्गत काल हिन्दुस्तान के सामाजिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, और किसी अंश तक तो समस्त भारत के लिए। प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल के रूप में भारतीय इतिहास के काल-विभाजन पर लोग एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान् भारतीय इतिहास का मध्यकाल 1526 ई० के पानीपत के युद्ध के साथ, कुछ अकबर के आगमन के साथ, और कुछ अन्य, ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के साथ समाप्त हुआ मानते हैं। यही मतभेद प्राचीन काल के सीमा निर्धारण के सम्बन्ध में दिखाई देता है। हमारी इच्छा किसी मत को लेकर विवाद करने की नहीं है। साथ ही किसी विशेष विभाजन को स्वीकार करने के भी हम कायल नहीं। अधिकांश मामलों में इन विभाजनों के पृथकत्व का कोई आधार नहीं है और वे पूर्णतः स्वेच्छा से ही किये गए हैं। एक ऐसी सामाजिक पद्धति में, जिसमें सहस्त्रों वर्षों से कोई तात्विक भौतिक परिवर्तन नहीं हुआ है, इस शब्दावली का प्रयोग करने से ऐतिहासिक दृष्टि से स्पष्ट होने के स्थान पर उलझने की संभावना अधिक है। इसके लिये योरुप के इतिहास का, जहाँ औद्योगिक क्रान्ति एक ऐसी सुस्पष्ट निर्धारण रेखा है जिसने योरुपीय समाज के सम्पूर्ण आधार में ही क्रान्ति ला दी, अनुकरण भी बहुत सुविधाजनक न होगा। दूसरी ओर जिस सीमा तक ऐतिहासिक अभिलेखों की सहायता से हम निश्चय कर सकते हैं, भारतीय सामाजिक विकास के काल चाहे जिस नाम से सम्बोधित किये जायें, वे न्यूनाधिक समान गुणधर्म रखते हैं। वर्तमान काल में भी, जबकि समाज के आधारों में मौलिक रूप से परिवर्तन हो चुका है, पुरानी परिपाटी पर्याप्त अंश तक जीवित है।

अतः मुस्लिम शासन के अन्तर्गत हम भारतीय इतिहास के किसी नए दौर में नहीं बल्कि महान सामाजिक विकास की एक ऐसी अवस्था में प्रवेश करते हैं जो भारतीय इतिहास के उदय काल से ही प्रवाहमान रही है और जो अभी भी अधूरी है या अपूर्ण है। तथापि, यह इस काल के महत्व को या भारतीय संस्कृति की संपदा

1. तुलनीय सर वूल्जले हेग ह० यू० हि० 3168 में, तुलना कीजिए शेरशाह के 113000 परगनों (प्रशासकीय इकाई) के लिये ता० शे० शा० 74-75 ।
2. देखिये एफ० डब्ल्यू० थामस, 23 ।

में उसके योगदान के मूल्य को कम नहीं करती। कहने की आवश्यकता नही है कि हिन्दू समाज-व्यवस्था संसार की सुदृढ़तम और अपरिमित जीवन-शक्ति वाली टिकाऊ समाज-व्यवस्थाओं में से एक है। यह केवल एक विचित्र संयोग था कि जिस पहली शक्ति के साथ हिन्दुओं का स्थायी सम्पर्क हुआ, वह एक ऐसी शक्ति थी जो न केवल उससे नितान्त भिन्न थी, वल्कि उनकी संपूर्ण व्यवस्था की प्रतिवाद थी। मुस्लिम प्रभाव के परिणामस्वरूप प्राचीन हिन्दू समाज-विभाजन प्रायः मटियामेट हो गया था। राजनैतिक और सामाजिक विभेदों की खाई पाटी गई। वर्णभेद शिथिल हुआ और धार्मिक प्रवृत्तियों में एक नवीन मोड़ और शक्ति आई और अन्त में एक समग्र भारत की अवधारणा संभव की जा सकी। इन विकासों के प्रकाश में ही मुस्लिम शासन वहुत अपूर्ण रूप से ही सही बोधगम्य होने लगा। प्रारम्भिक मुस्लिम काल का अध्ययन इसलिए विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि भारतीय संस्कृति की ये निर्माणकारी शक्तियाँ उस समय ही सक्रिय हुईं। और यद्यपि उनका स्वरूप वहुत कुछ अनगढ़ और अपूर्ण था तो भी वे ऐसी आधारशिला रखने में समर्थ हुईं जो परवर्ती मुगलों के लिये वैभवशाली इमारतों के निर्माण में शक्तिदायक सिद्ध हुई। जैसा कि आगामी पृष्ठों में निरूपित करने का प्रयत्न किया जाएगा, अकवर के समय तक इसका वुनियादी स्वरूप पूर्ण हो चुका था और सम्राट् अकवर तथा उसके उत्तराधिकारियों ने अपने पूर्ववर्त्ती अफगान तथा तुर्की शासकों द्वारा ढाले हुए साँचों का ही अनुकरण किया। भारतीय समाज को मुगलों की देन का सही आकलन करने के लिये यह काल विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाता है, विशेषकर वर्तमान सामाजिक विकासों के समुचित मूल्यांकन की दृष्टि से।

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति और उसके मूल्यांकन के सम्बन्ध में दो शब्द कहना अनुचित न होगा। यह निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् पश्चिम के निवासियों का जीवन कई रूपों में काफी समृद्ध हो गया है। हमें उसमें सर्वत्र उद्यम के प्रति नई उमंग, परिवर्तन करने और आगे बढ़ने के प्रति एक नवीन प्रवृत्ति की झलक मिलती है, जिनके कारण ही आधुनिक योरुपीय समाज के अध्ययन का स्वरूप इतना शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक हो गया है। दूसरी ओर भारत के निवासियों का जीवन अभी भी काफी अंश तक मध्यकालीन योरप से मिलती-जुलती परिस्थितियों से नियंत्रित है। इससे कुछ पर्यवेक्षकों का यह विश्वास हो चला है कि चूंकि भारत के निवासियों में कोई विकास-भावना दृष्टिगोचर नहीं होती इसलिये उनका कोई इतिहास नही है, वस्तुतः वे कल, आज और सदैव एक से ज्यों के त्यों है।[1] इस निष्कर्ष का कारण यह भी है कि बहुधा भारतीय वृत्तान्तों और इतिहास ग्रंथों में केवल राजाओं और युद्धों का ही वर्णन किया गया है। आइए,

1. लेनपूल, : भूमिका : पांचवा।

हम ज़रा इन महत्त्वपूर्ण आलोचनों का परीक्षण करें। यह कहना कि पूर्व के लोग परिवर्तनशील नहीं हैं किसी सीमा तक ही सत्य कहा जा सकता है। यह नहीं भूल जाना चाहिये कि औद्योगिक समाज की तुलना में कृषि-प्रधान सभ्यता का विकास-क्रम अनिवार्यतः धीमा होता है। कृषि-प्रधान सभ्यता का विकास शताब्दियों तक फैला रहता है और यद्यपि उसकी उन्नति ऊपरी दृष्टि से नहीं दिखाई पड़ती, वह अनिश्चित कभी नहीं कही जा सकती। वह नवीन सामाजिक शक्तियों के प्रघात से अधिक गतिमान होती जाती है। एक विशेष अवस्था में, जब सभ्यता परिपक्वता प्राप्त कर लेती है तो तत्कालीन सामाजिक ढांचे के भीतर उसके विकास की संभावनाएँ भी अवरुद्ध हो जाती हैं और तब या तो सभ्यता जड़ हो जाती है, उसका पतन होने लगता है, अथवा वह उन्नति के नए दौर में प्रवेश करती है। किन्तु उस समय तक वह तत्कालीन सामाजिक ढांचे के भीतर समस्त संभाव्य विकास परिपूर्ण कर लेती है और हर हालत में लोगों को एक उन्नत सांस्कृतिक चरण की ओर ले जाती है। भारत में परिवर्तन की प्रत्यक्ष आवश्यकता है—इससे भारतीय संस्कृति की दीनता नहीं बल्कि परिपक्वता का उन्नत चरण प्रकट होता है जो मनन करने योग्य है। आलोच्य काल की समीक्षा के समय भारतीय संस्कृति को एक ऐसी शक्ति द्वारा आगे ढकेला गया जो एक कृषि-प्रधान समाज को गतिमान करने में सहायक होती है। दूसरा विचार बिलकुल भिन्न अर्थ का द्योतक है। अभी हाल तक एशियाई और योरुपीय नये-पुराने इतिहासकारों की इस क्षेत्र से सम्बन्धित संकीर्ण और विच्छिन्न धारणाओं के कारण इतिहास को बड़ा आघात पहुंचा है। विशेषकर पुराने पूर्वीय दरबारी इतिहासकारों ने अपने को केवल राजाओं और युद्धों तक ही सीमित रखा और इस तरह इतिहास को 'पारस्परिक कत्ले-आम के विवरण मात्र' के रूप में परिवर्तित कर दिया। परन्तु ऐतिहासिक अनुसंधान के मार्ग के ये रोड़े क्रमशः नष्ट होते जा रहे हैं। यह अब सर्वमान्य होता जा रहा है कि इतिहास के लिये न तो कोई वस्तु उसके गौरव के प्रतिकूल है और न कोई घटना उसके ज्ञान क्षेत्र के बाहर है और यह भी मान लिया गया है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानवमात्र का समस्त कृतित्व और उत्पीड़न इतिहासज्ञ के अनुसंधान का उपयुक्त विषय बन सकता है। इतना ही नहीं यह निश्चित सा माना जा रहा है कि जबतक वास्तविक रूप में इतिहासकार अपने कार्यों का यह विस्तृत और सर्वग्राही दृष्टिकोण नहीं अपनाते तब तक वे जिस किसी भी काल का चित्रण प्रस्तुत करने का दंभ करें उसका स्वरूप विकृत ही होगा। हर्नशा कहते हैं, "संक्षेप में यह माना जाता है कि इतिहास अध्ययन का कोई अलग विषय नहीं है वल्कि समाज के सामान्य विज्ञान की रचना करने वाले परस्पर सम्बन्धित विभिन्न अध्ययनों में से एक है।"[1] हम ऐसे पुराने दरबारी इति-

1. आर्ट : "साइंस ऑफ हिस्ट्री", आउटलाइन आफ माडर्न नालेज, 809।

हासकार को, जो अपने संरक्षक की प्रशस्ति गाकर अपनी रोजी कमाता था, बीसवीं शती के विज्ञान की आशाओं के अनुरूप न उठ सकने के लिए क्षमा कर सकते है।

प्रस्तुत अध्ययन के स्रोतों का उल्लेख करने से पहले मैं उन सीमाओं का उल्लेख करना चाहूँगा जो मैंने इस विषय के क्षेत्र और प्रतिपादन के सम्बन्ध मे निर्धारित की है। मैंने मुख्य रूप से, बल्कि सम्पूर्णतः साहित्य के प्रमाणों का प्रयोग किया है और लेखों, शिलालेखों, मुद्राओं या स्थापत्य से प्राप्त आंकड़ों का बहुत ही कम उपयोग किया है। संस्कृत ग्रन्थों का उपयोग उनके मूल उपलब्ध अंग्रेजी अनुवादों तक ही सीमित है, अस्तु मूल ग्रन्थों के परीक्षण के प्रति मैं उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। इन अपवादों को छोड़कर मेरी सामग्री इस काल-विशेष मे भारतीय संस्कृति के अध्ययन को प्रमाणित करने के लिये विस्तृत नही तो विपुल अवश्य है। दिल्ली के प्रारम्भिक सुल्तानों के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में उल्लिखित विवरण परिपुष्ट निबंध न होकर रेखाचित्र ही अधिक है। इसमे नगर प्रशासन, भू-राजस्व पद्धति, सेना, यातायात पद्धति, शिक्षा सम्बन्धी विचार और साहित्यिक विकास यहाँ तक कि लोगों के धार्मिक जीवन सम्बन्धी संदर्भ भी छोड दिये गये है। इस कृति की सीमा के भीतर सामाजिक जीवन के केवल कुछ ही पहलुओं पर विचार करना संभव हो सका है। प्रस्तुत सीमाओं में विषय प्रतिपादन के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कुछ पहलुओं का विवेचन तो रूपरेखा मात्र तक ही सीमित है और स्थानीय तथा प्रांतीय विवरणों की दृष्टि से वे गलत भी हो सकते है, क्योंकि इनमें एक स्थान से दूसरे स्थान में असीमित विभिन्नता पाई जाती है।

(ख) अध्ययन के स्रोत

मैं अपने अध्ययन के स्रोतो के केवल एक संक्षिप्त सर्वेक्षण तक ही सीमित रहना चाहूँगा। इस कृति की सीमाओं को देखते हुए विस्तृत परीक्षण न तो संभव है और न वांछनीय ही। मैं प्रारम्भ मे ही स्वीकार करना चाहूँगा कि मैंने केवल कुछ दिशाओं में ही अन्वेषण किया है और मैं केवल अशतः ही सामग्री का उपयोग करने में सफल हो सका हूँ। मुझे विश्वास है कि अधिक जोरदार अन्वेषण से विशेष मूल्यवान और व्यापक जानकारी उपलब्ध हो सकेगी। तथापि, इस प्रकार के प्रमाणों के अवैज्ञानिक प्रयोगों के विरुद्ध चेतावनी देना आवश्यक है। जब कोई व्यक्ति समुचित ऐतिहासिक ग्रंथों से दूर कल्पित गल्पो, काव्यों या पौराणिक गाथाओं के मायालोक में विचरण करने लगता है तब उसके कल्पित स्वप्नलोक मे बहक जाने की आशंका रहती है। परिणामस्वरूप ऐसी कृतियों के उपलब्ध परिणामों का वैज्ञानिक मूल्यांकन दूषित हो जाता है। इस खतरे से बचने के लिये मैंने किसी भी तथ्य को स्वीकार करने से पूर्व उसके समर्थक और विरोधी दोनों साक्ष्यों पर विचार किया है। सामाजिक इतिहास की अध्ययन सामग्री विभिन्न पुस्तकों में बिखरी [illegible]

अमीर खुसरो की कृतियाँ, लोक-गाथाएँ और गल्प-साहित्य, काव्य और गीत, हिन्दू और मुस्लिम रहस्यवादी संतों की कृतियाँ, उपयोगी कलाओं-सम्बन्धी पुस्तकें, विधि और नीति-सम्बन्धी संग्रह तथा विदेशी यात्रियों के विवरण और सरकारी तथा निजी पत्रों के कुछ संग्रह।

1. ऐतिहासिक अभिलेख (दि क्रानिकल्स)

प्रारम्भ में ऐतिहासिक अभिलेखों के आधार पर कई प्रामाणिक समसामयिक इतिहासकारों द्वारा संकलित फारसी वृत्तान्तों की एक छोटी-मोटी शृंखला-सी पाई जाती है। इन वृत्तान्तों और अन्य सामग्रियों पर आधारित ऐसे सामान्य श्रेणी के परवर्ती संकलन भी हैं जो भूतकालीन और समकालीन घटनाओं का वर्णन करते हैं। इनमें से मैंने निम्नलिखित ग्रन्थों की सहायता ली है।

"तारीख़-ए-फ़ख़्रुद्दीन मुबारकशाह", "ताज-उल्-मआसिर", "तबक़ात-ए-नासिरी", ज़ियाउद्दीन बरनी की "तारीख़-ए-फ़ीरोज़शाही", शम्स-ए-सिराज अफ़ीफ़ की "तारीख़-ए-फ़ीरोज़शाही", तारीख़-ए-मुबारकशाही, अली यज़्दी का "ज़फ़रनामा", "वाक़यात-एमुश्ताक़ी" (या "तारीख़-ए-मुश्ताक़ी)", तारीख़-ए-दाउदी", "तारीख़-ए-शेरशाही", तिमूर, बाबर, जौहर, गुलबदन बेगम और बायज़ीद के संस्मरण, ख़्वांदमीर का "हुमायूंनामा", अबुलफ़ज़्ल का "आइन-ए-अकबरी" और "अकबरनामा"। सामान्य इतिहासों में मैंने "तबकात-ए-अकबरी" "मुन्तख़ाब-तवारीख़ और तारीख़ ए-फ़रिश्ता" (या गुलशन-ए-इब्राहीमी") की सहायता ली है। ग्रन्थों की यह गणना किसी भी दशा में पूरी नहीं है, और ऐसी आशा है कि समय के साथ और भी इतिहास ग्रन्थ प्रकाश में आते जायेंगे। परवर्ती तुर्की सुल्तानों और उनके उत्तराधिकारियों में विद्या के प्रति कुछ उपेक्षाभाव सा था, जिसके परिणामस्वरूप अनेक मूल्यवान् साहित्यिक और ऐतिहासिक कृतियां नष्ट हो गईं, जो, यदि उपलब्ध होतीं तो हमारे सूचना और सामग्री के भण्डार में काफ़ी अभिवृद्धि होती।[1] उदाहरणार्थ जब डेनीसन रॉस ने हाजी दबीर के अरबी भाषा में लिखित "तारीख़-ए-बहादुरशाही" का परीक्षण किया तो मालूम पड़ा कि हाजी दबीर पहला इतिहासकार था जिसने हुसैन खाँ की "तारीख़-ए-बहादुरशाही" का उपयोग किया यद्यपि कइयों ने उसका झूठा दावा किया था।[2] हाजी दबीर

1. शिहाबुद्दीन, जिससे अनेक अवसरों पर अमीर खुसरो ने सहायता ली है, की कृति के अदृश्य होने के सम्बन्ध में तुलना कीजिए मिर्ज़ा, 203। ऐसी सूचना है कि बद्र-ए-चाच ने मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल के इतिहास का पद्यमय संकलन किया था और फ़िरदौसी की कृति के अनुकरण पर उसका महत्त्वाकांक्षी शीर्षक "शाहनामा" रखा। यह पुस्तक, जैसा कि लोहारु के नवाब ज़ियाउद्दीन ख़ान का विश्वास था, अदृश्य हो गई है।
2. रॉस, द्वि०, भूमिका, सत्ताईसवां और अट्ठाईसवां।

की कृति के हमारे काल से सम्बन्धित अंशों का परीक्षण करने के पश्चात् मुझे निश्चय हो गया है कि लेखक ने हमारे ज्ञान में महत्त्वपूर्ण वृद्धि की है। कुछ मामलों में वह तथ्यों की नवीन व्याख्या और कुछ मामलों में अतिरिक्त सूचना देता है, जिनका प्रकट करना एक समकालीन दरबारी-वृत्तान्तलेखक के पत्र में न तो बुद्धिमत्तापूर्ण कहा जा सकता है और न विचारपूर्ण ही। कोई आश्चर्य की बात नहीं यदि हमारे काल में भी बदायूनी या खाफ़ी खाँ जैसे इतिहासकारों के पूर्ववर्ती भी रहे हों जिनके समकालीन घटनाओं से सम्बन्धित स्वतन्त्र पाठांतर हमारे भारतीय इतिहास सम्बन्धी ज्ञान के लिये अत्यधिक सहायक होंगे। हाजी दबीर के विद्वान सम्पादक के अनुसार हुसैन ख़ाँ ने अपनी कृति सोलहवी शताब्दी में लिखी। अब, यदि हाजी दबीर से प्राप्त हमारी सूचना पूर्णतः हुसैन खाँ की कृति पर आधारित है, तो भी परवर्ती लेखक ने अपना इतिहास, चाहे अंशतः भले ही हो, पहले की कृतियों पर आधारित किया होगा, जिनके सम्बन्ध में हम अभी पूर्णतः अनभिज्ञ हैं। समकालीन ऐतिहासिक साहित्य की अपूर्णता दिखाने के लिये मुझे कुछ विषयान्तर करना पड़ा, पर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक अभिलेखों के धुनी संग्रहकर्त्ता के लिये भविष्य उज्ज्वल है।

इसी सिलसिले में कुछ वृत्तान्तों के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण लक्षणों का संक्षेप में उल्लेख करूँगा जो सामाजिक जीवन के बेहतर सर्वेक्षण में सहायक सिद्ध होंगे। हसन निज़ामी कृत "ताज-उल-मआसिर" पर्याप्त "असंबद्ध और अलंकृत" और अपनी "कल्पना और आविष्कृति" के बावजूद भी बिल्कुल निरुपयोगी नहीं है। उदाहरण के लिये, बहुत से स्थानों पर उसमें उत्सवों और मनोरंजनों का वर्णन किया गया है और नागरिक प्रशासन की प्रवृत्ति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। "तबकात-ए-नासिरी" और बरनी की "तारीख-ए-फीरोजशाही" की ब्रिटिश म्यूज़ियम पाण्डुलिपियों में ऐसी अतिरिक्त, यद्यपि स्वल्प, सूचना पाई जाती है जो मूल बिब्लिओथेका इण्डिका या मेजर रेवर्टी के "तबकात" के अनुवाद में नहीं उपलब्ध होती। इसी सिलसिले में यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि शिहाबुद्दीन अब्बास अहमद बिन यह्याकृत "मसालिक-उल्-अबसार-फी-मसालिक-अमसार" का साक्ष्य परोक्ष होने पर भी कम मूल्यवान नहीं कहा जा सकता। लेखक मुहम्मद तुगलक का समकालीन (1293-1348 ई०) था और यद्यपि उसने स्वतः भारत-भ्रमण नहीं किया था, उस समय मिश्र और भारत के मध्य बहुल समागम से उसके पास हिन्दुस्तान के बारे में जानकारी प्राप्त करने के पर्याप्त साधन थे। पूर्व के लोगों की राय में उसकी कृति आदर की दृष्टि से देखी जाती थी और वह "नुभात-उल-कुलूब"[1] के लेखक

1. डाउसन 3, 574 देखिये। ग्रन्थ के कुछ अंश मिस्री सरकार द्वारा प्रकाशित किये गये हैं, किन्तु भारत से सम्बन्धित अंश मुद्रित रूप में उपलब्ध नहीं है। एक फ्रांसीसी भाषानुवाद नोतिसेज एत एक्स्त्रेवरस द मैन्युस्क्रिप्ट्स इत्यादि (जिसके अंग्रेजी अनुवाद के लिए मैं एक मित्र का ऋणी हूँ) के टोम तेरहवें में मुद्रित है।

जैसे परवर्ती प्रतिष्ठित इतिहासकारों द्वारा बहुधा उद्धृत की जाती थी। तथ्य एकत्रित करने की उसकी पद्धति मौलिक होने के साथ ही आलोचनात्मक और वस्तुतः वैज्ञानिक भी है।[1] संस्मरणों में "मलफ़ूज़ात-ए-तैमूरी" की प्रामाणिकता कई आधारों पर विवादास्पद है। जैसे—मूल पाण्डुलिपि का न होना, और बाद में हुई उसकी जाँच से उलझी सारी परिस्थितियाँ आदि। सारे मामले की परीक्षा करने के पश्चात् प्रोफ़ेसर डाउसन संतुष्ट हो गये थे कि "मलफ़ूज़ात" में मौलिकता और प्रामाणिकता के चिन्ह हैं और कृति का समग्र क्रम ऐसा इंगित करता प्रतीत होता है जैसे स्वतः तैमूर द्वारा ही या उसके मार्गदर्शन और अधीक्षण के अंतर्गत पुस्तक लिखी गई हो।[2] "मलफ़ूज़ात" में भारतीय सामाजिक जीवन का उल्लेख बहुत कम है किन्तु अली यज़दी कृत "ज़फ़रनामा" और निज़ामशामी की कृति द्वारा उनकी पुष्टि की गई है। बाबर के संस्मरणों के लिये मैंने अकबर के दरबारी अब्दुर्रहीम खानखाना द्वारा उल्लिखित "वाक़यात-ए-बाबरी" के उस फारसी अनुवाद का आधार लिया है जिसे उसने सम्राट् अकबर के समक्ष 1590 में प्रस्तुत किया था। अनुवादक तुर्की के साथ-साथ फारसी और हिन्दी का बहुमुखी विद्वान था और उस शाही लेखक को ठीक तात्पर्य खोज निकालने और हिन्दुस्तान में सामाजिक विकास के अवलोकन की बहुमूल्य सुविधाएँ प्राप्त थीं। तुर्की पाठ (ए० एस० बैवरिज के अंग्रेजी पाठांतर पर आधारित) से तुलना करने पर मैंने पाया कि फारसी पाठांतर (ब्रिटिश म्यूजियम पाण्डुलिपि) भारत के बारे में कुछ अतिरिक्त सूचना देता है। गुलबदन बेगम कृत "हुमायूंनामा" के लिये मैंने ए० एस० बैवरिज के अत्युत्तम संस्करण का आधार लिया है।

कुछ उद्धरण इलि० डाउ० तृतीय में दिये हुए हैं। तुलनीय कलकशन्दी का "सुभ-अल-आशा" में उल्लिखित वर्णन।

1. अपनी पुस्तक के प्राक्कथन में लेखक कहता है कि जब कभी समुद्र पार की यात्रा करने वाले भारतीय यात्रियों से उसकी भेंट हुई उसने प्रत्येक से अलग-अलग ऐसे प्रश्न पूछे जिनके बारे में उसे सूचना चाहिये थी। तदनन्तर उनके उत्तरों से उसने केवल वे ही मुद्दे लिखे जिनके बारे में मतैक्य था। इन प्रश्नों के सम्बन्ध में उनसे इतने समय तक, जितने में वे पिछली टीका भूल सकते थे, चर्चा न करने के पश्चात् वह अपने मूल प्रश्नों को दुहराता था। और यदि उनके उत्तर पुनः पिछले वर्णनों से मेल खाते थे तब ही वह सूचना लिपिबद्ध करता था और वही इस ग्रन्थ में दी गई है। यह कहना व्यर्थ है कि अधिकतर मामलों में उसे सूचना देने वाले विद्वान और उच्च स्थिति वाले ऐसे लोग थे जो सर्वाधिक ठीक जानकारी दे सकते थे। देखिये नोतिसेज इत्यादि 165-166।

2. इलि० डाउ० तृतीय, 563।

अफगानों (लोदी और सूर) के अध्ययन के लिए मैंने "तारीख-ए-शेरशाही", "तारीख-ए-दाऊदी" और "वाकयात-ए-मुश्ताकी" की सहायता ली है। "तारीख-ए-शेरशाही" ऐसे अनेक लोगों की जीवनियों के सतर्क संकलन के लिए प्रसिद्ध है जो उस समय जीवित थे और जो उन दृश्यों के सक्रिय भागीदार थे और तदनन्तर जिन्होंने अपने अनुभव लेखक को सुनाए, जिसने आवश्यक सावधानी और परीक्षण के पश्चात् उन्हें संकलित किया।[1] अन्य दो वृत्तान्त उतना विवेचन या संतुलन प्रदर्शित नहीं करते। "तारीख-ए-दाऊदी", खण्डित और बिखरी है और असम्बद्ध संस्मरणों से कुछ अधिक नहीं है।" इसी तरह "वाकयात-ए-मुश्ताकी" क्रमबद्ध नहीं है और उसमें लम्बे विषयांतर है। दोनों ग्रंथ कौतुकों तथा अंधविश्वासों से परिपूर्ण है, विशेषतः वाकयात में तत्कालीन प्रसिद्ध सरदारों और संतों के उपाख्यानों, चमत्कारों, प्रेतों, दानवों, जादू और बाजीगरी की मूर्खतापूर्ण कहानियों की खिचड़ी कृति को कुरूप कर देती है और इन सबसे लेखक की और उसके काल के अंधविश्वास की प्रवृत्ति प्रकट होती है।[2] यह कहने की भी आवश्यकता नहीं कि यदि अन्य किसी वर्णन के लिए नहीं तो कम से कम धार्मिक जीवन के समुचित परिबोध के लिये इन विकृतियों का ज्ञान बहुमूल्य है।

अभिलेखों में से ख्वांदमीर का "हुमायूँनामा" भी एक मनोरंजक दस्तावेज है। अपने इस अंतिम ग्रंथ को उस प्रसिद्ध इतिहासकार ने मुगल सम्राट हुमायूं के विशेष आग्रह पर 1534 ई० (941 हि०) के प्रारंभ में लिखा था। सम्राट द्वारा प्रवर्तित नवीन युक्तियों और अनूठे रचना कौशल का उल्लेख इसकी विशेषता है।[3] हाजी दबीर द्वारा अरबी भाषा में लिखित गुजरात के इतिहास का उल्लेख पहले ही कर दिया गया है। अब तो इसका अत्युत्तम संस्करण उपलब्ध है।

अन्त में अबुल फज़ल के प्रसिद्ध ग्रंथ "आइन-ए-अकबरी" का उल्लेख किया जा सकता है जिसका कुशल सम्पादन ब्लाकमेन ने और अंग्रेजी अनुवाद ब्लाकमेन और जैरेट ने किया है। विद्वान लेखक और संपादकों ने इस कृति की महान् विशेषताओं की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। लेखक ने दावा किया है कि उसने कृति का संकलन विश्वकोष के तरीके पर किया है, जहां सब तरह की उपयोगी सूचना मिलेगी और जिसकी सहायता लोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संदर्भ, अनुदेश और मनोरंजन

1. "ता० शे० शा०" ■।
2. इलि० डाउ० चतुर्थ, 537। अफगानों का और अधिक सम्बद्ध वर्णन 1613 में नियामतुल्ला द्वारा संकलित ग्रंथ "मखजन-ए-अफगानी" में मिलता है।
3. ख्वांद, 125।

के लिए लेंगे ।[1] ब्लाकमेन ने फारसी वृत्तान्तों में आइन की अतुलनीय स्थिति पर ठीक ही जोर दिया है क्यों कि वह जन-जीवन को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है जहां 'प्रथम बार सजीव लोग हमारे समक्ष चलते-फिरते दिखाई देते हैं और उस समय के महान् प्रश्न, बहुविश्वसनीय तत्कालीन स्वयंसिद्ध तथ्य, अनुकरणीय सिद्धान्त, और बहु-विश्वसनीय प्रेत हमारी आंखों के सम्मुख सच्चे और सजीव रंगों में प्रस्तुत किये गये हैं ।'[2] जिस सावधानी से अबुलफ़ज़्ल ने अपनी सामग्री एकत्र की उस सम्बन्ध में वह बताता है कि इन सूचनाओं को एकत्र करने में उसे किन असाधारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अपने सूचनादाताओं के मौखिक उत्तरों पर विश्वास न करते हुए उसने उनके पास एक प्रश्नावली भेजी और आग्रह किया कि उनके उत्तर पूर्ण विचार के पश्चात् समझ बूझकर भेजे जाएँ । अपनी पुस्तक में वर्णित ऐसे प्रत्येक विषय के लिए उसने पूर्ण सतर्कता से बीस ज्ञापन तैयार किये और सावधानीपूर्ण तुलना और परीक्षण के पश्चात् अपनी पुस्तक में उन तथ्यों का संकलन किया ।[3] तथापि, एक ऐसा पहलू है जिसमें अबुल फ़ज़्ल की स्मरणीय कृति आधुनिक वैज्ञानिक कृतियों की तुलना में खरी नहीं उतरती । वह हमारे सम्मुख अपनी सूचना वास्तविक स्रोतों या उन सूचना देने वालों को पूर्णतः उद्घाटित नहीं करता जिन्होंने उसके लिये विभिन्न ज्ञापन लिखे थे । एक स्थान पर उसने अकस्मात् ही उल्लेख किया कि अपनी गवेषणा के समय उसका सम्पर्क कई प्राचीन पुस्तकों से हुआ था, किन्तु इन "प्राचीन पुस्तकों" की विषय-वस्तु क्या थी, उनकी प्रकृति क्या थी इस सम्बन्ध में वह हमें बिल्कुल अंधकार में छोड़ जाता है।[4] इसके अतिरिक्त अकबर का "सांसारिक पहलू" और "एक शासक के रूप में उसकी महानता" चित्रित करने में मौलिकता और बुद्धिमत्ता का सारा श्रेय अपने संरक्षक को देकर वह असंतुलित निर्णयबुद्धि का परिचय देता है और इस प्रकार वह अकबर के पूर्ववर्ती तुर्क, अफगान, यहां तक कि मुगल शासकों के योगदान की भी जानबूझकर पूर्णतः उपेक्षा कर जाता है । उसके लिये हिन्दुस्तान के विभिन्न सामाजिक घटनाक्रमों के मूल और विकास का पता लगाना हमारी अपेक्षा कहीं अधिक सरल था। "आइन-ए-अकबरी" सामाजिक

1. तुलनीय आ० अ० तृतीय, 282, "यह विभिन्न तरह के ज्ञान का भण्डार है । चतुर और कुशल विद्वान इसकी सहायता ले सकते हैं; और यहां तक कि विदूषक और ढोंगी जन भी इससे लाभ उठा सकते हैं; बालवृन्द के लिये यह मनोरंजन का स्रोत हो सकता है और प्रौढ़ तथा परिपक्व लोगों के लिए सूचना-भण्डार का काम दे सकता है । बुजुर्ग इसमें युगयुगीन परिपक्व ज्ञान और आभिजात्य पायेंगे और सद्गुणी लोग इसमें सद्व्यवहार की संहिता पायेंगे ।"
2. आ० अ० (अंग्रेजी अनुवाद) प्रथम, भूमिका, पंचम ।
3. आ० अ० द्वितीय, 255 ।
4. आ० अ० द्वितीय, 252 ।

इतिहास का स्मारक है किन्तु उसका महत्व मुख्यतः उन विभिन्न विकासों को लेखबद्ध करने में है जो अकबर के शासनकाल तक सम्पन्न हुए थे, जबकि महान् मुगल सम्राट् ने सूत्र अपने हाथ में लेकर सामाजिक प्रगति के कार्य को एक कदम आगे बढ़ाया। वैसे आइन का संकलन उसकी विषयवस्तु और मूल्य में बिना किसी विशेष हानि के पचास वर्ष पहले भी हो सकता था और तब भी वह समकालीन सामाजिक और राजनैतिक जीवन के अभिलेख के रूप में उतना ही विश्वस्त माना जा सकता था।

2. अमीर खुसरो

ऐतिहासिक साहित्य का विवरण समाप्त करने के पूर्व हम कुछ समय के लिए अमीर खुसरो की कृतियों के ऐतिहासिक मूल्य और एक इतिहासकार के रूप में उसके आकलन की ओर विषयान्तर करना चाहेंगे। हमने अपनी सूचना का अधिकांश भाग उसकी कृतियों से ही प्राप्त किया है। अन्य अनेक कविताओं के अतिरिक्त उसने अत्यधिक ऐतिहासिक महत्व के कम से कम तीन काव्यों का और एक गद्य की पुस्तक की रचना की है जिनके नाम क्रमशः *"किरान-उस-सादेन", "मिफ़्ताह-उल-फ़ुतूह"* (या "फतह-उल-फ़ुतूह"), "नूह-सिपर" और "खज़ैन-उल-फ़ुतूह" है। यदि हम इन पुस्तकों के साथ "देवलरानी-खिज्रखां' नामक उसका काव्य—जो एक प्रेम-गाथा होने के साथ समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं से घुलामिला है और "तुगलक नामा" जिसमें घलापहारी खुसरो खां के उत्थान-पतन की और ग्रयासुद्दीन तुगलक के सिंहासनाहीन होने की कहानी को भी जोड़ दें तो उसके ऐतिहासिक ग्रंथों की संख्या छः तक पहुंच जाती है। इन ग्रंथों से हमें उन मनोरंजक चालीस वर्षों (1285-1325) का, जबकि लेखक जीवित था और अनेक वर्णित घटनाओं को उसने खुद देखा था, न्यूनाधिक रूप में क्रमबद्ध वर्णन मिलता है।[1]

जहा तक विषय प्रतिपादन का प्रश्न है, अमीर खुसरो अपने पाठकों से कुछ भी छिपाने का प्रयत्न नही करता। उदाहरणार्थ, वह हमें स्पष्ट बताता है कि उसने

1. हैदराबाद (दक्कन) के मेरे मित्र मौलवी हाशमी ने अमीर खुसरो कृत "तुगलकनामा" की एक प्रति हाल ही में खोज निकाली है जो मूलतः एम० ए० ओ० कालेज अलीगढ़ के *(तत्पश्चात् जामिया मिलिया इस्लामिया के)* स्व० *मौलाना* रशीद अहमद द्वारा खोजी गई थी। इन मौलाना साहब ने एम० ए० ओ० कालेज के अधिकारियों द्वारा किये गये खुसरो की कृतियों के प्रकाशन में सहायता की थी और मूल पाण्डुलिपि की खोज में भारत का लम्बा भ्रमण किया था। यह पाण्डुलिपि, जिसकी मैंने केवल अंशतः ही जाँच की है, मौलिक मालूम पड़ती है। इसकी सामग्री का समर्थन फ़िरिश्ता और अन्य इतिहासकारों के यत्र-तत्र उद्धरणों से होता है।

"किरान-उस्-सादैन" का लेखन कार्य राजाज्ञा से हाथ में लिया। सुल्तान ने "लेखकों की मुहर" (दि सील आफ आथर्स) कहकर उसकी चाटुकारी की और उसे एक ऐसा बड़ा पुरस्कार देने का वायदा किया जो उसे सदैव के लिये सांसारिक चिन्ताओं से मुक्ति प्रदान कर देगा। पुस्तक की योजना और उसका प्रतिपादन-क्षेत्र शाही संरक्षक द्वारा निश्चित किया गया था।[1] अगले संरक्षक, सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी के अन्तर्गत जब लेखक से एक पुस्तक लिखने के लिये आग्रह किया गया तो उसे अधिक नैतिक शक्ति की प्रतीति हुई। उसने सुल्तान से स्पष्ट कह दिया कि जब कभी उसे काव्यात्मक परंपराओं और प्रशस्तियों के स्वीकृत स्तरों के अनुरूप ऐतिहासिक सत्यों से दूर हटना पड़ा है तब-तब उसकी अंतरात्मा ने उसे धिक्कारा है। अतः उसने स्पष्ट कर दिया कि कुछ भी हो वह सत्य के अनुसरण के लिये कृतसंकल्प है।[2] अमीर खुसरो लगातार कई सुल्तानों—मुईजुद्दीन कैकुबाद, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी और मुबारकशाह खिलजी की सेवा में रहा और जब कोई ईमानदार व्यक्ति अत्यधिक लम्बे समय तक दरबारी वातावरण में रहता है तो उसकी नैतिक प्रतिमानों के निर्णयों में परिवर्तन हो जाना प्रायः स्वाभाविक है। सम्भवतः इसी विचार से अभिभूत होकर कुछ समय पश्चात् लेखक ने अपने पुत्र को ऐसे पिता के पदचिन्हों का अनुसरण करने के विरुद्ध चेतावनी दी थी जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन "एक ही तागे को कातने"[3] में ही व्यतीत कर दिया। इस प्रकार यह स्मरण रखना चाहिये कि अमीर खुसरो अपने लेखन में बहुधा दोहरी भूमिका का निर्वाह करता है। वह बिना राजकवि के पद और दरबारीपन को तिरस्कृत किए इतिहासकार बना रहता है। और यह चमत्कारपूर्ण प्रतीत होगा कि वह इन तीनों स्वरूपों को अपने व्यक्तित्व और रचनाओं में पूरी तरह निभाता है। विशेषकर "खजाइन-उल-फुतूह" का अपना एक अलग मूल्य है। इसमें लेखक सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के प्रथम पन्द्रह वर्षों का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत करता है और उसके मानचित्र सम्बन्धी तथा अन्य विवरणों से प्रतीत होता है कि लेखक सुदूर दक्षिण के कुछ दृश्यों का तो व्यक्तिगत प्रेक्षक रहा होगा। उस काल का यही एक समकालीन इतिहास है और वर्णित तथ्यों की परिशुद्धता और विवरणों का कोष प्रशंसनीय है।[4] सब मिलाकर हम अमीर खुसरो के मूल्यांकन में प्रोफेसर कावेल से सहमत हो सकते हैं कि यद्यपि उसकी शैली अतिशयोक्तियों और लाक्षणिक वर्णनों से परिपूर्ण है तथापि उसमें वर्णित ऐतिहासिक तथ्य बहुत सीमा तक निष्ठापूर्ण हैं।[5]

1. कि० स०, 169/70।
2. कु० खु०, 890।
3. तुलनीय कु० खु०, 245 और 674।
4. अलीगढ़ के प्रोफेसर मुहम्मद हबीब ने हाल में इस इतिहास का अंग्रेजी अनुवाद जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री में प्रकाशित किया है।
5. ज० ए० सो० बं०, 1860, पृष्ठ 277।

इसी सिलसिले में यह भी कह दूं कि अनेक परवर्ती इतिहासकारों ने समकालीन घटनाओं के लिये अमीर खुसरो के पाठ का अनुसरण किया है यद्यपि इसमें उन्होंने अपने सूचना-स्रोत के प्रति बहुधा कृतज्ञता ज्ञापित नहीं की है।[1] अमीर खुसरो के सम्बन्ध में मेरी रुचि का आशय इससे कहीं अधिक विस्तृत है। मैं उसे समकालीन सामाजिक जीवन का महत्त्वपूर्ण इतिहासकार मानता हूं। इसी ने मुझे उसके न केवल सम्पूर्ण दीवान, उसकी कुल्लियात (संकलित कविताओं), विशेषकर तत्कालीन व्यवहारों और नैतिकताओं का उद्घाटन करने वाली "मत्ला-उल-अनवार" बल्कि "इजाज़-ए-खुसरवी" जैसे वृहत् और गूढ़ पत्र लेखन सम्बन्धी ग्रंथ के परीक्षण की ओर भी उन्मुख किया। "अभिजात" कलाकार या वृत्तान्तकार के रूप में वह स्वयं को दरबारी वातावरण और कुछेक सुसंस्कृत विद्वानों के संपर्क तक सीमित रख सकता था; यहां तक कि एक सामाजिक इतिहासकार के रूप में भी अबुल फज्ल जैसे शास्त्रवेत्ता के समान असगाथ से लिख सकता था; किन्तु खुसरो सर्वसाधारण में से था और जनसमूह के बीच में विचरने पर ही उसका सर्वोत्तम स्वरूप उद्भाषित होता था। दरबारी या विद्वान व्यक्ति के रूप में बर्ताव करते हुए वह अपनी विवशता के प्रति जागरूक रहता था। उसकी विरागी और विशुद्धिवादी मनोवृत्तियां निश्चित रूप से अस्वस्थ, विकृत एवं क्षणिक हैं और वह अवसर मिलते ही सर्वसाधारण में घुलमिलकर उनके साथ हंसने हंसाने के लिये अस्वस्थ अवसाद की नकाब को उतार फेंकता था। यही नहीं, सर्वसाधारण को यह विश्वास दिलाने के लिये कि कितनी भी विद्वत्ता और लौकिक उच्चता उसे उनके साथ घुलने-मिलने में बाधक नहीं होगी, वह यदाकदा अविकसित मस्तिष्क का भोंडापन और अशिक्षित व्यक्तियों की भद्दी रुचि भी अपना लेता था। जब वह जनसाधारण के बीच रहता है तब वह अपने पहले के शाही वातावरण और आध्यात्मिक उच्चता से तटस्थ रहते हुए मनुष्यों तथा वस्तुओं के सम्बन्ध में स्पष्ट मत देता है, यहां तक कि स्वयं को भी नहीं छोड़ता। फिर भी, इस मानसिक स्थिति में आत्माभिव्यक्ति के प्रयत्न में उसे अनुभव होता है कि सीधी-सादी और सुबोध भाषा

---

1. तुलनीय मुईजुद्दीन कैकुबाद के सिंहासनारोहण के पहले की घटनाओं के लिये "तारीख-ए-मुबारकशाही" भी देखिये। सिंहासनारोहण के लिये उसके पिता बुगरा खां द्वारा प्रयत्न, फलतः एक प्रबल संघर्ष को पिता-पुत्र के सुखद मिलन में तभी परिवर्तित किया जा सका जब उसने दिल्ली के सिंहासन से अपना अधिकार त्याग दिया। यह "किरान-उस्-सादैन" से लिया गया है। इसी तरह सुल्तान अलाउद्दीन खलजी के अन्तिम वर्षों के लिये "देवलरानी-खिज्रखां" के वर्णन का आधार लिया गया है। "खान-ए-शहिद" राजकुमार मुहम्मद की मृत्यु पर खुसरो का प्रसिद्ध शोकगीत विद्वानों और इतिहासकारों द्वारा प्रचुरता से उद्धृत किया गया है, उदाहरणार्थ, बदायूनी और निजामुद्दीन। ता० मु० शा०, 359-60 और 374-75 के अनुसार।

सदैव ही बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होती और उसे झमेले में डाल सकती है। उसका यह चातुर्य उसे आडंबर की ओर ले जाता है और वह जानबूझकर वैभवपूर्ण शैली, अलंकृत तथा शब्दाडंबरपूर्ण भाषा और श्लेष तथा पहेलियों का प्रयोग अपनाता है जो उसकी अपनी उत्तेजित और झल्लाई अन्तरात्मा का तनाव हल्का करने में सहायक होती है। इस तरह वह शब्द-जाल में अपना अभिप्राय छुपाने में पर्याप्त सावधानी बरतता है किन्तु उसकी भावनाओं और परिस्थितियों में मर्मज्ञों के लिये उनका अर्थ स्पष्ट रहता है। यह मेरा "इजाज-ए-खुसरवी" का अध्ययन है, जो निश्चित रूप से अलंकार शास्त्र (बलागत) में उसकी पैठ तथा शब्दों का प्रयोग करने की उसकी योग्यता प्रकट करने और प्रचलित पत्र-लेखन शास्त्र की नौ शैलियों में उसकी अपनी एक दसवीं शैली जोड़ने के उद्देश्य से लिखी गई है।[1] ऊपरी तौर से यदि हम पुस्तक को पढ़ें तो ज्ञात होगा कि "संकलित लेख हमेशा की तरह अत्यन्त वैभवपूर्ण शैली में लिखे गये हैं और शब्दों की भूलभुलैयां में निहित सूचना कम है।' किन्तु यदि इन दस्तावेजों की सावधानी से जाँच की जाए तो विभिन्न सामाजिक तत्वों के अनेक सजीव वर्णनों और आचार-व्यवहार के संदर्भों के साथ ही उसमें से विभिन्न प्रकार की मनोरंजक और मार्गदर्शक जानकारी मिलती है। यह कहा जा सकता है कि स्पष्टतः बिखरे मुहावरों और संदिग्ध सूक्तियों में सामाजिक महत्त्व के अभिप्रायों का अर्थ निकालना शायद ही उचित होगा, कुछ भी हो, उनमें ऐतिहासिक संदर्भ खोजना वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता। यह सत्य है कि लेखक अपनी गोपनीयता प्रकट करने में हिचकिचाता है किन्तु वह हिचकिचाहट केवल दिखावटी है। "इजाज-ए-खुसरवी" किसी शासक की आज्ञा से, या किसी अमीर अथवा अधिकारी वर्ग के लाभ के लिये नहीं लिखी गई थी। यह एक निजी दस्तावेज है जिसमें लेखक की आत्मा मुक्त और अबाध रूप से मुखरित हुई है। उसने केवल शैली के बंधन ही अपने ऊपर लगाये हैं और स्वतः आरोपित ये बंधन तत्कालीन राजनैतिक स्थिति को देखते हुए उचित ही हैं। मेरा सुझाव है कि खुसरो की कृति "इजाज-ए-खुसरवी" को पूरी तरह जानने के लिये पाठकों को तुलनात्मक साहित्य का विस्तृत अध्ययन करना चाहिये।[2]

1. तुलनीय देखिए इ० खु०, 53।
2. तुलनीय इलि० डाउ०, तृतीय, 566। बड़ी विलक्षण बात है कि सर एच० एम० इलियट के लिये एक मुंशी के द्वारा तैयार की गई पुस्तक का एकमात्र उद्धरण, जिसे उन्होंने अपने ग्रंथ (जिल्द 3, 566-67) में स्थान दिया है, कदापि उक्त स्थान पाने योग्य नहीं है। उसमें "बद्र हाजिब" पदनाम के एक शाही अधिकारी द्वारा युवराज को भेजा गया एक संदेश निहित है जिसमें शाही सेना द्वारा मंगोलों पर विजय और गजनी अधिकृत किये जाने की घोषणा की गई है। जैसी कि संपादक ने टीका की है, इसमें "एक ऐसी घटना का वर्णन है जिसके सम्बन्ध में इतिहासकार मौन हैं"। मूल पाठ जिल्द 4, पृष्ठ 144-56 (लखनऊ

3. साहित्य

प्राच्य विद्या के विद्वानों के प्रयत्नों के फलस्वरूप हमें विभिन्न विषयों, जैसे लोकगाथाओं, कथासाहित्य, काव्य तथा संगीत, व्यावहारिक कलाओं पर कई पुस्तकें और कानूनी तथा राजनैतिक आदेशों के सार-संग्रह तथा हिन्दू और मुस्लिम संतों तथा समाज सुधारकों की कुछ पुस्तकें उपलब्ध हैं।

1. लोकगाथाएँ और कथासाहित्य—सामाजिक इतिहास के विद्यार्थी को लोकगाथाओं के निरीक्षण का महत्त्व बताने की आवश्यकता नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि लोकगाथाओं में दरबारी वृत्तांतों जैसी ऐश्वर्य और चकाचौंध तथा ऐतिहासिक पुस्तकों या अभिलेखों जैसी स्पष्टता और परिशुद्धता का अभाव रहता है, किन्तु वे अपने ही ढंग से 'मानव' के आध्यात्मिक इतिहास का पुनर्गठन करने का दावा करती हैं, वैसे इतिहास का नहीं जो कवियों और विचारकों की कृतियों में परिलक्षित होता है, बल्कि उस इतिहास का जो 'जनसाधारण' की अस्पष्ट-सी ध्वनियों से प्रकट होता है।[1] लोकगाथाओं को क्रमशः वैज्ञानिक अध्ययन का दर्जा प्राप्त होता जा रहा है। समीक्षान्तर्गतकाल का प्रारंभ मुहम्मद अफी कृत 'जवामी उल हिकायात' नामक विशाल कथा-संग्रह से होता है। इस कृति का लेखक सुल्तान इल्तुतमिश का समकालीन था और उसने अपनी महान कृति सुल्तान के मंत्री निजामुल्मुल्क जुनैदी को समर्पित की थी। यह पुस्तक बड़ी सुघड़ता से संकलित की गई है और इसकी विषय-वस्तु के अनुसार इसे सावधानी से अध्यायों और खण्डों में विभाजित

मूल प्रति) में है। सर एच० एम० इलियट और उनके मुंशी दोनों ने इस तथ्य की उपेक्षा कर दी है कि वह एक सच्चा शाही दस्तावेज नहीं माना जाना चाहिए बल्कि उसे पत्र-लेखनशास्त्र का केवल एक नमूना मानना चाहिए। जिल्द 4 के पृष्ठ 18 में खुसरो स्पष्ट कर देता है कि सम्बन्धित पत्र को उसने गढ़ा है। और उसी जिल्द के पृष्ठ 22 में वह पुनः कहता है कि उसने काल्पनिक पत्रों के लिखने में अपनी उर्वराकल्पनाशक्ति के साथ उन लोगों की कल्पनाशक्ति का भी प्रयोग किया है जिन्होंने पहले भी ऐसा ही किया था। इस प्रकार उसने इन "विभक्त और मिश्रित शब्दों, संक्षिप्त और लम्बे मुहावरों और संक्षिप्त और विस्तृत दस्तावेजों का दक्षतापूर्वक संपादन करके जिन्हें शासकीय समझा जाता था, एक सुन्दर और नवीन पुस्तक का रूप दिया। गजनी पर अधिकार और मंगोलों की पराजय का तथ्य और पत्र की शैली किसी विगत तिथि से लिए गए होंगे, जबकि शेरखां ने सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की ओर से गजनी पर अधिकार किया था। इसका उल्लेख पहले की एक पाद-टिप्पणी में किया जा चुका है।

1. क्रेप, भूमिका, पन्द्रहवाँ।

किया गया है।[1] इस काल के एक मुस्लिम लेखक से यह आशा करना व्यर्थ है कि अधिशासित देश के सामाजिक जीवन से उसका निकट सम्पर्क हो। इस प्रकार 'जवामी-उल-हिकायात' गजनी और बगदाद जैसे विदेशी मुस्लिम केन्द्रों के बारे में अधिक तथा मुलतान और दिल्ली के बारे में कम कहती है। तथापि, यह सुल्तानों के जीवन की थोड़ी बहुत रोचक झलक दिखाना नहीं भूलती। कुल मिलाकर इसका मूल्य अत्यल्प है। विद्यापति ठाकुर द्वारा लिखी 'पुरुष परीक्षा' यद्यपि समकालीन नीति-पुस्तकों की शैली पर ही लिखी गई है, हमारे लिये बहुत काम की है।[2] यह हिन्दू नैतिक आदर्शों के परीक्षण से प्रारंभ होती है और प्राचीन तथा समकालीन सामाजिक जीवन से उदाहरण देते हुए यह बताती है कि उन नैतिक आदर्शों से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये। किन्तु ऐतिहासिक उदाहरणों के चुनाव में मुसलमानों या हिन्दुओं के निम्न वर्गों की अवहेलना नहीं की गई है। कुल मिलाकर, हमारे काल की विशेषता है संस्कृत साहित्य का पतन; और इसलिये हम मूल्यवान सूचना के लिये विकासोन्मुख प्राकृत और प्रान्तीय लोकभाषाओं से लाभ उठा सकते हैं।

शेरशाह के शासन-काल में अवध के प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने अपनी मातृ-भाषा अवधी में लिखा तथा उसी में गाया भी और इसका उन्हें गर्व भी था। कुछ मानों में तो वे अमीर खुसरो से भी महान् थे, क्योंकि जबकि अमीर खुसरो ने अपना निरूपण केवल मुस्लिम समाज तक ही सीमित रखा और इस्लाम के रूढ़िवादी दृष्टिकोण का अनुसरण किया, जायसी ने हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों के जलाशयों का छककर पान किया; और वस्तुतः जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण मुस्लिम की अपेक्षा हिन्दू अधिक था। वह हिंदुस्तान का ऐसा प्राचीनतम देशी कवि है जिसकी कृतियों के विवादहीन अवशेष हमें उपलब्ध हैं।[3]

1. मूल्यवान भूमिका सहित पुस्तक की विषय-वस्तु की एक सूची 1929 में एम० निजामुद्दीन द्वारा गिब मेमोरियल फण्ड सिरीज् के अन्तर्गत अभी हाल ही में प्रकाशित की गई थी।
2. विद्यापति ठाकुर की तिथि निश्चित रूप से अभी तक तय नहीं की जा सकी है। बी० के० चटर्जी का विचार है कि वे 1400 ई० से 1438 ई० के मध्य निश्चित रूप से जीवित थे (ज० डि० लै०, 1927, 36 के अनुसार)। मैंने बम्बई में प्रकाशित उस पुराने अंग्रेजी अनुवाद का प्रयोग किया है जो संभवतः स्कूल या कालेज के उपयोग के लिए किया गया था।
3. देखिये ग्रियर्सन, पद्मावत भूमिका 2। मलिक मुहम्मद जायसी के दो काव्य अब उपलब्ध हैं—पद्मावत और अखरावट। पद्मावत का आंशिक संपादन ग्रियर्सन और द्विवेदी द्वारा किया गया था किन्तु द्विवेदी की मृत्यु हो जाने पर कार्य स्थगित कर दिया गया। अखरावट नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस द्वारा 1904 में प्रकाशित की गई थी।

अपनी प्रसिद्ध कृति 'पद्मावत' में मलिक मुहम्मद जायसी चित्तौड़ के राजा रतनसेन की लोकप्रिय कथा की घटनाओं का वर्णन करता है : राजा का सुदूर सिंहल की राजकुमारी पद्मावत से विवाह; अलाउद्दीन खिलजी से उसका युद्ध और दिल्ली में उसका बंदी बनाकर रखा जाना; और अंत में उसकी रानी की योजना तथा दो स्वामिभक्त अनुचरों के शौर्य से शाही कारागार से उसका रोमांचकारी पलायन। कथा में वर्णित सिंहल (जिसे सामान्यतः लंका समझा जाता है) उत्तर भारत की एक औसत हिन्दू राजधानी से अधिक कुछ नहीं है। समुद्रों और दक्षिणी देशों के वर्णन (जो हिन्दू नाट्य-परंपरा की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु दिये गए हैं) इतने काल्पनिक हैं कि इसमें सन्देह होने लगता है कि लेखक ने कभी दोआब और अवध की सीमा के बाहर जाने का साहस भी किया होगा। कथा साहित्य का एक दूसरा ग्रंथ है मालवा के बाजबहादुर और रूपमती की कथा, जिसका संकलन अहमद उल उमरी ने किया था और जो अब 'लेडी आफ दि लोटस' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित ग्रन्थ के अनुवाद के रूप में प्राप्य है। यह एक मनोरंजक किन्तु अवसादपूर्ण काव्य है और इसमें मालवा के सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण झलक पाई जाती है।

2. **काव्य और गीत**—अमीर खुसरो और अमीर हसन के अतिरिक्त ऐसे अनेक अन्य फारसी कवि थे जिनकी कृतियाँ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, लुप्त हो गई हैं। बद्र-ए-चाच की कविताएँ उपलब्ध हैं और अन्य कवियों का किंचित संदर्भ बदायूनी ने अपने इतिहास में दिया है। किन्तु हमारी अभी की आवश्यकता को देखते हुए इन कविताओं का मूल्य नगण्य है। वे विदेशी भाषा में रची गई हैं और उन की शैली अत्यधिक परंपरागत है। फारसी कवि सब मिलाकर इस भूमि के उन कवियों से बहुत भिन्न हैं जिन्होंने अपनी ही भाषा में पद्य रचना की है। उनमें से मुकुन्दराम और चण्डीदास नामक बंगाल के दो कवि प्रसिद्ध हैं। सामाजिक इतिहास का कोई भी विद्यार्थी उनकी कृतियों का अध्ययन करके आनन्द तो प्राप्त करेगा ही साथ ही लाभान्वित भी होगा।[1] इससे अधिक महत्त्वपूर्ण काव्य-कलाप का प्रदर्शन भक्तिमय धार्मिक गीतों (भक्ति गीतों) के संकलन में किया गया, जो सामाजिक स्थिति के अत्यन्त मूल्यवान स्रोत हैं। सामान्यतः उनकी ध्वनि अवसादपूर्ण है और सामाजिक जीवन की उनकी आलोचना किंचित असंतुलित है किन्तु वे सूचना भण्डार का उद्घा-

1. *मुकुन्दराम को 16वीं शताब्दी के अंतिम भाग का माना गया है। उसकी कविताओं के कुछ रोचक उद्धरण जे॰ एन॰ दासगुप्ता कृत 'बंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेंचुरी' में दिये गये हैं। टी॰ डी॰ गुप्ता ने हाल ही में अपनी 'आस्पेक्ट्स आफ बंगाली सोसायटी' का प्रकाशन ज॰ डि॰ लै॰, कलकत्ता (1927-29) में किया है। इसमें उन्होंने बंगाल के सामाजिक इतिहास के अध्ययन के लिये, जिसमे बंगाली कविता, कथागीतों और लोकगीतों का परीक्षण भी सम्मिलित है, मुख्यतः बंगाली भाषा के साहित्यिक तथ्यों का प्रयोग किया है।*

टन करते हैं और जनसमाज की भावना को संचरित करने वाले गहन भावावेगों को व्यक्त करते हैं। हिन्दुस्तान के हर भाग में इन गीतों का प्रचुर संग्रह है। इस सिल-सिले में कुछ प्रतिनिधि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं, जैसे—कश्मीर में लल्ला, पंजाब में नानक, गंगा के उत्तरी भाग में कबीर, बिहार और उड़ीसा में विद्यापति ठाकुर और बंगाल में चैतन्य। ये सब हमारे काल के हिन्दुस्तान के लोक-धर्म के महान देवदूत हैं।[1] अन्य अनेक संतों के गीत मैकालिफ की कृति की छठवीं जिल्द में दिये गए हैं, जबकि कुछ नवीन कविताएँ विश्वभारती और अन्य भारतीय पत्रिकाओं द्वारा धीरे-धीरे प्रकाश में लाई जा रही हैं। मैंने जानबूझकर इस अध्ययन में हिन्दुस्तान के मुस्लिम सूफियों के विस्तृत परीक्षण को छोड़ दिया है। सूफी लोग सामान्यतः अपने कार्यों में इतने परम्परावादी हैं कि वे जनसाधारण के जीवन और उनकी आध्यात्मिक आवश्यकताओं से लगभग पूर्णतः अलगाव प्रदर्शित करते हैं। वे उन सामाजिक परिवर्तनों को मान्यता देने में लज्जा का अनुभव करते हैं जो हिन्दुओं और मुसलमानों के निकटतर सम्पर्क और पारस्परिक प्रक्रिया के कारण मुस्लिम समाज में घर करते जा रहे थे। वास्तव में सूफी लोग मुसलमानों के अन्य किसी वर्ग की अपेक्षा जीवन के सामाजिक प्रवाह के अधिक निकट सम्पर्क में थे किन्तु उन्होंने अपने को ऐसी दो स्थितियों में पाया जिन्हें एक-दूसरे से खतरा था। वे सारे रूढ़िगत-

---

1. लल्ला के गीत आर० सी० टेम्पल द्वारा अंग्रेजी में अनूदित किये गये हैं। सानुवाद मूल प्रति ग्रियर्सन और बार्नेट द्वारा प्रकाशित की गई थी। नानक के गीत और भजन सिक्खों की पवित्र पुस्तक ग्रंथ-साहिब में संग्रहीत किये गए हैं और उनका अंग्रेजी अनुवाद मेकालिफ की कृति 'दि सिख रिलीजन' की प्रथम जिल्द में पाया जा सकता है। कबीर का बीजक अब रेव० अहमदशाह द्वारा सावधानी से किये गए अंग्रेजी अनुवाद के रूप में प्राप्य है। विद्यापति के गीत—'पदावली बंगीय' (जो उसके पूर्वोल्लिखित संस्कृत ग्रन्थ के विपरीत मैथिली में रची गई है) कुमारस्वामी और अरुणसेन द्वारा अनूदित और प्रकाशित किये गए थे। उसकी विशेषता यह है कि वह कृष्णमार्गी है और उसने राधा और कृष्ण के प्रणय-गीत गाये। चैतन्य इतने भाग्यशाली नहीं थे कि वे कोई गीत संग्रह छोड़ जाते किन्तु दास कविराज का समकालीन जीवन चरित्र, जो कई वर्षों के कठोर नैष्ठिक परिश्रम के पश्चात् 1582 में समाप्त हुआ था, बड़े ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रन्थ है। इस जीवनी का दूसरा भाग, जो चैतन्य की तीर्थयात्रा के 6 वर्षों का वर्णन करता है, जे० एन० सरकार के अंग्रेजी अनुवाद के रूप में प्राप्य है। उनके यात्रियों के वर्णन से हमें सामान्य जनता की आशाओं और शंकाओं का तथा मुस्लिमों द्वारा क्रमशः हिन्दू विचार आत्मसात किये जाने का परिचय मिलता है।

मुस्लिम जीवन से असन्तुष्ट थे, किन्तु मुस्लिम सिद्धांतों की कठोर व्याख्या की चादर ओढ़कर जनता का नेतृत्व करने वाले धर्मशास्त्रियों की शक्ति के विरुद्ध वे आवाज़ उठाने का साहस नहीं कर सकते थे। उसी प्रकार उन्होंने मुस्लिम कुलीनवर्ग के जीवन और आचार-व्यवहार का तो अनुमोदन नहीं किया किन्तु ये शासक वर्ग की शक्ति से भयाक्रान्त होने के कारण प्रबल विरोध या खरी आलोचना द्वारा उनको रुष्ट भी नहीं कर सके। जनता को देने के लिये उनके पास ऐसी सामग्री बहुत थोड़ी थी जो रूढ़िवादी इस्लाम के मान्य स्वरूप के ताल-मेल में न थी; और इस तरह उन पर नास्तिकता और धर्मद्रोह का दोष लगाये जाने की सम्भावना थी। इसलिए, सूफी कृतियाँ हमारे उतने उपयोग की नहीं है। मैंने सूफी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिये हमदानी (मृत्यु-1384 ई०) कृत 'जखीरत-उल-मुलूक' और शेख सद्र-उद्-दीन (मृत्यु-1536 ई०) कृत 'सहायफ' का उपयोग किया है। एक रूढ़िवादी मुसलमान किंचित भिन्न होता है। चाहे वह 'काफिरों' के जीवन में रुचि न रखता हो किन्तु वह मुसलमानों को उनके सम्पर्क से बेदाग़ बनाए रखने में अवश्य रुचि रखता है। वह एक 'काफिर' को इस्लाम में दीक्षित करके परलोक के लिए पुरस्कार प्राप्त करने में भी कम रुचि नहीं रखता। व्यावहारिक धर्म में एक सूफी और एक कट्टरपंथी मुसलमान के मध्य सीमा-रेखा खींचना कुछ कठिन-सा लगता है। हाँ, कुछ ऐसे अतिपूर्ण मामले इस सम्बन्ध में अपवाद स्वरूप माने जा सकते है जबकि एक ओर तो एक सूफी इस्लाम पर कुछ अलौकिक तथा रहस्यमय सिद्धान्त आरोपित करता है और अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुरान और परम्परा दोनों से तोड़-मरोड़कर अर्थ निकालता है, तो दूसरी ओर एक कट्टरपंथी मुस्लिम सिद्धान्तों की शब्दशः व्याख्या से आगे नहीं बढ़ना चाहता। कट्टरपंथी तरीके पर विरचित की गई दो पुस्तकें है, अमीर खुसरो कृत 'मत्ला-उल-अनवार' और यूसूफ गदा कृत 'तुहफा-ए-नसायह'। खुसरो की पुस्तक, जिसका मै उल्लेख कर चुका हूँ, उसके युग के धर्मविरोधी आचार-व्यवहारों का कटु प्रतिपादन है। वह हर वर्ग के मुसलमानों का और नैतिक जीवन के हर चरण का वर्णन करता है। 'तुहफा-ए-नसायह' आलोचनात्मक की अपेक्षा व्याख्यात्मक अधिक है। पुत्र को सलाह के रूप में सम्बोधित इस उपदेशपूर्ण काव्य में लेखक भारत में मुस्लिम जीवन का एक कट्टरपंथी दृष्टिकोण से सामान्य सर्वेक्षण करता है। यह इस बात पर विशेष रूप से ज़ोर देती है कि हिन्दू विश्वास और रिवाज तथा अन्य प्रचलित अंधविश्वास हिन्दुस्तान के कट्टरपंथी मुस्लिम-जीवन की योजना में कहाँ तक स्थान पाते जा रहे थे।[1]

---

1. यूसूफ गदा दिल्ली के प्रसिद्ध संत शेख नासिरुद्दीन चिराग के शिष्य थे और उन्होंने यह पुस्तक 1393 (ईथ, 732) में लिखी। पुस्तक में केवल 776 पद्य हैं, किन्तु लेखक का दावा है कि उसने इनमें पाठक के सम्मुख कट्टरपंथी विचारों तथा रिवाजों की पूरी व्याख्या प्रस्तुत कर दी है (देखिए तु०, 29)।

3. व्यावहारिक कलाएँ और संकलन—व्यावहारिक कलाओं पर कुछ पुस्तकें हैं जो समकालीन सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिए पर्याप्त उपयोगी हैं। उदाहरणार्थ पाकशास्त्र की एक पुस्तक 'किताब-ए-नियामत खाना-ए-नासिर शाही' में इत्र सौंदर्य-प्रसाधन बनाने तथा अनेक पकवान तथा स्वादिष्ट पदार्थ तैयार करने की विधियाँ दी गई हैं।[1] 'हिदायत-उर-रामी' नामक एक अन्य पुस्तक धनुर्धारियों को और धनुष-बाण के प्रयोग में रुचि रखने वालों को मार्गदर्शन देती है।[2] किन्तु इस प्रकार की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'फ़िक़-ए-फ़ीरोज़शाही' है। यह नागरिक और धार्मिक कानूनों का संकलन है और इसके पीछे एक रोचक इतिहास है। यह मूलतः याकूब करीनी नामक एक व्यक्ति द्वारा संकलित की गई थी जो पुस्तक समाप्त किये बिना ही मर गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त पुस्तक के बारे में फ़ीरोज़ तुग़लक़ का ध्यान आकर्षित किया गया और उसने इसके संशोधन तथा परिवर्द्धन किये जाने की आज्ञा दी और इस प्रकार पुस्तक ने वर्तमान स्वरूप ग्रहण किया। इसमें कानूनी अनुदेश दिये गए हैं जो संभवतः न्याय-विभाग के मार्गदर्शन के लिये थे, किन्तु ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। तथापि, यह निश्चिततः कहा जा सकता है कि ये अर्द्ध-न्यायिक संकलन चाहे आधुनिक विधि-संहिताओं की तुलना में खरे न उतरें, तो भी इससे इनका ऐतिहासिक मूल्य कम नहीं होता। वे अन्य पुस्तकों की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्टता से सामाजिक परिस्थितियों को प्रकट करती हैं और इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए हमें उनका मूल्यांकन करना चाहिए।[3] एक अन्य पुस्तक, जो 'धार्मिक निर्णयों, सलाहों और चेतावनियों' का संकलन तो नहीं (ईथे के अनुसार),

---

1. इण्डिया आफिस के संग्रह में स्थित पाण्डुलिपि की एकमात्र प्रति (जो 1634-35 ई० के मध्य प्रतिलिपित की गई) में संकलन की तिथि या लेखक का नाम नहीं दिया गया है और ईथे उसके संकलन की कोई तिथि निर्धारित नहीं करते (ईथे, 1490 के अनुसार)। उसकी विषय-वस्तु के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए और पाण्डुलिपि का परीक्षण करके मैं यह विश्वास करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ कि यह मालवा के खलजी के अन्तर्गत 1500 ई० के पूर्व संकलित की गई थी। यह शाही रसोईघर के लिए सरकारी पथप्रदर्शिका थी, फलतः इसके लेखक का नाम देने की आवश्यकता न रही।
2. 'हिदायत-उर-रामी' बंगाल के हुसैनशाह (904-927 ई०) के शासन काल में संकलित की गई थी (रेऊ, 489 के अनुसार)।
3. 'फ़िक़-ए-फ़ीरोज़शाही' की योजना मुस्लिम विधि-ग्रंथों की रूढ़िवादी धारा का ही अनुसरण करती है। यह नियमों का अरबी मूल तथा उनका सविस्तार फ़ारसी अन्वय तथा उस सम्बन्ध में अन्य सुन्नी विधि-वेत्ताओं के अभिमतों का सारांश भी देती है।

शासक के लिए एक प्रकार की राजनैतिक मार्गदर्शिका और राजनैतिक नीतिमत्ता की संहिता अवश्य है, जियाउद्दीन बरनी कृत 'फतवा-ए-जहांदारी' है। यह पुस्तक और मुबारकशाह कृत 'आदाब-उल-मुलूक' नामक एक अन्य पूर्ववर्ती संकलन उस समय के राजनैतिक विचारों पर कुछ प्रकाश डालते है। किन्तु इन संकलनों की ध्वनि व्यावहारिक की अपेक्षा सैद्धांतिक ही है। किसी भी स्थिति में सामाजिक विकासों का स्पष्टीकरण करने में उनका मूल्य अत्यल्प है। अभी हमें इन संकलनों की विषय-सामग्री का सूक्ष्म परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है।[1]

4. विदेशी यात्री

कुछ मानों में यात्रियों के विवरण भारत के समकालीन सामाजिक इतिहास के मूल्यवान स्रोत हैं। ये विदेशी यात्री विभिन्न समयों में विभिन्न देशों से आये और इन्होंने प्रशंसनीय तटस्थता तथा बौद्धिक जिज्ञासा के साथ भ्रमण किया। दुर्भाग्यवश, कुछ को छोड़कर उनके भ्रमण का मण्डल कुछ तटीय नगरों तथा समुद्रतट से लगे भीतरी प्रदेश की एक छोटी-सी पट्टी तक ही सीमित रहा, और संभवतः वरथेमा को छोड़ शेष सब इस देश की भाषा से अनभिज्ञ थे। इन परिसीमाओं के भीतर उनके वर्णन अत्यन्त मूल्यवान है, विशेषकर इस बात में कि केवल विदेशी यात्री ही भारत की कलुषित सामाजिक संस्थाओं का स्वरूप प्रत्यक्ष करते हैं।[2] यह एक विलक्षण सत्य है कि इस भूमि के कुछ अत्यन्त अमानवीय सामाजिक रिवाजों की ओर भारत के हिन्दू या मुस्लिम लेखकों, कवियों और समाज-सुधारकों ने कभी ध्यान देने या उनके सम्बन्ध में कुछ टीका करने की आवश्यकता नहीं समझी। यदि कोई दास प्रथा, सती प्रथा, छुआछूत, बाल विवाह, अति-विषयभोग और यौन-विकृति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहे तो भारतीय पुस्तकों में ढूंढ़ने पर भी ये बातें नहीं मिलेंगी। नानक जैसे महान समाज-सुधारक और कबीर, चैतन्य या निजामुद्दीन औलिया जैसे सन्त और पैगम्बर भी उनके बारे में विशेष कुछ नहीं कहते और यद्यपि वे पुरोहितवाद के विरुद्ध ज़ोरदार विद्रोह करते है, वे इन बड़े दोषों के विरुद्ध उसी विशिष्टता या जोश के साथ आवाज़ नहीं उठाते। मुसलमान इस परिस्थिति के सम्बन्ध में कहीं स्वस्थ और अधिक तटस्थ दृष्टिकोण अपना सकते थे किन्तु उन्होंने भी इन ज्वलंत सामाजिक दोषों द्वारा मानव व्यक्तित्व के दमन किये जाने के विरुद्ध कोई शिकायत

---

1. यह शीर्षक इण्डिया आफिस संग्रह की पाण्डुलिपि को दिया गया है। इसी पुस्तक के एक संक्षिप्त संस्करण को ब्रिटिश म्यूजियम संग्रह में 'आदाब-उल-हर्ब' नाम दिया गया है।
2. बंगाली समाज के अध्ययन के प्रति टी० डी० दास गुप्ता का योगदान चूंकि केवल बंगाली साहित्य के साक्ष्य पर ही आधारित है, सामाजिक तथ्यों के निरूपण में इस सिलसिले में स्वाभाविकतः अपूर्ण है।

करने की आवश्यकता महसूस नहीं की क्योंकि यह सब, जैसा कि बाद में स्पष्ट किया जाएगा, जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण के प्रतिकूल नहीं था। दूसरे शब्दों में, ये सामाजिक दोष हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों की आँखों में उनके अपने सामाजिक ढाँचे के सामान्य अंग बन चुके थे। तेरहवीं से सोलहवीं शती तक इन यात्रियों की एक अविच्छिन्न कड़ी-सी है। तेरहवीं शती में प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो आया जो 1273 के लगभग पूर्वी देशों के अपने लम्बे भ्रमण में निकला। चौदहवीं शती में उतना ही प्रसिद्ध और हमारे लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यात्री इब्नबतूता आया जिसने अपना सारा जीवन (1325-1354) ही तत्कालीन मुस्लिम जगत के भ्रमण में व्यतीत कर दिया। पन्द्रहवीं शती में कम-से-कम पाँच यात्री आये जिनके वृत्तान्त हमारे पास हैं। शताब्दी के प्रारम्भ में ही 1405 में एक चीनी नाविक दूतमण्डल आया जिसके मुस्लिम सचिव महुअन ने बंगाल और मालाबार के सम्बन्ध में अपने अवलोकन लिखे। कुछ समय पश्चात् निकोलो काण्टी (1419-1444) आया। शताब्दी के लगभग मध्य में, 1462 में विद्वान फारसी राजदूत अब्दुर्रज्जाक विजयनगर के दरबार में आया। निकटिन और स्टीफानो भी शताब्दी के अन्त में आये। 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वरथेमा (1503-1508) आया; वरबोसा 1578 के लगभग आया और तुर्की नौसेनापति सीदी अली रायस हमारे काल के अन्त में (1553-1556) आया। अथक प्रयास करने पर भारत में आने वाले यात्रियों के कुछ नए वर्णन प्रकाश में आएं तो कोई आश्चर्य नहीं।[1] अभी तक तो इन यात्रियों में सर्वाधिक विद्वान इब्नबतूता,

1. इन यात्रियों के प्रकाशित वर्णनों में से सर हेनरी यूल द्वारा किया गया मार्कोपोलो का संस्करण विख्यात है। रानी एलिजाबेथ के समय (1579 ई०) जान फ्रैम्प्टन द्वारा मार्कोपोलो का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया था जो अब पेंजर के संस्करण में उपलब्ध है। इस संस्करण में निकोलो काण्टी का एक नवीन और कुछ मानों में अपेक्षाकृत पूर्ण पाठ सम्मिलित है, जो मेजर के 'इण्डिया इन दि फिफ्टीन्थ सेंचुरी' में निहित पाठ से पर्याप्त श्रेष्ठ है। भारत के बारे में पेरो तेफुर के साथ काण्टी के वार्तालाप 'ब्राडवेट्रे वलर्स सिरीज़' के अन्तर्गत प्रकाशित पेरो तेफुर की यात्राओं के वर्णन में सम्मिलित हैं। महुअन का वर्णन जार्ज फिलिप द्वारा अनूदित किया गया था और ज० रा० ए० सो०, 1895-96 में प्रकाशित किया गया था। अब्दुर्रज्जाक, स्टेफानो और निकटिन के वर्णन ऊपर उल्लिखित मेजर की पुस्तक में हैं और हक्लूत सोसायटी द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। इब्नबतूता का पूरा अंग्रेजी अनुवाद अभी तक उपलब्ध नहीं है और मैंने अपना अध्ययन 1870-71 ई० में काहिरा से प्रकाशित अरबी मूलप्रति पर आधारित किया है। वरथेमा और वरबोसा के अंग्रेजी अनुवाद हक्लूत सोसायटी, लंदन द्वारा प्रकाशित किये जा चुके हैं। सीदी अली रायस का वर्णन वेम्ब्री के अंग्रेज़ी अनुवाद के रूप में उपलब्ध है। एक नया और बेहतर अनुवाद अभी प्रकाशनाधीन है।

अब्दुर्रज्जाक और सीदी अली रायस थे।[1] अब्दुर्रज्जाक का वर्णन प्रायः विजयनगर तक ही सीमित है और इस प्रकार वह हमारे काम का नहीं है। अभी तक श्रेष्ठतम और सर्वाधिक पूर्ण वर्णन इब्नबतूता का है। उसके पूर्व और उसके पश्चात् भी किसी ने भी देश के इतने भीतर प्रवेश करने का प्रयास नहीं किया, इतने समय के लिये कोई इस देश में ठहरा नहीं और न ही किसी ने इतने अधिक और विभिन्नतापूर्ण सामाजिक पहलुओं का वर्णन ही किया। उसका साक्ष्य प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत है; उसके अनुभव इतने सूक्ष्म और घनिष्ठ है; लोगों से मिलने-जुलने के उसके अवसर बहुत विस्तृत और विविध हैं; और अन्त में वह अपने अवलोकन यहां से हजारों मील दूर अपनी सुरक्षित मातृभूमि में लिखवाता है जिससे उसके द्वारा तथ्यों को छुपाने या उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत करने की गुंजायश नही के बराबर है। इस प्रकार उसका वर्णन उस समय के हिन्दुस्तान का, जहा यात्री स्वयं एक हिन्दुस्तानी के समान विचरण करता है, सजीव चित्र है। वह इसी देश मे विवाह कर लेता है (जैसा कि उसने अन्य अनेक देशों मे किया) और उसकी संताने भी है; वह राज्य की नौकरी भी करता है; चीनी सम्राट के दरबार में दिल्ली के सुल्तान का राजदूत भी नियुक्त किया जाता है; वह एक योगी का जीवन, जो कि उस युग की लोकप्रिय मान्यता थी, भी व्यतीत करता है और शरणार्थी के रूप में छुपकर भ्रमण भी करता है। फिर भी प्रत्येक व्यक्ति के समान इब्नबतूता की भी बौद्धिक सीमाएं हैं। वह कभी-कभी संतों के चमत्कारों पर सच्चे बर्बर के समान विश्वास करने के लिये उद्यत हो उठता हैं। चूंकि उसने अपनी लम्बी यात्राओं का कोई अभिलेख नही रखा था उसने भारतीय राजनैतिक जीवन के मोटे तथ्यों का कोई क्रमबद्ध अध्ययन नहीं किया, वह कभी-कभी अनेक गलतियां कर बैठता है और तथ्यो का मनोरंजक रूप से त्रुटि-पूर्ण वर्णन कर देता है।[2] सीदी अली रायस का वर्णन संक्षिप्त होने पर भी रोचक है।

1. मार्कोपोलो के वर्णन की आलोचना के लिये तुलना कीजिए फ्रेम्प्टन, भूमिका, नवा। योरोपीय यात्रियों के अवलोकन प्रायः दक्षिण भारत तक ही सीमित है और सामाजिक जीवन के कुछ ही तथ्यों तक सीमित हैं जो कभी-कभी दोहरा भी दिये गए है जैसे कि एक ने दूसरे के वर्णन से उन्हें लिया हो।
2. उदाहरणार्थ कुछ रोचक त्रुटिपूर्ण वर्णनों के लिये देखिये, कि० रा०, द्वितीय, 17, 21, 30, 31 : कि सुल्तान मुईजुद्दीन कैकुबाद ने दिल्ली की कुतुब मीनार निर्मित की और उसके शिखर को जाने वाला मार्ग इतना चौड़ा था कि उसमें एक हाथी प्रवेश कर सकता था; कि गयासुद्दीन बलबन सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की हत्या करके सिंहासन पर बैठा; कि जब गयासुद्दीन तुगलक सिंहासनासीन हुआ तो सिंहासन के लिये पिता-पुत्र में झगड़ा हुआ; और यह कि जब गयासुद्दीन तुगलक सुल्तान बन गया तो जूनाखां (जो बाद में मुहम्मद तुगलक के नाम से प्रसिद्ध हुआ) ने तेलंगाना को अभियान ले जाने के बहाने दक्कन में अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

वह राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के तथ्यों को समझने और देश विशेष के निवासियों की संस्कृति को समझने में अधिक परिष्कृत मस्तिष्क का परिचय देता है। दुर्भाग्यवश, भारत की अस्थिर राजनैतिक स्थिति ने तथा ओटोमन साम्राज्य के प्रति उसकी भक्ति तथा प्रेम ने उसे शीघ्र ही लौटने के लिये प्रेरित कर दिया।

5. गौण स्रोत : पत्रव्यवहार

सूचना के गौण स्रोतों में सरकारी और निजी पत्रों के कुछ संकलनों का उल्लेख किया जा सकता है, जैसे महमूद गावां कृत 'रियाज-उल-इंशा', ताहिर उल हुसैनी कृत 'इंशा नामा' और तुर्की के बायजीद द्वितीय तथा महमूद द्वितीय के पत्र, ये सब भारत की परिस्थितियों का किंचित उल्लेख करते हैं। इस समय में समीक्षांतर्गत काल के सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिये इतने ही साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता हूं।

एक आपत्ति कभी-कभी उठाई जाती है, जो अकारण नहीं है, कि केवल मुस्लिम और अन्य स्रोतों पर आधारित सामाजिक जीवन का चित्र हिन्दू समाज के साथ न्याय करने या उसे सहानुभूतिपूर्ण और सुस्पष्ट रंगों में चित्रित करने में सफल नहीं हो सकेगा। मैं इस मत से इसलिये सहमत नहीं हो सका कि इस मत से यह तात्पर्य निकलता है कि मुसलमान इतिहासकारों या विद्वजनों ने हिन्दू सामाजिक जीवन के तथ्यों को जानबूझकर तोड़ा-मरोड़ा। मुस्लिमों और हिन्दुओं के मध्य कोई सांस्कृतिक संघर्ष नहीं था। वास्तव में सांस्कृतिक शक्तियां दोनों को पूर्ण समन्वय की ओर ले जा रही थीं। फलत: ऐसे भेदभाव की शायद ही कोई गुंजाइश थी। मुसलमानों के मध्य ऐतिहासिक साहित्य के विकास की दीर्घ और स्वस्थ परंपरा थी और अत्यंत रूढ़िवादी व्यक्तियों में भी हमें बौद्धिक ईमानदारी के उदाहरण मिलते हैं, जैसे, जियाउद्दीन बरनी और अब्दुल कादिर बदायूनी। अमीर खुसरो और मलिक मुहम्मद जायसी के साथ ही हम बहुत भिन्न और लगभग राष्ट्रीय दृष्टिकोण में पदार्पण करते हैं। दूसरी ओर, यदि उस समय कोई हिन्दू विद्वान थे भी तो वे कश्मीर और बनारस जैसे कुछ बौद्धिक केन्द्रों में अलग-अलग रहते थे और सामाजिक जीवन के मुख्य प्रवाहों से पूर्णत: अनभिज्ञ थे। इसमें भी हमें सन्देह है कि एक अच्छे इतिहासकार बनने के लिये उन्हें विरासत में उचित सांस्कृतिक परंपराएं या ठीक मानसिक दृष्टिकोण मिले होंगे।

फिर भी, यद्यपि मुस्लिम स्रोतों को हम पक्षपात का दोषी नहीं ठहरा सकते, अन्य सीमाएं उतनी ही गंभीर हैं। मुस्लिम इतिहासों में सामाजिक विषय-वस्तु अत्यन्त अलग है। उनके लिए दरबारों और नगरों या कुछ धार्मिक और साहित्यिक केन्द्रों के बाहर का जीवन कोई आकर्षण नहीं रखता। बहुधा वे हिन्दू समाज के बारे में या निम्नवर्गीय मुसलमानों, जो कि हिन्दू जनता से भिन्न नहीं थे, के बारे में

जानकारी प्राप्त करने में सीधी रुचि नहीं रखते। स्पष्टतः यह हिन्दू समाज के अध्ययन के लिये अपर्याप्त आधार है। दुर्भाग्य से हिन्दू राजनीति और संस्कृति के एकमात्र केन्द्र राजपूताना के अभिलेख अभी तक पूरी तरह से प्रकाश में नहीं लाये गये है। जेम्स टाड की प्रभापूर्ण किन्तु पुरानी कृति अभी भी हमारी सूचना का मुख्य स्रोत है। हम आशा करते हैं कि राजपूत अभिलेखों और अन्य सूचना स्रोतों का आलोचनात्मक अध्ययन समकालीन हिन्दू समाज के ज्ञान में कभी न कभी अवश्य वृद्धि करेगा।

ऊपर जैसी सामग्री का उल्लेख किया गया है उसके आधार पर हिन्दुस्तान के समाज का पूरा-पूरा चित्र दे सकना असभव है। ऐसी परिस्थितियों में एक सांत्वना हमें इस विचार से मिल सकती है कि भारतीय समाज की लगभग स्थिर स्थिति में सामाजिक इतिहास का विद्यार्थी अपने तथ्यों और निष्कर्षों की जाच आज के उनके अवशेषों से उनका मिलान करके कर सकता है और इस प्रकार वह वर्तमान अवलोकनों के प्रकाश में भूतकाल का अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण चित्र देने में सफल हो सकता है। यद्यपि यह पद्धति सामान्यतः सहायक सिद्ध होती है, फिर भी भारतीय इतिहास का ऐसा दृष्टिकोण निर्धारित करने के पहले हमें दो सीमाए ध्यान में रखनी चाहिएँ। समीक्षांतर्गत काल और आधुनिक काल के बीच मे लगभग चार सौ वर्षों का सामाजिक विकास है और इसमें औद्योगीकृत पश्चिम से आई हुई एक नवीन सामाजिक शक्ति भी सम्मिलित है। यह असंभव नही कि इस बीच के काल की घटनाए भारत के सामाजिक ढाचे की विकासोन्मुख जटिलता को एक नवीन सामाजिक अर्थ और विषय-सामग्री देने में समर्थ हुई है। दूसरे, इम्पीरियल गॅजेटियर आफ इण्डिया, क्रुक और ग्रियर्सन जैसे कुछ लेखकों तथा कुछ सरकारी प्रतिवेदनो को छोड़कर भारत के सामाजिक इतिहास का क्रमबद्ध और वैज्ञानिक सर्वेक्षण नहीं किया गया है। इस कृति की ओर मैं लोकगाथा के अनुभवी विद्वानों और मोटे तौर पर समाजशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मैने, जहां आवश्यक हुआ वहां पादटिप्पणियों में, आधुनिक कृतियों से लेकर इनके वर्तमान अवशेषों का संदर्भ दे दिया है।

जहां तक कृति की योजना का प्रश्न है, मैने इसमें उन अनेक राजनैतिक और आर्थिक तत्त्वों का अध्ययन भी सम्मिलित कर लिया है, जो मुझे हिंदुस्तान के सामाजिक विकासों का ठीक-ठीक चित्र देने में सहायक प्रतीत होते हैं। आर्थिक स्थितियों का विवरण देने में, मेरा उद्देश्य सामाजिक जीवन के अधिक सुदर परिबोध के लिए कुछ आर्थिक आंकड़े प्रस्तुत करना रहा है।[1] मूल प्रतियों का जहां तक प्रश्न है, मैंने शब्दशः अनुवाद की अपेक्षा मुक्त अनुवाद ही किया है और कुछ मामलों में

---

1. इस काल की आर्थिक स्थिति पर एक निश्चित प्रबंध के संकलन के संबंध में मोरलैंड के विचारों के लिये देखिये ज० इ० हि०, 1929, पृ० 107।

मैंने बड़े अंश का सारांश देकर ही संतोष कर लिया है। अनेक मूल और प्रकाशित प्रतियों के लिये संक्षिप्त-नाम प्रयुक्त किये गये हैं। इनका उल्लेख ग्रंथसूची में मूलप्रति के नाम के आगे कर दिया गया है। समय और दूरी, सिक्कों इत्यादि के माप जैसी कुछ सामान्य बातों को अधिक अच्छी तरह समझने हेतु और दिल्ली के सुल्तानों के शासनों के कालक्रम के लिये प्रबंध के अंत में दो परिशिष्ट भी जोड़ दिये गये हैं।

भाग 1

राजनैतिक स्थिति

'सल्तनत' और मुस्लिम समाज पर उसकी प्रतिक्रियाएँ

यह अभी भी स्पष्ट नहीं है कि 'सुल्तान' की पदवी कैसे और कब उद्भूत हुई। सर्वप्रथम यह उन शासकों द्वारा प्रयुक्त की गई, जो बगदाद के खलीफा के भूत-पूर्व प्रान्तों में स्वतन्त्र राजा के रूप मे प्रतिष्ठित हो गए थे[1]। 'सुल्तान' और 'सल्तनत' शब्द एक ही धातु से लिये गए हैं जिसका अर्थ 'शक्ति, अधिकार' होता है और ये सामान्यतः राज्य के उस रूप के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं जो मुहम्मद के प्रथम चार उत्तराधिकारियों के पश्चात् इस्लामी जगत में अस्तित्व में आया, किन्तु मूलतः जिसका विचार तक कुरान में नहीं किया गया था।[2] दिल्ली के सुल्तानो के समय प्रचलित प्रभुसत्ता के सिद्धान्त का अध्ययन अत्यन्त रोचक है क्योकि वह न केवल मुस्लिमों के राजनैनिक आदर्शों पर बल्कि एक विस्तृत अर्थ मे जीवन के प्रति.उनके समस्त दृष्टि-कोण पर भी प्रकाश डालता है। कुरान में विहित सैद्धांतिक 'खिलाफत' से इस्लामी सुल्तानों के निरंकुश शासन तक यह महान् परिवर्तन कैसे हुआ, इसके लिये कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

---

1. 'सुल्तान-उद्-दौला' नामक एक बुवैहिद शासक के लिए, जिसकी मृत्यु 415 हिज्री में हुई, तुलनीय ज० रा० ए० सी०, 1229, 228। महमूद गजनवी ने बुवैहिद राज्य पर 419 हिज्री मे आक्रमण किया। सेल्जुकों द्वारा पदवी धारण किए जाने के सम्बन्ध में तुलनीय अर्नाल्ड, 202।
2. पवित्र कुरान 20 : 30 और पृष्ठ 23-24 पर अनुवाद की टिप्पणी तुलनीय। कुरान एक 'ईश्वर का राज्य' स्थापित करना चाहती थी, जिसमें खलीफा 'अपने आदेश से अल्लाह के प्राणियों पर न्याय या शासन करे।' इसके विपरीत सल्तनत मनुष्य के ऊपर मनुष्य की सत्ता प्रदर्शित करने वाली एक शुद्ध धर्मनिरपेक्ष संस्था है, धार्मिक राज्य नहीं।

कुरान के उपदेशों ने मदीना के कबीलाई वातावरण और प्रबल प्रजातांत्रिक परम्पराओं में लगभग संतोषप्रद रूप से कार्य किया। किन्तु जैसे ही इस्लाम नगरराज्य की सीमा से बाहर प्रसार करने लगा, 'ईश्वर के प्रेरणात्मक शब्द' अधिक विस्तृत राजनैतिक ढाँचे के अनुकूल विस्तार प्राप्त करने में असमर्थ रहे और 'मशवरा' '(परामर्श)' का नगण्य सिद्धान्त (भी) एक कामचलाऊ राजनैतिक संस्था का रूप कभी धारण नहीं कर सका।[1] इस्लाम का राजनैतिक और प्रादेशिक विस्तार तीव्र गति से होता रहा; शीघ्र ही अरब कबीलों के बिखरे हुए टुकड़ों को विस्तृत और बढ़ते हुए भू-भाग पर शासन करने वाले शक्तिशाली और स्थायी शासन के अंतर्गत संगठित करने की आवश्यकता महसूस की गई। कुरान के फ़तवे और मदीना तथा उसके प्रारंभिक खलीफाओं के पूर्व-निर्देशों की अपेक्षा एक शक्तिशाली और ठोस राजनैतिक ढांचे की आवश्यकता अधिक महसूस हुई। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि अरब विचारक, राजत्व का उद्‌भव कहाँ से हुआ, यह बताने के लिए कल्पना का सहारा लेते हैं और उनके अनुसार सामाजिक संगठन के निर्वाह के लिए राजत्व आवश्यक है। उनकी व्याख्या के अनुसार राजत्व सभ्यता की एक अनिवार्य पूर्वा है। वास्तव में वे यह घोषित करने में भी नहीं हिचके कि एक अन्यायपूर्ण और अत्याचारी राजतन्त्र एक अनधिकृत स्वतन्त्रता से श्रेष्ठ है।[2] संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों के समक्ष राजतन्त्र और अराजकतावाद में से एक को चुनने का प्रश्न उपस्थित हुआ और उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्वक पहले को चुना। इसी समय 'उलमा' या मुस्लिम अर्थशास्त्र के विद्वान, जो मदीना तक ही सीमित थे, इस्लामी कानून की एक ऐसी प्रणाली का विस्तार कर रहे थे, जिसका इस्लामी राज्य की परिस्थितियों से बहुत कम सम्पर्क था। मुस्लिम रूढ़िवादियों के केन्द्र मदीना और अरब साम्राज्य की राजधानी दमिश्क के मध्य इस सद्‌भावना का भंग हो जाना प्रकट करता है कि क्यों प्रारम्भ से ही इतने अधिक मुस्लिम कानूनों की प्रकृति विशुद्ध सैद्धांतिक हो गयी और वे इतने अधिक सिद्धान्तों का उल्लेख करने लगे जो कदाचित् ही कभी व्यवहार में लाये गए हैं।[3]

मुस्लिम समाज में अभी और भी महान् परिवर्तन होने थे। कोस्रो लोगों की प्राचीन राजधानी (टेसिफन) मदाइन के पतन और खलीफा का तख्त बगदाद स्थानान्तरित होने के साथ ही फारसी विचार इस्लाम में प्रवेश करने लगे और कालान्तर

1. देखिए कुरान 42 : 38 'आपस में परामर्श करना ही उनका नियम है।'
2. तुलनीय एक उद्धरण, 'एक अन्यायपूर्ण राजत्व एक घंटे की अराजकता से श्रेष्ठ है' क्रेमर, 25 इस सम्बन्ध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि अल्-मावर्दी कृत 'अहकाम-उस्-सुल्तानिया' सल्तनत की उस समय की संस्था को निन्दा करने के लिए कुरान या मुस्लिम कानून से कोई तर्क नहीं देता।
3. अर्नाल्ड, 25।

में उन्होंने इस्लाम का स्वरूप ही बदल दिया। फारसियों के सपर्क में आने पर अरबों को एक प्राचीन जाति की राजनैतिक परम्पराओं का ज्ञान हुआ। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि ये परम्पराएँ अरब की परम्पराओं—जिन्होंने कुछ ही समय मे अनेक गृहयुद्धों और अत्यधिक कष्टों को जन्म दिया—के विपरीत अत्यधिक व्यावहारिक थी। वे उस सुगमता से भी अवगत हुए जिससे उनके विजित प्रदेश उन्हें आत्मसात् करने के लिए तत्पर थे। यह समझना कठिन नहीं है कि किस प्रकार मुसलमानों ने फारसी साम्राज्यवाद की प्राचीन मान्यताओं को आत्मसात् कर लिया और विजित जाति की संस्कृति का बड़ी सरलता से शिकार बन बैठे।[1] सम्मोहन के औत्सुक्यवश वे फारसी विचारों से आवश्यक तत्व चुनते गए और उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें यथावत् अंगीकार कर लिया। राजनैतिक प्रशासन में उन्होंने उनके सिद्धान्त, विभिन्न विभागों का संगठन, फारसी शासक का व्यक्तित्व—हरम, हिजड़े, दास, सेवक, शाही उत्सव, वेशभूषा और शाही चिन्ह—सैनिक सगठन और साजसज्जा, युद्ध-नीतियाँ, वास्तव में सब महत्वपूर्ण प्रशासकीय बातें अंगीकार कर ली; सामाजिक शिष्टाचार मे उन्होंने सामाजिक सौख्य और मनोविनोदों के फारसी विचारों जैसे—आखेट, पोलो और शतरंज के खेल, मदिरा, संगीत, गायन और नौरोज के वसंतकालीन उत्सव का अनुकरण किया; मानसिक संस्कृति में उन्होंने सारे फारसी विचार, यहाँ तक कि स्वप्नों (तावीर) की व्याख्या का विज्ञान और भगी का जादू भी आत्मसात् कर लिया।[2] इन सब विचारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचार था, फारसी शासकों की दैवी प्रभुसत्ता का सिद्धान्त। बगदाद के केन्द्र से ये विचार गज़नी और मुस्लिम जगत के अन्य भागों में फैले और वहाँ से भारतभूमि में प्रविष्ट हुए। गजनी में—जो दिल्ली के सुल्तानों के राजनैतिक विचारों का उद्गम माना जा सकता है—कुछ विभाग-प्रमुखों के सरकारी पदनाम वे ही थे जो प्राचीन फारसी दरबार में थे।[3] जो राज-मुकुट सुल्तान मसूद धारण करता था वह टेसीफन[4] के फारसी लोगों के राजमुकुट की अनुकृति ही था। वास्तव में गज़नीवंश के शासकों का समग्र दृष्टिकोण और उनकी विशेषताएँ तथा कार्य प्राचीन समानी शासकों से कतई भिन्न नही थे। अन्य बातों में इस फारसी परम्परा की श्रेष्ठतम काव्यात्मक अभिव्यक्ति गज़नी वंश के

1. तुलनीय, भारत पर एक आधुनिक टिप्पणी, इकबाल 176 : एक ब्राह्मण ने महमूद गज़नवी से कहा, 'चमत्कार प्रदर्शन करने की मेरी शक्ति की प्रशंसा करो; तुम, जिसने अन्य सब मूर्तियाँ खण्डित कीं, अयाज के आकर्षण के दासत्व मे समाप्त हो रहे हो।'
2. तुलनीय रालिन्सन, सातवां राजतंत्र, अध्याय अट्ठाईसवां।
3. तुलनीय रालिन्सन, सातवां राजतन्त्र, 641-42, उदाहरणार्थ दबीर, अख़ुरबेग।
4. तुलनीय वही, 610 और ता० फ०, प्रथम, 72।

संरक्षण में रचित प्रसिद्ध महाकाव्य 'शाहनामा' में मुखरित हुई। इसमें मुहम्मद के एक अनुयायी के अमर पृष्ठों में प्राचीन फारस के पौराणिक वीरों की स्मृति विद्यमान है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, फारसी राजतन्त्र की अपनी विशेषता यह है कि वह दावा करता है कि उसका मूल दैवी है। जहाँ तक प्रजा से उसके सम्बन्ध का प्रश्न है, ससानी शासक, उनका प्रभु और स्वामी उनके जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति का सर्वोच्च निर्णायक था। वह कानूनों और अधिकारों का एकमात्र आधार होने के साथ ही त्रुटियों से परे, अनुत्तरदायी, अपरिहार्य एक तरह से पृथ्वी का ईश्वर था। वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसके अनुग्रह का अर्थ था सुख और जिसके क्रोध के सम्मुख लोग काँपते थे, जिसके समक्ष सब लोग निम्नतम और नम्रतम बन कर मुजरा करते थे।[1] निरंकुशता के इस नग्न प्रदर्शन से इस्लाम का शीघ्र ही समझौता न हो सका; उस व्यक्ति के देवत्व से तो बिलकुल नहीं जिस पर निरंकुशवाद का सारा सिद्धान्त आधारित था। इस कठिनाई का हल, सुल्तान के व्यक्तित्व की अपेक्षा सल्तनत के पद (आफिस आफ दि सल्तनत) के साथ देवत्व के सद्गुण का सम्मिलन करके किया गया। उसे 'जिल्लुल्लाह' अर्थात् ईश्वर की प्रतिच्छाया[2] कहकर सम्बोधित किया गया। तथापि इससे सुल्तानों को दैवी आदर मिलना बन्द नहीं हुआ और शासक भी 'मनुष्य वेष में ईश्वर के रूप में' जनता पर शासन करते ही रहे।[3] विशेषकर हिन्दुस्तान में स्थिति को छुपाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। लोगों को सुल्तान की उपस्थिति में सिजदा करना पड़ता था, यहाँ तक कि सुल्तान के नाम का उल्लेख होने पर सम्मान प्रकट करने के लिए उन्हें खड़े हो जाना पड़ता था; दिल्ली से दूर रहने पर वे सल्तनत की राजधानी की ओर झुककर सम्मान प्रकट करते थे।[4] रिक्त राजसिंहासन या सिंहासन पर राजतन्त्र के प्रतीक स्वरूप रखी काष्ठ-पादुकाओं और तरकश के पास से निकलने पर भी उनका अभिवादन किया जाता था।[5] मुगल सम्राट् हुमायूँ के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जनता के सम्मुख आने पर उसके सामने एक परदा डाल दिया जाता था और जब परदे को हटाया जाता तो उपस्थित जनसमूह बोल उठता : 'ईश्वर का प्रकाश देखो।' उसके पास

1. रालिन्सन, फाइव ग्रेट मानर्कीज, तृतीय, 202।
2. एक पूर्वोक्त वर्णन देखिये, ता० फ० नु० 12।
3. फ० ज०, 160 में एक मनोरंजक संदर्भ देखिये।
4. तुलनीय कु० खु०, 221; कि० रा०, द्वितीय, 74; वहीं, प्रथम, 62।
5. तुलनीय कि० रा०, द्वितीय और पादुका-पूजन के लिए मु० न० 384-85, पादुका-पूजन प्राचीन हिन्दू प्रथा से लिया गया होगा, जैसा कि रामायण की कथा में लिखा है।

मानवेतर शक्तियाँ भी थीं ऐसा भी कहा जाता है।[1] इन परिस्थितियों में यदि कोई इतिहासकार अपनी रुचि के कारण सुल्तान के अधिकारियों की तुलना जेब्रील से और अल्लाह की सेवा करने वाले अन्य देवदूतों से करता है तो उसे क्षमा किया जा सकता है।[2] अबुलफज्ल ने एक कदम और आगे बढ़ने का साहस किया। यह सिद्ध करने के लिए कि अकबर ने मानव-जीवन के रहस्यों का अनुभव कर लिया है और एक योगी की तरह 'सत्य' में लीन हो गया है, उसने 'पूर्ण-पुरुष' (इंसान-ए-कामिल) के रहस्य-मय सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की।[3] अतः सर्वसाधारण के सम्मुख मुगल सम्राट् के दर्शन के लिये एक उपयुक्त समारोह आयोजित किया जाता था : एक व्यक्ति 'अल्लाहो-अकबर' ('ईश्वर महान् या अकबर है' अर्थात् सम्राट् ईश्वर का अवतार है) 'कहता और दूसरा उसके प्रत्युत्तर में 'जल्ला-जलाल-हू' (शब्दशः इसका अर्थ है 'उसका गौरव बढ़े।' इस मुहावरे में अकबर का नाम 'जलाल' भी सम्मिलित है) कहता।[4]

कुरान से समझौता करने के लिए मुहम्मद के अनुयायियों के लिए स्पष्टतः यह एक कठिन स्थिति थी। राजतन्त्र से समझौता कर लेने वाले धर्मशास्त्रियों की स्थिति का और राजतन्त्र या वास्तव में समग्र मुस्लिम समाज से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने वाले कट्टर मुसलमानों और सूफियों की स्थिति का बाद में उल्लेख किया जाएगा। अभी इतना कहना पर्याप्त होगा कि स्थिति इतनी सुरक्षित थी कि अलाउद्दीन खलजी ने एक धर्म स्थापित करने का विचार किया; मुहम्मद तुगलक के 'भी' कहा जाता है, ये ही मंतव्य थे; और अकबर ने तो सचमुच ही एक नये संप्रदाय की स्थापना की।[5]

ऐसी परिस्थितियों में, दिल्ली का सुल्तान सैद्धांतिक रूप से एक ऐसा अमर्यादित निरंकुश शासक था, जिस पर कोई कानूनी बंधन नहीं थे, मंत्रियों की कोई रोक नहीं थी और उसकी स्वयं की इच्छा ही सब कुछ थी। सर्वसाधारण के कोई अधि-

---

1. तुलनीय परदा-उत्सव के लिए मु० त०, प्रथम, 446 जिसका समर्थन अन्य साक्ष्यों से भी होता है। ससानियों के इस प्राचीन रिवाज का उल्लेख हुअर्ट के एक उद्धरण में बाद में किया गया है। मानवेतर दावों के लिये ता० वा०, 57।
2. तुलनीय, ब० 578।
3. तुलनीय, अ० ना० प्रथम, 5।
4. तुलनीय आ० अ०, प्रथम, 160 का एक वर्णन देखिये। उसके समानान्तर उदाहरण के लिए जौन ऑफ सेलिस्बरी के 'पोलिक्रेटिकस' में 'पृथ्वी पर ईश्वर की प्रतिच्छाया' के लिए एस० आई० प्रथम, 313, 326-327 देखिये। शास्त्री, प्राक्कथन, तेरहवाँ भी देखिये।
5. अलाउद्दीन के लिए देखिये, ब०, 262-64।

कार नहीं थे, वे केवल अहसानमन्द थे। वे केवल उसके आदेशों का पालन करने के लिए बनाए गए थे।[1]

जनसाधारण की आज्ञाकारिता और हिन्दू संस्थाओं तथा राजनैतिक परम्पराओं के कारण भारतीय वातावरण में सुल्तानों की स्थिति सुगम हो गई। प्राचीन काल में स्वेच्छाचारी तथा उदार शासकों ने भारत पर शासन किया था; किन्तु यह सब शासक के व्यक्तिगत गुणों पर आधारित था। इस पद्धति में शासन में क्रियात्मक रूप से भाग लेने के जनता के अधिकार को मान्यता नहीं थी।[2] यह समझना कुछ कठिन-सा प्रतीत होता है कि ग्राम-संस्थाओं और जाति प्रथा होते हिन्दुतान के हिन्दू निरंकुश शासन के विकास का किस तरह प्रतिरोध कर सकते थे। हिन्दू सामाजिक जीवन में इन दो बातों के राजनैतिक महत्त्व को स्पष्ट करने के लिए मैं दो शब्द कहूँगा।

सर हेनरी मेन ने एक बार कहा था कि भारतीय ग्राम-समुदायों के अनेक उत्साही किन्तु आलोचनाहीन प्रशंसक हैं जो उनकी तुलना किसी भी स्वयंपूर्ण और स्वायत्त शासन वाले राजनैतिक समुदायों, यहाँ तक कि यूनानी नगर-राज्यों से करने में नहीं हिचके। कुछ समय तक तो ये ग्राम-समुदाय आर्यों की विशिष्ट जातीय देन माने जाते रहे। तथापि, अब धीरे-धीरे यह अनुभव किया जाने लगा है कि किसी

1. तुलनीय औचित्य का सिद्धान्त बनाम कुरान के उपदेश के लिए ब० 400-1। हुमायूँ द्वारा एक भिश्ती और गुलाम को प्रभुसत्ता की भेंट और इस कृत्य की कामरान द्वारा आलोचना त० वा० 35 ब और ना०; प्रथम, 160। एक मनोरंजक कथा देखिये जिसमें बंगाल के एक सुल्तान ने एक यात्री व्यापारी को इस्फहान दे दिया। और किस तरह उसके सलाहकारों ने, जो सुल्तान को यह स्मरण कराने का साहस नहीं कर सकते थे कि इस्फहान उसके राज्य में नहीं है, परिस्थिति का सामना किया, रेवर्टी 579। बरनी का टीका ब० (पाण्डु०) 114 में। इसके समानान्तर उदाहरण के रूप में राजकुमार हेनरी को आवलीव की सलाह स्पे०, तृतीय, 500 में देखिये, जिसके अनुसार 'कानून निश्चितता की ताला और कुँजी दोनों है।' त० वा०, 160 भी देखिये जिसमें हुमायूँ अपने अनुयायियों को शाह इस्माइल सफ़वी के 12,000 अंगरक्षकों द्वारा किये गये बलिदान के उस तेजस्वी उदाहरण की याद दिलाता है, जिसमें उन सबने एक दर्रे में गिरते हुए शाह के रूमाल को लाने के लिए अपने प्राण दे दिये।

2. तुलनीय टाड, प्रथम, 376 जहाँ वह स्पष्ट करता है कि किस तरह एक राजपूत राजा के गुण किसी राज्य को उन्नति के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचा देते हैं, जब कि उसके उत्तराधिकारी के दुर्गुण उसे पतन के गर्त में डाल देगें। पुनः द्वितीय, 939 में, जहां वह राजपूत शासन के अधीन राज्य के मामलों से प्रजा के स्थायी निष्कासन का उल्लेख करता है।

जाति या देश की विशिष्टता न होकर ग्राम-समुदाय मानव के सामाजिक विकास में केवल एक विशेष चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामूहिक परती और वनभूमि की अविभाज्यता और रिक्त भागों के नियमन में समुदाय का अधिकार स्पष्ट है। सम्भवतः वह कुछ आंतरिक मामलों में, कुछ नियम निर्धारित करने में, प्रौढ़ों के चुनाव में, सरकार द्वारा लगाए गए प्रत्यक्ष करों का आपस में विभाजन करने में स्वतन्त्र समझा जाता था।[1] यदि प्राचीन भारतीय ग्राम-समुदायों के उपलब्ध अभिलेख इस सम्बन्ध में हमारे मार्ग-दर्शक माने जा सकें तो इस निष्कर्ष को स्वीकार करना होगा कि उसके अस्तित्व ने भारतीय शासकों की स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति को रोकने की अपेक्षा उनकी सहायता ही की है। भारतीय ग्राम्य-समुदायों का जीवन इतना संकुचित है, उनके समूह इतने बिखरे हुए हैं और उनका समूचा दृष्टिकोण इतना व्यावसायिक है कि वे देश के राजनैतिक जीवन के लिए उपयोगी निधि बनने के योग्य नहीं रहे। किसी विशेष संकट काल में, समुदाय किसी सुरक्षा का संगठन कर लेता था और आक्रमणकारियों के धावों से ग्राम की रक्षा करता था।[2] किन्तु सामूहिक कार्यवाही के ऐसे उदाहरण प्रायः वैसे ही है जैसे टिड्डी-दल से खेती को या लुटेरों से घरों को बचाने के उपाय। यह कोई विस्तृत राजनैतिक चेतना प्रदर्शित नहीं करता, बल्कि यह तो उनके स्वतः के और घरबार के बचाव के लिए अत्यन्त आवश्यक था। ऐसे मौकों में गाँव के किनारे रहने वाली निर्धन और पृथक निम्न जातियों का दृष्टिकोण अनिश्चित सा रहा होगा। फिलहाल, सहज ही इस परिणाम पर पहुँचा जा सकता है कि हिन्दुस्तान के ग्राम-समुदाय ने, जिनमें जनसंख्या का अधिकांश भाग निहित था, दिल्ली के सुल्तानों के समक्ष कोई गंभीर प्रशासकीय समस्या प्रस्तुत नहीं की।[3] हमें उनके आर्थिक और सामाजिक पहलुओं से मतलब नहीं है।

दूसरा अंग है जाति-प्रथा और उसका आवश्यक परिणाम, धर्म का सिद्धान्त। यह ठीक ही कहा गया है कि जाति-प्रथा और धर्म का हिन्दू सिद्धान्त मनुष्यों और पशुओं दोनों के प्रति दया और सहानुभूति की भावना को प्रोत्साहित करते है और

---

1. तुलनीय भारत के ग्राम-समुदायों के सम्बन्ध में (ब्रिटेन की) लोकसभा की एक समिति के प्रतिवेदन के लिए मिल, प्रथम, 315-14; रूसी ग्राम-समुदायों के लिए कोवालेव्हस्की, पृष्ठ 72, 82-3,92 तुलनीय टाड, प्रथम, 574, जहाँ वह स्पष्ट कर देता है कि साधारण मामलों में ग्राम-समुदाय का कानून बनाने का कार्य केवल राज्य की उपेक्षा ही स्पष्ट करता है, जो लोगों से भारी कर वसूल करके भी मार्गदर्शन के लिए कानून और सुरक्षा के लिए पुलिस की व्यवस्था नहीं करता।
2. प्रतिरोध के एक उदाहरण के लिये देखिये कि० रा०, द्वितीय, 92-94 तिमूर के आक्रमण के विवरण में अन्य अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।
3. तुलनीय मोरलैंड का मत, एग्रेरियन सिस्टम इत्यादि, 64।

इस प्रकार जनसाधारण में सामान्य संतोष की भावना की ओर अग्रसर करते हैं।[1] यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि जाति-प्रथा हिन्दू समाज को सुरक्षित रखने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। ये सारे तथ्य दृढ़ होने पर भी प्रथा को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिये अपर्याप्त हैं। राजनैतिक रूप से उसका तात्पर्य है निम्नवर्ग पर उच्च वर्ग का स्थायी शासन, जिसका परिणाम होता है दोनों का पतन। जातिप्रथा के मुख्य लक्षण ये हैं—यह एक तो कल्पित जन्मजात गुणों और विरासती विशेषाधिकारों वाले पढ़े-लिखे और शक्ति-सम्पन्न लोगों के एक काहिल वर्ग को और श्रमजीवियों के निम्न सामाजिक स्थिति वाले दूसरे वर्ग को जन्म देती है। दूसरे, यह इन निपुण व्यवस्थाओं को अत्यन्त पवित्र और निश्चित सम्मोदन प्रदान करती है। इस सिद्धान्त को 'कर्म' के सिद्धान्त द्वारा आध्यात्मिक आधार प्रदान किया गया। अतः इसका तर्क पूर्णतः धर्म ग्रंथों पर आधारित है और यह जाति-प्रथा की असमानताओं को एक ऐसी नैतिक व्यवस्था पर रखता है जिसका संरक्षक और मूर्त्तमान रूप ईश्वरीय इच्छा है और जिसमें चराचर जगत अपनी दुर्दशा के लिये केवल स्वयं को उत्तरदायी ठहरा सकता है।[2] इन से 'धर्म' का सिद्धान्त या विभिन्न जातियों के अलग-अलग कर्त्तव्यों का सिद्धान्त प्रारम्भ होता है, यद्यपि धर्म शब्द का विदेशी भाषा में अनुवाद करना कठिन है।

इन सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया की हिन्दू राजनैतिक दर्शन पर सुदूरगामी प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। हिन्दू धार्मिक विचार राज्य और धर्म-संस्था (चर्च) दोनों पर हावी होने लगे और वास्तव में राज्य केवल धार्मिक अध्यादेशों के अंश को कार्यान्वित करने के लिये एक संस्था के रूप में कार्य करने लगा। राज्य के प्रत्येक भाग को धर्म ने यथोचित कार्य सौंप दिये, जिनका उल्लंघन न केवल राज्य के विरुद्ध अपराध था बल्कि ईश्वर के विरुद्ध पाप भी था। राज्य की इस अवधारणा के अनुसार यह मान्य ठहराया गया कि राजा दैवी अधिकार से शासन करता है, वह एक अर्थ में स्वतः ईश्वर है और वह केवल ब्राह्मण का परामर्श लेने के लिये ही बाध्य था। प्रबुद्ध और प्रजावत्सल शासक बनाने की व्यवस्था भी की गई थी, किन्तु शासक में ये गुण न रहने की स्थिति में जनता को विद्रोह का अधिकार नहीं था। किसी बात पर पुनर्विचार केवल उसके अंतःकरण तक सीमित था और यदि वह 'धर्म' का उल्लंघन कर देता था तो आवश्यक हुआ तो यह सोचकर संतोष किया जा सकता था कि अत्याचार पूर्ण कानून स्वयं ही शासक से उसके दूसरे या अन्य जन्म में बदला ले लेगा।[3] हिन्दू

---

1. उदाहरणार्थ, एफ० डब्ल्यू० टामस द्वारा।
2. तुलनीय कारपेन्टर, 321, धर्म के एक उदाहरण के लिये पु० प०, 110-111
3. तुलनीय एफ० डब्ल्यू० टामस, 9-10 एक पाप का षणयंत्र करने के लिये विद्यापति पु० प०, 115।

शासक विशेषतः हमारे काल में—जब कि ब्राह्मण पुरोहितवाद का संभावित नियंत्रण समाप्त हो गया था—उन्नत हुए, अब सुल्तान के मुस्लिम आदर्श के निकट आ गये।[1] एक प्रसिद्ध घटना का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है—एक बार जब महाराणा सांगा सुल्तान इब्राहीम लोदी के विरुद्ध एक युद्ध में घायल होकर अंगविहीन हो गया, तो उसने सिंहासन पर बैठने में हिचकिचाहट प्रकट की, क्योंकि यह 'भारत का एक प्राचीन और सर्वमान्य नियम था कि जब कोई मूर्ति खण्डित हो जाती और उसका कोई भाग अलग हो जाता था तो वह पूजा के योग्य नहीं रह जाती थी और उसके स्थान पर दूसरी मूर्ति प्रतिष्ठित की जाती थी। इसी प्रकार, राजसिंहासन, जनता के पूजा की वस्तु होने के कारण उसका अधिकारी भी ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो परिपूर्ण और राज्य की पूरी सेवा करने के योग्य हो'।[2] दैवी-राजतन्त्र के सिद्धान्त के गुणों की चर्चा करने का यह उपयुक्त स्थान नहीं है, किन्तु मुस्लिम विजय के समय की राजनीतिक स्थिति का अवलोकन कर लेना उचित होगा। जब कोई राजा दैवी पुरुष होने की आकांक्षा करता है तो सिद्धान्ततः वह अन्य मनुष्यों के समान दुर्भाग्य और कष्टों का सामना करने से वंचित हो जाता है जब कि दुर्भाग्य और कष्टों के होने पर भी वह अपनी स्थिति बनाए रखता है। वह तभी तक शासन करता है जब तक वह सफलताएं प्राप्त करता है ; मात्र एक छोटी-सी विपत्ति, एक आकस्मिक पराजय में ही सारा ताना-बाना नष्ट हो जाता है, ऐसी शासन योजना के अन्तर्गत, जनसमूह, जो पहले से ही बौद्धिक विलगाव में रहता है, अपने शासकों के भाग्य और राज्य के राजनैतिक प्रारब्ध के प्रति और भी अधिक उदासीन हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या शासक वर्ग के अतिरिक्त सर्वसाधारण में भी देश-प्रेम की कोई भावना रहती है ?[3] एक शक्तिशाली

---

1. एक आदर्श हिन्दू शासक की लोकप्रिय अवधारणा के लिये तुलनीय विद्यापतिः वह जो दण्डशास्त्र में निपुण है, आनन्द-भोग करता है, चारों दिशाओं को विजित करता है , अपने सारे शत्रुओं को युद्ध में मार डालता है, यज्ञ करता है, देवी-देवताओं की बलि देता है और याचकों को स्वर्ण बांटता है। पु० प०, 164, 166 के अनुसार। विचित्र बात है कि मुस्लिम और हिन्दू राजनीति की शर्तें ('सियासता और 'दण्डनीति') तात्पर्य और महत्व में मिलती-जुलती हैं। यह सुझाव दिया जा सकता है। यद्यपि सुझाव के समर्थन में अभी पर्याप्त साक्ष्य नहीं है—कि हिन्दू और मुस्लिम दोनों राजनीतिक विचारों का स्रोत फारस है, जहाँ से दोनों ने अलग-अलग समय में स्वतन्त्र रूप से उधार लिया।
2. तुलनीय सारदा, सांगा, 58-59।
3. लल्ला की भावनाएं तुलनीय, टेम्पल, 207 ; नानक के लिये मेकालिफ, प्रथम, 100-117।

और संयुक्त शासन की स्थापना में राजपूतों की जन्मजात अयोग्यता और इसके परिणामस्वरूप किसी बाहरी शक्ति की सत्ता के प्रति इच्छा या अनिच्छा से उनकी सहमति होने के कारण भारत में राजनीतिक स्थिति और अधिक जटिल हो गई।[1]

इन सब प्रमुख राजनैतिक कारणों के संचित प्रवाह के अन्तर्गत हिन्दू राजनैतिक ढांचा एक शक्तिशाली विदेशी आक्रमणकारी के प्रथम व्याघात के सम्मुख नहीं ठहर सका। सर्वसाधारण जनता ने हूणों, सीथियनों, कुषाणों, यूनानियों, फारसियों और राजपूतों को अपने ऊपर शासन करते देखा था। इसीलिये एक अरब, एक तुर्की या किसी अन्य मुस्लिम से घृणा करने जैसी कोई बात नहीं थी। अरबों को सिंध की भूमि पर पैर जमाए अधिक समय न हुआ था कि हिन्दू-जाट उनकी सहायता के लिये प्रस्तुत हो गये और अन्य अछूतों ने उनका स्वागत किया; जनसाधारण का अधिकांश भाग शासक वर्ग और विदेशी आक्रामक के मध्य होने वाले संघर्ष को उदासीनता से देखता रहा और जब शासक वर्ग की पराजय हुई तो उसने एक मुक्ति का अनुभव किया। तुर्की आक्रामक ने जब आक्रमण किया तब भी यही दृश्य रहा।

इस विषयान्तर के पश्चात्, अब हम सुल्तान की ओर लौटें और देखें कि किस सैद्धान्तिक रूप से सर्वोच्च और असमर्यादित होने पर भी उसकी शक्ति को व्यवहार में कुछेक महत्वपूर्ण सुनिश्चित संशोधनों के सम्मुख झुकना पड़ा। अब तक की परिस्थितियों में सुल्तान (अपने पूर्ववर्ती हिन्दुओं के समान) शासक के प्रमुख कार्यों को दो शाही कर्तव्यों—'जहांगीरी' और 'जहांदारी', या विजय और नवीन प्रदेशों के स्थिरीकरण तक ही सीमित करने का लोभ संवरण न कर सके। छोटे, उन्नतिशील और सुव्यवस्थित राज्य उनके राजनैतिक विचारों की योजना के बाहर थे। शायद ही किसी सच्चे सुल्तान के मन में प्रादेशिक विस्तार की आकांक्षा का भूत सवार हुआ हो। आकांक्षा यहां तक बढ़ी कि अंत में दक्षिण के अभियान साम्राज्य के प्रशासन की अनिवार्य विभागीय शाखा माने जाने लगे।[2] प्रारंभ से यदि हम देखें तो मालूम होगा कि इल्तुतमिश के प्रदेशों की नींव दृढ़ होने से पहले ही सुल्तान बलवन की कल्पना पर विजय के स्वप्न हावी होने लगे और उसने गणितीय सूत्रों के समान बारीकी से अपने विचारों की योजना बना डाली। उसे इस बात का अत्यन्त खेद था कि अपने राज्य की परिस्थितियों के कारण वह सुदूर हिन्दू शासकों के प्रदेशों के

1. एक मजेदार मामले के लिये तुलनीय ज० ब०, द्वितीय, 807, जहां रणथम्भौर के हमीर देव की मां खुद राजपूत सरदार को अपने शत्रु दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खलजी को गोली मारने से रोकती है और राजपूतों पर शासन करने के सुल्तान के नैतिक अधिकार का समर्थन करती है; देखिये टाड का राजपूतों का मूल्यांकन, जिल्द प्रथम, 483 : ज० हि०, 86 की एक कहानी में संयुक्त शासन की सैद्धान्तिक प्रशंसा।

2. ई० टामस, 187।

विरुद्ध अपनी योजना कार्यान्वित नहीं कर पाया।[1] सचमुच, सुल्तान के लिये यह एक कलेशपूर्ण परिस्थिति थी कि जब एक अन्य साहसिक और भाग्यशाली नेता रणक्षेत्र में अपनी सेनाओं का नेतृत्व कर रहा हो या किसी किले का घेरा डाले पड़ा हो, वह दैनन्दिन प्रशासन की नीरस समस्याओं में व्यस्त हो।[2] दूरी और प्राकृतिक रोड़े विजय की इस आकांक्षा के लिए कोई व्यवधान नहीं थे। बख्तियार खजली बहुत पहले ही तिब्बत की ओर रवाना हो गया था।[3] कुछ ही समय पश्चात् मुहम्मद तुग़लक पश्चिम में स्थित खुरासान और अन्य सुदूर प्रदेशों को विजित करने की योजना बना रहा था। तथापि, इस मामले में अलाउद्दीन खजली सबसे आगे बढ़ जाता है, क्योंकि उसने द्वितीय सिकंदर की भांति पृथ्वी का भ्रमण करने और दिल्ली तथा अनेक अन्य राज्यों पर एक उपाधिकारी के जरिये शासन करने का स्वप्न देखा था।[4] जब कुछ व्यावहारिक कारणों से सुल्तान को दक्कन की विजय तक ही स्वयं को सीमित रखने पर उतर आना पड़ा तो यह बात एक महत्वाकांक्षी शासक और उसकी सम्पन्न कल्पना के लिये अत्यंत ग्लानिपूर्ण थी। संक्षेप में, सुल्तान तबतक एक के पश्चात् दूसरे देश को विजित करते गये, जब तक कि राज्य में प्रशासकीय कार्य चलाना एकदम असंभव न हो गया और वह अपने ही भार से डूब न गया। तथापि, सल्तनत का विकास अनवरत प्रादेशिक विस्तार और युद्ध का प्रतीक बना। सल्तनत के इस विशिष्ट लक्षण ने शासक की अबाध शक्तियों पर अदृश्य रूप से कुछेक सीमाएं निर्धारित कर दीं। राज्य के भीतर शांति के बिना कोई भी विदेशी विजय संभव न थी। शत्रु के विरुद्ध युद्ध छोड़ने के पहले सुल्तान के लिये यह आवश्यक था कि वह अपनी ही प्रजा से समझौता करे।[5]

---

1. तुलनीय इस स्पष्टीकरण के लिये ब०, 51 : बलबन का विश्वास था कि वह एक नवीन प्रदेश विजित करके उसमें 1 लाख सैनिकों और बसने के इच्छुक 12 हजार व्यक्तियों का बसाकर उस विजय का स्थिरीकरण कर सकता है; राजपूतों के ऐसे ही मत के लिये तुलनीय टाड, द्वितीय, 524, 'दो हजार व्यक्तियों के साथ तुम खिचड़ी खा सकते हो, एक हजार के साथ दाल-भात और पांच सौ के साथ जूती, अर्थात् अमिट अपमान।'
2. तुलनीय, शेरशाह की भावनाएं ता० शे० शा०, 51 में। एक और विशिष्ट अभिव्यक्ति कि० स०, 48-49 में।
3. देखिये, रेवर्टी, 560।
4. तुलनीय इस विषय पर अलाउद्दीन के विचार, बरनी, ब० (पाण्डु०, 137 में)।
5. अ० 471, की एक कविता में अफीफ की बुद्धिमत्तापूर्ण टीका, 'अपनी प्रजा के साथ समझौता कीजिये और तब अपने शत्रु का सामना कीजिए; क्योंकि न्यायी सुल्तान की सेना में वे ही लोग हैं जिन पर वह शासन करता है।'

इसके अतिरिक्त, देश के प्रशासन को सुसंगठित करने की आवश्यकता ने सुल्तानों के लिये यह अनिवार्य कर दिया कि वे सभ्य शासन के कम से कम कुछ प्रारम्भिक सिद्धान्तों को स्वीकार करें; जैसे—विभिन्न वर्गों के मध्य न्याय की कुछ मान्यताओं का कठोरता से पालन। कर और सरकारी बकाया वसूल करने के लिये किसानों और शिल्पियों के विशाल समूह को प्रतिरक्षा और सुरक्षा प्रदान करने के साथ ही शासक-वर्ग के लोगों से भी उनकी रक्षा करना उतना ही आवश्यक था। जिसमें उनकी मूलभूत भावनाओं के प्रति ऊपरी आदर और सहिष्णुता भी अंतर्निहित थी। हिन्दुस्तान, अन्य कृषि-प्रधान देशों के समान, गहरी जड़ वाले रीति-रिवाजों और परंपराओं की भूमि है; चाहे मुस्लिम सुल्तान और उसके अमीर हिंदुओं के काल्पनिक कानूनों और भद्दे रिवाजों की हंसी उड़ायें या उनकी विभत्सता को देख कर उनमें सुधार करने का प्रयत्न भी करें, किन्तु वे सार्वजनिक रूप से हिंदू आचार-व्यवहारों की हंसी नहीं उड़ा सकते थे, उनके स्थान पर दूसरे नियमादि लागू करने की तो बात ही दूर रही। वास्तव में, मूर्तिभंजक मुसलमान शीघ्र ही हिंदू धर्म और भारतीय रीति-रिवाजों की इतनी प्रशंसा करना और उन्हें इतना आत्मसात करना सीख गये कि मुस्लिम आक्रमणकारी पुण्यात्मा तिमूर ने दिल्ली की मुस्लिम सल्तनत पर आक्रमण करने के लिये इसका ही बहाना लिया।[1]

सुल्तान की शक्ति पर एक अन्य बंधन उस धार्मिक विश्वास के द्वारा लग गया, जिसका पालन वह जनसाधारण में शासक-वर्ग के अन्य सदस्यों के साथ करने का दावा करता था। चाहे सुल्तान अपने व्यक्तिगत जीवन में एक अस्थावान मुसलमान न रहा हो या वह धर्म के कल्याण के लिये गंभीरता से ध्यान न देता हो, किन्तु उसे इस्लाम के कर्मकाण्डों और चिन्हों का आदर करने का बाहरी दिखावा करना ही पड़ता था। जहां तक दिल्ली के प्रारम्भिक सुल्तानों का प्रश्न है, उनका धार्मिक विश्वास केवल विजेता वर्ग की एकता और साहचर्य के ही सिद्धान्त के संबंध में था। इस्लाम के प्रति आदर ऊपरी दिखावे से शासक का सम्मान और अधिक बढ़ जाता था।[2]

देवत्व के प्रभामण्डल से घिरे सुल्तान-पद के उदत्तत्वरूप के कारण सुल्तान को अन्य लोगों से कहीं ऊपर, परहितैषण और उदारता के एक स्तर के अनुभव होने के लिये बाध्य होना पड़ा। इस प्रकार महामनस्कता, शूरवीरता, क्षमाशीलता, उदारता और परहितैपिता तथा अन्य सद्गुणों की एक लंबी और प्रभावपूर्ण परंपरा सुल्तान के व्यक्तित्व के आसपास निर्मित हो गई, जिसने निरंकुश शासक का शासन संभव ही

1. तुलनीय, ज० ना० खा०, 123; ज० ना०, 422।
2. तुलनीय, मुहम्मद हबीब कृत 'महमूद आफ गज़नी' में मुस्लिम आक्रमणों के धार्मिक स्वरूप का परीक्षण।

नहीं अपितु आकर्षक भी बना दिया। फारसी और भारतीय दोनों परम्परायें इस दिशा में सम्पन्न थीं।[1]

व्यावहारिक और प्रशासकीय कारणों से, शासक को नीति के एक निश्चित मार्ग का अनुसरण करना पड़ता था। प्रारंभ में वह अपने सैनिकों और अमीरों को अच्छा वेतन देने और अपनी प्रजा के प्रति सामान्य अनुग्रह और दयाशीलता का प्रदर्शन करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता था। कालान्तर में, जब आक्रामक का यौद्धिक आवेश ठण्डा हो जाता और सैनिक तलवार छोड़कर हाथ में हल लेना सीख जाता तब सल्तनत शांतिकालीन प्रशासन के अन्य सामान्य कार्य प्रारम्भ करती थी। सुल्तान अब जनरक्षक माना जाने लगा और उसने सड़कों को सुरक्षित रखने का, वाणिज्य-व्यवसाय की सुविधाएं प्रदान करने का, अकाल और अन्य संकटों के समय अपनी प्रजा को त्राण देने का, और किसी भी व्यक्ति पर किये गये प्रत्येक अन्याय के लिए निष्पक्ष न्याय तथा क्षतिपूर्ति करने का उत्तरदायित्व लिया। जैसे-जैसे हम इस काल के अन्तिम चरण की ओर बढ़ते हैं, सल्तनत के ये पैतृक लक्षण प्रमुखता प्राप्त करते जाते है।[2]

संक्षेप में, यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से सुल्तान की शक्ति की कोई विचारणीय मर्यादाएं न थी, किन्तु वास्तविकताओं और व्यावहारिक आवश्यकताओं ने शासक की प्रभुसत्ता पर कई बंधन लगा दिये, जिससे वह भारतीय वातावरण के अनुकूल हो सके और समाज के स्वस्थ विकास को संभव बना सके।[3]

---

1. इन गुणों के लिये 'शिष्टाचार' का अध्याय देखिए— राजपूत इतिहास के उदाहरणों के लिये टाड, प्रथम, 366-67।
2. तुलनीय, इ० खु०, प्रथम, 18, 19-26 37-38, जहां खुसरो सुल्तान अलाउद्दीन खलजी की सफलताओं का मूल्यांकन न केवल उसकी दक्षिण विजय, बल्कि न्याय-प्रशासन, जन-सुरक्षा और साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बनाये गये नियमों को लेकर भी करता है।
3. एक प्राचीनतम मध्य-एशियाई राजनैतिक विचारक के दृष्टिकोण के लिए देखिये, लिवीयर, 19, जिनका सारांश वह कुछ कविताओं में देता है:
   'किसी भूमि को अधिकृत करने हेतु, सेना और आदमियों की आवश्यकता होती है';
   सेना रखने के लिये, सम्पत्ति का विभाजन कर देना चाहिये;
   सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये, सम्पत्तिशाली होना आवश्यक है;
   केवल कानून ही व्यक्ति की सम्पत्ति का निर्णय करते हैं;
   यदि इनमें से एक का अभाव है, तो चारों का अभाव है;
   जब चारों का अभाव है तो राज्य खण्ड-खण्ड हो जाता है।'

अब हम अपनी खोजबीन के दूसरे चरण में आते हैं, कि इस्लाम के धार्मिक आदर्श किस प्रकार और किस सीमा तक राज्य की शुद्ध धर्म-निरपेक्ष प्रकृति से प्रभावित हुए। हमने प्रारम्भ में ही देखा है कि प्रशासन-यंत्र मदीना से दमिश्क को स्थानांतरित होते ही किस प्रकार इस्लाम की व्यावहारिक राजनीति कुरान के सिद्धान्त से अलग हो गई। सीरिया को सत्ता-स्थानांतरण के साथ ही इस्लामी शासकों के दृष्टिकोण में ऐसा गहरा परिवर्तन हुआ, जिसके बारे में पैगम्बर ने भी नहीं सोचा था। मुहम्मद जीवन-पर्यन्त अभाव और निर्धनता की अवस्था में रहे थे। उन्हें अपनी निर्धनता पर गर्व था और यह भी कहा जाता है कि उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि उनके सच्चे अनुयायियों को इसका अनुकरण करना चाहिए और धन-सम्पत्ति एकत्रित नहीं करनी चाहिए।[1] उनके 'साथियों' और तुरन्त बाद के उत्तराधिकारियों ने इस सादे और निर्धन जीवन की परम्पराओं का पालन किया। पड़ोसी साम्राज्यों के सम्पन्न नगरों, विशेषकर मदायन के पतन के बाद जब इस्लाम की राजधानी में धन की वर्षा होने लगी और मुहम्मद के अनुयायी संसार की सुन्दर वस्तुओं में रुचि लेने लगे तब पवित्र और दूरदर्शी मुसलमान, भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक दैन्य की आशंका से विचलित हो उठे। तथापि, इस ज्वार को और परिणामतः आध्यात्मिक दृष्टिकोण को पतनोन्मुख होने से कोई नहीं रोक सका। तीसरे खलीफा उस्मान अबूज़र गिफ़ारी के शासनकाल में मुहम्मद का एक धर्मात्मा और प्रसिद्ध 'साथी' इस्लाम के विरुद्ध केवल इस अपराध के कारण मरुथस्ल में निष्कासित कर दिया गया था कि उसने मुस्लिम समुदाय में सम्पत्ति-वृद्धि और भौतिकवादी दृष्टिकोण की दृढ़ता से आलोचना की थी।[2] जब मुस्लिम तथा बगदाद में स्थापित हुई तो प्रारम्भिक इस्लाम के ये पतनोन्मुख अवशेष बहुत पीछे छूट गए और, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, मुस्लिम खलीफा और सुल्तान प्राचीन फारसी सम्राटों की सच्ची अनुकृति और उत्तराधिकारी हो गए। धर्म और आध्यात्मिक उपलब्धियाँ नए वातावरण के लिए अनुपयुक्त थीं।[3] दूसरी ओर ऐशोआराम की माँग बड़ी उत्तेजना और

1. वेन्सिक, 188 में कुछ परम्पराएँ।
2. इस शिक्षाप्रद कथा के विस्तृत वितरण के लिए देखिए, म्योर 225।
3. तुलनीय महमूद गजनवी की एक मनोरंजक कथा के लिए ता० फ० 61। किस प्रकार निशापुर का एक धनी व्यापारी करमाती-धर्म विरोध का दोषी ठहराया गया और सुल्तान के सम्मुख न्याय के लिए लाया गया। 'न्यायी' शासक ने, व्यापारी द्वारा सम्पत्ति समर्पित कर दिए जाने के पश्चात्, व्यापारी को इस आशय का प्रमाणपत्र देकर, कि वह कट्टरपन्थी और ठीक विश्वास रखता है, मुक्त कर दिया। इसी प्रकार गुजरात को अधिकृत करने और पेगू और सरनदीप की स्वर्णखानों को खोदने की महमूद की योजना और अपने कोप से विछोह के कारण मृत्युशैयर पर उसके विलाप की कथा देखिए।

उत्साह के साथ की जाने लगी, जबकि यह उत्तेजना और उत्साह किसी अधिक श्रेष्ठ कार्य के योग्य था।[1] जब मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में पैर जमा लिए, तो देश के सम्पन्न मैदानों और साधनों ने अतिभोगों के इतने अधिक अवसर उन्हें प्रदान कर दिए, जितने कि गजनी के सुल्तानों के पास उनके पर्वतीय देश में या मुस्लिम जगत में कहीं भी नहीं थे। जब मुस्लिम राज्य विकसित हुआ तो उसने स्वतन्त्र की शक्ति और प्रकृति से परे अनेक गैर-इस्लामी तत्व आत्मसात कर लिए। उदाहरणार्थ, सल्तनत केवल शक्ति पर आधारित थी; उसके चलते रहने के लिए अत्याचार अनिवार्य था, राजकोष सुल्तान की व्यक्तिगत सम्पत्ति था, असीमित अपव्यय सामान्य बात थी; बिना किसी भेद के मुस्लिमों और गैर-मुस्लिमों का खून बहाना राज्य की नीति से आदेशित थी।[2] यहाँ तक कि रक्त-सम्बन्ध को भी राजतन्त्र के सिद्धान्त में स्थान नहीं था; धर्म और मानवता की भावना के विरुद्ध होने पर भी बिना जनमत के भय के लज्जाहीनता से रिश्तेदारों की हत्या की जाती थी।[3] अन्य बातों में सल्तनत की कार्यप्रणाली ने मुस्लिम कानून पर एकदम नवीन तत्व आरोपित किये, जो शरियत के आदेशों से तो कठिनता से मेल खाते थे, किन्तु 'श्रेष्ठ शासन के अस्तित्व' के लिए अनिवार्य थे।[4] इसी प्रकार, सल्तनत ने इस्लाम के अनेक प्रसिद्ध कानून भंग किये, उदाहरणार्थ, शासक के चुनाव का सिद्धान्त, उत्तराधिकार में प्राप्त जायदाद के हिस्सों और उनके बँटवारे के सिद्धान्तों की परिभाषा करने वाला उत्तराधिकार

---

1. तुलनीय हेरात में राजकुमार मसूद के निवासगृहों, उनके विषयासक्त वातावरण और नग्न स्त्रियों के चित्रों की गुप्त चित्रशाला के लिए, ता० बै०, 135। इसी पुस्तक में मदिरापान की अनेक कहानियाँ भी द्रष्टव्य।

2. राज्य के आधार के लिए ता० दा०, 6; अत्याचार और अपव्यय सम्बन्धी चर्चा के लिए ब० 188-89, और राजकोष की स्थिति के लिए पृष्ठ 292-93 देखिए। सल्तनत में मुस्लिम रक्त बहाने के प्रश्न के लिये देखिए वही, ब०, 235-36; और ब० (पाण्डु०) 100।

   कुरान के स्पष्ट आदेशों के अनुसार मुस्लिम रक्त बहाना इस्लाम के प्रति प्रमुख अपराधों में से एक है (4;93 के अनुसार)। बरनी द्वारा किया गया बलबन का मूल्यांकन भी तुलनीय जो अन्य बातों में धार्मिक होने पर भी रक्त बहाने में नहाने में नहीं हिचकिचाता था—ब०, 47-48 में।

3. दे० रा०, 241 में खुसरो की टिप्पणी तुलनीय। इसी के सदृश टर्की के सुल्तान मुहम्मद द्वितीय का नियम तुलनीय। जिसके अनुसार उसने युवराज को अपने भाईयों की हत्या करने का अधिकार दिया। लिवेयर, 9।

4. मृत्युदण्ड के 7 मान्यता प्राप्त मामलों पर बरानी की व्याख्या देखिए, जिनमें से चार मुस्लिम कानून के लिए नए थे—ब०, 511।

नियम, हलाल (मान्य) और हराम (निषिद्ध) में कठोर भेद। जैसा कि इस काल का एक चतुर राजनीतिज्ञ है, वास्तव में, सल्तनत ने अपने स्वयं के कानून निर्मित किये, जिनका आधार इस्लाम के आधार से कहीं भिन्न था। सल्तनत के कानूनों का सारांश तीन शब्दों में दिया जा सकता है—'सुल्तान की इच्छा'।[1] कुरान के राजनैतिक आदर्शों की कोई भी व्याख्या, चाहे वह ढीली-ढाली ही हो, इस ज्वलंत और नग्न निरंकुशता से मेल नहीं खा सकी तथापि धार्मिक जनों के हाथ में ऐसी कोई शक्ति नहीं थी जिससे वे सल्तनत को अपने राजनैतिक आदर्शों के संशोधनों के लिए विवश कर सकते। व्यावहारिक राजनीति और इस्लाम के धार्मिक आदर्शों के बीच अन्तर इतना स्पष्ट हो गया जितनी की कल्पना की जा सकती थी। धर्मभीरु लोगों के लिए केवल दो मार्ग शेष रह गए थे: सुल्तान को उसके निर्विवाद अधिकार के साथ बिल्कुल अकेला छोड़ देना या उससे समझौता कर लेना। कट्टर सूफियों और साधुओं ने पहला मार्ग अपनाया और 'उलमा' या धर्मशास्त्रियों ने दूसरा। एक ऐसे देश में, जहां मुसलमान चारों ओर से 'विधर्मियों' से घिरे हुए थे, किसी भी बात को अतिशयोक्ति तक ले जाना मूर्खता के साथ ही अव्यवहारिक भी था। कट्टरपन्थी धर्मशास्त्री खूंखार गृहयुद्ध की स्थिति में धर्म के लिए प्राणाहुति देने की संदेहास्पद चिंता में समय तक धर्म-निरपेक्ष शासन से चिपके रहे। सूफियों के कट्टरपन्थी और शुद्धतावादी वर्ग और साधुओं ने आत्मचिंतन में लीन होने के लिए—जो उनका अन्तिम लक्ष्य था—संसार से वैराग्य लेना श्रेष्ठ समझा।[2] यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि राजकीय मामलों में हस्तक्षेप न करने के अतिरिक्त सुल्तान धर्म के प्रति अपनी व्यक्तिगत रुचि को ताक पर रखकर इस्लाम के गौरव और आचार की रक्षा करने को तैयार थे। ऐसी परिस्थितियों में कम-से-कम धार्मिक लोगों के एक वर्ग-कट्टरपन्थी 'उलेमा' के साथ समझौता करना अपेक्षाकृत सरल था। हिन्दुस्तान में मुस्लिम शासन के प्रारम्भ के साथ ही हम एक विद्वान राजमर्मज्ञ को स्थिति का इस प्रकार संक्षेप में हवाला देते पाते हैं। उसके अनुसार सुल्तान के धार्मिक कार्य निम्नलिखित निर्धारित कर्त्तव्यों तक सीमित थे; शुक्रवार और ईद की नमाज़ के लिए 'खुतबा' पढ़ना, धार्मिक निरोधों के विस्तार और सीमाओं का निर्धारण; दान के लिए कर एकत्र करना; धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करना; जब वादी-प्रतिवादी मुसलमान हों तब निर्णय करना और शिकायतें सुनना; राज्य की प्रतिरक्षा के लिए

1. सुल्तान जलालुद्दीन और उसके भतीजे अहमद चेप के मध्य हुए इस प्रश्न के शिक्षाप्रद विवाद के लिए, व० (पाण्डु०) 96-7 तुलनीय।
2. दे० रा० 21-2 में खुसरो की भावना तुलनीय। हाफिज भी तुलनीय ब्राऊन को, 279, (केवल) राजकुमार ही अपने राज्य की गुप्त बातें जानता है। 'ए हाफिज, तूं एक भिक्षुक वैरागी है; शांति का पालन कर।'

उपाय कार्यान्वित करना और विद्रोहियों तथा शांति भंग करने वालों का उन्मूलन करना; और धर्म तथा धर्मकार्य में प्रवेश करने वाले ऐसे नवीन तत्वों का दमन करना जो इस्लाम की प्रकृति के विरुद्ध हों।[1] सुल्तान अपने कोष में से धार्मिक कार्यों और दान-कार्यों के हेतु कुछ धन कृपापूर्वक अलग रख देता था, यद्यपि यह इस्लाम के प्रति उसके धार्मिक कर्तव्यों का अंग नहीं था।[2] कुछ समय पश्चात् ज़ियाउद्दीन बरनी बताता है कि इस्लाम और सल्तनत के सम्बन्धों के बारे में सुल्तान इलतुतमिश के विचार क्या थे। बादशाह मूर्तिपूजकों के निष्कासन और सल्तनत अनिवार्या धर्म-निरपेक्षता की स्वीकृति में नहीं हिचका। उसने यह भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि एक शासक के लिए, राज्य में एक 'धर्म-रक्षक' (दीन-पनाह) के रूप में कार्य करना, चार विशेष बातों को छोड़कर, पूर्णतः असम्भव है। प्रथम, मुस्लिम मत की पवित्रता बनाये रखने में, जिसका अर्थ या आक्रामक मूर्तिपूजावाद का दमन और मुस्लिम सिद्धांतों के पालन के लिए सामान्य प्रोत्साहन, दूसरे, अपनी राज्य सीमा के भीतर सम्मोदित कट्टरपन्थी आचार का खुले तौर पर उल्लंघन किए जाने पर दण्ड देने में; तीसरे, शासकीय धार्मिक पदों पर सच्चे धर्मभीरु और ईश्वर से भय खाने वाले मुस्लिमों की नियुक्ति में; और चौथे, बिना भेदभाव के प्रत्येक को न्यायदान में।[3] शासक की स्थिति के सम्बन्ध में यह कथन पूर्ववर्ती व्याख्या से वस्तुतः भिन्न नहीं है। व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए एकमात्र वास्तविक परिणाम यह था कि सुल्तान कुछेक न्याय सम्बन्धी पदों पर कुछ धर्मभीरु और प्रभावशाली मुसलमानों को नियुक्त करता था और इस प्रकार विरोधियों में से खतरनाक और योग्य नेताओं को निकाल कर उन्हें शक्तिहीन कर देता था। इसके अलावा उसने इस्लाम की सामान्य रूप से प्रतिरक्षा करने का निश्चय किया, जो, पूर्वोक्त अनुसार हिन्दू जनसंख्या के विशाल समुद्र में सुल्तानों के स्वरूप, यहां तक कि उनके अस्तित्व को कायम रखने के लिए किसी भी दशा में आवश्यक था।

अपने धार्मिक कर्तव्यों को एक स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से, दिल्ली के सुल्तानों ने अनेक कृत्रिम समारोह प्रारम्भ किये। उन्होंने कुछ धार्मिक पद—जैसे 'शेख-उल-इस्लाम' और 'सद्-उस्-सुदूर'—निर्मित किये जिनसे यहां हमारा सम्बन्ध नहीं है। समारोहों में : धार्मिक 'बाइयात' (इमाम या इस्लाम के धर्मप्रधान के प्रति भक्ति की शपथ) का स्वरूप प्रचलित रखा गया; शासक का शासन प्रारम्भ होते ही 'खुतबा' में आनुषांगिक परिवर्तन कर दिया जाता था जो गंभीरतापूर्वक मुख्य मस्जिद के मंच से पढ़ा जाता था और नये सिक्कों पर एक उपयुक्त उपाख्यान अंकित

1. तुलनीय ता० फ० मु०, 13-14 में फख़रुद्दीन मुबारकशाह।
2. उदाहरण के लिए ता० फ० मु०, 35 तुलनीय।
3. ब०,41-4 तुलनीय।

किया जाता था।[1] सुल्तान बहुधा एक 'मशफ़-बरदार' (कुरान-वाहक) की नियुक्ति करता था, जो पवित्रता और समुचित सम्मान के साथ पवित्र ग्रंथ लेकर चलता था।[2] धार्मिक संस्थाओं को और मुस्लिम धर्मशास्त्र के अध्ययन के लिये प्रचुर धन प्रदान किया जाता और अनेक मस्जिदों का निर्माण किया जाता था। सुल्तान शुक्रवार की नमाज़ में भाग लेता और दोनों वार्षिक प्रार्थनाओं में लिये ईदगाह की सामूहिक प्रार्थना में बड़े आडम्बर और समारोह से सम्मिलित होता था।[3] साधारणतः वह मुस्लिम कानून के खुलेआम उल्लंघन द्वारा लोगों की सूक्ष्म भावनाओं को आघात और उत्तेजना पहुंचाने का अवसर टालने का प्रयत्न करता था। उदाहरणार्थ, उसकी पत्नियों और उप-पत्नियों की बहुत संख्या हरम की चारदीवारी में ही बन्द रखी जाती थी और मदिरा-पान कुछ अपवादों को छोड़कर एकांत में ही किया जाता था। हिन्दू शासकों के विरुद्ध राजनैतिक युद्धों के अवसर पर आक्रामक धार्मिक उत्तेजना और जिहाद का विशेष प्रदर्शन किया जाता था; यद्यपि नियमतः राज्य की हिन्दू प्रजा के विरुद्ध ऐसी अविवेकपूर्ण बातें सहन नहीं की जाती थीं। रहस्यवाद और सामान्य अनर्थ की धार्मिक चर्चा शाही वर्ग में बहुधा होती रहती थी। एक बार एक प्रान्तीय सुल्तान ने तो बड़ी तत्परता से 'अपने भोजन के लिये वैध सब्जियां परोसे जाने' के सम्बन्ध में पड़ताल की, यद्यपि यह स्वांग अतिशयोक्तिपूर्ण था, क्योंकि दूसरी ओर सुल्तान उसी समय एक मुस्लिम बन्धु के विरुद्ध 'जिहाद' जैसे उत्साह से युद्ध कर रहा था।[1] 'उलमा' ने सल्तनत के लिये धार्मिक और नैतिक समर्थन रचने या ढूंढ़ निकालने का भार अपने ऊपर ले लिया और उन्होंने दिल्ली के सुल्तानों की स्थिति दृढ़ बनाई। कुरान के इस उपदेश की, कि 'अल्लाह और पैगम्बर की तथा अपने अधिकारियों की आज्ञा मानो', कई प्रकार की चतुराईपूर्ण व्याख्या की जा

---

1. बाइयात के लिये रेवर्टी 649 और 246 ता० मु० शा०, 459 में उदाहरण तुलनीय।
2. अमीर खुसरो कुरान-वाहक के पद पर था। तुलनीय ब०, 198।
3. ईद के शाही उत्सव के वर्णन के लिये 'मनोरंजन' का अध्याय देखिये।
4. कथा के लिये देखिये के० हि० इ०, तृतीय, 461, राज्य में हिन्दुओं की दशा के लिये हिन्दुस्तान रिव्यू 1924 में प्रोफेसर मुहम्मद हबीब का एक लेख 'द एम्पायर आफ देहली'। इ० इ० तुलनीय। आ० अ०, द्वितीय 2 में अबुलफज़ल की टिप्पणी देखिये कि किस प्रकार अकबर ने शत्रुता की कंटकाकीर्ण भूमि को और मित्रता और स्नेह के उद्यान में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। हिन्दुओं और मुस्लिमों को एकीकृत करने के उसके प्रयत्न प्रसिद्ध हैं, यद्यपि यह बात बहुधा विस्मृत कर दी जाती है कि इस ओर उसके पूर्ववर्ती शासकों द्वारा कोई पृष्ठ-भूमि तैयार न की जाती तो उसके उपाय पूर्णतः निष्फल होते।

सकती है ऐसी संभावना प्रतीत की गई। दिल्ली के सिंहासनासीन सुल्तानों को इस उपदेश में निहित मूलपाठ (उलुल-अमर-मीन-क्रम) अभिहित में अधिकारियों के समकक्ष माना गया। पैगम्बर की ऐसी उपयुक्त और समर्थक परम्पराएं भी खोज निकाली गईं, जिनका आशय था कि 'इमाम' (इस समय सुल्तान) की आज्ञा का पालन करना मुहम्मद के उपदेशों या अल्लाह के आदेशों का पालन करने के समान है। इस तरह साधारण तर्क द्वारा सुल्तान का पद आज्ञापालन के मामले में दैवी पुरुष तक उठा दिया गया। राजाज्ञा का उल्लंघन भयानक पाप होने के कारण परलोक में कठोर दण्ड का भागी माना गया। मुसलमान 'इमाम' चुनने के लिये स्वतन्त्र नहीं थे। उन्हें केवल उसकी आज्ञा मानना था, चाहे सुल्तान 'दास और हब्शी हो अथवा अपग हो'।[1] अन्य बातों में, उलमा ने नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि धर्म-निरपेक्ष राज्य धर्म की जुड़वां बहिन है, केवल उनके कार्यों की प्रकृति में भेद है। इसके आधार पर सुल्तान के कार्य ईश्वर के दूतों के कार्यों से कदाचित् ही निम्न थे; वास्तव में जिस तरह पैगम्बर आध्यात्मिक मामलों में जगत का मार्गदर्शन करते है, उसी प्रकार सुल्तान सांसारिक मामलों का परिचालन करते हैं, जो कि आध्यात्मिक मामलों के प्रतिरूप है।[2] उन्होंने इस सिद्धान्त का समर्थन किया कि राजाज्ञा का प्रत्येक प्रतिरोध करने वाले व्यक्ति के हक में अपराध है, चाहे शासक अत्याचारी और पूर्णत: तथा प्रत्यक्षत: गलत क्यों न हो, और चाहे इस प्रकार प्रतिरोध करने वाला व्यक्ति राज्य में समानता और न्याय स्थापित करने के लिये निष्ठापूर्वक प्रयत्न क्यों न कर रहा हो।[3] इस मामले में, राजाज्ञा का प्रतिरोध करने वाला व्यक्ति राज्य की दृष्टि में न केवल एक खतरनाक अपराधी है, बल्कि इस्लाम के पवित्र कानून की दृष्टि में घृणित पापी भी है, इसलिये यदि वह मार डाला जाता है, तो वह अच्छी तरह दफनाए जाने का भी हकदार नहीं है, उसकी मृत्यु पर न कोई रोएगा न गाएगा। इसी प्रकार धर्म-शास्त्रियों ने राज्य को सैनिक आवश्यकता के समय जनता से यथोचित धन अथवा जायदाद का स्वत्वहरण करने और इसे इस्लाम के सैनिकों में वितरित करने का

---

1. प्रश्न की चर्चा के लिये तुलनीय, ता० फ० मु०, 12-13 कुरान की आयत के लिये। पवित्र कुरान, 4-58।
2. धर्म की तुलना में राज्य की स्थिति के लिये तुलनीय ता० मु० शा०, 331, साथ ही कुरान 21-105 की एक आयत 'केवल पवित्र को ही पृथ्वी उत्तराधिकार में मिलती है' की महमूद गावां द्वारा की गई व्याख्या भी देखिये—रि० इ०, 30।
3. तुलनीय, बरनी ख्वांदमीर और फरिश्ता के विचार क्रमश: ब० 27, ख्वाद 122 और ता० फ० का प्राक्कथन। बाद में राजतन्त्र की अनिवार्य दैवी प्रकृति पर जोर डालकर कोई पुस्तक प्रारम्भ करना पर्याप्त लोकप्रिय हो गया। उदाहरणार्थ, तुलनीय अबुलफज्ल।

का ज्ञान प्राप्त करना अरुचिकर न होगा।[1] दिल्ली में सल्तनत की स्थापना के प्रायः आरम्भ से ही, अन्य अनेक परम्पराओं के समान पैगम्बर से सम्बन्धित एक परम्परा अत्यन्त लोकप्रिय हो गई। कहा जाता है कि पैगम्बर ने कहा था कि 'यदि सुल्तान नहीं होगा तो लोग एक दूसरे को निगल जायेंगे। फखरुद्दीन मुबारकशाह इसके स्रोत का परीक्षण किये बिना ही अपनी दोनों पुस्तकों में इसे पूर्णतः वैध परम्परा कहता है।[2] सल्तनत नामक संस्था को समर्थक अन्य परम्पराओं के समान सम्भवतः यह भी भारत के बाहर निर्मित की गई थी और आक्रामकों के साथ हिन्दुस्तान में उसी कार्य के लिए आई। शीघ्र ही यह इतनी लोकप्रिय हो गई कि अमीर खुसरो और अफीफ जैसे सजग इतिहासकारों ने इसे ईमान के एक अंग, तथा एक दृढ़ नैतिक और राजनैतिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार कर लिया।[3] अंत में, मुहम्मद तुगलक ने इसे अपने सिक्कों में एक आख्यान के रूप में अंकित किया जिससे इसकी प्रामाणिकता के प्रति कोई शंका न रही।[4] जब सुल्तान के राज्यपालों और उपाधिकारियों ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली, तो उन्होंने अन्य शाही अलंकरण के समान ही राजनैतिक सिद्धान्तों का भी अनुसरण किया और यह सिद्धान्त भी प्रान्तों में समान रूप से लोकप्रिय हो गया।[5] समकालीन सामाजिक और राजनैतिक जीवन के तथ्यों ने इस प्रतिज्ञापन की बुद्धिमता का पूर्ण समर्थन किया। ऐसा

---

1. तुलनीय टामस हाब्स की व्याख्या, जहाँ वे 'स्टेट आफ नेचर' में जीवन और एक सामूहिक प्रभुत्व निर्मित करने की बढ़ती हुई इच्छा का उल्लेख करते हैं, लेवियाथन, 131। वे कहते हैं—'एक ऐसी सामूहिक शक्ति निर्मित करने के लिए, जो विदेशियों के आक्रमण से और एक दूसरे के घात-प्रतिघातों से उनकी प्रतिरक्षा करके उन्हें इस तरह सुरक्षित कर सके कि वे अपने स्वयं के परिश्रम से और प्रकृति की देन से अपना पोषण कर सकें और संतोषपूर्वक रह सकें; एकमात्र मार्ग है अपने सम्पूर्ण अधिकार और शक्ति एक व्यक्ति को सौंप देना, आदि आदि'।
2. तुलनीय ता० फ० मु०, 13, पुनः अ० ह०, 112।
3. तुलनीय इ० खु० द्वितीय, 9 में अमीर खुसरो जहां वह हिचकिचाहट के साथ इसे स्वीकार करता है; अ०, 4 में अफीफ की प्रशंसा तुलनीय।
4. वास्तविक इबारत है : एडवर्ड थामस ने (परिशिष्ट प्लेट 4 के अनुसार) सिक्के के आख्यान का किंचित त्रुटिपूर्ण रूपान्तर दिया है। यद्यपि सिक्के का कथन मेरे द्वारा दिये गए अनुवाद से भिन्न नहीं अनूदित किया जा सकता। वह लेख का रूपान्तर इस प्रकार करता है : 'प्रभुसत्ता प्रत्येक मनुष्य को प्रदान नहीं की जाती (किन्तु) कुछ लोग अन्यों के (ऊपर बिठा दिए जाते हैं)।
5. उदाहरणार्थ, तुलनीय 'तारीख-ए-मुजफ्फरशाही'।

समझा गया कि केवल राज्य ही शान्ति, सुरक्षा और व्यवस्था प्रदान कर सकता है। यह कुछ विचित्र-सा प्रतीत होगा कि हिन्दू-सुधारक मुस्लिम आधिपत्य के प्रश्न पर विषादमय चुप्पी साध लेते हैं और इसे उखाड़ फेंकने के सुझाव दिये बिना या सर्व-साधारण के लिए अधिकारों की मांग किये बिना ही इसे अनिवार्य कर्मफल मान बैठते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जनता अपने ऊपर शासन कर सकती है इस पर उन्हें गहरा संदेह था।[1] शासक की मृत्यु, लम्बी अनुपस्थिति या उसकी दीर्घकालीन अस्वस्थता से सर्वत्र व्यग्रता छा जाती थी। शासक की आकस्मिक मृत्यु के कारण कभी-कभी भयानक गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती थी। ऐसे अवसरों पर चतुर मन्त्री सुल्तान के स्वस्थ होने, उसकी गतिविधियों की और शत्रुओं पर उसकी विजयों की झूठी कथा गढ़ लेते थे। इससे यह मालूम होता है कि राज्य के अधिपति की अनुपस्थिति में लोगों में असुरक्षा की उत्कट भावना पैदा हो जाती थी और परिणामतः ऐसी सार्वभौम मान्यता हो गई थी कि शान्ति, व्यवस्था और सुरक्षा स्थापित करने की एकमात्र संस्था होने के कारण सल्तनत परमावश्यक है।[2] मुसलमानों के पदार्पण के पहले की राजपूत-आधिपत्य की स्थिति में लौटने के आसार उत्साहजनक नहीं थे, क्योंकि

---

1. तुलनीय कबीर की स्पष्ट टिप्पणियाँ। वे उस स्थिति की कल्पना नहीं कर सके जब लोग स्वयं पर शासन कर सकते हों; शाह; 220।

2. तुलनीय सिंध में मुहम्मद तुगलक की मृत्यु होने के पश्चात् कुव्यवस्था के दृश्य कै० हि० इण्डि०, तृतीय, 173। फिरोजशाह तुग़लक के सिंध और उड़ीसा जाने से उसकी अनुपस्थिति में उसके वजीर की निपुणता तुलनीय अफीफ का वर्णन; सारांश के लिए देखिये अबुल फज़्ल (अ० ना०, प्रथम, 364 में) और दिल्ली में हुमायूँ की मृत्यु के समय अकबर के शहर में लौट आने तक जनता के मस्तिष्क से सारी शंकाएँ निकालने के लिए प्रयुक्त किये गये उपायों के लिए तुलनीय सीदी अली रायस (वैम्ब्री) का वर्णन। सरकारी तौर पर यह बताया गया कि सम्राट् क्षणिक अवस्थता से मुक्त हो गये हैं और इस विवरण को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए एक छल किया गया। मुल्ला बीकसी नामक एक आदमी को, जो स्वर्गीय सम्राट् से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाता था, सम्राट् के रूप में प्रस्तुत किया गया। उसे शाही वस्त्रों से अलंकृत करके राजसिंहासन पर बिठा दिया गया; उसके चेहरे और आँखों पर परदा डाल दिया गया था। राजमहल के अधिकारीगण और सचिवगण सदैव की तरह अपना कार्यालयीन कार्य करते रहे। जल-सेना अधिकारी, जिसने सर्वप्रथम इस योजना का सुझाव दिया था, लिखता है कि 'चिकित्सक पुरस्कृत किये गये और सम्राट् के स्वास्थ्य लाभ की बात सार्वभौमिक रूप से मान ली गई।'

उनके समय अनवरत गृहयुद्ध और एक-दूसरे के प्रदेशों में राजाओं का बारम्बार अतिक्रमण और फिर एक विदेशी आक्रामक के आगमन की घटना साधारण बात थी।

इस चर्चा को समाप्त करते समय मुस्लिमों के एक ऐसे वर्ग का उल्लेख कर देना आवश्यक है, जिन्होंने कुरान के मूल अर्थ का अनुसरण और मुहम्मद की कार्य-प्रणाली और-उसके उत्तराधिकारियों के अतिरिक्त किसी और का मार्गदर्शन स्वीकार करने में इकार कर दिया। उन्होंने मुस्लिम राजनीति के उन सारे ऐतिहासिक विकासों को मान्यता देने से दृढ़तापूर्वक इन्कार कर दिया जिनका हम गत पृष्ठों में उल्लेख कर आये हैं और 'उलमा' के प्रतिकूल उन्होंने समझौते के प्रस्ताव से इस दृढ़ता से मुंह फेर लिया जैसे किसी शैतानी शक्ति से मुँह फेरा जाता है। उनके प्रति न्याय करने के लिए यह कहा जा सकता है कि समझौते का अर्थ था मूल भावना और उन सारे सिद्धान्तों का समर्पण, जिनका समर्थन इस्लाम करता है। उनमें यह दृढ़ विश्वास था कि मुहम्मद ने मानवता को अल्लाह का अन्तिम संदेश दिया था और पृथ्वी पर मुस्लिम समुदाय के प्रत्येक कार्य-कलाप का यही एकमात्र मार्गदर्शक है। दूसरी ओर, मुस्लिम राज्य का विकास जीवन के ठोस सत्यों से होकर हुआ और अन्त में किसी भी प्रतिरोध को कुचलने के लिए वह पर्याप्त शक्तिशाली था। सामान्यतः मुस्लिमों ने सारे गैर-इस्लामी कार्यों में राज्य का समर्थन किया और उनमें से अधिकांश स्पष्टतः भौतिकवादी और वास्तव-वादी थे। इस प्रकार 'मुहम्मद की ओर लौटो' का नारा लगाने वालों की संख्या मुस्लिम समुदाय में बहुत थोड़ी थी। इस्लाम के प्रारम्भिक दिनों में, जब राज्य का प्रशासन यंत्र असंगठित था, उन्होंने शक्ति प्राप्त करने के लिए एकाधिक बार संघर्ष किया; किन्तु अंतस्तल से समझौता न करने की प्रवृत्ति होने के कारण और उपयुक्त राजनैतिक समझौते करके और अन्य उपायों से शत्रु को जीतने में असमर्थ होने के कारण या तो वे युद्ध में सफल हुए या आपस में ही संघर्ष करने लगे।[1] जैसे-जैसे शासन का संगठन कुशल होता गया इस तरह का व्यक्ति अपनी असहायता के प्रति अधिकाधिक सचेत होने लगा और या तो वह निराश होकर वैराग्य या संसार-त्याग की ओर बढ़ा या उसने उन लोगों से संधि कर ली जिन्हें वह पहले शैतान की शक्तियाँ समझता था। यह आध्यात्मिक संकट इस्लाम में बहुत पहले प्रकट हो गया था और इसका प्रतिबिम्ब पलायनवादी साहित्य और महदवी लोगों के सिद्धान्तों के प्रसार में मिलता है—जो इस्लाम की प्राचीन पवित्रता पुनर्स्थापित करने हेतु मेंहदी के प्रकट होने की और महम्मादि की कल्पना करने लगे।[2] सत्तारूढ़ वंशों के विरुद्ध

---

1. तुलनीय म्यूर, 290 खारीजियों की असफलताओं की उसके द्वारा की गई व्याख्या के लिए; उनके सिद्धान्तों के लिए ई० I-II 906।
2. 'द बुक आफ स्ट्राइफ' नामक तीसरी शती हिज्रा में लिखी एक प्राचीन पुस्तक के लिये तुलनीय क्रेमो, इ० क०, जिल्द तीन, 551-2।

राजनैतिक दलों का निर्माण करके इन सिद्धान्तों का बड़ी चतुरता से प्रयोग किया गया और शीघ्र ही इनकी आध्यात्मिक महत्ता समाप्त हो गई। उनका स्थान वैराग्य की सार्वभौमिक लोकप्रियता और सूफी आन्दोलन के विस्तृत प्रसार ने ले लिया, जिनके सम्बन्ध में मुहम्मद और पवित्र कुरान के उपदेशों ने शायद ही कुछ कहा है।[1] एक सूफी के खोजपूर्ण विश्लेषण और सामाजिक परिस्थितियों के उसके मूल्यांकन, या उसके तीखे और विशुद्ध तार्किक प्रतिपादनों में किसी भी प्रकार का दोष नहीं पाया जा सकता। उसके अनुसार संगठित मुस्लिम समाज के भीतर आध्यात्मिक जीवन के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि दोनों परस्पर असम्बद्ध हैं। उसी तरह यह भी स्पष्ट था कि जो संसार के लिए जीवित रहता है वह शैतान के पंजे में है। धर्म (दीन) का अनुरागी तो केवल आत्मा के लिए ही जी सकता था।[2] एक सूफी के लिए एक राजनीतिज्ञ से अपनी भूमि पर मिलना सुगम था। उसने दैवी राजतन्त्र (जिलउल्लाह) के सिद्धान्तों के जाल और उसे न्यायसंगत सिद्ध करने के लिये बताये राजनैतिक कारणों को अमान्य कर दिया। जहाँ तक कोई विरोधी व्यक्ति इस्लाम के प्रति अपनी निष्ठा स्वीकार करता तो ऐसे सूफी और सन्यासी के सामने वह उपहास का पात्र बनता था।

किन्तु सूफी के कमज़ोर मुद्दे कुछ व्यावहारिक और अनुपेक्षणीय विचार थे। यदि तर्क उसके पक्ष में था तो सम्पूर्ण संगठित समाज की शक्ति सुल्तान के हाथ में थी और उसका प्रयोग एक सांसारिक आदमी के समर्थन के लिए किया जा सकता था। उदाहरणार्थ, रोटी की समस्या—दैनंदिन जीवन-यापन करने की इस अनिवार्य आवश्यकता के लिये उसके पास क्या हल था? धर्मांध सूफी ने उत्तर दिया कि यदि जीवन-यापन के साधन और सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति सुल्तान पर निर्भर है तो वह एक कलंकित—जैसा कि वह इसे समझता है—स्रोत से इन्हें स्वीकार करने की अपेक्षा उनके बिना ही रह जाएगा। वह सरकारी टकसाल में ढले सिक्कों को निषिद्ध और विष तुल्य मानता था। 'यदि सुल्तान का एक भी तांबे का सिक्का दरवेश के पास के सौ अन्य सिक्कों में मिल जाता है तो वह एक सिक्का अन्य सिक्कों के सहवास से पवित्र होने के बजाय उन सब सिक्कों को दूषित कर देने के लिये पर्याप्त है'।[3] ऐसा अमीर खुसरो की कृति के अनुसार एक सूफी का तर्क है। शास्त्रों का व्यवसाय मुस्लिमों और कुरान के अनुगामियों के लिये सदैव आकर्षक रहा है, किन्तु वैरागियों ने इस व्यवसाय का अनुसरण करने का वैसा ही निषेध कर दिया, कारण ऐसा करके क्या वह इस्लाम की सांसारिक शक्ति रूपी दोष की प्रतिस्थापना

1. देखिये, कुरान पाक, 57-27।
2. कु० 95 के विचार तुलनीय।
3. पूर्ण चर्चा के लिये तुलनीय इ० खु०, चतुर्थ, 195।

में सहायक नहीं होगा?[1] इस वर्ग के लोगों का विस्फोटक और विरोधपूर्ण आवेग एक बार अफगानों के अंतर्गत महदवी आन्दोलन में अभिव्यक्त हुआ (जैसा कि गत शताब्दी में वहाबी आन्दोलन में) और उसकी असफलता लगभग पूर्व-निश्चित थी। उनका जोश दुःखद किन्तु गौरवपूर्ण है और यह जब-तब मुस्लिम जगत के विभिन्न भागों में प्रकट होता रहता है। शहीदों का यह मुकुट धार्मिक पवित्रता की ज्वाला को हर स्थिति में प्रज्वलित रखता है और धुंधली होती छाया मानवीय आत्मा की गहन अनुभूतियों को ही प्रकट करती है। किन्तु मुस्लिम जगत इन अस्थिर आवेगों के लिये शायद ही अधिक उपयुक्त था। उलमा की आध्यात्मिक महत्ता चाहे कुछ भी रही हो, उसने मुसलमानों के धार्मिक आवेगों को पूंजीभूत करके हिन्दुस्तान में मुस्लिम समाज की प्रगति का अवरोध तो नहीं किया, बल्कि उसकी उन्नति में सहायता के लिये अवश्य ही कुछ सफल योगदान दिया। राजनीति के साथ घनिष्ट सम्पर्क ने उनका संकीर्ण और धार्मिक दृष्टिकोण व्यापक बना दिया; इसलिये उनमें से कुछ लोग मानव जाति की सेवा की तुलना ईश्वर-पूजा से करने में नहीं सकुचाये। शासक के धार्मिक कर्तव्यों को स्पष्ट करते समय काश्मीर का संत हमदानी लुटेरों और चोरों से राजमार्गों की सुरक्षा, नदियों पर पुल-निर्माण और सूचना-चौकियों की स्थापना जैसी गौण बातों को भी शामिल करना नहीं भूलता।[2] यह सब उससे बहुत भिन्न है, जिसकी धर्मशास्त्रियों और धार्मिक लोगों से आशा की जाती थी और की जाती है। यदि उलमा मुस्लिम राज्य को वह मार्ग अपनाने से रोकने का साहस नहीं कर सके जो मुस्लिम राज्य ने अपना लिया था, तो कम-से-कम उन्होंने एक विदेशी भूमि में मुस्लिम समाज को मुस्लिम संस्कृति के निर्माण में अपना योगदान अवश्य दिया।

यह था अंतिम धार्मिक पैगम्बरों द्वारा मानवता को दिए गए 'अंतिम' संदेश का भाग्य!

सुल्तान

(क) सुल्तान एक निजी व्यक्ति के रूप में

पिछले पृष्ठों में की गई प्रभुसत्ता के सिद्धान्त की व्याख्या के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाएगा कि सुल्तान और राज्य लगभग एक ही थे। सुल्तान के व्यक्तित्व का 'निजी' और 'सार्वजनिक' में विभाजन कुछ स्वेच्छा से किया गया है: विभिन्न वर्ग के लोगों के निजी जीवन और सामाजिक-व्यवहार पर शासक का महान् प्रभाव पड़ा है इस बात पर जोर देने के उद्देश्य से ही हमने यह विभाजन करना सुविधाजनक समझा है। अधीनस्थ लोग सुल्तान का (या हिन्दू राज्य में राजा का) लगभग शब्दशः

1. वहीं, 272।
2. ज० मु०, 110 ब।

अनुकरण करते थे जहाँ तक उनकी शक्ति और साधन उन्हें अनुमति देते थे। सारांश यह कि सुल्तान का निजी व्यक्तित्व सामान्यतः समाज का स्वर निर्धारित करता था।[1]

फारस के ससानी शासकों के समान दिल्ली के सुल्तानों की अभिलाषा 'ऊंचे भवनों का निर्माण कराने; भव्य दरबार लगाने और अपने सम्मुख झुकते हुए संसार के दृश्य का आनन्द लेने; धन का विशाल भण्डार एकत्र करने और सारे वित्तीय अधिकार अपने हाथ में केन्द्रीकृत करके, जिन पर वे अनुग्रह करना चाहें, उन्हें बांटने; सारा स्वर्ण और जवाहरात अपने अधिकार में करने और एक लोलुप तथा आकांक्षी जनसमूह को उनका दान करने जिससे वे उनकी सत्ता स्थापित करने हेतु अनवरत रूप से युद्ध कर सकें; अनेक कर्मचारी और सेवक तथा विशाल हरम रखने, और उन पर असीमित धन व्यय करने के संतोष का आनंद लूटने—सारांश यह कि अहंकार की तुष्टि की ओर विशेष महत्व प्राप्त करने की थी।' राजत्व का यह आडम्बर पूर्ण साज-सामान प्रदर्शित किये बिना कोई शासक शायद ही उपयुक्त शासक माना जाता था और 'पादशाह' शायद ही अपनी अत्युच्च स्थिति के योग्य रहता था। सारांश में, एक इतिहासकार के शब्दों में यह था गजनवी शासकों का आदर्श; और इस आदर्श की ओर तथा सुल्तान महमूद के प्रतिष्ठित उदाहरण की ओर दिल्ली के सुल्तान प्रेरणा और मार्गदर्शन के लिये ताकते थे;[2] वास्तव में यह उस युग का सार्वभौमिक दृष्टिकोण ही था।

शाही अधिष्ठान

स्वयं को अपने उदात्त पद के योग्य बनाने के लिये सुल्तान राज्य में सबसे अधिक कर्मचारी रखता था। उसके महल, उसका 'हरम', उसके दास और अनुचर, उसका कर्मचारियों का दल और अंत में खालसा भूमि सरलता से उसे अपने राज्य में सर्वोच्च स्थिति प्रदान कर देते थे।

1. **महल**—महलों का निर्माण कराना फारसी शासकों की एक प्राचीन और लोकप्रिय प्रथा थी। प्रत्येक शासक स्वयं के लिये एक आवासगृह चाहता था और वह अपने पूर्ववर्ती शासक द्वारा छोड़े गये भवनों का उपयोग करने का इच्छुक नहीं रहता था। वह चाहता था कि उसके महल उसके प्रशासन के स्मारक के रूप में रहें।[3] हिन्दू राजा भी इसी प्रकार ऐसे महल में निवास करना अशुभ मानते थे जिसमें किसी ने अन्तिम सांस ली हो। दिल्ली के सुल्तानों ने यथासंभव इसी परम्परा का पालन किया, और पुराने महलों को उनकी सामग्री सहित त्यागना और अपने नवीन महल

---

1. तुलनीय, बरनी के विचार : ब०, 575।
2. तुलनीय, फ० ज०, 99, 110।
3. तुलनीय हार्ट, 96।

निर्मित कराना प्रारंभ कर दिया।[1] मुस्लिम सत्ता के प्रारम्भ में दो महलों का उल्लेख मिलता है—एक निजी आवास के लिये 'दौलत खाना' (या सम्पत्ति गृह), और दूसरा शाही उपयोग हेतु। उन्हें क्रमशः 'कस्र-ए-फीरोज़ी' (जय भवन) और 'कस्र-ए-सफ़ेद' (श्वेत आवास) कहा जाता था। नासिरुद्दीन महमूद के समय एक तीसरे, 'कुश्क-ए-सब्ज़' (हरित आवास) का उद्भव हुआ।[2] बाद में आने वाले राजवंशों, यहां तक कि अलग-अलग शासकों ने ऐसे शाही नगरों की नींव रखना प्रारंभ कर दिया जिनमें राजमहल, बाजार, उद्यान, मस्जिद, मार्ग और प्राचीर सब रहते थे; इसीलिये वर्तमान दिल्ली में लगभग एक दर्जन प्राचीन शाही नगर शामिल हैं, उदाहरणार्थ—सीरी, किलोखरी, शहर-ए-नौ, तुगलकाबाद, फ़ीरोज़ाबाद, शाहजहानाबाद और अन्य, जैसे प्राचीन राजपूत राजवंशों की राजधानियां। इसीलिये बाद में फ़ीरोज़ तुगलक ने विभिन्न स्तरों के लोगों—अमीरों, शासक के सहचरों और सर्वसाधारण—को दर्शन देने मात्र के लिये तीन महल निर्धारित किये। महलों और शाही नगरों के सम्बन्ध में आगामी अध्याय में अधिक विस्तार से लिखा जायेगा।

2. हरम—सामान्यतः सुल्तान (साथ ही हिन्दू राजा भी) अत्यधिक विषयासक्त थे। जहां तक हमें ज्ञात है स्त्रियों और खेलों में उनका अधिकांश समय चला जाता था; उनमें से कुछ ने तो चुनी हुई सुंदरियों की प्रदाय-व्यवस्था के लिए एक विभाग ही खोल रखा था और फिर भी वे कामक्षुधा से पूर्णतः सतुष्ट नहीं हो पाते थे।[3] हिन्दू और मुस्लिम दोनों शासकों की एक मुख्य रानी होती थी जिसकी सन्तान

---

1. तुलनीय, कि० रा० द्वितीय, 47।
2. रेवर्टी, 661; व० (पाण्डु०), 96 भी।
3. दक्षिण के हिन्दू राजाओं की अति विलासप्रियता और उनकी हजारों पत्नियों और दासों का वर्णन, दक्षिण का भ्रमण करने वाले प्रायः प्रत्येक विदेशी यात्री ने किया है। हिन्दुस्तान में हिन्दू राजाओं के उदाहरणों के लिये मालवा के मंत्री, जिसके पास मुसलमान स्त्रियां को मिलाकर 2000 स्त्रियां थीं, का प्रसिद्ध उदाहरण तुलनीय—कै० हि० इण्डि०, तृतीय, 30 चम्पानेर के राजा के मनोरंजक उदाहरण तुलनीय, जो पतुरियों के साथ अपना मनोरंजन करने में इतना व्यस्त था कि उसे मालूम ही नहीं पड़ा कि अफ़गान आक्रामकों ने नगर को अधिकृत कर लिया है—वा० मु०, 39 मुस्लिम शासकों के लिये शायद ही किन्हीं दृष्टान्तों की आवश्यकता हो। फिर भी, तुलनीय कीजिए मुईज़ुद्दीन कैकुबाद की सब प्रकार के विषय-भोगों में लिप्तता और जनता के ऐसे ही दुष्कृत्यों के लिये उदारतापूर्वक क्षमादान का अवलोकन वास्तव में, उसने सोचा कि यदि उसने आनंद लूटा और दूसरों को भी आनन्द लूटने दिया तो इससे इहलोक में यशोलाभ होने के साथ ही परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति भी होगी, ब० 99, वा० मु०, 81 में मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन खलजी का विलाप देखिये। उस सुल्तान के अन्तर्गत स्त्रियों के प्रदाय का एक अलग विभाग ही था, किन्तु वह इस दुःख के साथ मरा कि उसे उसकी रुचि की स्त्री कभी न मिली।

सिंहासन की उत्तराधिकारी होती थी, या यदि इसे और सही ढंग से कहें तो जहाँ भी शांतिपूर्ण और विवादहीन सिंहासनरोहण सम्भव रहता था—उन्हें इसका सर्वप्रथम अधिकार था। सिंहासनासीन होने वाले नाबालिग पुत्र के संरक्षण के अधिकार के साथ ही मुख्य रानी को अन्य विशेषाधिकार भी प्राप्त थे।[1] अन्य रानियों, उप-पत्नियों या रखेलों का चुनाव करने का कोई निश्चित नियम नहीं था।[2] यह ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है कि शासक की पहुँच और छीना-झपटी से उसके राज्य में नारियों का सम्मान कहां तक सुरक्षित था। सामान्यतः हम कह सकते हैं कि हिन्दू जनता की कोमल भावनाओं को ठेस न पहुंचाना ही सुल्तान उचित समझते थे। फिर भी, यह सब शासक के व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर निर्भर था क्योंकि शासक द्वारा दुर्व्यवहार किये जाने की स्थिति में निवारण के लिये कोई साधन नहीं थे।[3] पदच्युत शासक की स्त्रियों का प्रश्न इससे भिन्न था। विजेता को पदच्युत सुल्तान की पत्नियों से विवाह करने का वैध अधिकार था और हमें ऐसी पत्नी तथा रखैल से उनकी इच्छा के विपरीत विवाह किये जाने का उल्लेख मिलता है।[4] हिन्दू राजा संभवतः

---

1. राजपूताना में मुख्य रानी के विशेषाधिकारों के लिये और किस प्रकार एक पट-रानी मेवाड़ के राजा के साथ सार्वजनिक रूप से सिंहासनासीन की जाती है—इसके लिए तुलनीय टाड, तृतीय, 1370। सुल्तान जलालुद्दीन खलजी की हत्या के पश्चात् अलाउद्दीन द्वारा दिल्ली की ओर प्रस्थान करने के समय सुल्तान की मुख्य रानी, जो अपने पुत्रों की अभिभाविका थी, की गलतियां भी तुलनीय।
2. इस सम्बन्ध में तुलनीय टाड, प्रथम, 358, 'रानियों की संख्या केवल आवश्यकता और राजा की रुचि के आधार पर ही निश्चित की जाती थी। एक सप्ताह में जितने दिन होते हैं उनके बराबर रानियां रखना भी असामान्य नहीं था; जबकि दासियों की संख्या असीमित थी।'
3. इस सम्बन्ध में प० (हिन्दी) 223, 425 में हिन्दू भावनाएँ तुलनीय—दुर्व्यवहार किये जाने पर उनकी असहायता के बारे में खुसरो की अभ्युक्ति तुलनीय—म० अ० 199।
4. ज० व०, तृतीय, 854 में हाजी दबीर का कथन तुलनीय कि किस प्रकार गयासुद्दीन तुगलक को बलापहारी खुसरोखां द्वारा मुबारकशाह की पत्नियों से विवाह किये जाने के प्रति कोई आपत्ति नहीं थी। उसे तो केवल पहले और दूसरे विवाह के मध्य अन्तर (या इद्दत) के सम्बन्ध में मुस्लिम कानून के नियमों का उल्लंघन होने पर आपत्ति थी। इसी प्रकार खिज्रखां की प्रिय पत्नी देवलरानी को विवाह के लिये मुबारकशाह द्वारा बाध्य किये जाने के सम्बन्ध में तुलनीय ज० व०, द्वितीय, 842, इसका संकेत अमीर खुसरो ने भी अपनी कृति दे० रा० में किया है।

अपने पूर्वजों की प्राचीन और मान्य परम्पराओं का पालन करते थे यद्यपि यह उनके लिये आवश्यक था ऐसा नही माना जा सकता।[1]

इस सिलसिले मे यह कहा जा सकता है कि शाही हरम मे सुल्तान की पत्नियों और उप-पत्नियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियां, जैसे, मा, बहिनें और पुत्रियाँ, वास्तव में सब स्त्री-रिश्तेदार रहती थी। विशेषकर सुल्तान की मां (राजपूतों में *जिसे 'मां-जी' कहा जाता है) कुछ बातों में तो सुल्तान की मुख्य पत्नी से भी अधिक* सम्माननीय थी। फारसी परम्परा और राजपूत प्रथा दोनों के अनुसार सत्तारूढ़ राजा की मां को इतने प्रभावशाली अधिकार थे जितने कि उसने एक रानी के रूप में भी उपभोग नहीं किया होगा।[2]

सुल्तान का हरम के भीतर का जीवन कैसा था यह इतना अधिक व्यक्तिगत मामला है कि वृत्तांत लेखक उसके जीवन के इस पहलू के बारे मे यदि कुछ प्रकट भी करते है तो वह अत्यल्प है। सुल्तान इल्तुतमिश द्वारा रजिया को अपना उत्तराधिकारी *बनाने के सुझाव से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सुल्तान का अवश्य ही उस पर मृदु स्नेह था और उसने उसकी शिक्षा और प्रशिक्षण का बड़ी सावधानी* और रुचि से ध्यान रखा होगा। इतिहासकार कुछ सूक्ष्म संकेत करते हैं कि अलाउद्दीन अपनी पत्नी के साथ पर्याप्त सुखी नहीं था और, उनके अनुसार, इसी कारण उसने पारिवारिक चिन्ताओं से मुक्ति पाने के उद्देश्य से दक्षिण का पहिला अभियान *किया। हाजी दबीर इस निष्कर्ष को सत्य सिद्ध करने के लिए मनोरंजक घटना का* वर्णन करता है।[3] *अलाउद्दीन खलजी का पुत्र राजकुमार खिज्रखां अपनी दूसरी*

1. तुलनीय एक लड़की के लिये विजयनगर और बहमनी सुल्तान के मध्य युद्ध—कें० हि० इण्डि०, तृतीय, 391। रतनसेन के दिल्ली चले जाने पर उसकी अनुपस्थिति में एक पड़ोसी राजा द्वारा पद्मावती प्राप्त करने के प्रयत्नों के लिये प० (हिन्दी) देखिये, *ऐसी ही एक कहानी के लिए पृष्ठ 72-73 तुलनीय*।
2. राजपूतों के लिये तुलनीय टाड, तृतीय, 220, 1370 फारसी परम्पराओं के लिये रालिन्सन, फाइव मानर्कीज् इत्यादि, तृतीय, 220 अपने पति की मृत्यु के पश्चात् इल्तुतमिश की विधवा शाह तुरकान के प्रभाव के लिये तुलनीय—रेवर्टी, 632; मुहम्मद तुगलक की मा की अलग दान-व्यवस्था भी तुलनीय—कि० रा० द्वितीय, 72।
3. तुलनीय एक मनोरंजक कथा के लिये ज० व०, द्वितीय कि किस प्रकार अलाउद्दीन खलजी माहक नामक एक स्त्री से प्रेम करता था। यह प्रेम अलाउद्दीन की पत्नी और सास से अधिक समय तक गुप्त नहीं रखा जा सका। वह उससे इतना प्रेम करता था कि किसी भी दशा में वह उसका त्याग नहीं कर सकता था। *संयोग से ऐसा हुआ कि एक बार जब प्रेमी-युगल साथ थे, अलाउद्दीन की सास*

पत्नी देवलरानी के प्रेम में अत्यधिक सुखी था। अमीर खुसरो हमें बताता है कि स्वयं राजकुमार के हस्ताक्षरयुक्त संस्मरण ही जिसमें उनके प्रेम और विवाह की सम्पूर्ण कथा है, उसके प्रसिद्ध काव्य 'देवलरानी खिज्रखां' का आधार है। यह काव्य राजकुमार की मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित किया गया था और इस ग्रंथ ने प्रेम-युगल के प्रेम और दुखद यातनाओं को अमर कर दिया। मुगल काल में प्रवेश करने से पहले हमें इस विषय में अधिक सूचना प्राप्त नहीं होती। इस काल में हमें शाही हरम के भीतरी जीवन का निकटतर दृश्य देखने को मिलता है। बाबर और गुलबदन के तथा अन्य पाश्चात्कालीन संस्मरण हमारे सम्मुख अनुराग और प्रेम की दृढ़ परम्परा वाले एक सुखी पारिवारिक जीवन का ऐसा दृश्य प्रस्तुत करते हैं, जिसने अनेक सहज विश्वासी यात्रियों को विलक्षण कथाओं और लोकापवादों पर विश्वास करने की ओर प्रवृत्त किया।[1]

जहाँ तक शाही हरम के संघटन का प्रश्न है : सत्तारूढ़ सुल्तान घनिष्ठ और व्यक्तिगत रूप से समग्र राजपरिवार का अधिपति होता था। राजपरिवार के सब सदस्य और रानियाँ भी उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य थीं।[2] किसी मामले के सम्बन्ध में शासक तक पहुँचने के लिए हरम के निवासी और राजपरिवार के सब सदस्य निर्धारित प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करते थे और निष्ठापूर्वक उसकी आज्ञाओं का सदैव पालन करते थे। शाही 'हरम' में रहने वालों को राजमहल के भीतर

और उसकी पुत्री आ पहुंचीं। एक भद्दी परिस्थिति पैदा हो गई। संभवतः दोनों आगंतुक स्त्रियों ने माहक को खूब पीटा, जिससे अलाउद्दीन को बलप्रयोग करके माहक की रक्षा करनी पड़ी। ऐसा करते समय उसने अपनी पत्नी, जो सत्तारूढ़ शासक सुल्तान जलालुद्दीन खलजी की पुत्री थी, पर आघात किया। इस पारिवारिक असंतोष के परिणामस्वरूप अलाउद्दीन दक्कन गया।

1. अधिक सुरक्षा और सुविधा की दृष्टि से जब गुलबदन को हुमायूं से विलग करके मिर्जा कामरान के संरक्षण में रखा गया उस समय अपने भाई के प्रति गुलबदन की भावनाओं के लिए तुलनीय गु०, 46।
2. एक अंग्रेज रानी-प्रेयसी की वैध स्थिति के लिये तुलनीय 'बुक आफ दि कोर्ट', पृष्ठ 65, किन्तु केवल ऐसे मामलों को छोड़कर जहां कानून द्वारा उसे मुक्त कर दिया गया है, सामान्यतः वह अपनी प्रजा के समकक्ष है, और राजा की प्रजा है, उसकी समकक्ष नहीं'। तुलनीय, पृष्ठ 80-81, कैसे बड़े होने पर राजा के पोतों की देखभाल और स्वीकृति 1718 तक एक विवादास्पद प्रश्न था, जबकि जार्ज प्रथम ने इसे न्यायाधीशों के मत के लिये प्रस्तुत किया। परिणामस्वरूप कुछ समय पश्चात् रायल मैरिज एक्ट निर्मित हुआ। गुलबदन में अनेक प्रार्थनापत्रों का उल्लेख तुलनीय।

दीवार से घिरे हुए और सुरक्षित आवास प्रदान किये गए थे । इस बात की सावधानी रखी जाती थी कि 'परदा' का समुचित पालन हो । उनकी देखरेख और सेवा का काम खुफिया स्त्रियों और हिजड़ों के एक वर्ग को सौंपा गया था और घरेलू कामकाज के लिए सैकड़ों सेवक-सेविकाएँ और गुलाम नियत थे ।[1] शाही 'हरम' की भीतरी देखभाल अमीर घराने की एक 'हाकिमा' या निर्देशिका द्वारा और बाहरी देखभाल 'ख्वाजा सराय' (मुख्य हिजड़ा), जिसका पद अत्यन्त विश्वास और उत्तरदायित्व का समझा जाता था, द्वारा की जाती थी ।[2] मुगल सम्राट् अकबर के 'हरम' के लिए स्त्री-निरीक्षकों और रक्षकों का एक नियमित विभाग था । इसके साथ ही एक भाण्डारिका ('अशराफ') की व्यवस्था भी थी, जिसके अधीन प्रदाय और लेखा का कार्य था । वह प्रतिवर्ष साल भर में हुए व्यय का सशोधित लेखा और आगामी वर्ष का अनुमानित व्यय प्रस्तुत करती थी । रात्रि में रक्षिकाएँ भवन का और उसके निवासियों की भीतरी सुरक्षा का भार ले लेती थीं; 'ख्वाजा सराय' अपने कर्मचारियों के साथ प्रवेशद्वार की रक्षा करता था और विश्वासी राजपूत रक्षक भवन का पहरा देते थे ।[3] मालवा के राज्य में हरम ने नियमित सेनाओं, कलाकार, व्यापारी-स्त्रियों और एक विशाल बाजार वाले एक छोटे-मोटे शासन का रूप धारण कर लिया; और इस हरम का एकमात्र पुरुष-शासक सम्राट् ही झगड़ों का निपटारा करता था और वेतन नियत करता था ।[4]

3. **शाही दास (बन्दागान-ए-खास)**—हम अगले खण्ड में दासों की स्थिति पर चर्चा करेंगे । फिर भी हमें ध्यान में रखना चाहिए कि दास रखना उस काल में, और अभी कुछ समय पहले तक एक सम्माननीय प्रथा थी और प्रत्येक अमीर और सम्माननीय व्यक्ति कुछ दास अवश्य रखते थे । शाही दास (या, 'बन्दागान-ए-खास') संख्या में काफी थे और इनमें भिन्न-भिन्न देशों के भी लोग थे ।

1. गु० 18 ।
2. तुलनीय इलि० डाउ०, तृतीय, 128, जहाँ इस पद का अनुवाद 'स्त्री विभाग की सचालिका' किया गया है । इस तथ्य को ध्यान में रखा जाय कि दिल्ली के प्रसिद्ध कोतवाल फ़खरुद्दीन की एक पुत्री सुल्तान मुईजुद्दीन कैकुबाद के हरम की निरीक्षिका थी; ख्वाजा सराय के लिये देखिये दे० रा०, 101 । अलाउद्दीन के हरम की सुरक्षा किस प्रकार की जाती थी इसके लिए व०, 274 तुलनीय ।
3. *आ० अ०, प्रथम, 40 : सादृश्य के लिए देखिए मेजर, 32, विजयनगर हरम व्यवस्था ।*
4. *कें० हि० इण्डि० तृतीय, 362 तुलनीय टाड, प्रथम, 358, राजपूत 'हरम' (या रावला) और उसकी व्यवस्था करने के लिए : आवश्यक कुशलता के लिए 'ऐसे काम की तुलना में राज्य का शासन एक खेलमात्र है, क्योंकि रावला के भीतर ही षडयंत्र रचे जाते है ।"*

ये सब सेवा-बन्धन और एक ही स्वामी के प्रति भक्ति से बँधे थे। उनके अपने कोई स्थानीय सम्बन्ध या हित न होने के कारण सुल्तान उनकी विश्वस्तता और निष्ठा पर सदैव ही अन्य राजकीय कर्मचारियों और अमीरों से कहीं अधिक विश्वास कर सकता था। एक स्वामी और राजा के रूप में सुल्तान को उनके ऊपर पूरा अधिकार था। वह अपनी इच्छानुसार उन्हें जान से मार सकता था, उन्हें किसी को सौंप सकता था या किसी अन्य तरीके से उनसे मुक्ति पा सकता था।[1] व्यवहार में सुल्तान और उसके दासों के बीच सम्बन्ध चाहे जैसे रहे हों, किन्तु असंतोषप्रद नहीं रहे, और शायद ही इन क्षतिपूर्ण अधिकारों को कार्यान्वित करने का अवसर आता था। दूसरी ओर, दासों का पालन-पोषण पुत्रों और विश्वासियों के समान होता था, जिससे जब कभी सुल्तान के पुत्र की योग्यता संशयपूर्ण होती या अन्य किसी प्रकार से वह राज्य का शासन चलाने के लिए अनुपयुक्त होता था, तब सुल्तान का दास, जिसने अभाग्य और अनुभव की शाला में संघर्ष किया था, अशान्त सागर से राज्य के जलयान को सफलतापूर्वक पार ले जाता था।[2] कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और बलबन शाही दासों के तीन श्रेष्ठ उदाहरण हैं, जो उन्नति करके सिंहासनासीन हुए।[3]

शाही दासों की संख्या बहुधा अत्यन्त विशाल होती थी। अलाउद्दीन खलजी के पास 50,000 दास थे। मुहम्मद तुग़लक के दासों की संख्या इतनी अधिक थी कि सुल्तान ने सप्ताह का एक दिन उनमें से कुछ को मुक्त करके उनका विवाह कर देने के लिए निश्चित कर लिया था।[4] फ़ीरोज़ तुग़लक दासों के प्रति अपनी चिंता के

1. तुलनीय एक उदाहरण, ब०, 273-74।
2. इस सम्बन्ध में गोर के सुल्तान मुहम्मद बिन साम की भावनाएँ तुलनीय—ता० फ० प्रथम, 110; उसने अपना सारा राज्य दासों को सौंप दिया, जो दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुए और पूरे दास वंश ने 60 वर्षों से अधिक समय तक शासन किया।
3. विवरण के लिए तुलनीय ता० मा० (द्वितीय), 95; रेवर्टी, 603-4 और 802।
4. अ०, 268-72 हैवेल के अनुसार मुस्लिम आक्रमण और जीवन की सामान्य असुरक्षा के कारण हिन्दू शिल्पियों के स्वदेशत्याग या उत्प्रवास के कारण शाही दासों को विभिन्न शिल्प कार्यों में लगाया गया (हिस्ट्री ऑफ आर्यन रूल, 321 के अनुसार)। इससे सहमत होने का मुझे कोई कारण नहीं दिखा। अलाउद्दीन के अन्तर्गत शिल्पियों की संख्या अनुमानतः 70 हज़ार थी, जिनमें से 7,000 राजगीर और प्रस्तर-शिल्पी थे जो अपने कार्य में इतने कुशल बताए जाते हैं कि वे अधिक-से-अधिक पन्द्रह दिनों में एक इमारत निर्मित कर देते थे (ता० फ०, प्रथम, 217 के अनुसार)। हिन्दुस्तान से हिन्दू शिल्पियों के इस आकस्मिक स्वदेश त्याग का कारण ढूंढ़ निकालना कठिन है, विशेषकर उस समय, जबकि उत्तर-पश्चिमी सीमा पर मंगोल आक्रामकों का सदैव भय बना रहता था।

लिए प्रसिद्ध था। उसने अमीरों को, भेंट के रूप में दास भेजने के लिए प्रोत्साहित किया, जिसके लिए उन्हें कोषागार से उसके बराबर छूट दी जाती थी। अलाउद्दीन के अन्तर्गत 50,000 दास थे, जबकि फ़ीरोज के समय उनकी संख्या 2 लाख हो गई। सुल्तान ने उनमें से कईयों को विभिन्न शहरों में बसा दिया और उनका वेतन निश्चित कर दिया। उसने कुछ को उपयोगी कलाओं और धार्मिक शिक्षा में नियुक्त कर दिया; फलतः उनमेंसे 12,000 शिल्पी और राजगीर थे; और लगभग 40,000 शाही सेवा में लग गए।[1] दासों ने भारत की मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि में भी योगदान किया।

ऐसी परिस्थिति में शाही दासों का राज्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। शक्ति और विशेषाधिकार के स्रोत शासक से उनका सम्पर्क अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक निकट रहता था, और वे जितना खतरे में रहते थे उतना ही राजा के सम्पर्क से लाभ भी प्राप्त कर सकते थे। सुल्ताना रज़िया के समय से ही दास अपने प्रभाव का परिचय देने लगे। फ़ीरोज तुग़लक के उत्तराधिकारी के समय तो उनका प्रभाव निर्णयात्मक हो गया।[2] उन्होंने बहुधा अमीर के पद तक उन्नति की जिसका उल्लेख अगले खण्ड में किया जायेगा।

4. **ज्योतिषी, दरबारी-कवि और संगीतज्ञ आदि**—प्राचीन हिन्दू राजाओं के दरबार में ज्योतिषियों की नियुक्ति और उन पर हिन्दू शासकों की श्रद्धालुता सर्वविदित है। मुस्लिम सुल्तान इस बात में उनसे बहुत भिन्न नहीं थे। जन्मपत्रियों का प्रयोग सर्वत्र होता था, शकुन विचार किया जाता था, स्वप्नों की व्याख्या की जाती थी, टोना-टोटका का प्रयोग किया जाता था; वास्तव में किसी कार्य को दैवी सिद्ध करने के लिए क़ुरान का भी प्रयोग कम नहीं होता था। ऐसी परिस्थिति में शाही जीवन का सूक्ष्मतम अंग भी दरबारी ज्योतिषियों और तंत्र तथा रहस्यमय विद्याओं के ज्ञाताओं द्वारा नियंत्रित किया जाता था। खगोल-विज्ञान का ज्ञाता हुमायूँ तो एक वेधशाला के निर्माण की योजना बना रहा था और इस तरह जयपुर नगर की नींव डालने वाले प्रसिद्ध विद्वान् राजा जयसिंह के कार्य के भविष्य का संकेत कर रहा था। ज्योतिष विज्ञान अभी भी हिन्दू या मुस्लिम समाज में उपेक्षित नहीं है।[3]

---

1. देखिए ऊपरी पाद-टिप्पणी।
2. तुलनीय रेवर्टी, 635।
3. रेवर्टी, 623 और ब०, 142 में एक पूर्ववर्ती संदर्भ भी तुलनीय; तिमूर और बाबर के संस्मरणों में शकुन विचारने की कई एक मनोरंजक कथायें तुलनीय। टीपू सुल्तान की दैनंदिनी (इण्डिया आफिस संग्रह में), जिसमें उसके स्वप्नों और उनकी व्याख्या का वर्णन तुलनीय है। हुमायूँ के वृत्तांत विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासी विश्वासों की मनोरंजक कथाओं से भरे हैं।

दरबारी कवि और संगीतज्ञ भारत के प्रत्येक दरबार की देदीप्यमान धरोहर थे। कई सुल्तान फारसी कविता में रस लेने की क्षमता रखते थे और उनमें से कुछ तो अवसर आने पर आशु-कवित्व करने में भी समर्थ थे। चुनी हुई कविताएं गाने के लिए संगीतज्ञ भी उतने ही आवश्यक थे और सुल्तान इस मामले में केवल एक प्राचीन फारसी परम्परा का अनुसरण कर रहे थे।[1] दरबारी-कवि और संगीतज्ञ हिन्दू दरबारों के लिए भी इसी प्रकार आवश्यक थे। हम इस विषय पर आगे चर्चा करेंगे। इसी प्रकार प्रत्येक दरबार में अनेक विदूषक, हुनरबाज़, भाँड़ और मसखरे रहते थे।[2]

दरबारों में सदा पाये जाने वाले विलक्षण लोगों का वर्गीकरण करना कठिन है। उन्हें सुविधापूर्वक राजकीय कृपापात्र कहा जा सकता है। इस वर्ग की प्रकृति और संरचना प्रत्येक शासक के साथ परिवर्तित होती रहती थी; वे शासक की रुचि के अनुसार निम्न और अपरिष्कृत या कुलीन और परिष्कृत हो सकते थे। फिलहाल उनका प्रभाव सर्वोच्च था। सल्तनत के प्रारम्भिक काल में ये कृपापात्र बहुधा मुसलमानों में से चुने जाते थे, किन्तु समय बीतने के साथ ही, हिन्दू धीरे-धीरे शासकों का विश्वास प्राप्त करने लगे और अन्त में उन्होंने सुल्तानों का दृष्टिकोण ही परिवर्तित कर दिया।[3]

5. **दरबारी (नदीम)**—बहुत अंशों में सुल्तान के अत्यन्त महत्वपूर्ण और रोचक कर्मचारी उसके नदीम या दरबारी थे। यह परिष्कृत और सभ्य लोगों का एक ऐसा वर्ग था जिसके चिन्ह भारतीय कुलीन वर्ग के शिष्टाचारों और संस्कृति पर आज तक पाये जाते हैं। वास्तव में 'नदीम' नाम शासक के कृपापात्र साथियों ('यार-ए-शराब') के लिए लागू होता है किन्तु अन्य किसी बेहतर नाम की कमी के कारण इसके लिए 'दरबारी' शब्द प्रयुक्त किया जा सकता है। सुल्तान के विश्राम के समय उसकी उत्फुल्लता और आनन्द को अधिक रोचक बनाना ही उनका मुख्य कार्य था। उनमें से कुछ तो साथियों और सेवकों के रूप में प्रायः हर जगह सुल्तान के साथ रहते थे। नियमित रूप से राज्य में उन्हें कोई राजकीय पद प्राप्त नहीं थे, और जहां

---

1. तुलनीय फारसी परम्पराओं और वाद्ययंत्रों, जिनका प्रयोग हिन्दुस्तान में भी होता था, के लिए हुअर्ट, 145-6 बांसुरी, मेन्डोलिन, ओबो और हार्प के पूर्व वर्णन के लिये हसन निज़ामी तुलनीय। तुलनीय बार्थेमा, 109।
2. इ० ख़ु० में एक पूरा अध्याय तुलनीय; साथ ही तारीख़-ए-मासूमी, 64 भी।
3. उनके प्रभाव के एक उदाहरण के लिए तुलनीय रेवर्टी, 635. देवलरानी को कैद करने के लिए अलाउद्दीन के एक हिन्दू कृपापात्र पंचम के प्रयत्न तुलनीय, दे० रा०, 87; सैयदों के अंतर्गत खत्रियों (क्षत्रियों से भिन्न एक जाति) का प्रभाव तुलनीय ता० मु० शा०, 556-7।

तक अभिलेखों में स्पष्ट होता है, जब तक उन्हें अपना मत प्रकट करने के लिए नहीं कहा जाता था या जब तक उन्हें परामर्श के लिए विशेष रूप से दरबारियों के साथ नहीं संलग्न किया जाता था, वे राजकीय मामलों में सुल्तान से कुछ नहीं कह सकते थे। फिर भी, सिंहासन से उनकी निकटता और शासक की मनोवृत्तियों तथा व्यक्तिगत निर्बलताओं का अध्ययन करने में विशेष उपयुक्त अवसर मिलने और अपने कौशल और चातुर्य के बल पर शासक की इच्छा को प्रभावित कर सकने के कारण राज्य में उन्हें काफी प्रभाव और शक्ति प्राप्त थी।[1]

नदीम की बौद्धिक योग्यता चहुंमुखी रहती थी। उसमें विभिन्न गुणों का सम्मिश्रण रहता था : वह वस्त्र-सज्जा और व्यक्तिगत अलंकरण की सूक्ष्मता से इतना परिचित रहता था कि इसे लगभग एक ललित कला का रूप प्राप्त हो गया; उसका वार्तालाप चुनिंदा भाषा में होता था, और उसकी बौद्धिक संस्कृति की परिधि में वृत्तांतों, कुरान, काव्य, लोक गाथाओं के अध्ययन के साथ-साथ आध्यात्मवाद और इस्लाम के गूढ़ और रहस्यवादी तत्वों का भी समावेश रहता था। इसके अतिरिक्त शतरंज और चौपड़ का कुशल खिलाड़ी होने के साथ ही वह वाद्यवादन में भी कुछ निपुणता रखता था। किन्तु इन सब गुणों के अतिरिक्त उसका महान् कौशल सुल्तान की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं, और उसकी विचित्रताओं तथा सनकी मनोवृत्तियों का सावधानी से अध्ययन करते हुए सुल्तान को प्रफुल्लित बनाये रखने में निहित था।[2] राजपूत भाट परिष्कृत और लालित्य मे सुल्तान के 'नदीमों' के स्तर तक नहीं उठ पाते, यद्यपि अपने स्वामी के प्रति अधिक लगाव और अवसर पड़ने पर उनके अधिक साहस के बारे मे कोई सन्देह नहीं है। कालान्तर मे राज दरबारियों का इतना पतन हुआ कि उन्होंने अधम और नीच चाटुकारों का रूप धारण कर लिया, यहाँ तक कि वे अपने स्वामियों की दृष्टि से भी गिर गये।[3] आजकल 'नदीम' (या मुसाहिब) शब्द का सम्बन्ध चाटुकारिता और पौरुषहीनता से जोड़ा जाता है।

---

1. आ० अ०, प्रथम, 5, में अबुलफज़्ल का मूल्यांकन तुलनीय; कैसे भलमनसाहित के मार्ग से डिगने पर वे सारे संसार को विनाश के मुख में डाल सकते थे। देखिये किस प्रकार सुल्तान जलालुद्दीन खलजी अपने भतीजे और दरबारी अहमद चप और कई बार बरनी के साथ राज्य की नीति के सम्बन्ध में चर्चा किया करता था; साथ ही अलाउद्दीन खलजी काजी मुगीसुद्दीन की स्पष्ट सलाह भी तुलनीय। इसी प्रकार सुल्तान मुहम्मद तुगलक को बरनी की सलाह तुलनीय, ब० 395।
2. इस मुद्दे पर मुहम्मद अवफी की टीका तुलनीय, ज० हि०, 178।
3. कुछ वर्गों के प्रति अकबर की घृणा तुलनीय, अ० ना०, प्रथम, 319।

6. **घरेलू कर्मचारीगण**—अपने हरम, दासों तथा अन्य सेवकों और दरबारियों के अतिरिक्त सुल्तान अपनी रक्षा, मनोरंजन और सामान्यतः पारिवारिक सेवाओं के लिए कई झुंड के झुंड लोगों को नियुक्त करता था। वे अलग-अलग विभागों में अपने अधिकारियों और निरीक्षकों के अन्तर्गत संगठित रहते थे। इन अधिकारियों और निरीक्षकों का वेतन शासक की व्यक्तिगत निधि से दिया जाता था और ये सीधे शासक के प्रति उत्तरदायी रहते थे। शासक की आवश्यकताओं में सर्वप्रमुख स्थान उसकी व्यक्तिगत सुरक्षा का था।[1] इसका भार दो अलग अधिकारियों—'सर जांदार' और 'सर सिलहदार' को सौंपा जाता था। इनमें 'सर जांदार' का पद बड़ा होता था। 'सर जांदार' राजकीय अंगरक्षकों का नायक होता था। वह राज्य का प्रसिद्ध अमीर होता था और उसे ऊँचा वेतन दिया जाता था।[2] वह शाही दासों में से चुने गए अंगरक्षकों को आदेश देता और उन पर नियंत्रण रखता था। ये दास अपनी भक्ति और कुशलता के लिए प्रसिद्ध थे।[3] 'सर जांदार' शासक की सुरक्षा और बचाव के लिए उत्तरदायी था और उसे अपने कर्त्तव्यपालन के लिए कुछेक अविलम्बित अधिकार भी थे।[4] दूसरा अधिकारी 'सर-सिलहदार' शाही कवच-वाहकों का प्रमुख था। शाही तलवार उसके पास रहती थी।[5] सामान्यतः उसके कार्य प्रदर्शन-सम्बन्धी रहते थे जो ससानी शासकों के धनुर्धारियों के कार्यों से भिन्न नहीं थे।[6]

घरेलू कामकाज के उत्तरदायी अन्य कर्मचारियों में 'सर आबदार' (मुगलों के 'आफतावची' का पूर्वज) सुल्तान के स्नान और वस्त्र-सज्जा की व्यवस्था की देख-भाल करता था और जब सुल्तान बाहर जाता था तो वह अपने जलपात्र (करौती)

1. लोगों के 'दुर्गुण, मोह और लोभ' और शासक की सुरक्षा के लिए पूर्ण सावधानी की आवश्यकता के सम्बन्ध में बलबन की टिप्पणी तुलनीय।
2. तुलनीय रेवर्टी, 730। मलिक सैफुद्दीन को निर्वाह-भत्ते के लिए 3 लाख जीतल मिलते थे।
3. फ० ज०, 71 का कथन तुलनीय, कैसे युद्ध के दिन सम्पूर्ण सैनिकों में से शाही दासों ने सारी सेना के समक्ष बलिदान और साहस का उदाहरण रखा और बिना हिचक के वे स्वयं को वेगवती नदियों और प्रज्वलित अग्नि में झोंक देने के लिए तैयार थे।
4. 'सर जांदार' का रक्तपात और उत्पीड़न से कितना सम्बन्ध था इसके लिए तुलनीय रेवर्टी, 730।
5. तुलनीय इ० खु०, तृतीय, 141।
6. प्राचीन ससानी शासकों के धनुर्धारी की स्थिति के लिये, जिसे शासक के बिलकुल पीछे खड़े होने का विशेषाधिकार प्राप्त था, तुलनीय रालिन्सन, फाइव, आदि, तृतीय, 209।

के साथ सुल्तान का अनुसरण करता था ;[1] 'खरीतादार' शाही लेखन-सामग्री की और 'तहवीलदार' बटुए[2] की देखभाल करता था; 'चाशनीगीर' (मुगलों के 'बकावल' का पूर्वज) रसोईघर की देखभाल करता था, और वह सुल्तान को स्वयं भोजन परोसता और बचे भोजन को लेकर रसोईघर वापस आता था,[3] 'सर जामदार' के अन्तर्गत शाही वस्त्र-भण्डार रहता था और वह शासक की वस्त्र-सज्जा का उत्तरदायी था।[4] 'तश्तदार' सुल्तान के लिये सुराही और हाथ धोने का पात्र लेकर और 'साकी-ए-खास' मदिरा तथा अन्य पेय लेकर उपस्थित रहता था; 'मशालदार' राजमहल की प्रकाश-व्यवस्था, दीपकों, मोमबत्तियों दीवटों और फानूसों आदि की देखरेख का उत्तरदायी था।[5] पारिवारिक कार्य की प्रत्येक सूक्ष्म बात की देखभाल के लिये नियुक्त कर्मचारियों की संख्या बहुत है, फिर भी उपर्युक्त विवरण साधारण अनुमान लगाने के लिये पर्याप्त है।[6] इन सब अधिकारियों के पास सहायतार्थ मातहतों और सेवकों की एक निश्चित संख्या रहती थी।

शाही मनोरंजन की देखभाल करने वाले अधिकारियों की गणना करते समय, मैं यहाँ शाही अश्व और गजशालाओं तथा नौकाओं की देखभाल करने वाले अधिकारियों तक ही अपने को सीमित रखूँगा। मनोरंजनों का विवरण आगे दिया जाएगा। अश्वशाला 'अमीर-ए-अखूर' या 'अखूर-बक' (या सुबोध फारसी में, 'अमीर-ए-अस्तबा-ए-शाही', अश्वशालाधिपति) नामक प्रमुख अमीर के अन्तर्गत और गजशाला 'शहना-ए-पील' (शाही गजाधीक्षक) के अन्तर्गत रहती थी। 'शहना-ए-पील' का वेतन मुहम्मद तुगलक के अन्तर्गत 'ईराक जैसे वृहत् प्रान्त की आय' के तुल्य था।[7] पशुशालाओं में निहित पशुओं की संख्या का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि शेरशाह ने राज्य में शाही डाक कार्य के लिये 3,400 घोड़े रखे और वह औसतन लग-

1. तुलनीय ब० (पाण्डु०), 15, तुलनीय जौहर द्वारा अपने कार्यों का वर्णन, जैसे त० वा०, 130।
2. तुलनीय, कि० रा०, द्वितीय, 63।
3. शाही रसोईघर के मुगल नियंत्रक के लिये तुलनीय, बेवरिज, द्वितीय, 5-11; चाशनीगीर के कार्यों का वर्णन कि० रा०, द्वितीय, 63 तुलनीय।
4. तुलनीय वही, 82।
5. इन तीन कर्मचारियों के लिये तुलनीय रेवर्टी, 745।
6. तुलनीय अ०, 271-72, 338; ब० 537; और कि० स० 145, अन्य कर्मचारियों के लिये : 'इत्रदार' (सुगंधित पदार्थ रखने वाला), 'छत्रदार' (राजछत्र रखने वाला), 'शमादार' (दीपक रखने वाला), और 'परदादार' (शाही चंदोवा या परदा रखने वाला)।
7. तुलनीय म०, 67; रेवर्टी, 757, 'शहना-ए-पील' के वेतन के लिये, नोनिमेज इत्यादि, 202।

भग 5,000 हाथी रखता था।[1] जल-विहार और नदी में सेनाओं के आवागमन की आवश्यकतानुसार व्यवस्था के लिये 'शहना-ए-बह्र-ओ कश्ती' (नदियों और शाही नौकाओं का अधीक्षक) पदनाम का एक अलग अधिकारी होता था।[2]

7. कारखाने—इन कर्मचारियों और उनसे सम्बन्धित विभागों के लिये आवश्यक सामग्री का प्रदाय शाही भण्डारों या कारखानों द्वारा किया जाता था। यह पद्धति भी संभवतः फारस से ली गई थी।[3] इन्हें और अन्य कर्मचारियों को सामग्रियां प्रदाय करने के अतिरिक्त कारखानों में शाही ध्वज ('अलमखाना') के प्रदाय, शाही पुस्तकालय ('किताबखाना'), घण्टे-घड़ियालों और जल-यन्त्रों ('घड़ियालखाना'), जवाहरखाना और शाही चरागाह की देखरेख के लिये अलग-अलग उप-विभागों की व्यवस्था थी। ये कारखाने शाही अश्वशालाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे और शाही भवनों की देखरेख भी इनके अन्तर्गत थी, जिसके लिये उनके पास राजगीरों और भवन-शिल्पियों की एक समूची सेना जैसी थी। इसके अतिरिक्त वे महलों और अन्य शाही इमारतों के लिये नौकर और घरेलू सेवकों की प्रदाय-व्यवस्था भी करते थे। फिर भी यह सब परिगणन पूरा नहीं कहा जा सकता। ये कारखाने एक प्रतिष्ठित अमीर के अन्तर्गत रहते थे, जिसकी सहायता के लिये अन्य मातहत अधीक्षक (मुतसर्रिफर) होते थे, जो स्वयं भी उच्च श्रेणी के अमीर होते थे और सीधे सुल्तान द्वारा नियुक्त किये जाते थे। उन सबको ऊँचा वेतन दिया जाता था और एक भण्डार का कार्यभार सुल्तान जैसे किसी बड़े शहर के कोतवाल के पद की आय के समान आय देने वाला समझा जाता था।[4]

8. शाही भूमि (या मिल्क)—इन सब निर्माणशालाओं के व्यय के लिये

---

1. ता० फ़ी० शा०, 74 का वर्णन तुलनीय।
2. तुलनीय रेवर्टी, 757। राधाकुमुद मुकर्जी का विचार है कि प्रारम्भिक मुस्लिम काल में इस अधिकारी के कार्य समुद्री कार्यकलाप से सम्बन्धित हैं। मुझे इस अधिकारी में ऐसी कोई विशिष्टता नहीं दिखी जिससे उसका सम्बन्ध इस कला के सामुद्रिक कार्यकलाप से जोड़ा जा सके। वह शाही सेनाओं को नदी पार ले जाने में सहायता करता था और पुलों की देखभाल करता था। ये दोनों ही कार्य भूमि के सैनिक क्रियाकलापों से निम्न थे और किसी सामुद्रिक महत्व से इन्हें सम्बद्ध करना कठिन जान पड़ता है। देखिये 'ए हिस्ट्री आफ इण्डियन शिपिंग एण्ड मेरी टाइम एक्टिविटी', पृष्ठ 189, बरानी की मूल प्रति तुग़रिल के विरुद्ध नाविक अभियान के बारे में कुछ नहीं कहती। उसमें केवल बजरों के द्वारा नदी पार करने का उल्लेख है।
3. प्राचीन फारस के लिये तुलनीय हुअर्ट, 96।
4. अ०, 271-272, 338-339।

सुल्तान के पास असीमित स्रोत थे। स्वर्ण और चांदी के कोषों के अतिरिक्त सुल्तान राज्य में सर्वोच्च भूमिपति था; वास्तव में वह अकेला ही ऐसा था कि जिसकी सम्पत्ति का विवादरहित कानूनी आधार था। वह सर्वाधिक उपजाऊ भूमि चुन सकता था और उनकी उत्पादन-क्षमता में वृद्धि करने के लिये राज्य के सारे साधन उपयोग में ला सकता था। उसकी निजी भूमि के प्रशासन के लिये अधिकारियों का एक अलग समूह था। हम अन्य स्थान पर इसकी चर्चा करेंगे।[1]

सुल्तान के निजी कर्मचारियों और उसके कार्यकलापों के बारे में मत निर्धारित करने के लिये आइए, हम देखें कि मसालिक उल-अबसार का मुहम्मद तुगलक के सम्बन्ध में क्या कथन है। लेखक कहता है, 'इस सुल्तान के खर्च से 1200 चिकित्सक; और 10,000 बाज पक्षी के शिक्षक, जो घोड़े पर चढ़कर पक्षियों को आखेट के लिये ले जाते हैं, नियुक्त है; 300 हाँका लगाने वाले सामने-सामने चलते हैं और शिकार पेश करते हैं; जब वह आखेट हेतु बाहर जाता है तब बाज पक्षी के आखेट में प्रयुक्त होने वाली सामग्री के 3,000 विक्रेता उसके साथ जाते हैं; 500 सहभोजी उसके साथ भोजन करते हैं। विशेषतः संगीत अध्यापन में रत 1,000 दास-संगीतज्ञों के अतिरिक्त उसने 1,200 संगीतज्ञ और तीन भाषाओं, अरबी, फारसी और भारतीय (अर्थात् प्राकृत) के कवियों को आश्रय दिया है। एक भोज का आयोजन किया जाता है जिसमें खान, मलिक, अमीर, सिपहसालार और अन्य अधिकारी—लगभग 20,000 लोग उपस्थित रहते हैं। अपने निजी भोजन अर्थात् दिन के भोजन और रात के भोजन के समय सुल्तान लगभग 200 विद्वान विधिवेत्ताओं से भेंट करता है जो उसके साथ भोजन करते है और गम्भीर विषयों पर वार्तालाप करते हैं।' शाही रसोइए की सूचना पर आधारित एक कथन के अनुसार शाही रसोई के लिये रोज 2,500 बैलों 2,000 भेड़ों और अन्य पशु-पक्षियों का वध किया जाता था।[2]

(ख) सुल्तान एक सार्वजनिक व्यक्ति के रूप में

शासक का गौरव सदैव ही उसके लिए सर्वप्रमुख बात रही है। तथाकथित दैवी उत्पत्ति और सल्तनत की नवीन अवधारणा के द्वारा शाही गौरव के दावे में

---

1. सिंचाई की नहरों और नया सिंचाई कर (हासिल-ए शर्ब) लगाने में फीरोज तुगलक की आतुरता के लिये तुलनीय अ०, 130। सुल्तान ने राज्य की कुछ बंजर भूमि को भी बसाया था। इसका कर और राजस्व भी राजकीय कोष में जाता था। इस धन का कुछ अंश दान-कार्य में खर्च किया जाता था। बढ़ती उत्पाद के लिये, खण्ड चतुर्थ।
2. तुलनीय इलि० डाउ०, तृतीय, 578-580; और नोतिसेज इत्यादि, जो मलिक का रूपान्तर 'le roi' करती है।

अपरिमित वृद्धि की जाती थी। दिल्ली के सुल्तानों ने निस्संकोच भाव से फारस के अपने उन ससानी पूर्वजों का अनुसरण किया, जिन्हें विलास और आडम्बर से असाधारण प्रेम था।[1] एक विदेश में यह सब आवश्यक था क्योंकि वहाँ राज्य के लिए इसके अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं था कि वह अपने आडम्बर और शक्ति के भव्य प्रदर्शन और सुल्तान के तेजस्वी वातावरण के द्वारा लोगों के हृदयों में भय और आतंक का संचार करे। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब सुल्तान की उपस्थिति या उसके प्रकट होने से शत्रुओं के हृदयों में भय का संचार हो उठता था। वास्तव में, यह दृढ़तापूर्वक विश्वास किया जाता था कि यदि शासक के व्यक्तित्व ने लोगों में भय और आतंक का संचार नहीं किया तो वह शासन करने की अपेक्षा एक तुमान (10,000 सैनिक) का नेतृत्व करने या अधिक-से-अधिक एक छोटे से प्रान्त का शासन करने के योग्य था।[2] इन तथ्यों को देखते हुए सुल्तान के लिए कई एक

1. 'परफेक्ट प्रिंस' में 'राजा के गौरव' के सम्बन्ध में आक्लीव्ह की सलाह के लिए तुलनीय, स्पे०, तृतीय, 499: हुअर्ट, 144-47 में थियोफिलेक्टस द्वारा होरमुज चतुर्थ का वर्णन तुलनीय। 'उसका मुकुट सोने का था और रत्नों से जुड़ा हुआ था। उसमें जड़े माणिक्य चकाचौंध पैदा करते थे और उसके चारों ओर मोतियों की पंक्तियों का जगमग प्रकाश पन्नों के माधुर्य से इस तरह एकाकार हो जाता था कि उसे देखकर नेत्र अनिर्वचनीय आश्चर्य से जैसे जड़ हो जाते थे।' टेसिफ़न के राजमहल में भी 'कटावों से अलंकृत सामने के भाग में कोई खिड़कियाँ नहीं हैं, छत में छः इंच व्यास के एक सौ पचास छिद्र हैं जिनसे गुप्त रूप से प्रकाश छनकर भीतर पहुँचता था। राजगद्दी विशाल कमरे के अन्त में थी और जब परदा पीछे खींचा जाता था तब मस्तक पर रत्नजटित मुकुट धारण किए—जो भार कम करने के उद्देश्य से छत से लटकती हुई एक सोने की कड़ी से जुड़ा रहता था—भव्य वेष में सिंहासनासीन राजा ऐसा सुन्दर दृश्य उपस्थित करता था कि जो आदमी उसे प्रथम बार देखता वह उसके चरणों में आप ही आप गिर जाता।'
2. तुलनीय ब०, 35, सुल्तान बलबन के सार्वजनिक दरबार के लिए और कैसे कुछ राजदूत और अधीनस्थ हिन्दू राजा भेंट प्रदान करने के लिए पहली बार राजसिंहासन के सम्मुख प्रस्तुत किए जाने पर सुल्तान की उपस्थिति में काँपते और अचेत हो जाते थे—तुलनीय, वहीं, 33, इन दृश्यों के समाचार राज्य के असंतुष्ट वर्ग पर लाभप्रद नैतिक प्रभाव डालते थे। इब्नबतूता, कि० रा०, द्वितीय, 70 भी तुलनीय, किस प्रकार अधिकांश अफगान विद्रोही उस समय भय और घबराहट से पलायन कर गये जब मुहम्मद तुगलक कुछ सैनिकों के साथ अकस्मात् उनके सम्मुख प्रकट हुआ। नानक के विचारों के लिए मेकालिफ, प्रथम, 20 भी तुलनीय। उनके अनुसार शासक वह है जो बरछों द्वारा रक्षित रहता है, जिसके

विशेषाधिकार सुरक्षित थे, जैसे, शाही पदवियां, खुतबा और सिक्के, और राज्य के अन्य सब लोगों से उसे भिन्न जताने के लिए कुछ अन्य चिन्ह। दरबार में या जनता को दर्शन देते समय या सेना का नेतृत्व करते समय या आखेट के लिए जाते समय इन अवसरों को छोड़कर वह जनता के सम्मुख शायद ही कभी निकलता था। उपर्युक्त अवसरों पर निकलते समय उसके साथ एक विशाल जुलूस रहता था और वह वैभव तथा प्रताप से आवेष्टित रहता था।

1. **पदवियां**—शासक के पूर्ण और विवादहीन अधिकारों को प्रकट करने वाली पदवी 'सुल्तान' की थी। सैयदों ने, जिन्होंने तिमूर के आक्रमण के पश्चात् सत्ता स्थापित की थी, 'रैयत-ए-आला' और 'मसनद-ए-आली'[1] के विरुद्ध धारण किए। जैसे ही भारत के विभिन्न अफगान कबीलों ने शेरशाह का नेतृत्व स्वीकार किया उसने 'हजरत-ए-आला' की पदवी धारण की, किन्तु जब उसे यह मालूम हो गया कि वह पर्याप्त शक्ति-सम्पन्न हो गया है, तब यह प्रदर्शित करने के लिए कि उसने सब प्रभुत्वाधिकार धारण कर लिए है, उसने 'सुल्तान' की पदवी धारण कर ली।[2] शाही पदवी के अतिरिक्त शासक कुछ अन्य पदवियां भी धारण करता था, जो उसके मुस्लिम समुदाय के धार्मिक नेतृत्व को प्रकट करती थी। इनका उल्लेख पहले ही कर दिया गया है। जब लोग उसके साथ वार्तालाप करते थे तो वे उसे 'खुदावंद-ए-आलम' (जगत का स्वामी) कहकर सम्बोधित करते थे और कुछ कहने से पहले उसके चिरजीवी होने या राज्य की सुरक्षा के लिए एक संक्षिप्त प्रार्थना कहा करते थे।[3]

2. **खुतबा और सिक्के**—किसी सुल्तान के सिंहासनारोहण की सार्वजनिक घोषणा के लिए उसके नाम का खुतबा पढ़ा जाता था और सुल्तान के नामांकन युक्त सिक्के भी चालू किए जाते थे। सामान्यतः ये क्रमशः 'खुतबा' और 'सिक्का' सम्बन्धी समारोह कहे जाते थे।[4]

लिए बैन्ड बजाए जाते है, जो सिंहासन पर बैठता है और लोग जिसका अभिवादन करते है। मदीना से बगदाद को राजधानी स्थानांतरित होने के साथ ही खलीफा के निकट ही जल्लाद खड़ा रखने की प्रथा के प्रारम्भ के लिए तुलनीय अर्नाल्ड, 28।

1. मु० तं०, 285।
2. ता० शे० शा०, 34।
3. देखिए कि० रा०, द्वितीय, 9।
4. तुलनीय ई० थामस, एक मनोरंजक उदाहरण देखिए वही, 190, जिसमें सुल्तान गयासुद्दीन ने तुरन्त उपयोग के लिए उपयुक्त ठप्पा न होने के कारण एक पुराने उल्टे ठप्पे का प्रयोग किया। जिससे शासक की मुद्रा-सम्बन्धी घोषणा की उच्च महत्ता प्रकट होती है। एक विजय की मुद्रा-घोषणा के लिए तुलनीय वही, 73।

किसी महत्वपूर्ण विजय की स्मृति स्वरूप सिक्कों द्वारा भी विजय की घोषणा की जाती थी। दोनों का प्रयोग केवल शासक ही कर सकता था। दिल्ली से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने वाले छोटे राजवंशों ने इसी परम्परा का पालन किया।[1]

3. शाही चिन्ह

(क) मुकुट और सिंहासन—दिल्ली के सुल्तानों का मुकुट फारसी और गज़नवी शासकों से भिन्न था, क्योंकि वह एक शिरस्त्राण के रूप में भी धारण किया जाता था, केवल अलंकरण के लिए नहीं। वह जवाहरातों से जड़ा हुआ, आकार में गोल किन्तु ढीला और मस्तक के आगे निकला हुआ होता था।[2] युवराज हुमायूं ने किरीट के स्वरूप और आकार में कुछ सुधार किए; उसने संशोधित आकृतियों के नमूने तैयार करके अपने पिता मुगल सम्राट् बाबर को भेंट किए।[3] इसके बारे में विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है।

सिंहासन लकड़ी का बना होता था और उसे सोने से मढ़ दिया जाता था। उस का आकार वर्गाकार होता था और वह चार पायों पर आधारित रहता था।[4] परम्परागत हिन्दू सिंहासन ऊँचाई में 9 खण्ड का होता था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तानों ने इस विचार को प्रोत्साहन नहीं दिया। सिंहासन की भव्यता में वृद्धि करने के लिए अतिरिक्त खण्डों के बजाय सुल्तान उसके आसपास बहुमूल्य चँदोवे बनवाते थे, जिनकी चर्चा बाद में की जाएगी।

(ख) छत्र और दूरबाश—दूसरा महत्व शाही छत्री (छत्र) और राजदण्ड (दूरबाश) का था। ये भी राजशक्ति के चिह्न माने जाते थे।[5] छत्र का रंग और आकार शासक की रुचि के अनुरूप रहता था।[6] मुहम्मद तुग़लक अब्बासिद शासकों के अनुसरण में काले छत्र का प्रयोग करता था। छत्र पर बहुधा सोने का विशाल 'हुमा'

1. इन 'खुतबा और सिक्कों के स्वामियों,' के लिए तुलनीय ता० शे० शा० 3, वेन्बेरी, 53 भी तुलनीय।
2. कि० स०, 142।
3. तुलनीय अ० ना०, प्रथम, 260-1।
4. तुलनीय कि० स०, 143 हिन्दू सिंहासन, प० (हिन्दी), 623।
5. उदाहरण के लिये, रेवर्टी, 607।
6. जलालुद्दीन खलजी सार्वजनिक भेंट के लिये लाल छत्रों का प्रयोग करता था, किन्तु अन्य अवसरों पर इस 'रोष के प्रतीक' को त्यागकर श्वेत छत्रों का प्रयोग करता था (दे० ना०, 67, कु० कु०, 883 : ता० फ०, प्रथम, 154 के अनुसार)। इसके पूर्व सुल्तान मुईज़ुद्दीन कैकुबाद विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रंगों

(गिद्ध), 'फारसी राजाओं का रक्षक' अंकित किया जाता था और एक शुभ शकुन के रूप में शासक के ऊपर उसके पंख छाये रहते थे।[1]

सुल्तान के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति अधिकार के रूप में छत्र का प्रयोग नहीं कर सकता था, जब तक कि उसे सत्तारूढ़ शासक द्वारा इसका अधिकार प्रदान न किया गया हो। ये विशेषाधिकार ऐसे कुछ ही लोगों तक सीमित थे जो सामान्यतः राजवंश के और बहुधा सिंहासन के उत्तराधिकारी होते थे।[2] यहा तक कि ऐसे मामलों

के छत्रों का प्रयोग करता था—काले, लाल, श्वेत, हरे और गुलाबी। उसके छत्र में मोतियों की झालर भी लगी रहती थी (कि० स०, 20, 57 के अनुसार)।

इस सम्बन्ध में मैं यह भी उल्लेख कर दू कि रेवर्टी द्वारा किया गया 'छत्र' का अनुवाद केनॉपी त्रुटिपूर्ण है। मूल शब्द 'छत्र' अन्य शब्दों के साथ तबकात-ए-नासिरी (पाण्डु०) में अनेक जगह आता है और इसका रूपान्तर छत्री (पैरासल) के सिवा शायद ही कुछ हो सकता है। केनॉपी (Canopy) शब्द सायाबान के अधिक निकट है। जैसा कि रालिन्सन का कथन है, ऐसा प्रतीत होता है कि छत्री (पैरासल), जो सदैव ही पूर्व में गौरव का एक प्रतीक रही है, असीरिया के समान फारस में भी कानून या परम्परा के द्वारा केवल शासक तक सीमित रही है (फाइव, इ० इ०, तृतीय, 206)। हिन्दुओं में 'चंवरी और छतरी' के प्रयोग के बारे में 'लल्ला' में पृष्ठ 210 पर टेम्पल की टिप्पणी तुलनीय। अ० मु०, 76 भी तुलनीय।

1. 'हुमा' गिद्ध के लिये तुलनीय ख० फु०, 29, क०, 99; कि० स०, 57; ब्रि० म्यू० पाण्डु०, 1858, 102। 'हुमा' के वर्णन के लिये, हुअर्ट 8, 'हुमा' फारसी गिद्ध की जाति का होता है जिसे दाढ़ीवाला गिद्ध (लेमरजेयर) कहा जाता है।'
2. तुलनीय बलबन द्वारा राजकुमार मुहम्मद को उत्तराधिकारी नियुक्त किये जाने और उसे छत्र तथा दूरबाश का प्रयोग करने की अनुमति दिये जाने के लिए देखिये ब०, 428, बुघराखा को ये विशेषाधिकार अपने अग्रज की मृत्यु के पश्चात् प्राप्त हो जाते है। किन्तु जब स्वयं उसका पुत्र कैकुबाद दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ होता है, तब पिता को 'श्वेत छत्र' का प्रयोग करने का विशेषाधिकार रखने के लिये प्रार्थना पत्र देना पड़ा था। वह स्वीकार करता है कि ये विशेषाधिकार 'दिल्ली के सुल्तान के रूप में उसके पुत्र के है। कैकुबाद बुघराखा के आग्रह से सहमत हो गया जिससे उसे विलक्षण संतोष हुआ (कि० स० 146, ब० 92 के अनुसार)। चित्तौड़ के राजा को अलाउद्दीन खलजी के अधीनस्थ के रूप में 'नीले छत्र' का प्रयोग करते रहने की अनुमति के लिये तुलनीय ए० फ०, 33। राजपूताना में दिल्ली के सुल्तान के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त होने पर अलाउद्दीन खलजी द्वारा अपने बड़े पुत्र खिज्रखा को अनेक राजकीय चिन्ह—

में जहां शाही अनुमति से एक से अधिक छत्र का प्रयोग होता था, शासक के और अन्य लोगों के छत्रों में कुछ अंतर रखा जाता था जिससे दोनों छत्रों के बारे में भ्रम होने की सम्भावना नहीं रह जाती थी।[1]

भारतीय दूरवाश अपने फारसी पूर्वज की तरह काष्ठ दण्ड का होता था। इसके ऊपरी सिरे में शाखाएं निकली रहती थीं और यह सोने से मढ़ा रहता था।[2] इसका प्रयोग शासक से सर्वसाधारण को कुछ अन्तर पर रखने के लिए किया जाता था। मोरछल (या चवरी) हिन्दू प्रतीक था, जो मक्खियों को शासक से दूर भगाने के लिये प्रयुक्त किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुस्तान में दूरवाश को हिन्दू मोरछल के रूप में भी प्रयुक्त करने के लिये संशोधित किया गया था।[3]

(ग) **सायबान, नौबत और आलम**—राज्य के लाल चंदोवे (सायबान), तिहरे वाद्य वृंद (नौबत) और राजसी ध्वजों (आलम) का प्रयोग भी उसी प्रकार शासक के विशेषाधिकार थे। जब तक सुल्तान द्वारा विशिष्ट अनुग्रह के रूप में उनके प्रयोग की अनुमति किसी को न दी जाती, कोई उनका प्रयोग नहीं कर सकता था।[4]

छत्री, दूरवाश, हाथी और 'आलम' या राजकीय ध्वज भेंट में दिये जाने के लिये भी तुलनीय (वहीं)। किन्तु जब कुछ काल पश्चात् वही राजकुमार मलिक काफूर की चालबाजियों से अपमानित हुआ तब ये विशेषाधिकार बिना समारोह के उससे छीन लिये गये (दे० रा० 240 के अनुसार)।

1. अफीफ, अ०, 108 की टिप्पणी तुलनीय।
2. रेवर्टी के अनुसार दूरवाश एक प्रकार का भाला था जिसके ऊपरी सिरे में दो सींग और फिर शाखाएं रहती थीं। उसका काष्ठ-दण्ड जवाहरातों से जड़ा जाता था और सोने तथा चाँदी से अलंकृत किया जाता था। शासक के प्रस्थान के समय यह उसके आगे ले जाया जाता था, जिससे दूर से ही देखकर लोग जान सकें कि शासक आ रहा है और एक किनारे खड़े होकर वे शासक के लिये मार्ग रिक्त कर सकें (रेवर्टी, टिप्पणी, पृष्ठ 607)।
3. तुलनीय खुसरो, जो दूरवाश को एक मक्खी-भक्षक राक्षस कहता है (कि० स०, 60 के अनुसार)।
4. उदाहरणार्थ सुल्तान इल्तुतमिश द्वारा मलिक नासिरुद्दीन को, उसकी बंगाल के सूबेदार के रूप में नियुक्ति के अवसर पर लाल चंदोवा का प्रयोग करने की अनुमति (रेवर्टी, 630 के अनुसार), मलिक काफूर को दक्षिण में दिल्ली के सुल्तान के प्रतिनिधि के रूप में लाल चंदोवा का प्रयोग करने की अनुमति (व०, 334 के अनुसार), और सुल्तान फीरोजशाह तुग़लक द्वारा, बंगाल अभियान के कारण राजधानी में अनुपस्थिति के समय राजकुमार फतहखां को दिल्ली में अपने प्रतिनिधि के रूप में ऐसी ही अनुमति दिये जाने को अवलोकन कीजिये।

किन्तु जब बाद में अफगान अमीर सूर सुल्तानों के अनुग्रह का दुरुपयोग करने लगे तब यह अनुग्रह भी वापस ले लिया गया। उदाहरणार्थ, सलीमशाह ने यह नियम बना दिया कि लाल चंदोवा किसी भी स्थिति में किसी अमीर द्वारा प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए।[1]

इसी प्रकार नौवत (या शाही वाद्यवृन्द) एक प्राचीन फारसी और हिन्दू परम्परा थी। शाही वाद्यवृन्द में विभिन्न वाद्य-तुरही, नगाड़े, बाँसुरी, शहनाई इत्यादि रहते थे और ये राजमहल में निश्चित समयों पर बजाए जाते थे।[2] अपवादस्वरूप कभी-कभी सुल्तान अन्य लोगों को नगाड़े बजाने की छूट दे देता था, बशर्ते कि वे केवल तब ही बजाये जावें जबकि सम्बन्धित अनुग्रह प्राप्त व्यक्ति प्रदेश की यात्रा कर रहा हो। वह नगरों में उनका प्रयोग नहीं कर सकता था।[3]

'अलम' या शाही ध्वज शाही जुलूस में शासक के दोनों ओर ले जाए जाते थे। उनमें 'मछली और अर्द्ध चन्द्र' का राजचिन्ह अंकित रहता था।[4] ध्वजों के अतिरिक्त कुछ अन्य 'निशान' या राजचिन्ह भी शाही जुलूस के साथ ले जाए जाते थे।[5]

---

1. तुलनीय इलियट 404।
2. हुअर्ट, 145-6 में फारसी परम्परा तुलनीय, हिन्दू परम्परा के लिए प० (हिन्दी) तुलनीय जिसमें महल में अनवरत रूप से वाद्यवृन्द बजाए जाने का उल्लेख है। राजपूत लोग अपने भोजन के समय वाद्यवादन के विशेष शौकीन होते थे। उल्लिखित वाद्ययन्त्र है—नक्कारा, शहनाई, करनाई, तुरही और झाँझ (प०, उर्दू संस्करण 421 के अनुसार)।
3. कि० रा० प्रथम, 107 में बगदाद के नाकिब का मनोरंजक उदाहरण तुलनीय, जिसने भारत-भ्रमण किया और इस परम्परा से अनभिज्ञ होने के कारण दिल्ली में अपने नगाड़े बजवाए, जिसके कारण मुहम्मद तुगलक बहुत रुष्ट हुआ।
4. इस राजचिन्ह के लिए कि० स०, 63 तुलनीय मिनहाज सिराज, सुल्तान द्वारा लेखक को 'प्रातःकालीन मछली' (माही-ए-सुबही) भेंट स्वरूप दिए जाने का उल्लेख करता है (रेवर्टी, 1294 के अनुसार)। 'मसालिक-उल-अबसार' के लेखक को सूचना मिली थी कि राजचिन्ह 'एक स्वर्ण दानव' है (सूचनाएँ, 188 के अनुसार)। मैं इस बात में अमीर खुसरो के मत का समर्थन करता हूँ कि वह मछली और अर्द्धचन्द्र का राजचिन्ह था।
5. 'निशानों' के लिए देखिए फीरोजशाह तुगलक के दानवाकार नगाड़े, जो शाही जुलूस के दोनों ओर ले जाए जाते थे और दूर से ही दीखते थे (अ० 369-70 के अनुसार)। उसके पूर्ववर्ती शासक मुहम्मद तुगलक के 'निशानों' के लिए देखिए कि० रा०, द्वितीय, 82।

(घ) हाथी और सोने-चाँदी का संग्रह—सुल्तानों की इसमें दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता प्रकट होती है कि उन्होंने हाथियों का और सोने-चाँदी का संग्रह रखना अवैध घोषित कर दिया था, जब तक कि विशेष अनुग्रह के रूप में किसी को उसके सीमित प्रयोग की छूट न दी जाती थी। हाथी युद्धों में अत्यधिक उपयोगी होते थे और यद्यपि मुसलमानों ने सुशिक्षित घोड़ों से उनकी तुलनात्मक प्रभावहीनता सिद्ध कर दी थी, युद्ध के समय हाथियों की उपेक्षा नहीं की जाती थी। स्वर्ण और चाँदी की सर्वशक्तिमत्ता के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है (जिसे फ० ज०, 78 के अनुसार बरनी 'क़ाज़ी-उल्-हाजात' कहकर वर्णित करता है)। एक बार हाथियों की आवश्यक संख्या और स्वर्ण की उपयुक्त मात्रा प्राप्त कर लेने पर किसी भी व्यक्ति के लिए कुशल सैनिक इकट्ठा करने में और अपने को शासक मानने के लिए जनसाधारण को बाध्य करने और अन्त में सत्तारूढ़ सुल्तान पर हावी होने में कुछ समय नहीं लगता था।[1] हिन्दुओं और मुसलमानों में बहुधा हाथी और स्वर्ण शासक के लिए सुरक्षित रहते थे। बहुत समय पश्चात् दिल्ली के सुल्तानों में हाथियों की भेंट लोकप्रिय हो गई।[2] कालपी के समीप का भाग और उड़ीसा प्रान्त जंगली हाथियों के प्रिय स्थल थे और मानिकपुर (उत्तर प्रदेश) के निकटस्थ अनेक ग्रामों में उन्हें पकड़कर शाही गजशाला को भेंट करने का व्यवसाय किया जाता था।[3] बहुधा हाथी प्रतिदिन शासक के सम्मुख समारोह के साथ अभिवादन हेतु लाए जाते थे।[4]

---

1. बरनी के विचार तुलनीय, ब०, 83।
2. तुलनीय, वहीं, 92, किस प्रकार बंगाल में तुग़रिल के विद्रोह का दमन करने के पश्चात् बलबन ने हाथियों और स्वर्ण को छोड़कर विद्रोही की समस्त सम्पत्ति अपने पुत्र (जो उसके बाद बंगाल का गवर्नर हुआ) को भेंट स्वरूप प्रदान कर दी। सुल्तान अलाउद्दीन खलजी के पहले अमीर के स्तर के किसी भी व्यक्ति ने हाथी नहीं रखा था—इस तथ्य के लिए तुलनीय दे० रा०, 54। बहरामशाह के उपाधिकारी मलिक इख्तियारुद्दीन, जिसने अपने निवास स्थान के प्रवेश-द्वार पर एक हाथी रखा था (रेवर्टी, 650 के अनुसार), निषेध के अन्तर्गत नहीं आता और अन्य अमीरों ने इसके विरुद्ध रोष भी प्रकट किया था। फ़ीरोज़ तुग़लक ने अपने भाई गायब बरबक को छः हाथियों का विशेष उपहार दिया था। वह इस सम्मान से इतना आनन्दित हुआ कि जब कभी वह शाही भेंट के लिए बुलाया जाता था तो ये हाथी जुलूस में उसके सामने चलते थे (अ० 429 के अनुसार)। हिन्दू रिवाज के लिए तुलनीय ता० फ०, प्रथम, 107, ज० हि०, 340। श्वेत हाथी अप्राप्य सम्पत्ति मानी जाती थी। सादृश्य के लिए तुलनीय बारबोसा, द्वितीय, 115।
3. बाबर के अवलोकनों के लिए देखिए बा० ना०, 250।
4. तुलनीय बारबोसा, 109।

सम्पत्ति जमा करने की परम्परा भारत में अति प्राचीन है। प्रत्येक हिन्दू शासक अपने पूर्ववर्ती शासक की विरासत को बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखता था, अपने शासनकाल में खुद भी कोष एकत्र करता था और अपने उत्तराधिकारी के लिए यह वृद्धिगत सम्पत्ति छोड़ जाता था, जो अनाप-सनाप बढ़ती जाती थी और बहुधा किसी विदेशी आक्रामक द्वारा हड़प ली जाती थी।[1] ये राजकोष और मन्दिरों की सम्पत्ति उत्तर-पश्चिम के लोलुप और शक्तिशाली मुस्लिम आक्रामक के लिए अप्रतिहत तृष्णा का कारण बनते थे। मुस्लिम काल में यह परम्परा यथावत् रही और आश्चर्य है कि मुस्लिम सुल्तानों ने भी बड़ी सजगता से इसका पालन किया।[2] स्वर्ण एकत्र करने के कारण स्पष्ट थे। स्वर्ण राशि को असुरक्षा और खतरे के समय कहीं भी सुविधापूर्वक भेजा जा सकता था और अकाल और अन्य राष्ट्रीय संकटकाल में यह उपयोगी होता था। कोष की सहायता से शासक न केवल प्रजा पर अपनी सत्ता कायम रख सकता था बल्कि कठिनाई और विपत्ति के समय प्रजा और अपनी रक्षा भी कर सकता था।[3] केवल एक अभाग्यशाली शासक, जिसने खुद के लिए सम्पत्ति एकत्र नहीं की और अन्यों को सम्पत्ति एकत्र करने से मना नहीं किया, और अपने भतीजे को दक्षिण का कोष अधिकृत करने की अनुमति दे दी, इस सामान्य रिवाज और पुनीत प्राचीन परम्परा की उपेक्षा करके अपने प्राणों और सिंहासन दोनों से हाथ धो बैठा।

दरबार

1. **दरबार (या बार)**—दरबार लगाने का रिवाज फारस की शाही परम्पराओं में अति प्राचीन है और मुस्लिम सत्ता-स्थापन के तीस वर्षों के भीतर ही हिन्दुस्तान में भी इसने पैर जमा लिये।[4] दिल्ली के सुल्तान कई सार्वजनिक अवसरों पर दरबार लगाते थे, जैसे, किसी राजदूत या प्रतिष्ठित मेहमान का स्वागत करने के लिये, शासक के राज्याभिषेक की घोषणा करने के लिये या प्रतिवर्ष इस घटना का

---

1. कोष एकत्र करने की हिन्दू परम्परा के लिए तुलनीय यूले, द्वितीय, 330-40 बरथेमा, 156।
2. मुस्लिम खज़ानों के लिए बंगाल कोष का मनोरंजक वर्णन बा० ना०, 247 में पढ़िए, चम्पानेर कोष का त० बा०, 7 में; लोदियों के आगरा कोष का गु० 12 में।
3. सुल्तान मुईजुद्दीन कैकुबाद को बुग़राखां द्वारा एक संकटपूर्ण क्षण के विरुद्ध चेतावनी और सोना एकत्रित करना न भूलने के आग्रह के लिए तुलनीय ब०, 147।
4. तुलनीय ब०, 54।

स्मृतिदिवस मनाने के लिये, सुल्तान की जन्मतिथि मनाने के लिये, अपनी प्रजा से नज़र और निसार (शीघ्र ही इन्हें स्पष्ट किया जाएगा) स्वीकार करने के लिये और अन्य अनेक सामाजिक और धार्मिक त्यौहारों के समय। यह सूची कदापि पूरी नहीं है, क्योंकि सब प्रकार की घटनाओं, जैसे विजय, राजवंश के किसी सदस्य का विवाह या राजकुमार या राजकुमारी के जन्म के उत्सवों को मनाने के लिये असाधारण समारोह किए जाते थे। जब किसी विदेशी राजदूत का खुले दरबार में स्वागत किया जाता था, आगन्तुक को राज्य के गौरव और वैभव से प्रभावित करने के लिये कुछ भी उठा न रखा जाता था। सुल्तान या उसका मुख्य मन्त्री स्वयं स्वागत-समारोह के विवरणों का सूक्ष्म निरीक्षण करते थे। शासक या उसका कोई पुत्र, या कम से कम कोई प्रतिष्ठित अमीर आगन्तुक को स्वयं दरबार में पेश करता था, जहां उसका बड़े आडम्बर और समारोह से स्वागत होता था।[1] राज्याभिषेक-दरबार औपचारिक दरबारों से अधिक महत्त्वपूर्ण होते थे। कभी-कभी राज्याभिषेक के सार्वजनिक उत्सव के पहले न्यायाधिकारियों ('सद्र'), अमीरों, धर्मशास्त्रियों और सैयदों से एक गुप्त बैठक में बिना अधिक समारोह के नवीन सुल्तान के लिये 'बाइयात' (स्वामि-भक्ति की शपथ) ली जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति चुपचाप सुल्तान (जो सिंहासन पर आरूढ़ रहता था) के निकट जाता, उसका हाथ चूमता, सतारूढ़ होने के उपलक्ष में उसे बधाई देता और अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता। कुछ समय पश्चात् जनता के लिये और सार्वजनिक शपथ ग्रहण (बाइयात-ए-आम) के लिये पूर्ण समारोह और प्रदर्शन के साथ एक सार्वजनिक दरबार का आयोजन किया जाता था। अवसर के सम्मानार्थ दान के लिये उपयुक्त उपहार वितरित किये जाते थे, बन्दी मुक्त किये जाते थे और देश में हर्ष, आनन्द और प्रफुल्लता की सामान्य भावना व्याप्त हो जाती थी। तदनन्तर प्रतिवर्ष, राज्याभिषेक दिवस का स्मृति-उत्सव मनाने हेतु दरबार का आयोजन किया जाता था। दरबार के पहले या बाद में अंलकृत घोड़ों और हाथियों, बहुमूल्य और जगमगाती वेशभूषा वाले रक्षकों, अनुचरों और सुसज्जित तथा तड़कभड़क वाले वैभवशाली अमीरों तथा कर्मचारियों के साथ राजकीय जुलूस राजधानी में से गुज़रता था। दरबार में निष्ठा की शपथ की पुनरावृत्ति की जाती, सुल्तान को नज़रें (या 'खिदमती') पेश की जाती थी। बदले में सुल्तान उपयुक्त उपहार देता था और सदैव की तरह प्रचुर धन दान में दिया जाता था।[2] कुछ सामाजिक और धार्मिक उत्सवों को मनाने के लिये जो अन्य दरबार आयोजित किये जाते थे वे औप-

---

1. उदाहरणार्थ सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के दरबार में हलागू के दूत का आगमन तुलनीय; दरबार में हुमायूं द्वारा सीदी अली रायस के स्वागत के लिये तुलनीय वेम्ब्रे, 47; अ० ना०, प्रथम, 325 भी।
2. तुलनीय वर्णन के लिये रेवर्टी, 675।

चारिक और गम्भीर होने की अपेक्षा कहीं अधिक भव्य होते थे। इनमें अधिक तड़क-भड़क होने के कारण ये विशेष रूप से 'जश्न दरबार' कहे जाते हैं। इनका वर्णन अन्यत्र किया जाएगा।[1] विशेषकर 'नौरोज' या फारसी वसंतोत्सव बड़े उत्साह से मनाया जाता था। धार्मिक त्यौहार धार्मिक या आध्यात्मिक आचरण की अपेक्षा राज्य के ठाटबाट और वैभव के प्रदर्शन के लिये अधिक प्रसिद्ध थे। उदाहरणार्थ ईद के दिनों में सुल्तान और धर्माधिकारियों तथा न्यायाधिकारियों, प्रतिष्ठित विदेशी अभ्यागतों और अमीरों को प्रार्थना के लिये ईद-मस्जिद ले जाने हेतु भड़कीले रेशमी वस्त्रों और जगमगाते अलंकारों से सज्जित हाथियों का एक विशाल जुलूस निकाला जाता था। संध्या समय एक शाही भोज का आयोजन किया जाता था और सब प्रकार के मनोरंजनों और आनन्दोत्सवों की व्यवस्था की जाती थी। नजर और वाद्ययात के उपक्रमों के साथ जब दरबार भरता था तब दरबारी-कवि इस अवसर के लिये विशेष रूप से रचित प्रशस्तियां पढ़ते थे।[2] आगे मनोरंजनों का वर्णन करते समय इनके बारे में अधिक विस्तार से लिखा जायगा।

2. *दरबारी शिष्टाचार*—इन सारे दरबारी उत्सवों और अन्य सरकारी समारोहों में मान और व्यवहार के नियमों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। प्रत्येक का पद और स्थिति, उनकी वेषभूषा और दिखावा, शासक को भेंट देने के व्यवहार और समारोह के विभिन्न नियमों का वृहत विवरणों सहित पालन किया जाता था। नियमानुसार, अमीर और कुलीन लोग स्वयं उपस्थित होते थे, किन्तु यदि किसी अनिवार्य कारण से कोई अनुपस्थित रहता था तो उसका स्थान 'वकील' या उसका प्रतिनिधि ग्रहण करता था।[3] अमीरों को उनके दर्जे के अनुसार विशेष पंक्ति दी जाती थी, और उनके अनुचरों के लिये भी दरबार में स्थान की व्यवस्था की जाती थी। दरबार में भाग लेने वालों के लिए विशेष पोशाक की व्यवस्था थी। सुल्तान अपने शाही परिधान में और अमीर खिलअत या सम्माननीय पोशाक में, जिसमें जरी का एक अंगरखा, तारतारीटोपी, सफेद पेटी और सोने का कमरपट्टा शामिल थे, रहते थे। वे अमीर जिन्हें खिलअत से अनुगृहीत नहीं किया गया था, रोएंदार कोट और रोएंदार टोपी पहने रहते थे; प्रतिदिन प्रयुक्त किए जाने वाले अंगरखे और लबादे पहनने की मनाही थी और उनका उपयोग गम्भीर अनौचित्य माना जाता था।[4] दरबारी

---

1. अ०, 278।
2. तुलनीय कि० रा०, द्वितीय, 36-8, कि० स० 57; ब०, 43, ईद के शाही रिवाज के वर्णन के लिये; इस अवसर के लिये अमीर खुसरो की विशिष्ट प्रशस्ति के लिये तुलनीय कु० खु०, 244।
3. ता० मु० शा० 9।
4. अफीफ, अ० 270 के अवलोकन तुलनीय।

कर्मचारी, जिनका वर्णन हम शीघ्र ही करेंगे, अपनी सरकारी पोशाक और अन्य पदानुरूप चिन्हों के साथ कार्य करते थे। वज़ीर या अन्य कोई उत्तरदायी अधिकारी स्वयं इन सब नियमों के अनुपालन का निरीक्षण करता था। एक विशेष कार्याध्यक्ष (जिसे 'शहना-ए-बार' कहा जाता था) यह देखने के लिये नियुक्त किया जाता था कि व्यवहार-नियमों और मुलाकात के तौर-तरीकों की व्यवस्था का सजगता से पालन किया जा रहा है। परिणामस्वरूप आम-दरबार का दृश्य 'शुभ्र चांदनी रात में सितारों के मेले' के समान दिखता था।[1]

मुलाकातों की रस्म प्रारम्भ होने से पहले सुल्तान के सहायक अमीर, अधिकारी और अन्य लोग सुल्तान के सामने दोनों ओर पंक्तियों में सीने पर हाथ बांधकर खड़े हो जाते थे।[2] मुगलों के अन्तर्गत परिचय या मुलाकात कराने के मुख्य समारोह में 'कोर्निश' और 'तस्लीम' सम्मिलित रहते थे। उनकी परिभाषा देने की अपेक्षा उनका वर्णन करना अधिक सुविधाजनक होगा। शासक के सम्मुख मुलाकात के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले व्यक्ति को 'बरबक' नाम का अधिकारी 'दीवान-ए-आम' में लाता था। फिर 'बरबक' उसे शासक के सम्मुख कुछ दूरी पर एक स्थान तक ले जाता था। यहाँ वह व्यक्ति पहले अपना मस्तक जमीन की ओर झुकाता था फिर सिंहासन की ओर बढ़ते हुए बीच-बीच में तीन-तीन बार झुककर अभिवादन करता था। अभिवादन करने के लिए वह नक़ीब और उसके सेवकों की गम्भीर पुकारों का अनुसरण करता था। इन गंभीर पुकारों के सम्बन्ध में आगे लिखा जायेगा। इस प्रकार अभिवादन करने को 'शर्त-ए-जमीं-बोस' या 'भू-चुम्बन समारोह'[3] कहा जाता था। यदि प्रस्तुत किए जाने वाले को शासक के पास जाने का विशेषाधिकार प्राप्त रहता था (जो केवल अपवादस्वरूप था, क्योंकि यह विशेषाधिकार सिपहसालार के दर्जे के ऊपर वालों को ही दिया जाता था), तो दीवान-ए-आम में प्रवेश के पहले उसकी भरपूर तलाशी ली जाती थी।[4] शासक के समीप पहुंचकर वह

1. उदाहरणार्थ सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के अन्तर्गत हलागू के दूत का स्वागत तुलनीय, जबकि इतिहासकार की अलंकृत भाषा में सुल्तान 'चौथे स्वर्ग के सूर्य' के समान, उलुगखां बलबन 'प्रभायुक्त चन्द्रमा', मलिक 'घूमते हुए ग्रहों' और सुल्तान के तुर्की सेवक 'असंख्य तारों से' प्रतीत हो रहे थे—रेवर्टी, 858।
2. तुलनीय ता० से० शा०, 47; अ० ना०, प्रथम, 150।
3. तुलनीय किस प्रकार जाम सैफुद्दीन को फ़िरोज़ तुग़लक से मुलाकात करने के पूर्व अनुदेश लेने पड़े थे। अ०, 248; मुगलों के पहले के प्रमाण के लिए आ० अ० प्रथम, 156 तुलनीय।
4. तुलनीय कुस्तुन्तुनियां के सम्राट् को इब्नबतूता की भेंट के लिए तुलनीय कि० रा०, प्रथम, 213; तुलनीय नोतिसेज इ०, 182।

शासक को दण्डवत करता था; फिर आगन्तुक, चाहे वह किसी भी दर्जे या स्थिति का हो, सिर झुकाकर खड़ा रहता था और अतिशय दीनता और निष्ठा प्रकट करने वाली भाषा में वह सुल्तान को सम्बोधित करता था। तदनन्तर वह अपनी 'नजर' भेंट करता था। यदि वह असाधारण श्रेणी का हुआ तो सुल्तान सम्भवतः हाथ से उसका स्वागत करने का अनुग्रह करता था, या उससे गले भी मिल लेता था और उसकी भेंट को अंगुलियों से स्पर्श कर देता था जिससे उसके मस्तिष्क को बड़ी शान्ति मिलती थी।[1] सार्वजनिक रूप से यह निकटतम अनुभव था जो दिल्ली के महान् सुल्तानों के बारे में किसी को प्राप्त हो सकता था। सार्वजनिक व्यवहार के नियमानुसार सुल्तान के निकट दरबार के उच्चतम व्यक्तियों की भी पहुंच नहीं थी।[2] कुछ अवसरों पर तो स्थिति दोनों पक्षों के लिए उलझनपूर्ण और क्षोभोत्पादक हो जाती थी—ऐसे दो उदाहरण ऐतिहासिक महत्व के हैं। जब बुगराखा अपने पुत्र सुल्तान मुईजुद्दीन कैकुबाद के सम्मुख प्रस्तुत किया गया और जब वह मुलाकात सम्बन्धी शाही रस्मों का जो एक पिता की भावनाओं को ठेस पहुंचाने वाली थी, समुचित पालन करने में सलग्न था, सुल्तान के रक्षकों ने अन्त में मार्ग छोड़ दिया और सुल्तान ने बलपूर्वक अपने पिता को उठा लिया और सिंहासन पर अपने पार्श्व में बिठा लिया। इसी प्रकार जब एक बार हुमायूं के विद्रोही भाई कामरान मिर्जा को समर्पण के पश्चात् मुगल सम्राट् हुमायूं के सम्मुख प्रस्तुत किया गया और जब उसने दरबारी शिष्टाचार के सारे नियमों का पालन कर लिया तब हुमायूं धैर्य और गांभीर्य खो बैठा। जब वह आनन्द और भातृप्रेम से विह्वल हो उठा तब उसने कामरान से पुनः एक बार 'भाई के समान' गले लगने के लिए कहा।[3] प्रान्तीय राजवंश भी अपने राज्यों में ऐसे ही दरबारी शिष्टाचार का पालन करते थे।[4] यद्यपि हिन्दू दरबारों का

1. तुलनीय कि० रा०, द्वितीय, 35।
2. सुल्तान बलबन की गर्वोक्ति तुलनीय कि उसने शासक की स्थिति में किसी भी नीच कुलोत्पन्न व्यक्ति से सहजभाव से बात नहीं की। उसके निजी दासों और सेवकों ने उसे कभी अपूर्ण वेशभूषा में नहीं देखा—ब०, 33; पुत्र मुहम्मद को दी गई उसकी सीख का अवलोकन कीजिये, वहीं, 75; अपने पुत्र के शाही गौरव और दरबारी शिष्टाचार के पक्ष में कहा गया बुगराखा का कथन, तुलनीय वहीं 142। एक राजकुमार के शिक्षक की मनोरंजक कथा के लिए तुलनीय रेवर्टी, 805, जिसमें, शिक्षक ने अपने शाही शिष्य से वे सब गौरवहीन और असुविधाजनक कार्य कराये जिनका पालन अन्य लोगों को शासक के सम्मुख करना पड़ता था।
3. अ० ना०, प्रथम, 281।
4. ब०, 331 में बाबर का कथन तुलनीय कि उसके दरबार में बंगाल से आये हुए दूत ने दरबार की मान्य नियम संहिता के अनुसार भेंट की रस्म अदा की।

कोई विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहां शासक के गौरव की रक्षा उतनी ही कठोरता से की जाती थी, जितनी कि सल्तनत के अंतर्गत। सम्भवतः दरबार के व्यवहार-नियम उसी ढांचे पर आधारित रहते थे।[1] मुगल सम्राट् अकबर ने विद्यमान दरबारी समारोहों में कोई विचारणीय परिवर्तन या संशोधन नहीं किया।[2]

यह ध्यान में रखना चाहिए कि सुल्तान के दरबार का सारा वातावरण अत्यन्त कृत्रिम था, वह स्वस्थ कदापि नहीं कहा जा सकता। कभी-कभी राजपद के गौरव और उसकी भव्यता का अनुसरण जिससे राजपद का अलगाव प्रकट होता था, अत्यन्त भोंडी सीमा तक किया जाता था। एक सुल्तान का उदाहरण दिया जा चुका है कि किस प्रकार उसने एक अभ्यागत व्यापारी को इस्फहान का प्रदेश प्रदान कर दिया और उसके दरबारियों में इतना कहने का साहस नहीं था कि इस्फहान का शहर उसकी राज्य-सीमा में तो क्या, दिल्ली के सुल्तान के अधिकार-क्षेत्र में भी नहीं था। दूसरा मनोरंजक उदाहरण मुगल इतिहास का है। जब चौसा के युद्ध के समय हुमायूं शेरशाह से वार्ता करने के लिए राजी हुआ उस समय वह अफगान विद्रोही की अपेक्षाकृत दृढ़ स्थिति से पूर्णतः अवगत था। इसीलिए उसने उसे बंगाल का प्रदेश जागीर के रूप में देना स्वीकार कर लिया बशर्ते कि वह अपनी सामरिक स्थिति को त्याग दे और शाही सेना के द्वारा पीछा किया जाना स्वीकार कर ले जिससे उसका पलायन पराजय की तरह दीखे।[3] शेरशाह ने मुगल सम्राट् को हिन्दुस्तान के बाहर खदेड़ कर सारे स्वांग का खण्डन कर दिया और जब बाद में हुमायूं ने इसकी शिकायत की तो उसने पंजाब का प्रदेश भी उसके अधिकार में रहने देने से इंकार करके अपनी अति निम्न और लोलुप प्रकृति का परिचय दिया।

नजर और निसार समारोह—इस सम्बन्ध में ऐसे दो समारोहों का संदर्भ दिया जा सकता है जिनका उल्लेख दरबार के किसी भी वर्णन में और अन्य अनेक सरकारी क्रिया-कलापों में मिलता है। 'नज़र' (अथवा खिदमती) उपयुक्त पद्धति से शासक को भेंट की गई किसी भी मूल्य की एक ऐसी भेंट थी जिससे भेंट देने वाले व्यक्ति की राजभक्ति और निष्ठा प्रकट होती थी। सुल्तान के सम्मुख पहली बार प्रस्तुत किए जाने वाले सब व्यक्ति उसे 'नजर' या भेंट प्रदान करते थे जब तक कि वे उसके अधीन कार्य करते रहते थे या सीधे उससे सम्बन्धित रहते थे। भेंट के मूल्य का भेंट से कोई सम्बन्ध नहीं था; वह एक नारियल से लेकर मूल्यवान जवाहरात तक

1. एक नर्तकी बाला की शिक्षाप्रद कथा के लिये तुलनीय प० हिन्दी 241 जिसमें राजा के मनोरंजन के लिए नृत्य करते समय संयोग से केवल राजा की ओर पीठ करने के अपराध में उसे वहीं मार डाला गया।
2. देखिये आ० अ०, प्रथम, 155-56।
3. ता० शे० शा०, 44 का वर्णन तुलनीय : गुलवदन का वर्णन भी तुलनीय।

हो सकती थी।[1] बहुधा सुल्तान बदले में अधिक मूल्य की वस्तु देकर उसका प्रतिदान करता था, यद्यपि ऐसा करना उसके लिए आवश्यक नहीं था। नजर और उसके प्रतिपादन की परम्परा सुल्तान मुहम्मद तुगलक के समय तक इतनी जड़ जमा चुकी थी कि लोगों ने इसे अपना धन्धा बना लिया और इस लेन-देन से लाभ उठाने लगे। सुल्तान के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले व्यक्ति को वे 'नज़र' की सामग्री खरीदने हेतु भारी रक़म उधार दे देते थे और फिर सुल्तान द्वारा दिये गये प्रतिपादन से प्राप्त लाभ में वे हिस्सा बँटा लेते थे।[2]

'निसार' एक अलग महत्व का समारोह था, जिसका उद्भव संभवतः नज़र लगने के अंधविश्वास से हुआ और जो 'उतारा' की हिन्दू विधि और आजकल की 'आरती' से मेल खाता था। इसमें सोने और चाँदी की मुद्राएँ या अन्य मूल्यवान जवाहिरात थालों में भरकर शासक के सिर के ऊपर से अनेक बार फिराने के बाद दीनों और दरिद्रों की भीड़ या अन्य किसी समूह में बिखेर दिये जाते थे। अनेक अवसरों—जैसे, दरबार-समारोह, विजयोपरान्त शासक का राजधानी प्रवेश, नाजुक वार्ताओं का शान्तिमय और सफल निपटारा और अन्य असामान्य क्षणों का सावधानी से ध्यान रखा जाता था और अशुभ प्रेतात्माओं के कुप्रभाव से कई प्रकार इस रूप से बचाव किया जाता था। शासक के लिये निसार देना भी इन कुप्रभावों से बचने का एक तरीका था। इस प्रकार सुख और आनन्द के अनेक अवसरों—उदाहरणार्थ शासक के स्वास्थ्य-लाभ करने, पुत्र-प्राप्ति होने या राजकुमार या राजकुमारी के विवाह के अवसर पर पूर्व-निवारण के रूप में निसार दी जाती थी। यदि सुल्तान किसी अमीर के घर जाकर उसे अनुगृहीत करता तो अमीर अशुभ प्रेतात्माओं को दूर रखने के लिए निसार देता था। इसी प्रकार प्रेमिकाओं (पुरुष प्रेमी को भी) को भी निसार दी जाती थी जिससे उनका सौंदर्य और उनके गुण अक्षुण्ण रहें।[3]

3. दरबारी कर्मचारी—शासक को उसके औपचारिक और सार्वजनिक कार्यों में सहायता देने के लिए अलग कर्मचारियों की व्यवस्था थी। इन कर्मचारियों में 'बारबक', 'हाजिब' और 'वकील-ए-दर' के नाम प्रमुख हैं। इनमें से प्रत्येक का एक सहायक या नायक रहता था जो स्वयं भी प्रतिष्ठित अमीर होता था।

'बारबक' को 'सुल्तानों की जिह्वा' कहा गया है। उसका कार्य यह था कि

1. उदाहरणार्थ नारियल की भेंट देने की हिन्दू प्रथा के लिए तुलनीय मेकालिफ़, प्रथम, 146; ग्वालियर के राजा विक्रमाजीत के परिवार द्वारा हुमायूँ को प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा भेंट दिये जाने के लिए तुलनीय ता० फ०, प्रथम, 381।
2. तुलनीय कि० रा०, द्वितीय।
3. तुलनीय बरनी, ब०, 161 का वर्णन देखिए जब सुल्तान मुईजुद्दीन कैकुबाद अपने कृपापात्र एक किशोरप्रेमी को 'निसार' देता है।

जब सुल्तान प्रार्थनाएँ सुनने के लिए सिंहासन पर बैठे तो वह उसके सम्मुख लोगों के प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करे।[1] उसके पद का प्रतीक था एक सोने की गेंद से जुड़ा सोने का चौगान (पोलो का डन्डा)।[2] कई ऐतिहासिक व्यक्ति[3] 'बारबक' के पद पर रहे।

'हाजिब' के अन्तर्गत समारोहों का कार्य था और वह दरबारी मुलाकातों के समारोहों का निरीक्षण करता था। वह फ़ारस के 'खुर्रम-बाश' का उत्तराधिकारी था[4] और उसका उल्लेख 'मलिक-उल्-हुज्जाब', 'सैयद-उल्-हुज्जाब', 'मलिक-खास-हाजिब' या केवल 'हाजिब' कहकर किया गया है।[5] नियमानुसार भारत के बाहर के मुस्लिम राज्यों के सुल्तान, अमीरों और साधारण लोगों की मुलाकात के लिये अलग-अलग दो हाजिब रखते थे। दिल्ली के सुल्तान के दरबार में भी वैसे ही अलग-अलग दो हाजिब देखने में आते हैं, किन्तु कहीं भी उनके कार्यों की स्पष्ट व्याख्या नहीं है। सम्भवतः जब सुल्तान न्यायिक विवादों का निपटारा करने के लिये या सैनिकों का निरीक्षण करने के लिये या किसी अभ्यागत का स्वागत करने हेतु बैठता था, एक हाजिब सुल्तान के समीप खड़े रहकर परदा पकड़े रहता था, जबकि दूसरा हाजिब अभ्यागत को पेश करता या किसी अन्य प्रकार से शाही कर्त्तव्यों के कार्यान्वय में सहायता देता था।[6]

---

1. बारबक के कार्यों के लिये इ० खु०, प्रथम, 125, व० 578।
2. बारबक के पद के संकेत चिन्ह के लिये व०, 113; कि० स०, 41।
3. तुलनीय युवावस्था में सुल्तान फ़ीरोज़ तुग़लक की 'नायब बारबक' और 'नायब अमीर हाजिब' के रूप में नियुक्ति। नियुक्ति होने पर उसे 12,000 सैनिकों का नायकत्व सौंपा गया था, जिससे प्रकट होता है कि इन पदों का तदनुरूप एक सैनिक दर्जा भी होता था (अ० 42 के अनुसार)। मलिक काफ़ूर उस समय 'बरबक' ही था जब उसकी नियुक्ति दक्षिण के अभियान का नेतृत्व करने के लिये हुई थी। इसी प्रकार तुग़लकों के सत्तारूढ़ होने के कुछ पहले मुहम्मद तुग़लक ने बरबक के पद पर कार्य किया था।
4. तुलनीय हुर्बर्ट 145: 'शासक और उसके घर-बार के मध्य एक परदा लटकता रहता था, जिससे वह दिखाई न दे; यह परदा शासक से दस हाथ दूर और राज्य के उच्चतम वर्ग के बैठने के स्थान से दस हाथ दूर था। इस परदे की देखरेख का भार एक शूरवीर के पुत्र पर रहता था, जिसकी पदवी रहती थी 'खुर्रमबाश' 'प्रफुल्लित रहो' इत्यादि इत्यादि।
5. पदवियों के लिये तुलनीय रेवर्टी, 820; व०, 527।
6. स्प्रेन्जर का मत पृष्ठ 9 पर तुलनीय। इ० खु० प्रथम, 154, 125-26 भी तुलनीय।

'वकील-ए-दर', जिसे कहीं-कहीं 'रसूल-ए-दर' और हाजिब-उल-इरसाल' कहा गया है, को दरबार के सचिवालयीन कार्यों को सम्पन्न करने के लिये नियुक्त किया जाता था।[1] संभवतः राजकीय कागजातों में और राजकीय मामलों में उसकी पैंठ के कारण उसे विशेष महत्व प्राप्त था। इतिहासकार बरनी के मूल्यांकन और सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के 'वकील-ए-दर' रेहां के प्रभाव से इस बात की पुष्टि होती है।

दरबार-समारोह में कुछ अन्य कर्मचारी भी सहायता करते थे। 'शहना-ए-बारगाह' दरबार के सामान्य अधीक्षण का कार्य देखता था।[2] 'दवातदार' शाही लेखन-पात्र के लिये और 'मुहरदार' शाही मुद्रा के लिये उत्तरदायी रहता था।[3] सुन्दर और सुसज्जित लड़कों (ग़िलमान) की एक टोली कर्मचारियों को छोटे-मोटे मामलों में सहायता देने के लिये कमरे में यहां-वहां घूमती रहती थी।[4] नक़ीब और उसके चोबदारों (चौश) का समूह अभ्यागत को सभागृह में ले जाता और शाही जुलूस का नेतृत्व करता था। इस जुलूस में नकीब राजदण्ड लेकर चलता था। भेंट-समारोह के समय व बीच-बीच में, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, गम्भीरतापूर्वक 'बिस्मिल्लाह' चिल्लाते थे।[5]

राजदरबार की सामान्य रूपरेखा इस प्रकार रहती थी : दीवन-ए-आम राजमहल के मध्य में रहता था। इसके प्रवेशद्वार तक जाने के लिये अनेक द्वार थे जिन पर भारी पहरा रहता था। किसी काम या भेंट के लिये अभ्यागत के आगमन की घोषणा पहले द्वार पर तुरही बजाकर की जाती थी। दूसरे द्वार पर पहुंचने पर किरीट एवं गदाधारी नकीब और राजमुद्रायुक्त सोने और चाँदी के दण्ड धारण किये उसके चोश समूह द्वारा उसका स्वागत किया जाता था। वे उसे तीसरे द्वार की ओर

---

1. बरनी व०, 576 का मत तुलनीय। रेहां के लिये देखिये रेवर्टी 827।
2. व०, 260-261 और यह तथ्य ध्यान में रखा जाना चाहिये कि गयासुद्दीन तुगलक, जो बाद में सिंहासनासीन हुआ, अलाउद्दीन खिलजी के समय इस पद पर था।
3. तुलनीय रेवर्टी, 736; ब०, 379-380 भी।
4. व०, 30।
5. तुलनीय कु० मु०, 132; व०, 158; कुरान के सूत्र का इस मामले में कोई विशेष धार्मिक महत्व नहीं था, यद्यपि किसी गैर मुस्लिम के प्रस्तुत किये जाने पर 'नकीब' 'हदाक-अल्लाह' (अल्लाह तुम्हें इस्लाम के पथ का मार्गदर्शन करें) चिल्लाता था। इसका प्रयोग एकदम औपचारिक था। अभ्यागत को भेंट के विभिन्न शिष्टाचारों और मुलाकातों के तौर-तरीकों से परिचित कराने के लिए यह विशेष उपयोगी था।

ले जाते थे जहां लिपिकार के द्वारा उसका नाम और अन्य बातें लिखी जाती थीं। वहाँ अभ्यागत को भेंट का समय होने तक ठहरना पड़ता था। सभागृह (जिसे मुहम्मद तुग़लक ने 'सहस्र स्तम्भों का प्रकोष्ठ' नाम दिया था) के भीतर सिंहासन पर सुल्तान पूर्वी पद्धति से पालथी मारकर बैठता था। शासक के सन्मुख 'वज़ीर' सचिव और लिपिकों और अन्य कर्मचारियों के साथ बैठता था। 'हाजिब', 'बरबक' और 'वकील-ए-दर' सब अपने-अपने स्थान पर बैठते थे। सुल्तान की दायीं और बायीं ओर धर्माधिकारी, अमीर, राजघराने के सदस्य और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठते थे। भेंट की अनुमति प्रदान किये जाने पर 'हाजिब' अभ्यागत को कमरे में लाता था और उसे अभिवादन के स्थान तक ले जाता था। वहां वह भेंट के पूर्वोल्लिखित शिष्टाचारों का पालन करता था, या यदि वह राजकार्य के लिये आया होता तो वह अपना प्रार्थना-पत्र 'बरबक' के हाथ में दे देता था, जो उसे राजसिंहासन के पास ले जाता था। जब सुल्तान सभागृह से निवृत्त हो जाता था तब 'हाजिब' सारे कागजात वकील-ए-दर को सौंप देता था और वकील-ए-दर सुल्तान की आज्ञानुसार उनका निपटारा करता था।[1]

---

1. विशेष विवरण के लिये कि० रा० द्वितीय, 33-35; मैं इब्नबतूता का वर्णन तुलनीय; बरनी, ब०, 29-31 भी; नोटिसेज इत्यादि, 206, जहां सरकारी पदों का रूपान्तर भ्रमोत्पादक है।

सरकारी पदनामों पर टिप्पणी :

इस अध्याय में उल्लिखित विभिन्न अधिकारियों के कार्यों का आभास देने के लिये मैं अंग्रेजी दरबार के अधिकारियों में से लगभग अनुरूप नाम देने का प्रयत्न करूंगा।

1. अमीर-ए-आख़ूर	मास्टर आफ दि हार्स
2. शहना-ए-आख़ुर	चीफ़ एक्वेरी
3. हाजिब	चीफ़ यूशर 'जेन्टलमेन यूशर्स' एण्ड अदर यूशर्स आफ दि हाल एण्ड चैम्बर्स
4. बरबक	मास्टर आफ़ दि रोल्स
5. ग़िलमान	पेजेस आफ़ आनर
6. नक़ीब और चौश	लर्ड मार्शल विथ हेराल्ड्स एण्ड परसुइवेन्ट्स
7. सर जांदार	चीफ़ आफ़ दि लाइफ़ गार्ड्स
8. मुहरदार	लार्ड प्रिवी सील
9. तहवीलदार	कीपर आफ़ दि प्रिवी पर्स
10. हाकिमा-ए-हरम	मिस्ट्रेस आफ़ दि रोब्स

विशेषाधिकारयुक्त वर्ग और अन्य सामाजिक वर्ग

सामान्य चर्चा—विभिन्न सामाजिक वर्गों का संगठन प्रायः सादा था। यह ध्यान में रखते हुए कि सुल्तान जनता का नेता और संकटग्रस्त तथा उथल-पुथल जगत की शांति प्रमुख गारन्टी है, वह समाज के सर्वोच्च स्थान पर रहता था; अमीर और अन्य विशेषाधिकारयुक्त वर्ग एक प्रकार से उसके अधीनस्थ ही रहते थे; जनसाधारण (जिसमें विभिन्न वर्ग के हिन्दू और निम्नवर्ग के मुस्लिम सम्मिलित थे) उनसे नीचे थे और साधारण परिस्थितियों में दोनों वर्गों के मध्य अनुल्लंघ्य खाई थी।[1] मुस्लिम शासन प्रारम्भ होने के समय ही उच्चवर्गीय मुस्लिमों का, जिनमें विशेषकर 'उलमा' और सामान्य रूप से धार्मिक वर्ग, 'अह्ल-ए-कलम' (जिसे बुद्धिजीवी वर्ग कहा जा सकता है) और 'अह्ल-ए-तीग़' या सैनिक आते थे, आपस में प्रायः बिना भेदभाव के सम्मिश्रण हुआ। इन सबों ने हिन्दुस्तान में मुस्लिम सत्ता की स्थापना के महान् कार्य में विभिन्न अंशों में योगदान दिया और तदनुरूप उन्हें शासक द्वारा पुरस्कार दिया गया।[2] राज्य और मुस्लिम समाज के बढ़ते हुए संगठन के साथ ही, विभिन्न

---

11. शहना-ए-बरगाह	नाइट मार्शल
12. नदीम	जेन्टलमेन आफ दि प्रिवी चेम्बर्स
13. सर-ए-जामदार	लार्ड चेम्बरलेन (बुक आफ दि कोर्ट, 236-37)
14. वकील-ए-दर	लार्ड चेम्बरलेन आफ दि हाउसहोल्ड (बुक आफ़ दि कोर्ट, 318)

मैंने इन नामों को 'दि बुक आफ़ दि कोर्ट' से उद्धृत किया है किन्तु रेवर्टी (पृष्ठ 808) की यह चेतावनी सदैव ध्यान में रखी जानी चाहिये कि जब तक प्राचीन तुर्की भाषा का कोई शब्दकोष प्रकाश में नहीं आता, इन पदनामों का यथार्थ महत्व मानते रहना चाहिये।

1. तुलनीय सुल्तान एक नेता के रूप में—अ०, 68; शांति और व्यवस्था स्थापित करने के उसके कार्य के लिये ज० हि०, 2 तुलनीय जनसाधारण की स्थिति के लिये साइक्स, प्रथम, 463 द्वारा उद्धरित मसूदी का फारसी सादृश्य —'दरबार में हिस्से थे। योद्धागण और राजकुमार परदे से तीस फुट दूर सिंहासन के दायीं ओर खड़े होते थे। उनसे इतने ही पीछे दरबार में रहने वाले करद राजा और सूबेदार रहते थे; और अन्त में तीसरे हिस्से में विदूषक, गायक और संगीतज्ञ सम्मिलित रहते थे'......जब राजा किसी प्रजाजन को पास आने की अनुमति देता था तो वह अपने मुख पर एक रूमाल बांध लेता था जिससे उसकी सांस राजा को दूषित न कर दे, और परदे के पीछे आते ही दण्डवत् पड़ जाता था, और जब तक उसे उठने की आज्ञा नहीं दी जाती थी, नहीं उठता था।
2. तुलनीय फ० ज०, 49; ता० मु०, 89, 128।

मुस्लिम-वर्गों के कार्य-विभाजन में एक सीमा तक विशिष्टीकरण प्रारम्भ हो गया। हुमायूँ के शब्दों में उन्हें 'अह्ल-ए-दौलत' या मुख्य शासक वर्ग, जिसमें राजपरिवार के सदस्य, अमीर और सेना सम्मिलित थे; 'अह्ल-ए-सआदत' या बुद्धिजीवी वर्ग—जिसमें धर्मशास्त्री (उलमा), न्यायाधिकारी (काज़ी), सैयद, धर्म-दर्शन के नेता और प्रतिष्ठित, पवित्र तथा धर्मभीरु लोग, विद्वज्जन, विशेषकर कवि और लेखक सम्मिलित थे; 'अह्ल-ए-मुराद'—मनोरंजन करने वाला वर्ग, जिसमें संगीतज्ञ और चारण, सुन्दर बालाएं और आनन्द भोगों को सफल बनाने में सहायक अन्य लोग सम्मिलित रहते थे—में सैद्धान्तिक रूप से विभाजित किया जा सकता है। अन्तिम वर्ग, जिसे अन्य दो वर्गों के साथ रखना विचित्र-सा प्रतीत होता है, कम महत्व का नहीं था, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति 'चिकने चेहरों और जानलेवा प्रेयसियों' का शौकीन था। यदि हम हुमायूँ द्वारा किये गये इन वर्गों के अधिक विस्तृत वर्गीकरण का अनुसरण करें तो हमें दर्जनों छोटे-छोटे वर्ग मिलते हैं जो लगभग वर्तमान मुस्लिम समाज के उच्च वर्ग के सामाजिक विभाजन के अनुरूप ही हैं। उनके स्तर का क्रम इस प्रकार है: सुल्तान, राजपरिवार, खान और अमीर पद के अन्य लोग, सैयद, उलमा, कुलीन वर्ग, पदाधिकारी (मुगलों के अन्तर्गत मंसबदार), राज्य के बड़े अधिकारी, विभिन्न कबीलों के नेता, शाही लौंडों का दल, शाही बटुआ रखने वाला, शाही रक्षकदल (जिरगा?) के सदस्य, सुल्तान के महल के निजी भृत्य और उसके सेवक और बरु नौकर। ये भी अपने दर्जे के अनुसार उच्च, मध्यम और निम्न वर्गों में विभाजित थे। इस वर्गीकरण का कई जगह अतिक्रमण हुआ और यह स्पष्टतः अवैज्ञानिक है, किन्तु यह उस समय के हिन्दुस्तान के शासक-वर्ग का सामान्य चित्र उपस्थित करता है।[1] छोटे-मोटे मुस्लिम राजवंशों ने, जिनकी स्थापना बाद में हुई, और हिन्दू राज्यों ने सामान्य रूप से सामाजिक विकास के इसी मार्ग का अर्थात् विभिन्नतापूर्ण एक वर्ग की संरचना का अनुसरण किया। जनसाधारण को शासन[2] में एवं राजनैतिक शक्ति का कोई स्थान प्राप्त नहीं था। उन्हें यदि कोई अधिकार थे भी तो वे अत्यल्प थे। उनका कर्त्तव्य मुख्यतः यही था कि वे राज्यों को भारी कर चुकाएं। ये कर ग्राम के मुखिया और राजस्व कर्मचारियों द्वारा वसूल किये जाते थे और ये सब उन पर अत्याचार करते तथा वसूल किये गए धन में से कुछ अपने लिये रख लेते थे तथा इस प्रकार बहुत सम्पन्न हो जाते थे।[3] ऐसी परिस्थितियों में यह कहना कठिन है कि सल्तनत को जनता का समर्थन प्राप्त था। केवल यह कहा जा सकता है कि लोग इन सामाजिक

1. तुलनीय खांदमीर, खांद०, क० 130-133।
2. हिन्दुस्तान में जनसाधारण की स्थिति के लिये ता० मा० (चतुर्थ), 203 साथ ही मत्ला-उल-अनवार में खुसरो का कथन तुलनीय।
3. तुलनीय खुसरो कु० खु०, 733 का कथन।

व्यवस्थाओं का क्षीण नैतिक समर्थन करते थे, किन्तु ऐसा भी निश्चित रूप से कहना कठिन है।[1] यह थी समाज के विभिन्न वर्गों की सामान्य स्थिति।

(क) मुस्लिम समाज

आइए, हम विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों की स्थिति का उनके मोटे दो भागों—'उमरा' या अमीरवर्ग और 'उलमा' या धर्मशास्त्रियों तथा अन्य धार्मिक वर्ग—में परीक्षण करें।[2]

(1) अमीर वर्ग

1. **इसका स्वरूप**—शासक के तुरन्त नीचे अमीरों का स्थान था। वे बहुधा उसकी शक्तिसम्पन्नता का समर्थन करते थे, किन्तु यदाकदा उसके प्रकार्यों को अपने अधिकार में कर लेते थे, और यदि कोई सत्तारूढ़ वंश निर्बल और जर्जर हो जाता तो वे उसका स्थान ग्रहण कर स्वयं के एक नवीन राजवंश की स्थापना कर देते। यहाँ तक कि यदि कोई अमीर अपने पद और सत्ता से च्युत या वंचित कर दिया जाता तो उसके गौरव और सामाजिक सम्मान की परम्पराएँ उनके उत्तराधिकारियों को ही सौंप दी जाती थीं, और वंशानुगतता के सिद्धान्त की दृढ़ समर्थक जनता के अनुमोदन से पहले-जैसी शक्ति प्राप्त कर लेना केवल समय और अवसर का प्रश्न रह जाता था।

एक अमीर अपने जीवन का प्रारम्भ सुल्तान या अन्य अमीर के एक दास या अनुचर के रूप में करता था और तब तक उसकी क्रमशः पदोन्नति होती जाती जब तक कि किसी उपयुक्त अवसर पर उसे किसी पद का गौरव और अमीर का दर्जा प्राप्त नहीं हो जाता था। अब उसे अमीर मान लिया जाता और उसकी तथा उसके वंश की सामाजिक स्थिति सदैव के लिए सुरक्षित हो जाती थी। सिंहासनारोहण का ऐसा कोई वैध नियम न था और न कोई विशेष प्रतिष्ठा जैसी कोई चीज थी जैसी कि किसी प्राचीन राजवंश से सम्बद्ध की जाती है, और न ही सबसे बड़े पुत्र को उत्तराधिकार मिलने का ही कोई कानून था। फलतः सिंहासनाधिकारी को किसी अमीर के बढ़ते हुए प्रभाव और शक्ति और उसके स्वतन्त्र रुख अपनाए जाने के प्रति बड़ा सशंक रहना पड़ता था। अमीर के पास इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं था कि वह सुल्तान की अन्य प्रजा की तरह रहे या फिर विद्रोही हो जाय। इस प्रकार

---

1. तुलनीय सिंध के एक स्थानीय राजवंश का जनता द्वारा समर्थन किये जाने के एक उदाहरण के लिये इलि० डाउ०, प्रथम, 223; चर्चा के लिये तुलनीय य०, 575।
2. उलमा के सम्बन्ध में चर्चा करते समय यह नहीं भूल जाना चाहिए कि इस्लाम में कोई निर्दिष्ट पुरोहित वर्ग नहीं है, बल्कि सत्य यह है कि धर्मशास्त्री सदैव ही अपना अस्तित्व बनाए रहे और मुसलमानों की धार्मिक विचारधारा का स्वरूप निर्धारित करता रहे। इस प्रकार उन्हें एक विशिष्ट वर्ग मानना न्याय-सम्मत ही कहा जायगा।

पश्चिम के अपने जैसे अधिकारियों या अपने देश के राजपूत सरदारों के विशेषाधिकारों की तुलना में दिल्ली के अमीरों के विशेषाधिकारों में एक महत्त्वपूर्ण कमी यह थी कि राज्य उनकी स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन नहीं देता था और न हीं उनकी पदवियां और सम्पत्ति उनके पुत्रों को उत्तराधिकार में प्राप्त करने देता था। उनकी प्रतिष्ठा उनके जीवनकाल में ही उनसे अपहृत की जा सकती थी और सदैव ही उनका गौरव शासक-सुल्तान की दया पर निर्भर रहता था। फिर भी इससे किसी अमीर या उसके उत्तराधिकारियों के सामाजिक महत्त्व[1] पर प्रभाव नहीं पड़ता था।

2. **पदवियाँ और सम्मान (डिस्टिंक्शन)**—सर्वोच्च अमीर को 'खान' की पदवी प्राप्त थी, जो अमीरों का सर्वोच्च दर्जा था।[2] विशेष सम्मान के तौर पर कुछ को 'उलुग-खान-ए-आजम'[3] की पदवी दी गई थी। दूसरा दर्जा 'मलिक' की पदवी का और अन्तिम 'अमीर' की पदवी का था। दिल्ली के सुल्तानों के दरबार में इससे नीचा अमीरों का कोई दर्जा नहीं था। उनके नीचे 'सिपहसालार' और 'सर-ख़ेल' के सैनिक दर्जे थे, जो, हाजी दबीर के मतानुसार सम्भवतः दशमलव पद्धति पर आधारित थे।[4] साधारण तौर पर 'अमीर' पदनाम राज्य के समग्र असैनिक और सैनिक पदाधिकारियों के लिए लागू किया जा सकता है और उसी नाम के दर्जे और पदवी से इसका सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिए।[5] इसी प्रकार 'सिपह-सालार' शब्द का प्रयोग बिना भेदभाव के किसी भी श्रेणी और स्थिति के सैनिक अधिकारी के लिए किया जाता था। किसी

---

1. यह नियम तब लागू नहीं होता जब सल्तनत की शक्ति का ह्रास हो गया और सुल्तान फ़ीरोज़ तुग़लक की मृत्यु के बाद अमीर स्वतन्त्र शासक वंशों की स्थापना करने में सफल हो गए।
2. कि० रा०, प्रथम, 107, फ़ारसी सादृश्य के लिए तुलनीय रालिन्सन, फाइव ग्रेट मानर्कीज, तृतीय, 223 'फ़ारसी दरबार में राजा के तुरन्त नीचे का स्थान कुछ विशेषाधिकारयुक्त परिवारों को प्राप्त था। राजपरिवार या अखामनी जाति के अतिरिक्त ऐसे कुछ छः महान् वंश थे जिनका दर्जा अन्य सब कुलीनों से श्रेष्ठ था।'
3. तुलनीय रेवर्टी, 820-862 हलागू द्वारा हिन्दुस्तान में उलुग खां बलबन को छोड़कर सबको ऐसी विशिष्ट पदवियों के प्रयोग की मनाई कर दिए जाने का मनोरंजक उदाहरण; अफ़गानों में पदवी-परिवर्तन के लिए तुलनीय बा० ना०, 278 जो क्रमशः 'आजम-ए-हुमायूं', 'खान-ए-जहान और 'खान-ए-खाना' की पदवियाँ प्रदान करते थे।
4. तुलनीय ज० व०, द्वितीय, 782 में हाजी दबीर का अभिमत।
5. तुलनीय, उदाहरणार्थ व०, 376 तुलनीय, व०, 145 भी। अमीर को एक हजार या इससे अधिक सैनिकों का नेतृत्व सौंपा जाता था, और अन्य लोगों को क्रमशः सैंकड़े और दस के निम्न दर्जे दिए जाते थे।

अमीर के पद का स्तर 'शुगल', 'खिताब' और 'अक़्ता' अर्थात् क्रमशः उनके दरबारी पद, सिलेदारी उनकी सम्मान-सूचक उपाधियों और उन्हें सौंपे गए राजस्व से निश्चित किया जाता था। दरबार में पद प्रदान किये जाने या सम्मानसूचक पदवियाँ वितरित करने का कोई निश्चित नियम नहीं था। तो भी अपना तथा अपने कर्मचारियों का खर्च चलाने के लिए उन्हें विशाल राजस्व वण्टन प्राप्त थे।

(क) शुगल और खिताब—जहाँ तक शुगल अर्थात् दरबार के पदों का सम्बन्ध है, केवल कुछ अमीरों को ही 'शुगल' देना सम्भव था। शासक के हाथ में अन्य उच्च पद अधिक नहीं थे। उनमें, जैसा कि हम देख चुके है, शाही गृहस्थी और कारखानों के, कुछ मंत्रालयों के और सचिवालयीन कार्यालयों के, कुछ जिलों और प्रान्तों की सूबेदारी के और अन्य असैनिक और सैनिक कार्यालयों के पद और इनके खिताब सम्मिलित थे।[1] जहाँ तक खिताबों का सम्बन्ध है, वे शासक की रुचि और कल्पनाशक्ति के अनुरूप ही विस्तृत थे, तथापि उनकी प्रतिष्ठा बनाए रखने के हेतु उनमे से कुछ खिताबों का स्वेच्छा से चुना जाना अनिवार्य था। कुछ विशिष्ट खिताबों के नाम थे : 'रेवाजा जहान', 'इमादुलमुल्क,' 'किवाम-उल-मुल्क', 'निजाम-उल-मुल्क', 'अजामुल-मुल्क', 'कुतलुकखान' 'उलुगखान', 'सद्र-ए-जहान', 'आलम-उल-मुल्क' आदि।[2] दूरस्थ प्रान्तों में हिन्दू प्रभाव दृष्टिगोचर होता था, और बंगाल के सुल्तान तो 'नायक खान' और 'सत्य राजा' जैसे खिताब भी प्रदान करते थे।[3]

खिताबों के साथ ही अमीरों को अन्य 'सम्मान' भी प्राप्त थे जिन्हें 'मरातिब' कहा जाता था। मरातिब से तात्पर्य था—राजदरबार के समय उनके विशेषाधिकार, एक खास तरह का वेष, सुल्तान द्वारा उन्हें वर्ष में एक बार प्रदान की गई तलवार और कटार, और उन हाथियों और घोड़ों की संख्या जो वे अपने जुलूस में रखने के अधिकारी थे; इसी प्रकार उनके अनुचर, उनकी पताकाएँ, नगाड़े, तुरहियाँ और बाँसुरियाँ आदि।[4] कभी-कभी तो ये मरातिब देखने में शाही मालूम पड़ते थे।[5]

1. वर्णन के लिए तुलनीय रैवर्टी 645।
2. तुलनीय ब०, 410, ता० मु० शा० 385।
3. तुलनीय, पु० प०, 120।
4. तुलनीय कि० रा०, द्वितीय, 82, ता० मु० शा० 389, त० अ०, प्रथम, 342।
5. पिछले परिच्छेद में शाही विशेषाधिकारों के वर्णन में उल्लिखित उदाहरणों के अतिरिक्त कुछ और भी यहाँ गिनाए जा सकते हैं। वे बहुधा उन अमीरों तक सीमित हैं, जिनके पास खान का दर्जा है। उदाहरणार्थ, जब बख्तियार खिलजी को बंगाल के लिए नामजद किया गया, सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने उसे एक राजकीय चंदोवा, शाही ध्वज और नगाड़े, शाही प्रजननकारी अश्व, और एक कमरपट्टा और अपने निजी शाही वस्त्र प्रदान किए (ता० मा० 65 के अनुसार)। इसी प्रकार अपने पुत्र के जन्म के समय सुल्तान मुबारकशाह खिलजी ने अपने कुछ

(ख) अक्ता—'अक्ता' या राजस्व वण्टन अत्यन्त महत्वपूर्ण था क्योंकि अंत में किसी अमीर के भौतिक साधनों से उसकी सामाजिक स्थिति और उसका राजनैतिक प्रभाव निश्चित होते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि 'अक्ता' की पद्धति, जिस रूप में वह भारत में आई, सर्वप्रथम खलीफ़ा मुक्तदिर द्वारा उन प्रांताध्यक्षों से एक नियमित राजस्व निधि प्राप्त करने के उद्देश्य से निर्धारित की गई थी, जिन्होंने अपने को स्वतन्त्र कर लिया था। 'मुक्ती' जिले का सारा राजस्व एकत्र करता, प्रशासकीय खर्च चुकाता, सैनिकों को वेतन देता और शेष में से एक निश्चित निधि बगदाद के दरबार को दे देता था। ये अनुदान 'अक्तात'[1] कहे जाते थे और अनुदान पाने वाले को 'मुक्ता'। हिन्दुस्तान में राजस्व वण्टन में सदैव ही ये विशेषताएं रहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि 'अक्ता' के अधिकारी को अपने क्षेत्र के प्रशासन में स्वतंत्रता प्राप्त थी और कभी-कभी वह अपना क्षेत्र अधिक धन के बदले में अन्य व्यक्ति को पट्टे पर दे देता था और इन वृद्धिगत करों का सारा भार गरीब कृषकों पर पड़ता था। दिल्ली का राजस्व विभाग अपने लेखा-परीक्षकों को दौरे पर भेजता था किन्तु अक्ताधारियों को विशेषकर सुदूर स्थानों में नियंत्रण में रखना अत्यंत दुष्कर था।[2] व्यवहार में, और जब तक राज्य वस्तुतः अपनी इच्छा लागू करने में सबल रहता, किसी अमीर के अक्ता तथा उसकी मान और प्रतिष्ठा बिल्कुल व्यक्तिगत थे। निजी संपत्ति, जिस पर वंशानुगतता का नियम लागू होता था—और सार्वजनिक पद और वण्टन—जिस पर कोई विहित या आकस्मिक अधिकार लागू नहीं होते थे—के मध्य बिल्कुल स्पष्ट अंतर होना चाहिये, इस पर राज्य जोर देता था। मुहम्मद तुग़लक की मृत्यु के पश्चात् केन्द्रीय प्रशासन की निर्बलता के कारण इस स्थिति को बहुत कुछ अस्पष्ट ही छोड़ दिया गया। जब अफ़ग़ान अमीर अपने अक्ताओं को वंशानुगत मानने लगे, सुल्तान सिकंदर लोदी ने एक प्रसिद्ध अमीर 'असनद-ए-आली' जैनुद्दीन के उत्तराधिकारी की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट कर दी। शाही फ़रमान के शब्दों में "जियाउद्दीन को यह भली-भांति समझ लेना चाहिए कि उसे नियोजन शुद्ध वैयक्तिक रूप में प्रदान किया गया है, स्व० मसनेद अली के सम्बन्धी होने के नाते नहीं।" मृत

खानों को शाही छत्र प्रदान किए और अपना निजी छत्र खुसरोखाँ को दिया (कु० खु०, 771 के अनुसार)। फीरोज़ तुग़लक के तातारखाँ नामक एक अमीर के छत्र पर एक सोने का मोर अंकित किया गया और हुमा के समान इसका प्रयोग भी एक शाही विशेषाधिकार था (ब० 578, अ० 391 के अनुसार)। हैबतखाँ को मुल्तान का भार देकर शेरशाह ने उसे आजम-ए-हुमायूं की पदवी और एक लाल राजकीय चंदोवा प्रदान किया (ता० शे० शा० 61 के अनुसार)।

1. क्रेमर, 363।
2. एक अक्ता में एक लेखा-परीक्षक के अनुभवों के एक रोचक वर्णन के लिये तुलनीय इ० ख़ु०, द्वितीय, 41-50।

अमीर के पुत्र के लिये सुल्तान ने नक़द भत्ता और पत्नी के लिए एक भूमिखण्ड पट्टे के रूप में निश्चित कर दिया, जिसका नवीनीकरण और सम्मोदन प्रतिवर्ष किया जाना था। नक़द भत्ते के लिए भी ये ही शर्तें थी।[1] इस प्रकार अपनी सामान्य रूप से दृढ़ स्थिति में राज्य अक्ता भूमि, यहां तक कि धार्मिक और धर्मादा 'वक्फ़' (अनुदान) को पुनर्ग्रहण करने का अपना अधिकार त्यागने के लिये अनिच्छुक था। हां, निर्बल शासक अवश्य अपने पूर्ववर्ती शासक द्वारा की गई व्यवस्था में हस्तक्षेप न करना ही सुविधाजनक समझता था। लगातार निर्बल शासकों या निर्बल राजवंशों के कारण 'अक्ता' के अनवरत अधिकार को एक प्रकार का सम्मोदन और निजी संपत्ति का स्वरूप-सा प्राप्त हो जाता था। पिता के किसी सम्मान या राजस्व नियोजन पर पुत्र का उत्तराधिकार निश्चित करने का अधिकार होना वास्तव में सल्तनत द्वारा स्वामित्व या निजी संपत्ति के अधिकार की मान्यता देना नहीं, बल्कि केन्द्रीय शासन की निर्बलता ही प्रकट करता है।[2]

ये राजस्व नियोजन काफ़ी बड़े होते थे और कभी-कभी राज्य के पूरे प्रान्त इसमें आ जाते थे। साधारण नियोजन से भी बहुत आय प्राप्त होती थी।[3] इन नियोजनों की बृहत् आय का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि जब फ़ीरोज़ तुग़लक के अंतर्गत एक मूल्यांकन पत्रक तैयार किया गया तो, राजस्व नियोजनों का कुल मूल्य 670 लाख रौप्य मुद्राओं से भी अधिक हुआ।[4] दर्जा पाए हुए अमीरों की आय का उल्लेख बाद में किया जाएगा।

जहां तक अमीरों के विभिन्न दर्जों की सापेक्ष्य स्थिति का प्रश्न है, जैसा कि कहा जा चुका है, सर्वोच्च पद 'खानों' का था। उनके पश्चात् 'मलिक' होते थे जो कुछ अवसरों पर, जैसे—नवीन शासक के सिंहासनारोहण के अवसर पर या राज्य के प्रति अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवाएं किये जाने पर अमीरों में से पदोन्नत किये जाते थे।[5] खानों के समान मलिकों को भी कुछ साधारण सुविधाएं प्राप्त थीं, यद्यपि मात्रा का अंतर तो रखा ही जाता था। उसी प्रकार वे मलिक की पदवी और किसी अतिरिक्त सम्मान-पद द्वारा संबोधित किये जाने के अधिकारी थे, और नियमोल्लंघन

---

1. तुलनीय—बा० मु०, 28।
2. तुलनीय—है० यु० हि०, 3170 में सर वूल्जले हेग का मत।
3. इब्नबतूता का मामला तुलनीय, जिसने एक अमीर के देवगिर जाने पर उसकी अनुपस्थिति में उसके 'अक्ता' का प्रशासन करके लगभग 5000 टंका प्राप्त कर लिये (कि० रा०, द्वितीय 8 के अनुसार)।
4. मोरलैंड, 'एग्रेरियन इत्यादि', 57; मुक्ता के सारांश या राजस्व नियोजन प्राप्त अधिकारी की स्थिति के लिये वहीं, परिशिष्ट ब०, पृष्ठ 218-221।
5. तुलनीय—उदाहरणार्थ ब० 242 उनके लिये, जो नवीन सिंहासनारोहण के अवसर पर पदोन्नत किये गये थे।

पर वे कानून के अनुसार दण्ड के भागी भी माने जाते थे।[1] अन्तिम श्रेणी के अमीरों के साथ भी यही बात थी। उन्हें भी वे ही सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी, किन्तु उपर्युक्त दो उच्चतर श्रेणियों की तुलना में इनमें भी वही मात्रा का अंतर था। उदाहरणार्थ, जहां तक ध्वजों के सार्वजनिक प्रयोग का सम्बन्ध है, 'खान' नौ ध्वज ले जाने का अधिकारी था, किन्तु 'अमीर' तीन से अधिक नहीं ले जा सकता था, या, जबकि 'खान' को जुलूस में 10 घोड़े हाथ से ले जाये जाने की अनुमति प्राप्त थी, 'अमीर' को केवल दो घोड़े की अनुमति प्राप्त थी।[2] जबकि सुल्तान इल्तुतमिश ने नासिरुद्दीन को, जो एक मलिक था, एक हाथी उपहार-स्वरूप दिया, प्रत्येक अमीर को एक घोड़ा दिया गया।[3]

तथापि प्रत्येक श्रेणी के अमीरों को अनेक अनुचरों और अपनी स्थिति के अनुरूप विशाल कर्मचारीवृंद का व्यय-भार सहन करने के लिये पर्याप्त निधि प्रदान की जाती थी। कभी-कभी इन कर्मचारियों की संख्या परिमाण में बहुत बढ़ जाती थी।[4] इसके अतिरिक्त राजकीय समारोहों और सरकारी उत्सवों में उनके स्थान-निर्धारण में उनकी श्रेणी और पद का यथोचित विचार किया जाता था।[5]

(ग) **गौण वैशिष्ट्य (माइनर डिस्टिंक्शन)**—प्रतिष्ठित अमीरों के अतिरिक्त अन्य प्रजाजन को भी कभी-कभी जरी के बने सम्मान-सूचक वस्त्र (खिलअत) और एक कमरबंद अथवा एक अश्व और उसके अलंकरण अथवा भूमिखण्ड अथवा नक़द

1. तुलनीय इब्नबतूता, कि० रा०, प्रथम, 107 का अवलोकन।
2. तुलनीय, नीतिसेन, इत्यादि, 190।
3. रैवर्टी 728, 731।
4. उदाहरणार्थ, तुलनीय कि मुबारकशाह खिलजी के अंतर्गत खुसरो खान के पास 40,000 कर्मचारी थे। कुछ अफ़गान अमीर लगभग 30 से 40 हजार कर्मचारी तक रखते थे। (त० अ०, प्रथम, 342 के अनुसार) मेवाड़ के कुलीन वर्ग के लिए तुलनीय टॉड का वर्णन, प्रथम, पृ० 167-68। मेवाड़ के सरदारों का निम्नलिखित त्रिमुखी विभाजन है :—

 प्रथम वर्ग—हमें ऐसे सोलह सरदारों का वर्णन प्राप्त है जिनकी रियासत की आय प्रतिवर्ष 10,000 से 50,000 रुपये और उससे अधिक थी। ये केवल विशेष आमंत्रण पर त्यौहारों और पवित्र समारोहों के अवसर पर उपस्थित होते थे और शासक के वंशानुगत सलाहकार थे।

 द्वितीय वर्ग—पांच से दस हजार रुपये तक। उनका काम था सदैव सेवा में उपस्थित रहना। इसमें से मुख्यतः फौजदार और सैनिक अधिकारी चुने जाते थे।

 तृतीय वर्ग—यह गोल का वर्ग है जिनके अंतर्गत मुख्यतः 5000 से कम की भूमि रहती है, यद्यपि शासक की कृपा से उन्हें इससे अधिक भी मिल सकती है।
5. तुलनीय अ०, 291-92।

उपहार अथवा भत्ता पुरस्कार स्वरूप दिया जाता था।[1] अश्व और उसके अलंकरण के दर्जे को लेकर पुरस्कार स्वरूप दिये जाने वाले इन अश्वों की चार श्रेणियाँ थीं।[2] इस काल के अन्तिम चरण में जनसाधारण में सम्मानसूचक वस्त्र (खिलअत) का प्रदान किया जाना इतना लोकप्रिय हो गया कि सिख गुरु अंगद भी, कहा जाता है, प्रतिवर्ष अपने अनुयायियों को दो खिलअतें वितरित करते थे।[3] खिलअत की पद्धति तथा अन्य पुरस्कारों के स्वरूप स्पष्ट रूप से मूलतः फारसी थे।[4]

3. अमीरवर्ग और दिल्ली सल्तनत—सल्तनत के प्रारम्भिक काल में उमरा या अमीर उसके एकमात्र नहीं तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार अवश्य थे। सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने इनकी महत्ता को यथोचित मान्यता दी। उसे पिछले शासकों के प्रदेशों और स्वयं की महत्वपूर्ण विजयों को सर्वप्रथम सुसंगठित करने का श्रेय दिया जा सकता है।[5] राज्य की प्रतिस्थापना केवल इन अमीरों के समर्थन और उनकी भक्ति से ही सम्भव हो सकी थी। ये अमीर उसी वर्ग के थे जिस वर्ग के दास वंश के अन्य शासक थे और कोई कारण नहीं था कि वे अन्य प्रजाजन की भाँति सुल्तान की इच्छा के मातहत अपने को रखते। परिणामस्वरूप सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल के बहुत पहले अमीरों और उनके संगठन की शक्ति का विकास होने लगा। उन्होंने अपना संगठन अमीरों की एक एकीकृत संस्था के रूप में किया जो 'चालीसियों का दल' के नाम से प्रसिद्ध थी। इसके सदस्यों के व्यवहार, और प्रशासन से उनके समय-असमय पर होने वाले झगड़ों ने सुल्तान

---

1. तुलनीय उदाहरणार्थ अलाउल्मुल्क को प्रदान किये गये उपहारों की सूची ब० 271; मुबारकशाह खिलजी के शासनकाल के उदाहरणों के लिए वहीं, 377 तुलनीय।
2. तुलनीय कि० रा०, तृतीय, 78।
3. तुलनीय मैकालिफ, द्वितीय, 40।
4. तुलनीय फारसी परम्परा के लिए हुअर्ट, 148—'शासक के वस्त्र-भण्डार से सम्मान-सूचक पोशाक प्रदान करना एक अति प्राचीन रिवाज था—सेपर द्वितीय ने अर्मीनियन सेनानायक को 'एक शाही पोशाक, एक एरमाइन फर, शिरस्त्राण पर गिद्ध में संलग्न करने हेतु एक सोने-चाँदी का झुमका, एक मुकुट, वक्षस्थल अलंकरण, एक तंबू, गलीचे और स्वर्ण पात्र दिये। घुड़सवार लाने वाले एक शानदार माण्ड को पुरस्कार देने के लिए अर्दाशिर प्रथम ने उसका मुख लालों, स्वर्णमुद्राओं और जवाहरातों से भर दिया।'
5. तुलनीय इल्तुतमिश के प्रति कहे गये शब्दों के लिए ब०, 137 कि जब अमीरों ने उसकी उपस्थिति में हाथ बांधे खड़े रहकर उसका सम्मान किया, तब, किस प्रकार उसने सिंहासन से उतारकर उनके हाथ और यहां तक कि पैर भी चूमने चाहे।

गयासुद्दीन बलबन को यह विश्वास दिला दिया कि इसका अस्तित्व राज्य के लिए एक गम्भीर खतरा है।[1] उसने इसके अनेक प्रभावशाली सदस्यों को समाप्त करके अंत में अत्यन्त निष्ठुरता से इस संगठन को विघटित कर दिया। फिर भी बलबन भी अमीरों के विशेषाधिकारों की सुरक्षा करना नहीं भूला। उसने अपने पुत्र को चेतावनी दी कि कोई भी राज्य अमीर वर्ग के समर्थन के बिना उन्नति नहीं कर सकता।[2] इस प्रकार सल्तनत अमीर वर्ग की उन्नति या उनके अस्तित्व के विरुद्ध नहीं थी, बल्कि केवल उसके एकीकृत संगठन के विरुद्ध थी। बलबन के अन्तर्गत इस अस्थायी गतिरोध के पश्चात् अमीरों ने पुनः अपना राजनैतिक प्रभाव स्थापित कर लिया। और इतने शक्तिशाली हो गये कि सुल्तान अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए उनके समर्थन की ओर आशा भरी दृष्टि से देखते थे।[3]

जब अलाउद्दीन खिलजी सिंहासनासीन हुआ, उसने विदेशी अमीरों का संकट अनुभव किया और उसने एक भारतीय तत्त्व एकीकृत करके, इन और भारतीय अमीरों को राज्य में पद और शक्ति प्रदान करके, इसका सामना

1. संगठन के लिए तुलनीय बरनी ब०, 26, कि० रा०, प्रथम, 130 भी। अमीरों की राजनैतिक शक्ति का अनुमान लगाने के लिए कुछ उदाहरण तुलनीय। जब मलिक इज्जुद्दीन बलबन ने राजशक्ति ग्रहण की और सुल्तान बना, इन अमीरों ने उसके स्थान पर अलाउद्दीन मसूदशाह को गद्दी पर बिठा दिया और बलबन को उनके निर्णय के आगे झुकना पड़ा। (रेवर्टी, 622 के अनुसार) आगे भी मलिक रिहां की चालबाजियों के कारण जब उलुगखां बलबन को सुल्तान ने पदच्युत कर दिया तब इन अमीरों के विरोध और सैनिक-प्रदर्शन के फलस्वरूप अमीरों और सुल्तान के मध्य 'आपस में मामला तय किया गया' और सुल्तान को अपना पूर्व-निर्णय बदलना पड़ा और बलबन के प्रतिद्वंद्वी को पदच्युत करना पड़ा (वहीं, 830)। इसी प्रकार 'चालीसियों' के दल के बदुद्दीन नामक व्यक्ति सुल्तान को सिंहासनच्युत करने के लिए षड्यंत्र करते पकड़ा गया, तब सुल्तान ने उसे केवल 'अपना मंतव्य त्यागने के लिए' कहा और उस अमीर को उसके 'अक्ता' बदायूं भेजने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया (वहीं, 753)।
2. तुलनीय ब०, 78।
3. तुलनीय ब० (पाण्डु०) 70; तुलनीय : किस प्रकार बुगराखां ने यह जानकर अत्यन्त संतोष का अनुभव किया कि 'कोतवाली' अमीरों के एक शक्तिशाली दल (अर्थात् बलबन के समय के दिल्ली के कोतवाल फखरुद्दीन के पुत्र और समर्थक) ने उसके पुत्र सुल्तान कैकुबाद को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा दिया है और उत्साहपूर्वक उसका समर्थन कर रहे हैं। इसी प्रकार, जब जलालुद्दीन खिलजी सिंहासनासीन हुआ तब तुर्की अमीरों के विरोध के कारण उसका साहस अपनी राजधानी में प्रवेश करने का न हुआ। (वहीं, 180-81)।

किया। उसके उत्तराधिकारी ने भी उसकी नीति चालू रखी। दुर्भाग्यवश दरबार का भारतीय दल सीमा का अतिक्रमण कर गया और खुसरो खां तथा उसके मित्रों के व्यवहार ने सामान्य मुस्लिम जनमत को विरोधी बना लिया। उसे अब भारतीय (या हिन्दू) सत्ता के उफनते ज्वार में डूब जाने का भय लगने लगा। इससे साहसी ग़यासुद्दीन तुगलक को बलापहारी खुसरो खां को उखाड़ कर अपनी सत्ता स्थापित करने का अवसर प्राप्त हो गया। जब मुहम्मद तुगलक गद्दी पर बैठा, उसने शान्ति से सारी स्थिति की समीक्षा की जिसमें एक बार उसने कभी व्यक्तिगत रूप से भाग लिया था। उसने पाया कि विदेशी तुर्की अमीर और उनके भारतीय उत्तराधिकारी दोनों की परीक्षा हो चुकी है और दोनों में कमियां पाई गई है। अतः उसे (शासन के प्रारम्भिक दिनों में) भारत के बाहर के मुस्लिम देशों से विदेशियों को चुनने की बात सूझी। भारतीयों और हिन्दुस्तान में बसे हुए तुर्की मूल के लोगों के अधिकारों की योजनाबद्ध से उपेक्षा कर दी गई और शासक ने किसी भी मूल्य पर विदेशियों को लाने में बहुत उत्सुकता बताई। सुल्तान तो इस सीमा तक पहुंच गया कि उसने राज्य के अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण और प्रतिष्ठित पद—उदाहरणार्थ वजीर, दबीर, सैनिक अधिकारी, न्यायाधीश, धर्मशास्त्री या 'शेख-उल-इस्लाम' के पद थोड़े भी पढ़े-लिखे किसी भी विदेशी को दे दिये। हिन्दुस्तान में आने वाले सारे विदेशी 'सम्मानीय' (एज्जा)[1] कहे जाते थे। यदि विदेशियों ने इन अवसरों से लाभ नहीं उठाया तो दोष पूरी तरह उनका ही था। वे केवल धनोपार्जन का संकल्प लेकर और शीघ्रातिशीघ्र अपने देश लौटने की भावना से ही हिन्दुस्तान आये थे। उन्होंने राज्य की वेतनभोगी नौकरियां स्वीकार नही की, जिनके लिये उन्हें हिन्दुस्तान में दीर्घकाल तक ठहरना आवश्यक होता है। यहां तक कि यदि उनमें से कुछ हिन्दुस्तान में रहने का निर्णय कर भी लेते थे तो कृषि की उन्नति हेतु या शासनतंत्र को अधिक कुशल बनाने के लिए सुल्तान द्वारा निर्धारित उपायों का पालन करने के स्थान पर वे येन-केन-प्रकारेण धन एकत्र करने के लिए अधिक उत्सुक रहते थे।[2] इन विदेशियों के बारे में कुछ अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् मुहम्मद तुगलक अत्यन्त असंतुष्ट

1. इब्नबतूता का वर्णन तुलनीय, कि० रा०, द्वितीय, 78, वही 85 भी तुलनीय—कि किस प्रकार जब मुहम्मद तुगलक ने बाबर के अभियान के लिए प्रस्थान किया तो उसने विदेशियों को उपहार और पुरस्कार प्रदान किए और भारतीयों को नहीं।
2. विदेशियों की लाभ-प्राप्ति की प्रवृत्ति के बारे में जानने के लिए और किस प्रकार इब्नबतूता हिन्दुस्तान से बेईमानी से संपत्ति प्राप्त करने के कारण ईश्वर के प्रकोप से एक विदेशी शिहाब-उद-दीन के विनाश और दुर्भाग्य की कामना करता है—तुलनीय कि० रा०, द्वितीय, 41।

हुआ और पुन: उसने अपनी सारी नीति की समीक्षा की ।[1] अब उसे विदेशियों, यहां तक कि विदेशी नस्लों के लोगों से कुछ आशा नहीं रह गई; पूर्ववर्ती शासकों ने तुर्की अमीरों और भारतीयों को परख लिया था और अब उसने विदेशी मुस्लिमों को परख लिया। सब सल्तनत के लिये अयोग्य सिद्ध हुए थे। केवल एक ही मार्ग रह गया था कि जाति और धर्म के भेदभाव के बिना हिन्दुस्तान की सामान्य जनता को आजमाया जाय। अत: शासन के अन्तिम भाग में हम उसे प्रशासन में अति प्रजातांत्रिक सिद्धान्त लागू करते हुए पाते हैं, फलत: समकालीन इतिहासकार बरनी और अन्य मुस्लिम लेखकों का क्रोध भड़क उठा क्योंकि अब उनके स्वार्थ खतरे में पड़ गए थे। राज्य के उच्चतम असैनिक पद प्रत्येक वर्ग के भारतीय के लिये खोल दिये गए और कुशलता और प्रतिभा ही चुनाव के लिए एकमात्र अर्हताएँ हो गईं ।[2] केवल निम्नतम वर्ग ही राज्य की सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त करने से संभवत: वंचित रखे गये। उसके उत्तराधिकारी के समय हमें प्रथम भारतीय वजीर प्रसिद्ध खान-ए-जहान की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है। सुल्तान के अधीन यह सर्वोच्च पद था। एक सुदृढ़ प्रशासन की स्थापना के पश्चात् वजीर की शक्ति और स्थिति सुल्तान को छोड़कर सर्वोच्च थी। तुग़लकों के बाद तिमूर के आक्रमण और सैयदों के शासनकाल के संक्षिप्त विराम के पश्चात् जो शासक सिंहासनासीन हुए वे निश्चित रूप से भारतीय मूल के थे।

इसी समय हिन्दुओं और मुस्लिमों के मध्य सामाजिक और सांस्कृतिक समागम काफ़ी प्रगति कर चुका था, इसीलिये जब बाबर ने पदार्पण किया, तब उसे हिन्दुओं और मुस्लिमों की संयुक्त शक्ति से संघर्ष करना पड़ा ।[3] अकबर के हाथ में शासनसूत्र आने

---

1. तुलनीय ब०, 501 में मुहम्मद तुग़लक की अभ्युक्ति देखिये—कि किस प्रकार उसने 'पृथ्वी पर एक भी विदेशी को जीवित न छोड़ने' का निश्चय किया।
2. तुलनीय ब०, 505। तुलनीय कि प्रशासन के लिए चुने नये व्यक्तियों की सूची में सब वर्ग के नीच-कुलोत्पन्न व्यक्ति हैं—संगीतकार, साकी, नर्तक, नाई, रसोईये, कुंजड़े, जुलाहे, बागबान, बिसाती, दास और 'सब प्रकार के नीच लोग (बद-असल)'। यह भी तुलनीय कि सूची में आए कुछ हिन्दू नाम—जैसा ननका, लोधा, पीरा, किशन—संदेह से परे हैं। कुछेक प्रतिष्ठित भारतीयों के लिये देखिए : सुल्तान बलबन का बख्शी (मस्टर मास्टर) इमादुल्मुल्क (ब० पाण्डु०) 61 के अनुसार; करा में मुहम्मद तुग़लक का गवर्नर एनुल्मुल्क। एनुल्मुल्क ने जब विद्रोह किया तब सारे विदेशी (खुरासानी) उससे अत्यन्त भयभीत हुए 'क्योंकि वह एक भारतीय था, जो विदेशियों के आधिपत्य का विरोधी था' (कि० रा० द्वितीय, 64 के अनुसार)।
3. तुलनीय—बा० ना०, 23 जहां बाबर 'खान-ए-जहान' पदवी वाले एक हिन्दू का उल्लेख करता है जो ग्वालियर के पड़ोस में मुगलों को परेशान कर रहा था।

के समय अन्तिम अफ़गान युद्ध एक हिन्दू अमीर और सेनापति के सेनानायकत्व और नेतृत्व में लड़ा गया था।[1]

4. अमीरों और सुल्तान के मध्य व्यक्तिगत सम्बन्ध—सुल्तान और उसके अमीरों के मध्य निजी सम्बन्ध किस प्रकार के थे यह निश्चित करना कठिन है। जब अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में कोई अमीर सुल्तान का दास रहता था, सुल्तान की स्थिति स्वामी की होती थी; उनके सम्बन्ध, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्पष्टतः निर्भरता और सेवा-सम्बन्धी थे। सामाजिक जीवन की उस स्थिति में कोई व्यक्तिगत अधिकार या सुविधाएँ नहीं थीं। किन्तु जब दास, मुक्ति के पश्चात् सामाजिक सोपान पर पैर रखता था, तो औचित्य और मान्यतायें सुल्तान को बाध्य करती थीं कि वह उसके सामाजिक जीवन में अधिक हस्तक्षेप न करे। यह स्थिति अभी भी किसी प्रकार अधिक स्पष्ट नहीं थी। सुल्तान अपनी पूर्व स्थिति, जिसका प्रत्यक्ष विरोध अमीरों ने कभी नहीं किया था, कायम रखने के लिये जोर देता था। इस प्रकार ऐसी कोई सीमा-रेखा नहीं थी जहां से शासक की सत्ता का आधिपत्य समाप्त हो जाता और अमीर का निजी जीवन प्रारम्भ होता। संकटकाल में सुल्तान अमीरों के जीवन पर तत्परता से हस्तक्षेप करता था।[2] अपेक्षाकृत अच्छी और स्थिर परिस्थितियों में दोनों के बीच अधिक मेल रहता था। सुल्तान बहुधा एक संरक्षक और मित्र की तरह व्यवहार करता था। अपने अमीरों के मामलों में वह सहानुभूतिपूर्वक रुचि लेता था,

---

1. अफ़गानों के हिन्दू सेनानायक हेमू की शक्ति और प्रभाव का कुछ परिचय 'तारीख-ए-दाऊदी' के लेखक के कथन से प्राप्त किया जा सकता है, पाद-टिप्पणी, 121-122. जब कर्रानी सम्प्रदाय के अफ़गानों को पराजित कर हेमू सुल्तान अदली के पास पहुंचा तब सुल्तान ने उसे अनुग्रहों से लाद दिया और उसे विक्रमादित्य की उपाधि दी। कुछ समय पश्चात् शासक ने उसे राज्य के सारे अधिकार सौंप दिये। बात यहां तक बढ़ी कि निर्वाह के साधनों के अतिरिक्त सुल्तान के अन्तर्गत शायद ही कुछ रह गया। हाथी और कोष सब हेमू के नियंत्रण में चले गये। तुलनीय अ० ना०, प्रथम, 337 में अबुलफ़ज़ल द्वारा की गई हेमू की प्रशंसा भी।

2. सुल्तान नियमतः किसी अमीर के पुत्र के विवाह के समय परामर्श देता था; वास्तव में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अमीरों के लिये यह आवश्यक नियम बना दिया था कि वे आपस में किसी भी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व सुल्तान की आज्ञा लें। इसी प्रकार अलाउद्दीन ने बिना सम्मोदन के एक दूसरे से मिलने-जुलने या भोज या सामाजिक समारोहों में आमन्त्रित करने की मनाही कर दी थी। उसके आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन किया जाता था। ब०, 286-7 के अनुसार,; तुलनीय रेवर्टी, 767।

यहां तक कि उनके आपसी संघर्ष के समय उनका निपटारा भी करता था। परवर्ती सैयद और अफ़गान वंशों के समय सुल्तान का मूल नियन्त्रण शिथिल हो गया था और अमीरों की गतिविधियों पर कोई हस्तक्षेप न किया जाता था, जब तक कि राजनैतिक कारणों से ऐसा करने के लिये राज्य बाध्य न हो जाता।[1]

5. **अमीरवर्ग की संरचना**—सल्तनत के अन्तर्गत विभिन्न श्रेणियों के अमीरों की ठीक संख्या देना कठिन है।[2] जहां तक संरचना का प्रश्न है, वे एक प्रकार के विजातीय समुदाय थे जिसमें कई प्रकार के विदेशी और भारतीय सम्मिलित थे, जिनकी विशेषताएं और संख्या प्रत्येक शासकवंश के साथ ही परिवर्तित होती रहती थीं। मुस्लिम शासन के प्रारम्भ में प्रायः सब अमीर तुर्की नस्ल के थे। बाद में क्रमशः अफ़गान भी उसमें एकीकृत होते गये। कहा जाता है कि वे हसन अब्दाल और काबुल के मध्य के भूभाग रोह से भारत आये और वे स्वयं को गौर के सुल्तानों के वशंज बताते थे। फ़ीरोज़शाह तुग़लक पहला शासक था जो अफ़ग़ानों पर कृपावंत हुआ, यद्यपि अफ़ग़ान बहुत पहले हिन्दुस्तान में आकर बस गये थे।[3] मंगोल आक्रमणों के कारण कुछ मंगोल भी आ गये जिन्होंने इस्लाम अंगीकार कर लिया और प्रारम्भ में राज्य के कृपापात्र बने। उन्हें नौ-मुसलमान या 'इस्लाम में नव-दीक्षित' का नाम दिया गया। ऐसे कुछ नौ-मुसलमानों के गुजरात में विद्रोह करने के कारण अलाउद्दीन खिलजी ने सबका कत्ले-आम करा दिया।[4] तुग़लकों को 'मिश्रित नस्ल' का कहा जाता है, क्योंकि मूलतः वे सुल्तान बलबन के दास थे, जिसने हिन्दुस्तान के जाटों से

---

1. तुलनीय अ०, 411, कैसे फ़ीरोज़ तुग़लक अपने अमीरों से पेश आता था और उनके आपसी झगड़ों का निपटारा करता था; बंगाल के एक गवर्नर के विरुद्ध, जिसने बंगाल के एक भूतपूर्व शासक की पुत्री से विवाह कर लिया था और स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति प्रकट की थी, शेरशाह की कार्यवाही के लिये तुलनीय ता० शे० शा०, 57। शेरशाह ने उसे तुरन्त कठोर दण्ड दिया और कठोर दण्ड का भय दिखाकर अन्य सब लोगों को बिना उसके पूर्व-सम्मोदन के किसी पदच्युत राजपरिवार से सम्बन्ध स्थापित करने का निषेध कर दिया।
2. तुलनीय अ०, 109 बंगाल-अभियान के अवसर पर कई हज़ार लोगों ने फ़ीरोज़ तुग़लक का साथ दिया।
3. तुलनीय ता० फ०, प्रथम, 412, 281। पूर्ववर्ती संदर्भों के लिये देखिये अमीर खुसरो, जो आ० सि०, 37 में उनके चरित्र का आंकलन करता है; और इब्नबतूता, जो आजम के कबीले के रूप में उनका वर्णन करता है (कि० रा० प्रथम, 241 के अनुसार)। तिमूर कहता है कि वे पश्चिमी कश्मीर में वास करते थे (ज० ना०, 304 के अनुसार)।
4. विस्तृत वर्णन के लिये ब० 219 में बरनी का वर्णन तुलनीय।

अंतर्विवाह किये थे ।[1] पश्चात्कालीन मुग़ल विजयों से तत्कालीन अमीर वर्गों में अनेक फारसियों, मंगोलों और तुर्कों का पदार्पण हुआ । समुद्रतटीय नगरों, विशेषकर गुजरात के समुद्री तट पर विविध विदेशी मुस्लिम—अरब, अबीसीनियाई, फ़ारसी, अफ़गान, जावावासी, तुर्क, मिस्री, और अन्य लोग भी आकर बस गये और इन्होंने हिन्दुस्तान के उच्चवर्गीय मुस्लिमों की भिन्न-भिन्न जातीयता मे योगदान दिया ।[2] इन वर्गों में से अधिक महत्व के, प्रारम्भ मे तुर्क और अन्तिम काल मे अफ़गान और मुग़ल लोग थे। मुग़लों और अफ़गानों के आपस के सम्बन्ध कुछ समय तक सुखद नहीं रहे, जब तक कि अन्त में कालक्रम ने द्वेष दूर करके अफ़गानों को मुग़लों के आधिपत्य में रहने के लिये राजी न कर दिया ।[3] इन वर्गों में हम राजपूताना के राजपूत सरदारों को भी सम्मिलित कर सकते हैं जो दृढ़ता से मुस्लिम आधिपत्य का तब तक प्रतिरोध करते रहे, जब तक कि अन्त मे सल्तनत ने उनकी प्रतिष्ठा मान्य न कर ली। इस काल के प्रारम्भ में हमें इन सरदारों का उल्लेख सुल्तान के दरबार में या सुल्तान के राजप्रतिनिधियों के दरबार में अधीनस्थ के रूप में मिलता है । काल के अन्त में दिल्ली के शासकों और नवीन प्रांतीय राजवंशों—जैसे, गुजरात और मालवा, से उनके सम्बन्ध अच्छे रहे ।[4]

II. उलमा और धार्मिक वर्ग

इस्लाम का धार्मिक वर्ग अनेक महत्वपूर्ण दलों, जैसे, धर्मशास्त्रियों, सन्यासियों, सैयदों, पीरों और उनके वंशजों से मिलकर बना था। इनमें धर्मशास्त्री सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे । राज्य में इनके कार्यों और इनकी स्थिति के सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है । धर्मशास्त्री, जो राज्य के न्यायालयीन और धार्मिक पदों पर थे, समग्र

1. तुलनीय ता० फ०, प्रथम, 230-31 ।
2. तुलनीय बरबोसा प्रथम, 119-120; रास भी देखिये ज० वा०, द्वितीय, इकतीसवां, की भूमिका ।
3. तुलनीय अफ़गानों द्वारा हुमायू के भारत-निष्कासन के समय एक यान्‍ बैरमखां की जीवन रक्षा करने वाले ईमाखां नामक एक अफ़गान अमीर की रोचक कथा के लिए ता० शे० शा०, 54 । जब अकबर के संरक्षक के रूप मे बैरमखां के हाथ मे शक्ति आई, उस अफ़गान अमीर ने अपने अभाव और दारिद्र्य के बावजूद भी एक मुग़ल के अनुग्रह से इन्कार कर दिया क्योंकि यह एक अफ़गान के आत्मसम्मान के लिए अपमानजनक था ।
4. सलीम शाह सूर और ग्वालियर के राजा के मध्य निजी सम्बन्धों का एक रोचक उदाहरण ता० दा०, 110-111 । हिन्दू सरदारों की पूर्ववर्ती मान्यता के लिए तुलनीय ता० फ०, प्रथम, 128, देवगिरि के राजा के साथ अलाउद्दीन का व्यवहार तुलनीय, ता० फ० प्रथम, 206, फीरोजशाह के लिए ब०, 587-588 ।

रूप से 'दस्तार-बन्दान' या पगड़ीधारी कहे जाते थे, क्योंकि वे अपने पद की प्रतीक पगड़ी धारण करते थे, सैयदों की पहिचान उनके सिर की विशेष नुकीली टोपी या 'कुलाह' थी और उन्हें 'कुलाह-दारान' या टोपीधारी कहा जाता था।[1] विशेष शिरोवस्त्रों वाले इन दोनों दलों की राज्य में स्वीकृत प्रतिष्ठा थी क्योंकि ये कट्टरपन्थी इस्लाम के व्याख्याकार थे। ये दोनों इस्लाम की सुन्नी शाखा के और मुस्लिम कानून की हनफी विचारधारा के अनुयायी थे। सुन्नी कानून की अन्य विचारधाराएँ निषिद्ध न होने पर भी प्रोत्साहित न की जाती थीं। मुहम्मद के चौथे खलीफा के रूप में अली का और पैगम्बर के वंशज बताने वाले हर व्यक्ति का सम्मान साधारण बात थी, किन्तु शियाओं पर धर्मविरोध और अविश्वास का आरोप लगाकर अत्याचार किए जाते थे। इस काल के अन्त में ही मुख्यतः फ़ारसी प्रभाव और मुग़ल सम्राटों के कारण ही शिया लोगों पर अत्याचार का अन्त हुआ, यद्यपि सुन्नी मत की राजकीय और सर्वोच्च स्थिति अभी भी बनी रही। अन्य धार्मिक दल धर्मशास्त्रियों और सैयदों के समान सुस्पष्ट नहीं थे। अलग से इन दलों के सम्बन्ध में निम्नलिखित रूप से विचार किया जा सकता है।

1. **उलमा**—जैसा कि पहले अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है, सल्तनत के विशेष कृपापात्र और सहयोगी उलमा या राजकीय धर्मशास्त्री थे। उन्होंने नियमतः मुस्लिम कानून, तर्कशास्त्र, अरबी और सामान्य रूप से इस्लाम के धार्मिक साहित्य-तफ़सीर, हदीस, कलाम इत्यादि का प्रशिक्षण प्राप्त किया था।[2] यद्यपि कुरान सामान्यतः उनकी स्थिति के बारे में यह जोर देती है कि वे ऐसे अलग वर्ग के हैं जो 'लोगों को सन्मार्ग पर लगाते हैं', तथापि उनके लिए कुरान में कोई विशेष प्रावधान नहीं किया गया था।[3] शीघ्र ही लोगों के बीच मिथ्या परम्पराएँ प्रचलित होने लगीं। कहा जाने लगा कि पैगम्बर ने कहा है: 'उलमा का सम्मान करो, क्योंकि वे पैगम्बर के उत्तराधिकारी हैं; जो उनका सम्मान करता है वह इस्लाम के पैगम्बर और अल्लाह का सम्मान करता है' धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने पर मिलने वाली विचित्र प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही जोर दिया गया।[4]

---

1. रेवर्टी, 705।
2. उन्हें 'पगड़ीधारी' उपनाम देने का कारण सम्भवतः यह है कि उन्होंने एक निश्चित शैक्षणिक पाठ्यक्रम पूरा किया, जिसके अन्त में एक पगड़ी प्रदान की जाती है। यह आधुनिक काल के विश्वविद्यालयीन दीक्षान्त समारोह में उपाधि दिये जाने के समान है।
3. पवित्र कुरान 3 : 103।
4. तुलनीय ता० मा० (द्वितीय), 82. 3। धार्मिक शिक्षा और विशेषकर मुस्लिम कानून के सम्बन्ध में मुहम्मद का तथाकथित कथन इस प्रकार है:

हिन्दुस्तान में मुस्लिम समाज के विकास की विशेष परिस्थितियों में यह आशा करना स्वाभाविक था कि उलमा अनुचित प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगा। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के पहले किसी भी शासक में उलमा की बढ़ती हुई शक्ति पर अंकुश लगाने का साहस नहीं था, यद्यपि उलमा कभी-कभी सुल्तान के हितों के विरुद्ध भी कार्य कर देता था।[1] सुल्तान अलाउद्दीन ने सल्तनत के अन्तर्गत उलमा के ठीक कार्यों की परिभाषा करने और उनके सारे कार्यकलाप केवल निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत सीमित रखने के लिए उन्हें बाध्य करना आवश्यक समझा। ये सीमाएँ इस प्रकार थीं: न्यायिक मामलों में निर्णय देना और शुद्ध धार्मिक मामलों में मध्यस्थ का कार्य करना, अन्य सारे मामले उनके क्षेत्र से बाहर रखे गए थे।[2] किन्तु सारी वास्तविक शक्ति सुल्तान के हाथ में थी और यद्यपि वह यदाकदा सूफियों को अनुगृहीत कर देता था, वह परिस्थिति की मांग के अनुसार बड़ी कठोरता से शासन करता था और धार्मिक बातों का उसके सम्मुख कोई स्थान नहीं था। मुहम्मद तुगलक राज्य को धर्मनिरपेक्ष बनाने में एक कदम आगे बढ़ना चाहता था। उसने उलमा को बिल्कुल उसी दर्जे पर रखा जिस पर राज्य के अन्य कर्मचारियों को रखा गया था और वैसा ही उनसे व्यवहार भी किया।[3] फीरोज तुगलक के आगमन के साथ लहर उलमा के कुछ पक्ष में मुड़ी और राजकीय मंत्रणा में धार्मिक प्रभाव की वृद्धि होने लगी। धर्म-

---

तीन में से एक दल में सम्मिलित होना मत भूलो, कानून का शिक्षक, कानून का विद्यार्थी या कम से कम वह जो उसकी व्याख्या को धैर्यपूर्वक सुनता है, क्योंकि, वास्तव में, जो उपर्युक्त में से किसी भी श्रेणी में नहीं आता, उसका विनाश निश्चित है।

1. *तुलनीय हसन निजामी ता० मा० (प्रथम), 56 (द्वितीय), 118 (चतुर्थ),* 112, 203 में गोर के मुहम्मद बिन साम और कुतुबुद्दीन ऐबक का रुख; बंगाल की विजय के पश्चात् ही नासिरुद्दीन महमूद के उपहारों के लिए तुलनीय रेवर्टी 620, *तुलनीय रेवर्टी 709 कैसे दिल्ली के उलमा ने कुतलुग खान और* इज्जुद्दीन के नेतृत्व में अमीरों के एक दल को सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की दिल्ली को अधिकृत करने के लिए आमन्त्रित किया। तुलनीय ब० 47, कैसे सुल्तान *बलबन स्वयं उलमा के यहां जाता था और उनमें से किसी की मृत्यु हो जाने पर* उसके अन्तिम संस्कार में उपस्थित होता था। इसी प्रकार वह मृत धर्मशास्त्रियों के परिवारों को सहायता देता था।
2. तुलनीय ता० फ०, प्रथम, 192।
3. एक रोचक मामले के लिए तुलनीय फि० रा०, द्वितीय, 54 जिसमें सिंध के कुछ धर्मशास्त्री सरकारी निधि की खयानत करने के दोषी ठहराए गए थे और कठोरता से दण्डित किये गए थे।

शास्त्रियों ने मुहम्मद तुगलक की बहुसंख्यक असफलताओं का लाभ उठाया और उसके उत्तराधिकारी को राज्य की नीति के मामलों में अपनी सलाह मानने के लिए उकसाया।[1] अनेक कानूनी पुस्तकों की रचना की गई, धार्मिक विद्यालयों और अन्य संस्थाओं को एक नवीन प्रोत्साहन दिया गया और तिमूर के आक्रमण के समय तक उलमा ने अपनी पूर्वस्थिति और प्रभाव पुनः प्राप्त कर लिया था। किन्तु राज्य इतना सुसंगठित था कि अपेक्षाकृत कम महत्त्व के कुछ मामलों को छोड़ कर अन्य मामलों में धार्मिक वर्ग का प्रभाव नगण्य था। अफ़गानों ने सत्ता सम्पन्न होने पर उलमा से सम्मानपूर्ण व्यवहार किया किन्तु प्रशासन में उनकी किसी भी प्रभावकारी आवाज़ को प्रवेश नहीं करने दिया। इसके विपरीत उन्होंने धर्मशास्त्रियों के धार्मिक प्रभाव का प्रयोग अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया।[2]

पूर्ववर्ती एक अध्याय में हमने स्पष्ट कर दिया है कि मुस्लिमों के धार्मिक जीवन पर सल्तनत की प्रतिस्थापना की क्या प्रतिक्रिया हुई और कैसे उलमा ने स्वयं सल्तनत से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हो कर सल्तनत की निश्चित रूप से उपयोगी सेवा की। आइए हम देखें कि भारत के मुस्लिमों के आध्यात्मिक और धार्मिक नेतृत्व करने वाले उलमा के नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर इस प्रतिक्रिया क्या प्रभाव पड़ा। इस्लाम-धर्म अपने अनुयायियों के लिये जीवन की एक व्यापक संहिता प्रस्तुत करता है। इस प्रकार उसके नेतृत्व का प्रश्न सदाचार के मोटे प्रश्नों और मुस्लिम समुदाय के नैतिक दृष्टिकोण से घनिष्ठ रूप से मिला-जुला है, और इसलिये उस पर सावधानी से विचार करना आवश्यक है। उलमा ने मुस्लिमों को सदाचार और पवित्रता का मार्ग दिखाने का कार्य त्याग दिया। सुल्तान बलबन की शिकायत थी कि समग्र उलमा वर्ग में सत्यता और साहस की कमी है।[3] बुघराखां को यह जानकर दुःख ही हुआ कि 'गैर इस्लामी' और अनीश्वरवादी धर्मशास्त्रियों ने उसके पुत्र सुल्तान मुईज़ुद्दीन कैकुबाद को रमज़ान के अनिवार्य उपवास का पालन करने से विमुख कर दिया और केवल 'अभिशप्त स्वर्ण' के लोभ के कारण उन्होंने कुरान के

1. तुलनीय ब० 580, फ़ीरोज़ तुगलक द्वारा बंगाल के शासक पर विजय प्राप्त करने पर बंगाल के उलमा को धन देने के आमन्त्रण के लिए ज० ए० सो० बं०, उन्नीसवां, 280।

2. शेरशाह द्वारा सुरक्षा की पवित्र प्रतिज्ञाओं और तदर्थ कुरान की शपथ के आधार पर पूरनमल और उसके चार हज़ार सैनिकों को उनके दुर्ग से बाहर निकालकर उनकी हत्या कराने का एक शिक्षाप्रद दृष्टान्त देखिए। उलमा ने भारत के सम्पूर्ण इतिहास में निकृष्टतम और अत्यन्त अपमानजनक इस कार्य को नियमानुकूल घोषित करते हुए एक फतवा (वैध-अनुदेश) जारी किया।

3. तुलनीय ब०, 94।

आदेशों को जानबूझकर तोड़-मरोड़ दिया। उसने अपने पुत्र को इन झूठे उलमाओं का विश्वास न करने की चेतावनी दी और इन धर्मशास्त्रियों से स्वयं को परे रखने के लिए कहा। इन उलमाओं को उसने 'ऐसे लोभी धूर्त कहकर सम्बोधित किया जिनकी सबसे प्रिय वस्तु परलोक नहीं वल्कि इहलोक था'। इसके विपरीत बुघराखां ने अपने पुत्र को उनकी संगति करने की सलाह दी, जिन्होंने संसार त्याग दिया है।[1] मुहम्मद तुगलक के विचार भी ऐसे ही थे। शासकों द्वारा किये गये उलमा के आकलन के साथ ही, आइए, हम देखें कि अमीर खुसरो, जो स्वयं एक कट्टरपन्थी मुस्लिम और चतुर पर्यवेक्षक है, इनके बारे में क्या कहता है। वह अपना ठोस मत देता है कि काजी (या वे उलमा जो न्यायिक पद पर थे) मुस्लिम कानून के सिद्धान्तों से एकदम अनभिज्ञ है और वे राज्य के किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण पद के लिये अयोग्य है। उसके अनुसार वे न तो विद्वान थे न सदाचारी ही। शासक के अत्याचारी होने पर उलमा उसे अवश्य सहयोग देते थे। व्यक्तिगत जीवन में वे धार्मिक आदेशों की पूर्णतः उपेक्षा करते थे और पाप करने और इस्लाम के नियमों का उल्लंघन करने से नहीं हिचकते थे। अमीर खुसरो के अनुसार एक वर्ग के रूप में, धर्मशास्त्रियों की एकमात्र विशेषता थी उनका ढोंग, आडम्बर और अहंकार। वह सारी स्थिति को संक्षेप में इस प्रकार रखता है कि उलमा का सम्मान केवल परम्परा पर आधारित था, और यदि वास्तविक सद्‌गुण ही समाजिक सम्मान का मापदण्ड हो तो 'बेरोजगारी पुरोहितों से हजार गुनी श्रेष्ठ है।'[2] वैसे ये आकलन उथले और अत्यंत कटु है,

---

1. तुलनीय वहीं, 151-53; सुल्तान मुहम्मद तुगलक के गभीर मत के लिये सुल्तान के संस्मरण, 317 भी। उसके अनुसार उसके समय के उलमा एकदम अधार्मिक थे। वे सत्य को छुपाने के लिये कुख्यात थे और धन के प्रति उनके लाभ ने उन्हें दुराचारी और नास्तिक बना दिया था। वे साधारण स्वार्थ सिद्ध करने वालों की स्थिति में उतर आये थे। संक्षेप में, इस्लाम का मान और धार्मिक एकनिष्ठा पृथ्वी से उठ गई थी।

2. विस्तृत चर्चा के लिये तुलनीय म० अ०, 55-60, 69; विद्वान धर्मशास्त्रियों के वर्ग में स्थान रखने वाले इतिहासकार बरनी की व्यक्तिगत स्वीकारोक्ति के लिये तुलनीय बरनी (व०, 116)। वह कहता है कि अपने वर्ग के अन्य लोगों के साथ स्वयं उसने शासक की इच्छाओं को पूरा करने के उद्देश्य से, जानबूझकर कुरान की आयतों के अर्थ की खींचतान करके इस्लाम के धार्मिक आदेशों का उल्लंघन करने में सुल्तान की क्रियात्मक रूप से सहायता की थी। पश्चाताप करते हुए यह विद्वान कहता है 'मैं नहीं जानता कि अन्यों के ऊपर क्या बीतेगी, किन्तु वृद्धावस्था में मेरा वर्तमान दुर्भाग्य और क्लेश मेरी कथनी और करनी का फल है।'

किन्तु चूँकि ये उनके द्वारा किये गये हैं जिनके हित उलमा के हितों से भिन्न नहीं थे, ये अत्यंत विचारणीय हैं ।

2. सैयद—मुस्लिम समाज में ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक सैयद में एक विलक्षण पवित्रता का समावेश है, संभवतः इसलिये कि वह पैगम्बर का कथित वंशज है । मुसलमान अपने पैगम्बर की स्मृति का बहुधा अतिशयोक्तिपूर्ण सम्मान करते हैं, जिसका कुछ अंश हर उस व्यक्ति को मिल जाता है जो मुहम्मद की पुत्री फातिमा के ज़रिये मुहम्मद का वंशज होने का दावा करता है ।[1] अब्बासिदों के अभ्युत्थान और इस्लाम में शिया-आंदोलनों के प्रसार ने सैयदों की नैतिक स्थिति को दृढ़ बनाने में बहुत योग दिया है । सैयदों के प्रति आदर की भावना सल्तनत के प्रारंभ से ही प्रबल थी, यद्यपि उसके सदस्यों की संख्या अधिक नहीं थी । अपनी मातृभूमि में मंगोलों की लूट-पाट से बचने के लिए बहुसंख्यक सैयद हिंदुस्तान में आश्रय प्राप्त करने आये और सुल्तान बलबन ने उनका खुशी से स्वागत किया ।[2] जोसेफ के भाईयों के समान अन्य सैयद दिल्ली के मुस्लिम राज्य में इन अवसरों का लाभ उठाने में पीछे नहीं रहे । एक ऐसे प्रदेश में, जो ब्राह्मण पुरोहितवर्ग के विशेषाधिकारों का अभ्यस्त रहा हो, इन सुविधाप्राप्त अभ्यागतों के प्रति अतिशयोक्तिपूर्ण और बिना भेदभाव के आदर मिलना आश्चर्य की बात नहीं थी । प्रत्येक सैयद, पैगम्बर के परिवार का वंशज होने के नाते साहसी, सत्यवादी, पवित्र और अन्य श्रेष्ठ गुणों से युक्त माना जाता था । सैयद से छोटा-मोटा काम कराना यदि पाप नहीं तो बिलकुल अनुचित तो समझा ही जाता था ।[3] ऐसा विश्वास था कि सैयदों को तंत्र-विद्याओं और अलौकिक रहस्यों का ज्ञान है । इसलिए घमण्डी शासक भी उनके समक्ष विनीत होने में नहीं हिचकते थे ।[4] 1398 ई० के तिमूर के आक्रमण के पश्चात् दिल्ली के सिंहासन

1. तुलनीय सैयद के प्रति पूर्ववर्ती भावनाओं के लिए हसन निजामी ता० मा० (द्वितीय) । उसके पूर्वजों पर यासरिब और बाथा (अरब के पवित्र स्थान) को घमण्ड था और उसके पूर्वज मुस्लिम मुल्लाओं के और मस्जिदों में मंचों के श्रृंगार थे ।
2. तुलनीय ब०, 111 ।
3. तुलनीय उदाहरणार्थ ता० मु० शा० 431, अमीर खुसरो की एक सैयद से क्षमा-प्रार्थना और उस वर्ग के प्रति उसकी भावनाएं भी तुलनीय हैं । कु० खु०, 463, बरनी का विवरण भी ब० 349 ।
4. तुलनीय हिंदुस्तान आए हुए मखदूम जादा या खलीफा के पुत्र के प्रति मुहम्मद तुगलक द्वारा प्रदर्शित किया गया अत्यन्त चाटुकारितापूर्ण सम्मान (बरनी के वर्णन में और ता० फ०, प्रथम, 271-72 में) । कुछ बातों में सैयदों के प्रति तैमूर का रुख अधिक मनोरंजक है । भारतीय आक्रमणों के सब वर्णनों के अनुसार अपने अभियान के समय उसने सदैव सैयदों और अन्य धार्मिक मुस्लिमों की जीवनरक्षा की, जबकि उसने अन्य लोगों का बिना किसी भेदभाव के बर्बरता

पर एक राजवंश स्थापित करने में सैयद एकबारगी सफल भी हो गये। दुर्भाग्य से वे इस कार्य के लिए अयोग्य थे और उनके अंतिम शासक ने चुपचाप सिंहासन त्याग दिया तथा लज्जाजनक ढंग से बदायूं के अक़्ता में आश्रय लिया। राजनैनिक शक्ति का ह्रास होने के बावजूद भी एक वर्ग के रूप में सैयदों की सामाजिक स्थिति को आघात नहीं पहुंचा और अफ़गान उत्तराधिकारियों ने सावधानी से और अंधविश्वास से भी सैयदों को दी गई रियायतों और विशेष सुविधाओं का समादर किया।[1]

3. **अन्य धार्मिक दल**—हम पीछे यह उल्लेख कर आये हैं कि किस प्रकार बुग़राखां ने अपने पुत्र को उन लोगों की संगति करने की सलाह दी जिन्होंने संसार त्याग दिया है। हम ऊपर इस तथ्य की ओर भी संकेत कर आये हैं कि मुसलमानों का एक वर्ग इस्लाम के मूल आदर्शों का अनुसरण करता था और सामान्य रूप से वैराग्य तथा पारलौकिक साधनाओं का पालन करता था। जब इन मुसलमानों ने अपने आदर्शों के अनुसार जीवनयापन करने का हठ किया, तो इस्लाम के अनुयायियों के हृदय में उनके प्रति एक विचित्र आतंक और गंभीर सम्मान उत्पन्न हो गया क्योंकि मुसलमानों के भौतिक वातावरण के मध्य आदिमस्वरूप के प्रति यह लगाव एक विशेष आकर्षण रखता था। हिन्दुस्तान 'गुरु' के आदर्श से परिचित था ही।

के साथ क़त्ल कराया। वास्तव में, यह गंभीरतापूर्वक कहा जाता है (म० 5 के अनुसार) कि ट्रांसआक्सियाना के अधिपति अब्दुल्ला को तिमूर, जिसे वह मनुष्यों का रक्त बहाने वाला बर्बर समझता था, की आत्मा के लिए प्रार्थना करने में जब कुछ आशंका हुई, अल्लाह का दूत स्वयं उसे स्वप्न में यह विश्वास दिलाने आया कि उसकी आशंका निर्मूल है क्योंकि तिमूर ने अल्लाह की सेवा के लिए मनुष्यों का वध कराते समय, सदैव उसके वंशजों की जीवन-रक्षा की है। धार्मिक वर्ग के प्रति तिमूर के प्रेम और उसके आध्यात्मिक दृष्टिकोण ने उसके इतिहासकार की लेखनी को कुछ अति रोचक पद्य लिखने की प्रेरणा दी, जो एक ऐसे औसत मुस्लिम सुल्तान के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रकट करती है जो योगियों और सन्यासियों की शक्ति पर धर्म 'धुरंधरों' के सत्संग तथा सयदों के आशीर्वाद पर विश्वास रखता था। (जा० मु०, 6 के अनुसार)।

1. तुलनीय कोइल के एक सैयद के रोचक मामले के लिए वा० मु०, 26 जो अत्यन्त ठोस आधार पर सरकारी राजस्व की ख़यानत करने का दोषी ठहराया गया था, और सुल्तान सिकन्दर लोदी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। सुल्तान ने उसे मुक्त कर दिया, यहां तक कि उसे बेईमानी से प्राप्त किया धन रखने की अनुमति भी दे दी। सलीमशाह सूरी की भावनाओं के लिये मु० त०, प्रथम, 391-92 भी तुलनीय, जिसने अति विनयशीलता प्रकट करने के लिए एक सैयद के जूते उठाकर ले जाने की इच्छा प्रकट की थी।

इसकी उपयुक्त अभिव्यक्ति मुस्लिम समाज में 'पीर' या 'शेख' पर मिलते-जुलते विश्वास में दृष्टिगोचर होती है। यदि किसी सन्यासी ने अपने जीवनकाल में संसार का तिरस्कार किया था, तो उसके पुत्र और उत्तराधिकारी उसकी मृत्यु के पश्चात् सांसारिक सुखों का आनन्द उठा रहे थे। पीरों के वंशज 'पीरज़ादे' और शेखों के वंशज 'मखदूमज़ादे' धर्मोपदेशकों का स्थान ग्रहण करने लगे, विशेषकर इसलिए कि उलमा का नैतिक पतन हो रहा था। वे धर्मशास्त्रियों का स्थान लेने लगे और कालांतर में उन्होंने 'इस्लाम के ब्राह्मणों' का पद प्राप्त कर लिया।[1] हिन्दू योगियों और सन्यासियों को भी नहीं विस्मृत किया गया था। यदि मुसलमान तंत्र-विद्याओं या रहस्यमय तत्त्वों पर विश्वास करते थे तो योगियों के पास उससे कहीं प्राचीन परम्परा और श्रेष्ठ व्यावसायिक साधन थे। मुस्लिम सूफ़ी प्रेरणा और मार्गदर्शन के लिए हिन्दू साधुओं, सन्यासियों और योगियों से निकट संपर्क रखते थे, किन्तु ज्ञान के अपने इन स्रोतों को सदैव जनसाधारण में प्रकट नहीं करते थे।[2] मुस्लिम शासक भी अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति में सहायता प्राप्त करने के लिए मुस्लिम संतों के साथ ही हिन्दू सन्यासियों के पास जाने से नहीं चूकता था।[3] हिन्दू मुस्लिम समागम के इस पहलू की विस्तृत चर्चा वैसे हमारे क्षेत्र के बाहर है।

III. भृत्य और दास

मुस्लिम सामाजिक वर्गों की संगणना में हम घरेलू नौकर-चाकरों और दासों के महत्त्वपूर्ण वर्ग का सुविधापूर्वक विवेचन कर सकते हैं। ये प्रत्येक सम्मानित मुस्लिम परिवार के परिचित अंग थे, और जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, संयोग से

---

1. तुलनीय ता० दा०, 57 जहां एक अफ़ग़ान अमीर एक हिन्दू अमीर को स्पष्ट करता है कि मुसलमानों में 'शेखजादा' का वही स्थान है जैसा कि हिन्दू समाज में ब्राह्मण का है। वहलोल लोदी के कुछ अमीरों के मत के लिए तुलनीय वा० मु०, 45 जिन्होंने अपने पीर के पुत्र (पीरजादा) के बैठने हेतु उसकी रजामंदी पर अपने सिर तक प्रस्तुत करने की बात की।
2. तुलनीय अन्य पुस्तकों के साथ शेख सदुद्दीन के सहाइफ़ और शेख बहाउद्दीन नाथू के सहाइफ़-उत्-तरीका (ब्रि० म्यू० पाण्डु०) में कुछ रोचक निष्कर्ष। भारतीय सूफ़ीवाद की अभी तक सावधानी से परीक्षा नहीं की गई है। मुस्लिम लेखक सूफ़ीवाद सम्बन्धी अपनी पूर्व-धारणाओं के वशीभूत होकर इस मत का विरोध करते हैं (अब्दुल मजीद, तसव्वुफ़-ए-इस्लाम, उर्दू, आजमगढ़)।
3. तुलनीय उदाहरण के लिए इब्नबतूता में योगियों का और मुहम्मद तुगलक के समक्ष उनके रहस्यमय प्रदर्शनों का रोचक वर्णन। कि० रा०, द्वितीय, 99 सिख परम्परा और मेकालिफ़ में बाबर की नानक से भेंट भी तुलनीय है।

हिन्दुस्तान की मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि में इन्होंने योग दिया।[1] अमीरों का जीवन युद्ध (रज़्म) और विलास (बज़्म) में इतना लिप्त रहता था कि उन्हें अपने व्यक्तिगत और घरू कार्यों की ओर देखने का शायद ही समय मिल पाता हो। समय के प्रवाह के साथ सामाजिक व्यवहार की दृष्टि में घरेलू कार्य एक सज्जन व्यक्ति के गौरव और सम्मान के अयोग्य समझे जाने लगे।

इन घरेलू चाकरों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शाखा में पुरुष और स्त्री दास आते थे। भारत में दास विभिन्न देशों से आयात किये जाते थे; तुर्किस्तान और भारत के दासों ने समस्त पूर्व में विशेष प्राचीन नेकनामी प्राप्त कर ली थी।[2] भारतीय मूल के दासों में असम के दासों का, उनकी मजबूत देह और सहनशक्ति के कारण, विशेष मूल्य था और उनकी कीमत अन्य देशों के दासों से कई गुनी अधिक रहती थी।[3] अन्य भारतीय दास महंगे नहीं थे; कई बातों में वे बहुत कुशल थे, कोई दोष उनमें था तो यह कि उन्हें अपने प्राचीन विश्वास और संस्कृति के प्रति गहरा लगाव था।[4] हरम की स्त्री-सदस्यों की देखरेख के लिये एक विशेष वर्ग के दास रखे गये थे। ये बहुधा बाल्यावस्था में ही क्रय कर लिये जाते और नपुंसक बना दिये जाते थे। हिजड़ों का व्यापार बंगाल में तेरहवीं शती में किया जाता था। ये कभी-कभी सुदूर मलय द्वीपों से भी आयात किये जाते थे।[5]

स्त्री-दास दो प्रकार की होती थी, एक तो वे जो घरेलू और टहल के कामों के लिये नियुक्त की जाती थी और दूसरी वे जो साहचर्य या सुखभोग के लिये खरीदी जाती थी। पहले इस प्रकार की दास-स्त्रियां, जो अशिक्षित और अकुशल होती थीं और मात्र मोटे घरेलू कार्यों के लिये खरीदी जाती थीं, बहुधा हर प्रकार से अपमानित होती थीं।[6] दूसरे प्रकार की दास-स्त्रियों की स्थिति अधिक सम्मानपूर्ण थी और कभी-कभी तो राजपरिवार में प्रभावशाली भी होती थी। भारत की दास-युवतियों के अलावा दास-स्त्रियां चीन और तुर्किस्तान से भी आयात की जाती थीं।[7] सामान्यतः स्त्री-दासों

---

1. तुलनीय अमीरों के कामों के सम्बन्ध में सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी के विचारों के लिए देखिये ब०, 192. अलाउद्दीन के अन्तर्गत भी वही, 226। सैनिकों के वेश्यागृहों के प्रति शौक के लिये तुलनीय ता० दा०, 82।
2. तुलनीय कि० रा०, 240।
3. वही, द्वितीय, 141।
4. तुलनीय भारतीय दासों की कुशलता के लिए देखिये नोतिसेज़ इत्यादि, 200; उनके दोषों के बारे में अमीर खुसरो का मत इ० खु०, प्रथम, 69 देखिये।
5. तुलनीय यूले, द्वितीय, 115, बरबोसा, द्वितीय, 147।
6. अमीर खुसरो की अभ्युक्ति तुलनीय। इ० खु० चतुर्थ, 334, 169-170; फि० फी० 47 ब०।
7. तुलनीय वही, प्रथम, 166-67।

में से चुनाव—जैसा कि एक मुगल अमीर ने विनोदपूर्वक सुझाया है—इस पद्धति से किया जाता था : 'खुरासानी स्त्री को उसके कार्य के लिये, हिन्दू स्त्री को उसकी शिशुपालन की योग्यता के लिये, फ़ारसी स्त्री को विषयभोग के लिये, और अन्य ट्रांसआक्सियानी को अन्य तीनों को चेतावनी देने हेतु चाबुक से मारने के लिये खरीदो'।[1]

कुछ काल पश्चात् दासों को रखना सामान्य बात हो गई और यह केवल मुसलमानों तक ही सीमित नहीं रहा। हिन्दू अमीर और सरदार सैनिक कार्यों और घरेलू कार्यों के लिये दास रखने लगे।[2] यहां तक कि दक्षिण में वारांगनाएं भी सेवा-चाकरी के लिये दास रखने लगीं।[3] पिछली शती के समाप्त होते-होते भी राजपूताना की देशी रियासतों में दास प्रथा पहले के समान विद्यमान थी।[4]

दासों की सामाजिक स्थिति—सामान्यतः यह अनुमान किया जाता है कि हिन्दुस्तान में मुस्लिम शासन के अन्तर्गत दासों की कोई निश्चित स्थिति नहीं थी और न ही उन्हें कोई निश्चित अधिकार प्राप्त थे। किन्तु तथ्यों से इस मत की पुष्टि नहीं होती। सैद्धान्तिक रूप से चूँकि दास धर्मपरिवर्तित मुसलमान होता था, उसे वे ही अधिकार प्राप्त थे जो भाईचारे और समानता के लिये विख्यात मुस्लिम समाज के अन्य सदस्यों को थे। इस प्रकार, उनके नैतिक दावों को चाहे यथावश्यक और पूर्ण

---

1. तुलनीय ब्लाकमेन, प्रथम, 327।
2. तुलनीय ता० मु० शा०, 459; सरकार, 113।
3. तुलनीय मेजर, 29।
4. तुलनीय मेवाड़ के दासों पर विस्तृत चर्चा के लिये टॉड, प्रथम, 207-210, कृषि सम्बन्धी बन्धनों (जिसे बसाई कहते हैं और जिससे मुक्त हुआ जा सकता है) के अलावा अन्य रूपों में भी दास प्रथा विद्यमान थी। दासों को सामान्यतः 'गोला' (सम्भवतः गुलाम का संक्षिप्त रूप ?) और 'दास' कहा जाता था। गोला ऐसे गुलाम थे जिन्हें स्वतन्त्रता नहीं थी और 'दास' शासक के ऐसे अवैध पुत्र थे जिन्हें राज्य में कोई दर्जा या कानूनी स्थिति प्राप्त नहीं थी, यद्यपि राजा उदारता से उन्हें व्यय के लिये धन देता था। गुलामों (गोलों और दासों—दोनों) के विवाह उनके अपने वर्गों तक ही सीमित थे। उनकी सन्तानें भी गुलाम होतीं और उनकी मां के दर्जे के अनुसार—कि वह राजपूतनी, मुसलमान या निम्न कबीलों में से है—उनका जनसाधारण में आदर होता था। गुलामों की अपनी एक अलग जाति थी जिसमें किसी जाति के चिर-परिचित लाभालाभ थे और सामाजिक कलंक का कुछ अंश भी उसमें निहित था। टॉड इस तथ्य का समर्थन करते हैं कि मेवाड़ में अच्छा व्यवहार किया जाता था और 'जिस सरदार की वे संतान होते थे' उसके निकट गोपनीय पद भी उन्हें प्राप्त थे। पहचान स्वरूप वे बाएं टकने में चांदी का एक कड़ा पहनते थे।

मान्यता न मिल सकी हो, किन्तु उन्हें कभी इन्कार नहीं किया जा सका।[1] यदि वह मूलतः हिन्दू और सम्भवतः निम्न-जाति का होता तो यह सामाजिक परिवर्तन निश्चित रूप में अच्छे के लिये था। यदि वह उच्च-जाति का भी होता तो भी हिन्दू समाज में उसकी सामाजिक स्थिति समाप्त थी और वह अत्यन्त दयनीय दशा में ही वहा वापस जा सकता था।

व्यवहार में, दास की स्थिति बिलकुल भिन्न थी। वह एक तरह से युद्धवन्दी होता था और तत्कालीन युद्धनियमों के अनुसार उसका जीवन वन्दी बनाने वाले की दया पर निर्भर होता था, जिसे उसे मार डालने या और कुछ करने का अधिकार रहता था। सैनिक संघर्ष के प्रारम्भ होने के काफी पहले ही दोनों पक्ष इस बात को स्पष्टतः समझ लेते थे। अतः जब कोई विजेता (अब दास का स्वामी) किसी दास को जीवनदान देकर उसे सेवाकार्य के लिये रखना चाहता, तो यह विजेता का अनुग्रह और उसकी उदारता मानी जाती थी। जब युद्धवन्दी बाजार में बेच दिये जाते और किसी क्रेता द्वारा खरीद लिये जाते तो वह क्रेता की वैसी ही सम्पत्ति हो जाता जैसी कि कोई अन्य वस्तु, और इस कारण उसे उपहार स्वरूप दिया जा सकता था या अन्य प्रकार से बेचा जा सकता था।[2] कोई भी चतुर स्वामी या क्रेता अपनी ऐसी सम्पत्ति की उचित देखरेख करने से नहीं चूकता था, जो उचित ध्यान दिये जाने पर अच्छे लाभ पर मुद्रा में परिवर्तित की जा सकती थी। दास में विहित इस सम्पत्ति को विस्तृत मान्यता प्राप्त थी, यहां तक कि एक कानूनी आदेश के अनुसार यदि सुल्तान स्वामी के संरक्षण से किसी दास को 'मुक्त कराना चाहता तो उसे समुचित क्षतिपूर्ति देना आवश्यक था।'[3] अन्य बातों में, दास कानून के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र व्यक्ति नहीं माना

---

1. तुलनीय—उदाहरणार्थ देखिये यूसुफ गदा (तु० 14 ब०) और सन्त हमदानी (*जा० मु०, 77) जो यह हठ करते है कि इस्लाम की पूर्ववर्ती परम्पराओं के* अनुसार दास के स्वामी को अपने दास को लगभग वे ही सुविधाएं देनी चाहिएं जो उसे उपलब्ध हैं। हमदानी खासतौर से दास के सात अधिकार गिनाता है, जिसमें धार्मिक शिक्षा का अधिकार, निश्चित घण्टे काम और प्रार्थना के समय अवकाश, बिना अपमान और घृणा के व्यवहार पाना और अन्त में शरियत के *विरुद्ध कार्य करने से इन्कार करना सम्मिलित थे।*
2. तुलनीय विशिष्ट उदाहरण के लिये ज० हि०, 218 कि अपने स्वामी की तुलना में, एक दास के पास अपना कहने योग्य कुछ भी नहीं था, यहां तक कि उसका नाम या परिचय भी नहीं। सब स्वामी की पूर्ण इच्छा पर निर्भर रहता था। अपने भूतपूर्व दास तरगी के विद्रोह के सम्बन्ध में मुहम्मद तुगलक की भावनाएं भी बरनी में द्रष्टव्य हैं।
3. ज० हि०, 105।

जाता था और उसे केवल अपने स्वामी की उपस्थिति में ही दण्ड दिया जा सकता था।[1]

इन परिस्थितियों में उस काल की दास-प्रथा के लिये औद्योगिक दासता की आधुनिक परिभाषा लागू करना कठिन है।[2] उदाहरणार्थ, उस समय का दास सर्वसाधारण से नीचे स्तर पर नहीं रहता था। यदि वह मूलरूप से हिन्दुओं में नीची जाति का होता तो, जैसा कि संकेत किया जा चुका है, वह निश्चित ही बेहतर सामाजिक स्थिति प्राप्त करता था। इसके अतिरिक्त यदि किसी दास को शासक के घरेलू काम-काज में प्रवेश मिल जाता (जैसा कि उनमें से अनेकों को उपलब्ध भी था) तो नाममात्र के लिए होने पर भी अधिकांश दरबारी और अन्य राजकर्मचारी उसकी दासता से लाभ उठाते थे। वास्तव में, जबकि कोई स्वतन्त्र व्यक्ति भुखमरी का शिकार हो सकता था, दास को कम-से-कम सुरक्षित और उचित सुखी जीवन-यापन की सुविधा तो उपलब्ध थी। सुल्तान की सेवा में रत गुलाम को कुछ समय पश्चात् दासत्व से मुक्त कर दिया जाता था और उसे एक सम्मानपूर्ण पद, यहां तक कि दर्जा और समुन्नत सामाजिक स्थिति भी प्रदान की जाती थी।[3] राजनैतिक परिस्थितियाँ और जीवन की सामान्य अस्थिरता कभी-कभी कुशल और साहसी दास को सामाजिक श्रेष्ठता की उस चरम सीमा तक उठने में सहायक होतीं जो सामान्यतः राज्य के उच्चतम और श्रेष्ठतम व्यक्ति की पहुंच के बाहर रहती थी।[4]

उस युग के शिष्टाचारों और दृष्टिकोण पर दासप्रथा की प्रतिक्रिया काफी भिन्न और सुदूरगामी थी। जैसा कि नीबोअर का कथन है, एक दासप्रथा वाले समाज में शासक वर्ग अपने दासों को आज्ञा देना और उन पर अत्याचार करना सीख लेने के कारण अत्यन्त अप्रजातांत्रिक जीवनचर्या का अभ्यस्त हो जाता था, जो किसी समाज के कल्याण के लिये हानिकारक थी। कालान्तर में यह एक ओर तो एक आक्रामक और क्रूर उच्च-वर्ग को और दूसरी ओर कटु और प्रतिशोधी निम्नवर्ग को जन्म देता था। इसी तरह दासता की दीर्घ परम्परा लोगों के एक ऐसे समुदाय को जन्म देती थी जो काम करने के लिये ही पैदा हुए हैं, जिससे दूसरों को काम करने की आवश्यकता न

1. तुलनीय, फि० फी०, 186।
2. तुलनीय—उदाहरणार्थ नीबोअर की दास की परिभाषा एक ऐसे व्यक्ति के रूप में, 'जो दूसरे की सम्पत्ति है, राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से जनसमूह से निम्न स्तर पर है और अनिवार्य श्रम करता है' (स्लेव्हरी एज इन इंडस्ट्रियल सिस्टम', पृष्ठ 5 के अनुसार)।
3. उदाहरणार्थ फ़ीरोज़ तुग़लक के दास अ०, 444।
4. पिछले खण्डों में उदाहरण दे दिये गये हैं। लेनपूल 64; और गिब 30 द्वारा किये गये आकलन उनकी कृतियों में देखिए।

रहे और लोगों के ऐसे दूसरे समुदाय को जन्म देती थी जो चिन्ता में डूबे रहने के लिए ही पैदा हुए हैं, जिससे दूसरों का जीवन चिन्ता से मुक्त बना रहे। वर्गों के इस हानिकारक विभाजन से एक और स्पष्ट निष्कर्ष यह निकलता है कि शारीरिक श्रम दास के श्रम के तुल्य मान लिया गया और इसीलिये हीन समझा जाने लगा। नीबोअर के अनुसार दासप्रथा का एक यह भी प्रभाव है कि दासप्रथा बहुधा निर्दयता को या कम-से-कम कटुता का खतरा पैदा करती है और समुचित शिक्षा के तथा सामान्य पारिवारिक सम्बन्धों के अभाव के कारण दासों का नैतिक पतन हो जाता है। दास प्रथा, मानवीय गौरव के विचार का विकास, जो आचारशास्त्र की आधारशिला है, अवरुद्ध करती है।[1] ये सब बातें दासप्रथा वाले समाज पर अप्रगतिशील और सामाजिक अस्वस्थता की छाप लगा देती हैं। ये सामाजिक परिणाम, उतने स्पष्ट न होने पर भी, मध्यकालीन भारतीय समाज के सामाजिक विकास में काफी प्रमुख दिखते हैं।

IV. मुस्लिम जनता

मुसलमानों के निम्न-वर्गों को हिन्दू जनता से अलग करना कुछ कठिन ही था। उनमें से अधिकांश मूलतः इस्लाम में दीक्षित हिन्दू थे जिनकी सामाजिक स्थिति में इससे भौतिक रूप से कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, यद्यपि कुछ हद तक इस स्थिति में सुधार ही हुआ होगा। कुछेक अवसरों पर सुल्तान मुस्लिम जनता के प्रति कुछ दयालु रहे होंगे, किन्तु यह किसी प्रकार निश्चित नहीं कहा जा सकता।[2] इस्लाम ग्रहण करने के साथ एक औसत मुसलमान अपना पुराना वातावरण, जो जाति-भेद और सामान्य सामाजिक बहिष्कार से अत्यन्त प्रभावित रहता था, नहीं बदल पाता था। परिणामस्वरूप भारतीय इस्लाम क्रमशः हिन्दू धर्म के मोटे तत्व आत्मसात् करने लगा। विभिन्न वर्ग, जिनसे मिलकर मुस्लिम समुदाय बना था, एक ही शहर के भिन्न हिस्सों में भी एक-दूसरे से परे रहने लगे।[3] दूसरी ओर विदेशी शासक और सुविधाप्राप्त वर्गों को सम्मान और आदर दिए जाने के परिणामस्वरूप विदेशी और अभारतीय मुसलमान को सामाजिक सम्मान पाने

---

1. नीबोअर, 436 के अवलोकन और निष्कर्ष तुलनीय। फ० ज०, 72 में बरनी का आकलन देखिए।
2. उदाहरणार्थ तिमूर के हत्याकाण्ड बिना भेदभाव के किये गए थे और मुस्लिमों का भी उसमें ध्यान नहीं रखा गया था। सुल्तान सामान्यतः लोगों के धार्मिक विभाजन की उपेक्षा करते थे। उदाहरणार्थ कु० यु० 881 देखिए, जहाँ, अलाउद्दीन मुसलमान बन्दियों को जीवनदान दे देता है, जबकि वह अन्यों को कुचलवाकर मरवा डालने का हुक्म देता है।
3. तुलनीय—उदाहरणार्थ मुकुन्दराम में एक नई बस्ती का वर्णन। गुप्ता, बंगाल, इत्यादि, पृ० 91-92।

के उच्चतम अधिकार प्राप्त हो गए। जहाँ तक सम्भव हो पाया लोग अपने लिए विदेशी वंशपरम्परा खोजने में लग गए।[1]

V. हिन्दू समाज

हिन्दू समाज की मुख्य विशेषता थी जाति और उप-जातिप्रथा–जैसी कि वह आज भी है।[2] विदेशी मुस्लिम शासन की प्रतिस्थापना में सहायक एक तत्व के रूप में जाति-

---

1. भारत के मुस्लिम समाज की आधुनिक स्थिति के लिए इम्पी० गॅजे० इण्डि०, जिल्द द्वितीय, 329—इस्लाम के उपदेशों के प्रजातान्त्रिक स्वरूप पर जोर देने के पश्चात् लेखक आगे लिखता है—'भारत में जातिप्रथा वातावरण में ही है, इसकी छूत मुसलमानों में भी फैल गयी है और विशिष्ट हिन्दू तरीके पर इसका विकास हो रहा है। दोनों समुदायों में विदेशी वंशानुगतता को सर्वोच्च सामाजिक सम्मान प्राप्त हो रहा है, दोनों में पदोन्नति पश्चिम पर आधारित है। जो स्थान द्विज आर्य को हिन्दुओं में प्राप्त है, वैसा ही कथित अरब, फ़ारसी, अफ़गान या मुगल मूल के मुसलमान का अपने सहधर्मियों के सामान्य समुदाय में है। बिलकुल परम्परागत हिन्दू पद्धति के समान उच्च कुल के व्यक्ति निम्न कुलों की स्त्रियों से विवाह कर सकते थे, जबकि इससे उल्टी प्रणाली का मुसलमानों के ऊँचे तबकों में भी दृढ़ता से विरोध किया जाता था, एक सैयद शेख की पुत्री से विवाह कर लेगा, किन्तु बदले में अपनी पुत्री नहीं देगा; और देश के उन प्रदेशों को छोड़कर जहाँ कुलीन वर्ग स्वल्प है, स्वयं-घोषित विदेशियों के ऊँचे तबके और भारतीय मुसलमानों के मुख्य समूह के बीच विवाह सम्बन्ध सामान्यतः निषिद्ध है और वह अपने ब्याह सम्बन्ध अच्छे-से-अच्छे तरीके से सम्पन्न कर सकता है। निम्न वर्गीय कामकाजी समूह प्रचलित जातियों के अनुसार संगठित किए जाते हैं, उनमें सभाएँ और अधिकारी रहते हैं जो जाति-बहिष्कार के सर्वमान्य सम्मोदन द्वारा जाति-नियमों का पालन करवाते हैं। 'सेनार्ट, 219 का आकलन भी तुलनीय है'वेल की हिस्ट्री ऑफ आर्यन रूल, 162-163।
2. तुलनीय—जाति की परिभाषा के लिए इम्पी० गॅजे० इण्डि०, जिल्द प्रथम, 311। 'परिवारों के एक ऐसे संग्रह या परिवारों के ऐसे समूहों को जाति कहा जा सकता है, जिनका ऐसा समान नाम हो जो एक विशिष्ट धन्धे को प्रकट करते हों या उससे सम्बन्धित हों, जो एक ही पौराणिक पूर्वज-मानवी या दैवी के वंशज हों, एक ही व्यवसाय करने की घोषणा करते हों, और योग्य विद्वानों के मतानुसार समान समुदाय का निर्माण करते हों। जाति इस अर्थ में लगभग निश्चिततः सजातीय विवाह करने वाली होती है। इस अर्थ में कि समान नाम से सम्बोधित विशाल मण्डल का सदस्य उस मण्डल के बाहर विवाह नहीं करेगा, किन्तु इस मण्डल के भीतर बहुधा अनेक छोटे मण्डल हैं, जिनमें से प्रत्येक में अन्य जाति से विवाह

प्रथा का पहले ही उल्लेख कर दिया गया है। हमें यहां इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि मुस्लिम प्रभाव के परिणामस्वरूप अनेक प्राचीन सामाजिक और कानूनी कार्य जाति-नियमों की कार्यसीमा के बाहर चले गए थे। ब्राह्मणों की स्थिति और उनके कानूनी और औपचारिक अधिकारों में पुराकालीन क्षत्रियों या हिन्दू शासकों के पतन के साथ ही काफी परिवर्तन आ गया था। दूसरी ओर क्षत्रियों के साथ नैतिक प्रतिद्वन्द्विता समाप्त होने के साथ ही ब्राह्मणों की शक्ति और व्यक्तिगत प्रभाव हिन्दू जनता में बढ़ गया था। इससे जाति-नियमों के बन्धन और भी बढ़ गए और विवाह, भोजन तथा अन्य क्षेत्रों पर जाति-गत क्षेत्राधिकार अधिक व्याप्त हो गया।

मुस्लिम काल के प्रारंभ में विद्यमान जातियों की ठीक-ठीक संख्या देना कठिन है। निकोलो कान्टी चौरासी समूहों का उल्लेख करता है, जिनमें से किसी एक जाति के लोग अन्य जातियों के लोगों के साथ न खाते, न पीते और न विवाह सम्बन्ध रखते थे।[1] हिन्दुस्तान की रूढ़िवादी और लोकप्रिय परम्परा में ऐसी छत्तीस जातियां बताई गई हैं, जिसमें ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की उप-जातियों के अतिरिक्त अन्य अलग-अलग व्यवसायी जातियां, जैसे शराब बनाने वाले, स्वर्णकार, जुलाहे, पनवाड़ी, कसेरे, गड़रिये, ग्वाले, बढ़ई, लुहार, भाट, अहीर, कायस्थ, रंगरेज, माली, कपड़ा चित्रित करने वाले, नाई, तेली, बाजीगर, बहुरूपिये, संगीतकार और अन्य भी सम्मिलित थी।[2] इससे जातियों की संगणना समाप्त नहीं हो जाती, क्योंकि कुछ मामलों में एक विशेष मोहल्ले में रहने के कारण किसी जनसमुदाय को एक जाति का स्वरूप मिल जाता था।[3] कभी-कभी हिन्दू और मुस्लिमों के आपसी गमागम से अलग और नवीन जातियां निर्मित हो जाती थी।[4] मुख्य जातियों की

सम्बन्ध करने का निषेध है। 'पुनः—(वही, जिल्द दो, 307) लेखक विकास को समझाते हुए कहता है कि—'किस प्रकार विभिन्न कबीलों का विघटन होता था यह अभी भी देखा जा सकता है। श्रेष्ठ हिन्दू सभ्यता और घुमक्कड़ ब्राह्मणों या सन्यासियों के प्रभाव में आकर उच्च वर्ग ने स्वयं को निम्न वर्ग से अलग कर लिया, हिन्दू जीवन प्रणाली की पहल की, जाति का स्वरूप अपना लिया, उन्हें ब्राह्मणों ने एक पौराणिक वंशक्रम प्रदान किया और उन्हें किसी हिन्दू समुदाय का एक अभिन्न अंग मान लिया गया। यह क्रिया तब तक चलती रही जब तक कि केवल निम्नतम ही शेष न रह गए और उनकी स्थिति दास के समान न हो गई······।'

1. तुलनीय—मेजर, 16।
2. तुलनीय—मलिक मुहम्मद जायसी, पृष्ठ 154, 413।
3. बंगाल के कुलीनों के लिए तुलनीय—गुप्ता, 174-75।
4. बंगाली ब्राह्मणों की उपजातियों—शेरखानी, पीर अली, श्रीमन्तमानीम के लिए तुलनीय—वही, 171-72।

अगणित उप-शाखाएं अलग जाति का रूप धारण करने लगीं। केवल राजपूतों में ही बीस उप-जातियां विद्यमान थीं।[1]

हिन्दू धर्म की अपेक्षाकृत ऊंची श्रेणी में रखी जा सकने योग्य इन सब जातियों के नीचे लाखों 'अछूत' आते हैं, जो स्वतः अपनी जातियों में विभाजित हैं। यद्यपि अस्पृश्यता की भावना उत्तर में दक्षिण के समान उत्कट नहीं थी, उसके अस्तित्व और अछूतों के प्रति उच्च वर्ग की बहिष्कारपूर्ण भावना के प्रति संदेह नहीं किया जा सकता।[2] भारतीय सामाजिक जीवन की यह विशेषता आधुनिक परिस्थितियों के दबाव के बावजूद भी लुप्त नहीं हुई है।[3]

अनेक सामाजिक और आर्थिक तत्व जातिप्रथा की कठोरता कम करने के लिए और हिन्दू धर्म की पुरानी ऊँची जातियों की स्थिति और सुविधाओं में परिवर्तन करने हेतु कार्यरत थे। इन तत्वों में से एक था हिन्दुस्तान में इस्लाम का पदार्पण। इस्लाम में धर्म-परिवर्तन का मुख्य स्थान होने के कारण और उसके अनुयायियों में सामाजिक समानता और भाईचारे के आश्वासन के कारण हिन्दू समाज के निम्नवर्ग के स्वागत हेतु इस्लाम के द्वार खुल गये। उसके आमंत्रण में एक अतिरिक्त बल यह था कि यह आमंत्रण उनके द्वारा दिया गया था जो भारत के भाग्य-विधाता थे और असीमित साधनों से सम्पन्न थे। निम्न वर्ग के लोगों द्वारा धर्म-परिवर्तन के कुछ

---

1. आ० अ०. द्वितीय, 56-57।
2. तुलनीय—रामानंद के संप्रदाय में प्रवेश पाने हेतु कबीर द्वारा अपनाई गई चाल और कबीर के बीजक में 'छूआछूत भाव' के अन्य निर्देशों के लिए शाह 70, 114-115, मुरारी नामक एक 'अछूत' से, जिसने अपना गर्हित दैन्य प्रकट करने हेतु अपने दांतों के बीच घास के दो तिनके रख लिये थे, चैतन्य की भेंट के लिये तुलनीय सरकार, 126। जब चैतन्य उसकी ओर बढ़े तो वह यह चिल्लाते हुए पीछे हटा, 'भगवन् मेरा स्पर्श न करें, मैं पापी हूँ, मेरी देह स्पर्श करने योग्य नहीं है'। मलिक मुहम्मद जायसी की भी भावनाएं तुलनीय प०, 362। दक्षिण में 'अस्पृश्यता' के लिए तुलनीय बरबोसा, द्वितीय, 60-70, बरथेमा, 142; ज० रा० ए० सो० 1896, महुअन का वर्णन, 343।
3. भारतीय गोलमेज परिषद् के पूर्ण-सत्र में दलित वर्गों के प्रतिनिधि की अभ्युक्ति, जो 'टाइम्स', लन्दन, दिसम्बर 1931 में प्रकाशित हुई थी, देखिये—'दलित वर्ग शेष हिन्दुओं से पूर्णतः पृथक जीवन व्यतीत करते हैं। हिन्दू पुरोहित एक अछूत के घर धर्मकृत्य नहीं करेगा और उसे अपने मंदिर में प्रवेश नहीं करने देगा। हिन्दू नाई उसका क्षौर-कर्म नहीं करेगा। हिन्दू धोबी उसके कपड़े नहीं धोएगा। हिन्दू उसके साथ भोजन नहीं करेगा, आपस में विवाह-सम्बन्ध की तो बात ही दूर रही। हम किन्हीं दो समुदायों के बीच उससे अधिक सामाजिक भेद की कल्पना नहीं कर सकते जो अस्पृश्य और स्पृश्य हिन्दुओं में विद्यमान है।'

स्पष्ट उदाहरणों ने हिन्दू जनता को बता ही दिया था कि इस्लाम अंगीकार करने वाला सामाजिक सोपान पर कहां तक जा सकता है। इस प्रकार इस्लाम के घेरे में अनेक हिन्दुओं के चले जाने के कारण हिन्दू धर्म को हानि उठानी पड़ी। उच्च वर्ग के लोगों को हिन्दू धर्म में वापस लाने तथा उन्हें उनकी पुरानी सुविधाएँ प्रदान करने में कुछ रियायतें देकर हिन्दू धर्म ने इस उफनते ज्वार को रोकने का प्रयत्न किया।[1] कुछ समय तक तो निम्नवर्ग को आधार प्रदान करने के लिए उसके पास कुछ नहीं था, जिससे वे अपने लिए एक नवीन जीवन दर्शन का निर्माण करने लगे। एक लोकप्रिय, उदार और सहिष्णु धर्म हिन्दुस्तान में फैलने लगा, जिसे विदेशी मूल के अधिक प्रजातान्त्रिक धार्मिक विश्वासों से प्रेरणा मिली। 'कर्म' और 'ज्ञान' के प्राचीन विश्वास के विरुद्ध इस नवीन धर्म का आधार 'भक्ति' या ईश्वर के प्रति मनुष्य का प्रेम था और इसने जातियों और 'आश्रम' से घिरे जीवन की अवधारणा को नष्ट कर दिया।[2] हमें यहाँ धार्मिक विकास के इतिहास से कोई मतलब नहीं है, किन्तु 'भक्ति' के इस नए सम्प्रदाय का जातिप्रथा और सामाजिक व्यवहार पद्धति पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में, नए धर्म के अनुयायियों को सम्प्रदाय के एक प्रारम्भिक गुरु ने अवधूत' (मुक्त) नाम दिया जिसका अर्थ है कि वे प्राचीन भ्रान्तियों के बन्धनों से अपेक्षाकृत स्वतन्त्र हैं।[3] विभिन्न वर्गों की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन ने भूतपूर्व उच्च और सुविधाप्राप्त वर्गों की सामाजिक स्थिति में अन्य बातों में काफी हद तक सुधार किया। जीवन की नवीन परिस्थितियों के अंतर्गत ब्राह्मण लोग, जिनकी भूतपूर्व सुविधाओं और धन्धों ने उन्हें किसी सामाजिक उपयोग के कार्य के योग्य नहीं

1. बंगाल में नवीन सुधारवादी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में तुलनीय, गुप्ता, आस्पेक्ट्स आफ बंगाली सोसायटी, ज०, डि० सै०, 170। यह निर्धारित था कि यदि कोई ब्राह्मण बलात् इस्लाम में दीक्षित कर लिया जाता तो वह समुचित प्रायश्चित्त करने पर हिन्दू समाज में लिया जा सकता था क्योंकि, जैसा कि सुधारकों का कथन था, 'ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व की अग्नि छः पीढ़ियों तक प्रज्ज्वलित रहती है।'
2. तुलनीय, चैतन्य के विचार, सरकार, 98।
3. तुलनीय, कारपेन्टर, 428। चैतन्य के एक अनुयायी द्वारा बिना किसी जातीय नियमों के अन्य लोगों के साथ भोजन किए जाने के उदाहरण के लिए तुलनीय, सरकार, 212। सुबुद्धि रे की कथा के लिए तुलनीय वहीं, 317 जिसे सत्तारूढ़ बंगाल के सुल्तान ने अपने प्याले से उसके गले में पानी डालकर जातिभ्रष्ट कर दिया था। बनारस के रूढ़िवादी ब्राह्मणों ने 'भाप निकलते हुए घी की परीक्षा' तजवीज की। जब सुबुद्धि चैतन्य के पास आया, तो चैतन्य ने उसे केवल कृष्ण नाम उच्चारित करने के लिए कहा, 'क्योंकि नाम का एक ही उच्चारण उसके सारे पापों को धो देगा।'

बनने दिया, बड़ी दीनावस्था में थे।[1] उनमें से कुछ चिकित्सक और ज्योतिषी होकर रोजी कमाने लगे, किन्तु सामान्यतः वे दैन्य स्थिति में ही रहे, जब तक कि वे किसी हिन्दू राजा के राज्य में नहीं चले गये जहां पुरानी व्यवस्था किसी अंश तक विद्यमान थी। दूसरी ओर सल्तनत में रहने वाले निम्न वर्गीय हिन्दुओं के मार्ग में पुराने बंधन न रहे, चाहे उन्होंने इस्लाम अंगीकृत न भी किया हो; कुछ ने तो विशेष भौतिक प्रगति कर ली जिसकी प्रतिक्रिया हिन्दू समाज में उनकी स्थिति पर हुई।[2] फिर भी, जैसा कि हमने कहा है, इस्लाम का पदार्पण भारतीय जीवन की बुनियादी स्थिति में कोई आधारभूत क्रान्ति नहीं था। इसने जाति और उनकी सापेक्षिक स्थिति में परिवर्तन तो ला दिया, किन्तु इस प्रथा को जड़मूल से उखाड़ने में वह असमर्थ रहा। वास्तव में, इस्लाम भी जाति-भेद की भावना के वशीभूत हो गया और कुरान का संदेश भूल गया।

1. रसोइये के रूप में ब्राह्मण रखे जाने के लिए तुलनीय सरकार, 317, हरकारे के रूप में ब्राह्मणों की नियुक्ति के लिए तुलनीय बरबोसा, द्वितीय, 37। तुलनीय सरकार 201, कि कैसे रसोइये के रूप में वे पाककला में निपुणता के कारण नहीं वरन् इसलिए रखे जाते थे कि उनके हाथ का बना भोजन 'कट्टरपंथी हिन्दू खा सकते थे।'

2. तुलनीय वहीं, 317, कैसे रामानन्द रे, जो मूलतः निम्नजाति का था, गोदावरी तट पर एक भव्य पालकी में, गाजे-बाजों के साथ अपने अनुचरों के रूप में वैदिक ब्राह्मणों को भी लेकर चैतन्य से मिलने आया था।

भाग दो

आर्थिक स्थिति

ग्राम्य-जीवन

सामान्य विचार—भारत आज भी अनिवार्यतः एक कृषिप्रधान देश है और इसका आर्थिक ढांचा एक उद्योगप्रधान देश से एकदम भिन्न है।[1] भारत में उत्पादन का साधन है भूमि; उसकी शक्ति है जुताई में काम आने वाले पशु; उसके उपकरण हैं लकड़ी का हल, दांतेदार बक्खर, भूमि चिकनी करने का तख्ता, समतल करने की बल्ली, बीज बोने की नली और कुछ अन्य चीजें जैसे फावड़ा, खुरपी, पानी निकालने के विभिन्न साधन, गेंती, कुदाली और हंगी। नहरों द्वारा सींची जाने वाली भूमि का अनुपात अभी भी अधिक नहीं है और फसल बहुधा उपयुक्त मौसमों में अनुकूल वर्षा पर आधारित रहती है।[2] यदाकदा अकालों, टिड्डी संकट या प्राचीन काल में आक्रामकों के दल के सिवाय आर्थिक जीवन कभी भीषण रूप से अस्तव्यस्त नहीं होता था। इन महामारियों के गुजर जाने पर भीतरी भागों का जीवन पुनः सामान्य हो जाता था। जीवन एकदम घिसापिटा और गतिहीन किन्तु अत्यन्त सादा और अनवरत था। एक ही वंशपरम्परा के तथा समान सामाजिक और धार्मिक बन्धनों से बंधे लोगों का पूरा समुदाय बहुधा कई मिले-जुले गांवों में निवास करता था। गांव प्रायः ऐसे ही

---

1. तुलनीय धन्धों के वर्तमान वर्गीकरण के लिए देखिये इण्डियन इयर बुक, 1931, पृष्ठ 20—'यदि हम ग्रामीण और शिकार के धंधों को शामिल कर लें तो (कृषि-प्रधान जनसंख्या की) प्रतिशतता 73 प्रतिशत हो जाती है, जबकि अस्पष्ट और अवर्गीकृत धंधों में लगे अधिकांश व्यक्तियों का एक बड़ा भाग सम्भवतः मजदूर है जो भूमि-सम्बन्धी धंधों से निकट सम्बन्ध रखते हैं।
2. 1931 में कुल कृषि के अन्तर्गत क्षेत्र का 12·1 प्रतिशत सिंचाई के अन्तर्गत था (इण्डि० इयर बुक, 1931 के अनुसार)।

अनेक समुदायों को मिलाकर बनता है (या 'बिरादरियाँ', 'भाईचारा')। यदि अनुकूल वर्षा मिलती रहे और अत्यधिक राजस्व वसूल न किया जाय तो भारतीय किसान अपने भाग्य से प्रायः संतुष्ट रहता है। वह अपने दैनंदिन जीवन की साधारण माँगों को अत्यन्त प्रफुल्लित हृदय से पूरा करता है और सुख-संतोष के साथ अपना धंधा चलाता रहता है। इन परिस्थितियों में यदि उसे उपयुक्त अवसर मिलता है तो वह अपनी अनेक संतानों में से एक का विवाह कर देता है और उत्सव में अपने साधनों के अनुसार वह लगभग समग्र जाति और मित्रों को आमंत्रित करता है विश्राम के समय वह गाँव की चौपाल में अपने लोकप्रिय कथागीत और लोकगीत गाता है। किशोर एक दूसरे कोने में एकत्र हो जाते हैं और अपनी प्रिय प्रेत-कथाएँ कहते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में किसान और विशेषकर स्त्री-समूह, बहुधा देवी-देवताओं और अपने पूर्वजों तथा लोकप्रिय संतों की आत्माओं की शरण लेते हैं और अपनी प्रार्थनाओं और भेंटों के बदले आँसू भरी आँखों से उत्सुकता से बादलों की राह देखते हैं। जीवन के घोर संकटकाल में वे किस्मत का लिखा सोचकर सांत्वना पा लेते हैं और दुर्भाग्य तथा आपत्तियों का सामना असाधारण शान्ति और अनासक्त भाव से कर लेते हैं। उनके जीवन में ऐसे बहुत कम अच्छे अवसर आते हैं जिनसे उनकी इच्छाओं को प्रोत्साहन मिले या उनके पूरी होने की आशा बंधे। अनगिनित शताब्दियों से यह हिन्दुस्तान में भारतीय कृषि-जीवन का आधार रहा है।

ऐसी परिस्थितियों से उत्पन्न मानसिक दृष्टिकोणों और विचारधाराओं ने भारतीय ग्रामीणों के जीवन को ढाला है। हम पिछले एक अध्याय में इसके राजनीतिक पहलू का उल्लेख कर चुके हैं। आर्थिक दृष्टि से ग्राम संगठित और सुविकसित आर्थिक ढाँचे वाली स्वयं निर्भर इकाई है, यदि संगठित जीवन का तात्पर्य हम अपने सदस्यों की आवश्यकताएँ और इच्छाएँ पूरी करने के लिए किसी समुदाय के सामूहिक कार्य से लें। वास्तव में यदि कोई भारतीय ग्रामीण-समुदाय शेष संसार से भौतिक रूप में अलग कर दिया जाय (जैसा कि कई मामलों में वह मनोवैज्ञानिक रूप से अलग है) तो उसका आर्थिक संगठन लगभग अप्रभावित रहेगा। भारतीय ग्राम्य-समुदाय की प्रमुख विशेषता कामगारों के विभिन्न समूह के कार्य-विशेष का समन्वयपूर्ण एकीकरण है। प्रत्येक के जिम्मे एक विशेष कार्य रहता है, वास्तव में उसमें ही वह जन्मता है और उसी के अनुरूप पलता है। उदाहरणार्थ, विभिन्न सामाजिक समूहों में से कृषक के पास जोतने और अनाज पैदा करने का कार्य रहता है, जिससे ग्राम्य-समुदाय के सदस्यों के लिए भोजन उपलब्ध होता है। अन्य लोग उत्पादन में सहायक के रूप में योगदान देते हैं। नारी-समूह खेती के विभिन्न कार्यों में उसका हाथ बँटाता है और मवेशियों की देखभाल करता है। बढ़ई हल और अन्य औजारों के निर्माण और मरम्मत का कार्य हाथ में ले लेते हैं, और किसान उन्हें लकड़ी देने की व्यवस्था करता है। लुहार औजारों के लोहे के हिस्से बनाता है और आवश्यकता पड़ने पर उनकी

मरम्मत भी करता है। कुम्हार बर्तन बनाता है। मोची हल की जोत और जूते बनाते और उनकी मरम्मत करते हैं। वास्तव में, निर्माण में प्रत्येक का—धोबी, नाई, चरवाहे, ग्वाले, पनिहारी, भंगी, यहाँ तक कि भिखारी, पुरोहित, ज्योतिषी ग्रामीण वैद्य और जादूगर का भी योगदान रहता है। साथ ही खेत की उपज अनेक ग्रामीण उद्योगों का पोषण करती है, उदाहरणार्थ—रस्सी और टोकरी के धंधे और शक्कर, इत्रों तथा तैल आदि के निर्माण। उससे विविध शिल्पकलाओं—जैसे, जुलाहों, मोचियों, रंगरेजों, बढ़इयों और कपड़ा चित्रित करने वालों के कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है। लोगों का एक समूह गांव की उपज के विनिमय के लिए अलग रहता है। भारतीय ग्राम के एक हिस्से में हमें एक छोटा बाजार मिलता है—जहाँ अनाज, कपड़े, मिष्ठान्न और जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएँ छुटमुट दूकानदारों द्वारा बेची जाती हैं। कभी-कभी गाँव के बाजार के एक कोने में एक सिक्के बदलने वाला भी रहता है जो ताँबे के सिक्कों और कौड़ियों के बदले में चाँदी का लेनदेन करता है और इस विनिमय से कुछ लाभ प्राप्त कर लेता है। कभी-कभी सिक्के की धातु की शुद्धता की जाँच करने में उसे स्थानीय सुनार की सहायता मिल जाती है। समय-समय पर लगने वाले मेलों में सामग्रियों का अपेक्षाकृत बड़ा लेनदेन, यथा—ताँबे और मिश्रित धातुओं के बर्तन, सीसे और नकली अलंकारों की पूर्ति हो जाती है। जिन्हें किसानों के विलास की सामग्रियाँ कहा जा सकता है। भारतीय ग्राम में स्थानीय राजनीतिज्ञ और मर्मज्ञ भी रहते हैं। चौपाल में व्यक्तिगत झगड़ों और जातिगत प्रश्नों के सम्बन्ध में विवाद होते रहते हैं। कोई-कोई तो ग्रामीण दूकानदारों की वाणिज्य-सम्पत्ति के खतरों के बारे में गम्भीरता से सोचता है और टिमान्स्थनीज के जैसे दावों से अपने राजनैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।[1] किन्तु उनके ग्राम-विशेष या समीपस्थ ग्रामों के समूह के बाहर शेष संसार उनके लिए एक बड़ा रहस्य है। हिन्दुस्तान में एक भारतीय ग्राम का ढाँचा ऐसा ही था, यद्यपि नवीन आर्थिक प्रवाहों के कारण इसके पतन के लक्षण तेजी से प्रकट हो रहे हैं।[2]

समीक्षान्तर्गत काल में ग्राम-समुदाय क्रियाशील शक्तिशाली संस्था थे और ये हिन्दुस्तान की जनसंख्या के विशाल बहुमत के दृष्टिकोण को निश्चित करते थे। ग्राम-समुदाय की प्रमुख आर्थिक विशेषता थी—मुख्यतः स्थानीय उपभोग के लिए उत्पादन। बड़े पैमाने के उद्योग कुछ ही ऐसे क्षेत्रों में थे जो प्रायः किसी नाविक यातायात के योग्य

1. तुलनीय, इ० गु०, तृतीय, 49, गांव के छुटमुट दूकानदारों की सम्पत्ति के बारे में एक प्राचीन बंगाली कवि और लेखक की अभ्युक्ति के लिए गुप्ता, बंगाल, इ०, 158—'वे क्रय-विक्रय करते हैं और इस प्रक्रिया में वे लोगों का धन चूसते हैं।'
2. तुलनीय, इम्पी० गै० इण्डि०, चतुर्थ, 280-81 में ग्राम संगठन का वर्णन, गुप्ता, बंगाल, इत्यादि, 163 भी द्रष्टव्य हैं।

नदियों के मुख पर स्थित रहते थे, जहां उनके उपयोग के लिए पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध रहता था। अन्य प्रान्तों के कुछेक भीतरी केन्द्रों के सिवाय बंगाल और गुजरात अपनी जहाजी सुविधाओं के कारण प्रमुख औद्योगिक प्रान्त थे, इनमें कुछ उद्योग चलते थे, और ये प्रान्त अन्य प्रान्तों के केन्द्रों से बचा हुआ तैयार माल एकत्र करके उसे बाहर निर्यात करते थे। इस तरह जबकि अधिकांश जनसंख्या कृषिकार्य में रत थी, कुछ लोग व्यापार और उद्योग में लगे थे और कुछ सम्पन्न व्यक्ति विदेशों से व्यापार का कार्य करते थे।[1] इससे कुछ बड़े शहरों में किंचित् नागरिक जीवन का उद्‌भव हुआ और ये ही स्थानीय और प्रान्तीय प्रशासन के केन्द्र का कार्य भी करते थे। शहर सामान्यतः चहारदीवारी से घिरे और सुरक्षित रहते थे तथा आपदा और असुरक्षा के समय समीपस्थ निवासियों को आश्रय प्रदान करते थे। शान्तिकाल में वे कृषि-उपजों और औद्योगिक माल के वितरण केन्द्र के रूप में कार्य करते थे। सामान्य रूप से हम कह सकते हैं कि यद्यपि शहर सामाजिक और बौद्धिक संस्कृति में देश का नेतृत्व करते थे, वे इतने आर्थिक महत्त्व के नहीं थे कि वे साधारणतः जनता का आर्थिक दृष्टिकोण सुधार सकें।[2]

लोगों के आर्थिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग था प्रशासन-तंत्र। यह प्रशासन-तंत्र कृषक-मजदूरों की मेहनत का कुछ अंश ले लेता था और छोटे पैमाने पर औद्योगिक मजदूरों को काम देता था। बदले में वह कृषि-सम्बन्धी व्यवसायों के शांतिपूर्ण सम्पादन के लिये कुछ सीमा तक सुरक्षा प्रदान करता था और प्रसंगवश देश के एक भाग से दूसरे भाग को माल के यातायात की कुछ सुविधाएं देता था। उत्पादन पद्धति में कोई बड़ा सुधार, आर्थिक संपत्ति का समान वितरण या विभिन्न सामाजिक वर्गों की आर्थिक स्थिति का अपेक्षाकृत अच्छा समायोजन साधारणतः राज्य की नीति के बाहर था। दूसरी ओर, जैसा कि ऊपर बताया गया है, राज्य जनसाधारण के आर्थिक जीवन का स्तर सदैव निम्न बनाये रखने में रुचि रखता था। समाज का आर्थिक ढांचा अपनी उत्पादन-क्षमता की सीमाओं के भीतर यथासम्भव अच्छा कार्य करता था। इसने वर्ग-विभाजन, आय में भेद, और उत्पादक श्रमिकों के स्तर के अधःपतन को जन्म दिया; किन्तु सारे सामाजिक तत्व एक ऐसी पद्धति में समायोजित हो गये थे जिसके ऊपर सांस्कृतिक और कलात्मक विकासों का एक ढांचा

---

1. बंगाल के बारे में महुअन का अवलोकन कीजिए। ज० रा० ए० सो०, 1895, पृ० 530।
2. भारत की शहरी और ग्रामीण जनसंख्या के 10·2, 89·8 के अनुपात के लिए इन्डियन इयर बुक (1931), पृष्ठ 22 तुलनीय है। 'भारत में शहरीकरण की प्रगति यदि कभी प्रगति हुई भी तो—पिछले तीस वर्षों में अत्यन्त मन्द रही और यह वृद्धि 1 प्रतिशत से भी कम रही।' पृष्ठ 21 वहीं।

खड़ा किया गया, जो अभी भी विभिन्न सामाजिक और राजनैतिक विचारकों को प्रीतिकर है। उस समय कोई सामाजिक क्रान्ति नहीं हुई क्योंकि उसकी आवश्यकता नहीं थी। भूमि सम्पत्ति और साधनों से लगभग असीमित रूप से सम्पन्न थी। साथ ही उतनी ही विस्तृत भी थी जिससे प्रशासन की अनुचित मांगें और शासक वर्गों का आधिपत्य गम्भीर रूप से सीमित हो गये। अंततः, सुख-सुविधाओं का कोई स्थिर मानक नहीं था, परिणामतः शासक वर्गों का कार्य सुगम हो गया।

(1) **भूमि की पैदावार** —प्रायः सारी खेती भूमि पर ही होती थी। इससे मनुष्यों को भोजन और पशुओं को चारा मिलता था[1]। औसत भूमिस्वत्व के बारे में या पशुपालन में रत जनसंख्या के अनुपात के आकार के सम्बन्ध में भी कुछ कहना कठिन है। हम मोटे तौर पर कह सकते है कि घरेलू कार्यों और शिल्प कार्यों में लगे हुए लोगों को छोड़कर अन्य सब खेती ही करते थे। उस समय प्रचलित कृषि पद्धति के बारे में कोई विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है किन्तु संभवतः वह आज की पद्धति से अधिक भिन्न नहीं थी।[2] देश की कृषि-सम्बन्धी पैदावार तम्बाखू, चाय, काफी की नव-प्रचलित खेती और जूट की विस्तृत फसल को छोड़कर आज की पैदावार से भिन्न नहीं रही होगी। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि औषधिक जड़ी बूटियां, मसाले और सुगन्धित काष्ठ काफी मात्रा में पैदा किये जाते थे और भारत के बाहर उनका

1. तुलनीय—आ० अ०, प्रथम, 79-80; सिघाड़ा, सलक, खस, कसेरू की, जो पानी की सतह पर पैदा किये जाते हैं, फसलों के लिये वहीं द्वितीय, 6। ये सम्भवतः अकबर के पहले होते थे क्योंकि उसके समय तो ये थे ही, किन्तु भूमि की फसलों की तुलना में उनका अनुपात नगण्य था।
2. तुलनीय—कु०सु०, 709 जहां अमीर खुसरो भारतीय किसान के कौशल और उसकी प्रतिभा की साधारण शब्दों में प्रशंसा करने के सिवाय कोई विवरण नहीं देता। बंगाल में मेघना पर फारसी जल-चक्र के प्रयोग के लिये तुलनीय कि० र०, द्वितीय, 145। सादृश्य के लिये तेरहवीं शती में समरकन्द में जल-चक्रों का उपयोग तुलनीय। ब्रिश्नीडर, प्रथम, 76; 'रहट' के नाम से अवध में उनका प्रयोग (मलिक मुहम्मद जायसी के द्वारा उल्लिखित) तुलनीय, पृष्ठ 62। अधिक व्यवस्थित सर्वेक्षण के लिये बा० ना०, 240-50 में बाबर का वर्णन तुलनीय। वह लाहौर, दीपालपुर, सरहिन्द और उसके आस-पास फारसी चक्रों के, आगरा और बयाना में बैलों की जोड़ी द्वारा खींचे जाने वाली चमड़े की विशाल बाल्टी (पुर) के; और लगातार पानी देने के लिए 'ढेंकली' के प्रयोग का उल्लेख करता है। 'ढेंकली' के वर्णन के लिये देखिये इम्पी० गै० इण्डि०, इक्कीसवां, 125-6 हिन्दुस्तान के अन्य हिस्सों में ऐसी ही व्यवस्था के लिये मेकालिफ, प्रथम, 22 भी तुलनीय।

विक्रय होता था। दालें, गेहूँ, जौ, ज्वार-बाजरी, मटर, चावल, तिल और तिलहन, गन्ना और कपास मुख्य उपजें थीं।[1] कड़ा और मानिकपुर (इलाहाबाद के पास) के आस-पास का क्षेत्र असाधारण उपजाऊ समझा जाता था। वहां अच्छी श्रेणी का चावल, गन्ना और गेहूं होता था जो विशाल मात्रा में दिल्ली भेजा जाता था।[2] फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ के समय चालू की गई नहरी सिंचाई के परिणामस्वरूप हिसार और फ़ीरोज़ाबाद के आस-पास के क्षेत्र ने तिल, दालों, गेहूं और गन्ने की खेती में योग दिया।[3] अन्य उन्नत फसलों में सिरसुती का चावल उत्तमता के लिये प्रसिद्ध था और दिल्ली में उसकी बहुत मांग थी।[4] अनाज-भण्डार संचित करने का सामान्य तरीका गड्ढों या खत्तियों में रखने का था जिससे बहुत समय तक अनाज सुरक्षित रखा जा सकता था।[5]

गंगा के कछार के फलों में आम विशेष लोकप्रिय था। आम वास्तव में सब फलों से, यहां तक कि इस्लामी देशों के तरबूजों से भी श्रेष्ठ था।[6] फिर भी यह

1. कपास की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कपास के विशालकाय पौधे ('देव-कपास') की खेती जिसका पौधा पूरे 6 हाथ ऊंचा और 20 साल की आयु का होता है। बारह वर्ष तक इस पेड़ में अच्छा बुनाई का कपास होता है। यूले, द्वितीय, 393, और टिप्पणी। अकबर के समय धूम्रपान के प्रचलन के लिये जहांगीर के अन्तर्गत संकलित असद खान के संस्मरण (वाक़यात) देखिए।
2. कि० र०, द्वितीय, 24।
3. बरनी, 568।
4. कि० र०, द्वितीय, 14।
5. इ० बु, पांचवां, 63। 'खत्ती' के वर्णन के लिये तुलनीय टॉड, तृतीय, 1563 : ये गड्ढे या खाइयां ऊंची सूखी भूमि पर रहते हैं, इनकी ऊंचाई मिट्टी की प्रकृति पर निर्भर रहती है। बनाते समय उनमें कुछ वनस्पतियाँ भस्म की जाती हैं और उसके किनारे और धरातल पर गेहूं या जौ की बालें लगाई जाती हैं। तब अनाज गड्ढे में डाल दिया जाता है और उसे पुआल से ढांक कर उसके ऊपर गड्ढे के मुख से ऊपर निकला हुआ 18 इंच ऊंचा मिट्टी का चबूतरा खड़ा किया जाता है। इस पर मिट्टी और गोबर-छोप दिया जाता है जो मानसून से भी टक्कर ले लेता है। पानी की बौछार से अविध्वस्त होने पर उसे फिर से छोप दिया जाता है। इस प्रकार अनाज बिना क्षति के वर्षों तक रह सकता है जबकि उससे उत्पन्न गर्मी कीटाणुओं को रोकती है और चूहों और दीमकों को दूर रखती है। 'मसालिक-उल्-अबसार' कहती है कि काफी समय तक संचित रहने के कारण अनाज का रंग बदल जाता था।
6. अमीर खुसरो कि० स०, 166-67 का आकलन देखिए आम की श्रेष्ठता के समर्थन में पैगम्बर की एक परम्परा की रोचक खोज के लिये देखिए शा० मु०, 74।

दलील कमजोर सी है, क्योंकि हिन्दुस्तान का भ्रमण करते समय बाबर अपने देश के तरबूजों को नहीं भूलता। वास्तव में उसके पास काबुल से लाये गये कुछ श्रेष्ठ सरदे के पौधे थे जिन्हें आगरा स्थित उसके बगीचे में लगाया गया था।[1] बाबर के कुछ समय बाद भी हिन्दुस्तान में इन तरबूजों की खेती व्यापक नहीं थी।[2] अन्य फलों में हम विभिन्न प्रकार के अंगूर, खजूर, अनार, केले, भारतीय तरबूज, आड़ू, नारंगी, सन्तरे, अंजीर, नीबू, करना, भोंग, खिरनी, जामुन, कटहल और अन्य अनेक के नाम ले सकते है।[3] समुद्र तटों पर नारियल बहुतायत से होते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली के सुल्तानों और अन्य शासकों ने भारतीय फलों और बागवानी की पद्धति में सुधार करने का काफी प्रयत्न किया। फीरोज तुगलक ने बाग बनवाने का एक विशाल कार्यक्रम संपन्न किया जिससे उपरोल्लिखित अधिकांश फलों में सामान्य सुधार हुआ।[4] उसके वृत्तांत लेखक के अनुसार उसने दिल्ली के पड़ोस में और आसपास 1200 बगीचे, सलोरा बांध पर 80 बगीचे और चित्तौड़ में 40 बगीचे लगवाये।[5] राजपूताना में बाग लगवाने की यह परम्परा चालू रही और उसे आगे भी बढ़ाया गया। चित्तौड़, धौलपुर, ग्वालियर और जोधपुर के अतिरिक्त अन्य स्थान भी फलों की खेती और बागवानी के उन्नत तरीके प्रयुक्त करने लगे। विशेषकर धौलपुर में शहर को जाने वाले मार्ग में सात कोह (लगभग 14 मील) की दूरी तक बगीचों की छाया थी।[6] जोधपुर में अनार की खेती के संवर्धन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था और लोदी सुल्तान सिकन्दर ने बड़े विश्वास के साथ घोषित कर दिया कि फारस में भी ऐसे अनार नहीं होते जो स्वाद में जोधपुरी अनारों का मुकाबला कर सकें।[7]

फूलों का संवर्धन हिंदुस्तान में बहुत प्राचीन है। वे अपने आकर्षण, सुगन्ध

1. बा० ना०, 357।
2. हाजी दबीर का वर्णन तुलनीय, जिसे दिल्ली में कुछ तरबूज दिये गये थे किन्तु वे स्पष्टतः देशी नहीं थे। ज० व०, द्वितीय, 770।
3. कि० स०, 166-67 में अमीर खुसरो के वर्णन के साथ ही बरनी और अफीफ, व० 569-70, अ०, 128 के वर्णन भी तुलनीय हैं।
4. इन उन्नत प्रकारों, विशेषकर अंगूर के 7 विभिन्न प्रकारों के लिए अ०, 295-96 भी तुलनीय है।
5. वहीं।
6. मलिक मुहम्मद जायसी के समय चित्तौड़ के फल देखिए, प०, 419-20, सिकन्दर लोदी के सैनिकों द्वारा जोधपुर के उद्यानों के ध्वंस के लिए त० अ०, प्रथम, 324 देखिए।
7. तारीख-ए-दाऊदी, पादटिप्पणी, 45 का।

और विभिन्नता के लिए प्रसिद्ध हैं। उनमें से कई, जैसे तुलसी और गेंदा अनेक धार्मिक कृत्यों और पूजा से सम्बन्धित होने के कारण पवित्र माने जाने लगे हैं। हिन्दुओं में फूलों की भेंट देना एक सामान्य शिष्टाचार था। महत्त्वपूर्ण सामाजिक अवसरों और घरेलू उत्सवों में सदैव फूलों और पुष्पहारों की भेंट भी दी जाती थी। उदाहरणार्थ, बिना पुष्पाहार के किसी नव-विवाहित दम्पति या उनकी सेज की कल्पना करना कठिन था। अमीर खुसरो और मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पुस्तकों के समूचे अध्याय इस भूमि के फूलों के वर्णन से भर दिये हैं। हम अपने प्रबन्ध के अंत में पुष्पों की चर्चा करेंगे। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखने योग्य है कि आगरा स्थित अपने उद्यान में ग्वालियर के एक गुलाब को लगाने के सिवाय बाबर ने अपने राज्य में भारतीय फूलों की उत्कृष्टता या प्रकारों में कोई सुधार नहीं किया।[1]

इस सम्बन्ध में हिन्दुस्तान में उत्पन्न किये जाने वाले सुगन्धित काष्ठों—जैसे चन्दन और मुसब्बर का उल्लेख किया जा सकता है। आसाम मुसब्बर की एक विशेष लकड़ी के लिये विशेष प्रसिद्ध था, जो इस भूमि के कुछ प्रसिद्धतम मन्दिरों को भेंट के रूप में भेजी जाती थी। बुगराखाँ अपने पुत्र सुल्तान मुईजुद्दीन कैकुबाद को भेंट में दी जाने वाली वस्तुओं में यह लकड़ी सम्मिलित करना नहीं भूला।[2] इसी प्रकार विष और सर्पदंश के लिये विषनाशक के रूप में प्रयुक्त की जाने वाली कुछ औषधिक जड़ी-बूटियां देश में पैदा की जाती थीं।[3] मसालों में काली मिर्च, अदरख और अन्य मसाले गुजरात के कुछ हिस्सों में विशाल परिमाण में पैदा किये जाते थे।[4]

घरेलू और जंगली पशुओं और मुर्गों की गणना करना कठिन है। क्योंकि उनकी संख्या बहुत है। आज जैसे थल यातायात और सुरक्षा साधनों—जिनके कारण जंगली पशु पर्याप्त रूप से कम हो गये हैं—के अभाव में पुराने भू-भाग में जंगली और पालतू पशुओं की भरमार का अनुमान करना सरल है। अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के बाहर भारत अभी भी कुछेक देशों में से एक है, जहां अनेक प्रकार के जंगली पशु मिलते हैं। ऐसी जातियों में, जो यदि लुप्त नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य हो गई हैं, गेंडा, कुछ प्रकार के शिकारी बाघ और सिंह थे।

(2) **ग्रामीण उत्पादन और कुटीर उद्योग**—कृषि की पैदावार के आधार पर ग्राम में छोटे पैमाने पर कई शिल्प और उद्योग चलाये जाते थे। इन उद्योगों में काम करने वाले श्रमिक वंशानुगत रहते थे; औजार और कार्यपद्धति दोनों अनगढ़

---

1. ता० फ०, प्रथम, 391 देखिए।
2. कि० स०, 101।
3. उदाहरणार्थ 'मुखालिसा', इलि० डाउ०, द्वितीय, 239।
4. यूले, द्वितीय, 393 देखिए।

रहते थे और उत्पादन अल्प मात्रा में होता था। किन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी कार्य करते रहने और कुशलता और क्षमता की परम्पराएं उत्तराधिकार में पाने के कारण निर्मित वस्तुएं श्रेष्ठ दर्जे की रहती थी और उनका कलात्मक मूल्य बहुत रहता था। अपनी सामाजिक स्थिति और सीमित अवसरों के कारण ग्रामीण शिल्पकार कुछ सीमा तक ही उन्नति कर सके। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय अत्याचार से उनकी समुचित सुरक्षा नहीं की जाती थी।[1] मुस्लिम कारीगरों के आ जाने से कुछ सीमा तक इस वर्ग की सामाजिक निर्बलता दूर हुई होगी, किन्तु कालांतर में मुस्लिम प्रभाव प्राचीन परम्पराओं में समा गया। जब बाबर हिन्दुस्तान आया, इन व्यवसायों के सामाजिक स्वरूप में कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं दिखता था, क्योंकि वह सारे कारीगरों को कट्टर और पृथक जातियों में बटा हुआ पाता है।[2]

कृषि-सम्बन्धी पैदावारों पर आधारित अधिक महत्वपूर्ण उत्पादन थे—गुड़, इत्र और शराब। हम शक्कर का उल्लेख बाद में करेंगे। इत्र और सुगन्धित जल वहीं बनाए जाते थे जहां इस उद्योग के विकास की सुविधाएं उपलब्ध थी। उदाहरणार्थ, बंगाल में इत्र विक्रेताओं का एक समूचा वर्ग ही था और उन्हें 'गंधा बानिक' कहा जाता था।[3] गुलाबजल अपनी शीतलता और ताजगी के गुण के कारण मित्र-मंडलियों और सामाजिक उत्सवों में छिड़का जाता था। अन्य इत्रों में, मलिक मुहम्मद जायसी मेंदू और चुवाई नामक दो तेज इत्रों का उल्लेख विशेष रूप से करता है, किन्तु उनका प्रकार-विशेष स्पष्ट नहीं है।[4]

शराब बनाने का धन्धा हिन्दुस्तान में बहुत पुराना है। अति प्राचीन काल में गुड़, महुआ, जौ की रोटी और चावल से मदिरा तैयार की जाती थी।[5] अमीर खुसरो पेयों के निर्माण में गन्ने के प्रयोग का भी उल्लेख करता है।[6] भारतीय खजूर और

---

1. दिल्ली के तेलियों के सम्बन्ध में दमनकारी नियमों के लिए देखिए अमीर खुसरो, इ० खु०, द्वितीय, 19-20; बंगाल में बीर की बस्ती के पनवाड़ियों की स्थिति के लिए गुप्ता, बंगाल, इ०, 158 द्रष्टव्य है, जो अत्याचार किये जाने पर दुहाई देने के अतिरिक्त कुछ न कर सके।
2. प०, 19; मेकालिफ, प्रथम, 284; कु० मु०, 740 भी तुलनीय है।
3. गुप्ता, बंगाल, इ० 163।
4. प० (हि०) 143, तुलनीय ता० मु० (द्वितीय) भी, 124 जिसमें कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा गोर के मुहम्मद-बिन-साम को हाथी द्वारा ढोने योग्य भार के बराबर श्वेत और लाल पुष्पों और विभिन्न प्रकार के इत्रों, जिनकी तुलना में स्वर्ग के उद्यानों की सुगन्ध भी कम थी, की भेंट दिए जाने का उल्लेख है।
5. देखिए ज० ए० सो० बं०, 1900, जे० सी० रे-'हिन्दू मेथड ऑफ मैन्यूफैक्चरिंग स्पिरिट्स'।
6. कु० मु०, 740, 772, ब०, 285 भी।

नारियल के रस से अन्य मदिराएँ भी तैयार की जाती थीं।[1] बंगाल में, जहां सब प्रकार की तीव्र मदिरा तैयार करने की सुविधाएँ विद्यमान थीं, मदिरा बाज़ारों में खुले रूप से बिकती थीं।[2]

गृह-उद्योग के अन्य महत्त्वपूर्ण सामानों में विभिन्न किस्मों के तेलों का उल्लेख किया जा सकता है जो घान की चिरपरिचित प्रक्रिया—जो आज भी प्रचलित है—से तैयार किये जाते थे।[3]

गृह-उद्योगों में कपास की कताई और बुनाई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्योग थे। कताई और बुनाई की विभिन्न प्रक्रियाएँ वे ही थीं जो आज भी भारतीय ग्रामों में प्रयुक्त की जाती हैं।[4] तैयार कपड़े का थान नकद मूल्य के बदले या अन्य वस्तुओं के बदले टुकड़े करके या तोलकर भी बेचा जाता था। अन्य लघु-उद्योगों में टोपी बनाना, जूते बनाना और हर प्रकार के हथियार, खासकर धनुष-बाण बनाना सम्मिलित था। ऊंची श्रेणी के धनुष-बाण के कारीगर प्रत्यंचा के लिए रेशम के धागे का, बाण के लिए बेत का और बाण के फल के लिए इस्पात का प्रयोग करते थे। लोहारों को काफी व्यस्त रहना पड़ता था और कच्चे लोहे से लोहा पृथक करने की प्रक्रिया उनको मालूम थी। लोहे के कृषि-सम्बन्धी विभिन्न उपकरणों और हथियारों के अतिरिक्त ताले, कुंजी, और उस्तरे भारतीय घरों में सामान्य उपयोग की वस्तुएँ थीं।[5] स्वर्णकार और रौप्यकार अपने कार्य में और भी दक्ष थे। इनका उल्लेख बाद में किया जायगा। जड़ाऊ का काम बहुत लोकप्रिय हो गया था और अमीर-गरीब सब स्त्रियां जड़ाऊ अलंकार पहिनने

---

1. तुलनीय—महुअन, ज० रा० ए० सो०, 1895, 541, बेम्बी 29 भी। महुआ द्वारा तैयार की गई मदिरा के लिए (बसिया लैतीफोलिया) इब्नबतूता (कि० र०, द्वितीय, 11) द्रष्टव्य है, जो उसके स्वाद की तुलना 'सूर्य की गर्मी से सुखाए गए' खजूरों के स्वाद से करता है। देखिए बाबर, जो इस पेय को बेस्वाद पाता है। बा० ना०, 26; इसके तीव्र नशीले प्रभाव के लिए देखिए पृष्ठ 329; बाबर 'साधारण तथा अच्छी वस्तु' खजूर से तैयार की गई मदिरा तथा नारियल से तैयार की गई मदिरा को पर्याप्त तीव्र और अच्छी कहता है। बा० ना०, 262, निकालो काण्टी चावल और पानी तथा ताड़-वृक्ष के रस से मिलाकर बनी हुई सस्ती मदिरा का उल्लेख करता है। फ्रेम्प्टन, 137।
2. तुलनीय, महुअन, ज० रा० ए० सो०, 1895, 531।
3. तुलनीय, गुप्ता, बंगाल इ० 158।
4. जुलाहे के पुत्र कबीर (शाह, 125, 169, 102, के अनुसार) और कश्मीर के लल्ला (टेम्पिल, 225 के अनुसार) द्वारा दिये गए, प्रक्रियाओं के दो अत्यन्त मनोरंजक वर्णन देखिए।
5. देखिए इ० खु०, चतुर्थ, 47-9, ब०, 365, क़ु० खु०, 744, 749।

की शौकीन थीं।[1] बंगाल के कारीगरों का एक वर्ग विभिन्न अलंकारों में शंख का काम भी करते थे। उसी तरह कासे का काम करने वाले घड़े, गिलास, थालियां, भोजन के तथा अन्य बर्तन, घण्टियाँ, मूर्तियाँ, दीवट, पानदान, इत्यादि बनाते थे।[2] ढोल और अन्य बाजे बनाने वाले भी थे।[3] रस्सी, टोकनी, मिट्टी के बर्तन, मशक, पंखे इत्यादि बनाने के साधारण उद्योग भी थे।

(3) आर्थिक जीवन का स्तर—ग्राम्य जीवन की चर्चा पूरी करने के लिए ग्रामों के आर्थिक जीवन के स्तर के सम्बन्ध में भी कुछ कहना अनुचित न होगा। भूमि की उपज का अधिकांश भाग भू-राजस्व और विभिन्न अब्वाबों के रूप में राज्य के पास चला जाता था। शेष का एक रस्मी अंश घरेलू और अन्य मजदूरों के विभिन्न वर्गों के लिए निश्चित था। शेष अंश कृषक और उसका परिवार अपने उपयोग के लिए रखते थे और धीरे-धीरे उसका उपभोग करते थे और घरेलू जीवन के विशेष अवसरों—अर्थात् जन्म, विवाह और (नवता या नेरणी) के समय उसका विशेष उपयोग करते थे। कुछ अंश पुरोहित और मन्दिर को जाता था और शेष अनाज कृषक और उसके पालतू पशु खाते थे। कुछ ग्रामों में चाकर और घरेलू नौकर, जैसे, बढ़ई, लोहार-सुनार, कुम्हार, धोबी और भंगी इत्यादि अपेक्षाकृत सम्पन्न रहते थे, क्योंकि उन पर पशुओं और अनेक पुरोहितों का बोझ नहीं रहता था। उनका तिरस्कृत एकाकीपन उन्हें बाहरी हस्तक्षेप से एक प्रकार से सुरक्षा प्रदान करता था। किसान के समान वे भी अपनी स्वल्प आय को घरू उत्सवों और पारिवारिक रीति-रिवाजों में व्यय करते थे और अन्य सब उत्पादक वर्गों के समान स्थानीय साहूकार के कर्ज के बोझ से लदे हुए थोड़े पैसों में जीवन यापन करते थे।[4]

अन्य वर्गों में, जिनकी आय के स्तर के बारे में बाद में चर्चा की जाएगी, तुलना करने के लिए गाँव के किसानों और अन्य श्रमिकों की संभावित अनाज की बचत को नकद मुद्रा-मूल्य में परिवर्तित करना कठिन है। उनकी तुलना में किसान सामान्यतः कठोर और अनवरत परिश्रम करता था और वर्ष के कुछ मौसमों में तो वह प्रायः दिन-रात काम करता था। इस हाड़-तोड़ श्रम में उसकी पत्नी और परिवार के अन्य सदस्य भी हाथ बंटाते थे।[5] इस सारे श्रम के बदले में यदि उसे प्रतिदिन

1. जड़ाऊ काम के प्रति निर्धन स्त्रियों की रुचि के लिए 'अफ़रावट', 25-6 तुलनीय है, पृ०, 13 भी देखिए जहां ए० एस० बेवरिज 'जड़ाऊ' को 'जवाहिर' समझते हैं। यह शब्द आज भी मीनाकारी के मूल अर्थ में प्रयुक्त होता है।
2. तुलनीय, गुप्ता, बंगाल, इ०, 162-3।
3. वही, 158।
4. साहूकारों के बारे में जानने के लिए गुप्ता, बंगाल, इ०. 189 तुलनीय है।
5. ग्रामीण श्रम में स्त्रियों के भाग के लिए, शाह, 87, 170।

भरपेट भोजन मिल जाता तो वह भाग्यशाली समझा जाता था। किसानों के जीवन के बहुत कम और अत्यन्त अस्पष्ट संदर्भ मिलते हैं, किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनका प्रारब्ध बहुत दयनीय था और वे लगातार लगभग-भुखमरी की दशा में रहते थे।[1] जब आपने यह कह दिया कि लोग लगभग नग्न रहते थे तो वस्त्रों की चर्चा करना निरर्थक है और उपस्करों के सम्बन्ध में शायद ही कुछ लिखा जा सकता है, जबकि परिवार की सामग्री दो चारपाइयों और कुछ-एक भोजन पकाने के बर्तनों तक सीमित है।[2] हम बाद में पुनः इस विषय पर चर्चा करेंगे।

उद्योग और वाणिज्य

I. उद्योग

यह दर्शाने के लिए कि हिन्दुस्तान में इस काल में कई महत्वपूर्ण उद्योग विकसित हुए, *प्रचुर प्रमाण हैं। इन उद्योगों में वस्त्रोद्योग, धातु का काम, संगतराशी,* शक्कर, नील और कागज के उद्योग अधिक महत्वपूर्ण थे। उच्च वर्गों के विलास की वस्तुओं का कुछ अंश आयात किया जाता था। उस समय आज के समान कारखाने या बड़े पैमाने के उद्योग धंधे नहीं थे। साधारणतः, छोटे शहरों के किसी वस्तु के उत्पादक बड़े नगर के उस वस्तु के व्यापारियों से यह तय कर लेते थे कि वे उन्हें भीतरी भागों में वितरण के लिए या बाहर निर्यात के लिए तैयार माल का प्रदाय करेंगे। कभी-कभी उत्पादक अपना माल समय-समय पर लगने वाले मेलों में भी बेच देते थे। माल के बड़े पैमाने के निर्यात-कर्ता भी, जो सामान्यतः समुद्र-तटीय शहरों में रहते थे, उत्पादकों या उनके एजेन्टों के ज़रिए तैयार माल की खरीद और प्रदाय की व्यवस्था कर लेते थे। कुछ स्थानों में उद्यमी व्यापारी अपने निरीक्षण में वस्तुएँ निर्मित कराने के लिए कई कारीगर नियुक्त कर लेते थे। ऐसी संस्थाओं या कारखानों में सर्वाधिक श्रेष्ठ उपकरणों से युक्त और अत्यन्त कुशलता से संगठित कारखाने दिल्ली के सुल्तानों के, या, बाद में, प्रान्तों के अनेक छोटे-मोटे शासकों के थे। ये 'कारखाने' कहे

---

1. मुकन्दराम द्वारा उल्लिखित एक अतिपूर्ण दृष्टांत तुलनीय है, जिसमें एक बहेलिये की उप-पत्नी पेज (चावल का रसा—माड़) और बासा शोरबा पर अवलम्बित रहती है और पुआल के बिछावन पर सोती है। ज० डि० लै०, 1929, 223 के अनुसार।
2. मोरलैंड, इण्डिया, इ० 225, कु० खु०, 204-5 में अमीर खुसरो का अभिमत द्रष्टव्य है, जहां वह स्पष्टतः घोषित करता है कि 'शाही मुकुट का प्रत्येक मोती दरिद्र किसान के अश्रुपूरित नेत्रों से दाने के रूप में गिरा हुआ खून का क़तरा है।'

जाते थे और इनका उल्लेख पहले कर दिया गया है। दिल्ली के शाही कारखानों में शाही प्रदाय के लिए अन्य सामग्रियों के कारीगरों के अतिरिक्त केवल रेशम के बुनकरों की संख्या 4,000 थी।

शाही आवश्यकता का कुछ अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मुहम्मद तुगलक वर्ष में दो बार वसंत और शरद ऋतुओं में 2 लाख खिलअतें वितरित करता था, इनमें से वसंत की खिलअतें सिकन्दरिया में निर्मित माल की बनी रहती थीं और शरद की खिलअतें कुछ तो दिल्ली में बने माल की और कुछ चीन और ईराक से आयात किये गये माल की बनी रहती थी। इसी तरह मुहम्मद तुगलक ने शाही हरम की महिलाओं के उपयोग के लिए या अमीरों और उनकी पत्नियों को भेंट-स्वरूप देने हेतु जरीदार कपड़ों के लिए स्वर्ण-तन्तुओं के निर्माता 4,000 कारीगर नियुक्त किये। व्यवहारतः शाही उपयोग की प्रत्येक वस्तु, जैसे—टोपियां, जूते, परदे, शोभिका, कमरबंद, कामदार पटका, कसीदाकारी, घोड़े की जीन इत्यादि, इन्हीं कारखानों द्वारा प्रदाय की जाती थी।[1] अन्य शासकों से प्राप्त भेंटों के बदले भेंट और उपहार में देने के लिए श्रेष्ठ मलमल और अन्य वस्तुओं का निर्माण भी कारखाने विशाल परिमाण में करते थे।[2] अकबर के काल में पदार्पण करने से पहले हमें इन शाही कारखानों में काम करने वाले कारीगरों की मजदूरी का कोई विवरण नहीं मिलता। सामान्यतः राज्य सारी तैयार वस्तुओं के निर्माण और वितरण को राज्य-नियंत्रण से मुक्त रखता था। दिल्ली के सुल्तानों में केवल अलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली का बाजार नियंत्रित करने का साहसपूर्ण कदम उठाया, किन्तु उसके कारण आर्थिक की अपेक्षा, प्रशासकीय और राजनैतिक अधिक थे अतः इनसे हमें देश की औद्योगिक स्थिति के विभिन्न पहलुओं की व्याख्या करने में सहायता नहीं मिलती।

1. **कपड़े**—हिन्दुस्तान में कपड़े बनाने का उद्योग सर्वाधिक विशाल था। इसमें सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े सम्मिलित थे। देश में कपास बहुतायत से पैदा किया जाता था। ऊन सदैव पर्वतीय प्रदेशों से प्राप्त किया जा सकता था, यद्यपि भेड़ें मैदानों में भी पाली जाती थीं। अच्छी श्रेणी का ऊनी माल और फर अधिकतर बाहर से आयात किया जाता था और प्रायः इनका प्रयोग केवल कुलीनवर्ग द्वारा ही किया जाता

1. 'मसालिक-उल्-अबसार' का वर्णन तुलनीय इलि० डाउ०, तृतीय, 578, और नोतिसेज इ०। मैंने फ्रेंच अनुवाद के अंकों का अनुसरण किया है।
2. उदाहरणार्थ माण्डू के भाण्डार तुलनीय। ता० अ०, 247; और श्रेष्ठ कपड़े के लिये चीन की इब्नबतूता की राजदूत के रूप में मैत्री-यात्रा।

था। रेशम के कीड़े बंगाल में पाले जाते थे,[1] यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि वे सच्चे रेशम के कीड़े (अर्थात् शहतूत खाने वाले कीड़े) थे। तथापि रेशमी धागे का अधिकांश अंश आयात किया जाता था। कसीदाकारी, सोने की जरी का काम और रंगरेजी के सहायक उद्योग भी हिन्दुस्तान के अनेक बड़े नगरों में थे। सामान्यतः भारतीय कपड़े उत्तम श्रेणी के बनते थे और उनका उत्पादन आन्तरिक उपयोग के लिए पर्याप्त था। बंगाल और गुजरात अन्य देशों को काफ़ी मात्रा में कपास और अन्य वस्तुएँ निर्यात करते थे। उत्कृष्ट कपड़ों का उत्पादन सम्पन्न व्यक्तियों के एक छोटे वर्ग की मांग तक सीमित था। दरिद्र वर्ग, जैसा कि पिछले भाग में स्पष्ट किया गया है, स्वयं के करघों से बने कपड़े उपयोग में लाते थे और कुछ विशेष अवसरों, विवाहों और अन्य सामाजिक उत्सवों के लिए ही उत्कृष्ट कपड़ा खरीदते थे।[1]

धनी लोग कई तरह के रेशमी, उत्कृष्ट मलमल, जरी साटिन के कपड़े और विभिन्न प्रकार के जानवरों—ऊदबिलाव, खरगोश, नेवला इत्यादि के रोओं से बने कपड़े पहनते थे। शीत के मौसम में, जबकि सम्पन्न व्यक्ति रोएं और ऊन का प्रयोग करते थे, दरिद्र लोग निकृष्ट सूती कपड़े, रुई से भरे सूती वस्त्र, और मोटे कम्बल पहनते थे। उत्कृष्ट कपड़ा असाधारण रूप से उत्तम बनता था। इस सम्बन्ध में हमारे पास अमीर खुसरो की लेखनी के अनेक काव्यात्मक और सुरुचिपूर्ण वर्णन हैं, जो भाषा की उत्साहपूर्ण अतिशयोक्तियों के बावजूद भी कारीगरों की कुशलता और उत्कृष्टता का

---

1. महुअन का वर्णन तुलनीय है। ज० रा० ए० सो० 1895, 532। भारत में रेशम के उद्योग के इतिहास के बारे में देखिए इम्पी० गै० इण्डि०, चतुर्थ, 206-7, 'यह सम्भवतः ठीक है कि रेशम के बारे में संस्कृत लेखकों द्वारा दिये गए प्राचीनतम संदर्भ ग़ैर-पालतू कीड़ों का उल्लेख करते हैं, आधुनिक वाणिज्य के सच्चे रेशम के कीड़ों का नहीं। प्राचीन हिन्दी साहित्य में शहतूत के कीड़े के सम्बन्ध में जो वर्णन है उनका तात्पर्य स्थानीय रेशम से नहीं बल्कि आयात किये गए रेशम से है। न यह कीड़ा और न ही वह पौधा जिस पर यह जीवित रहता है, भारत की देशी परिस्थितियों में पाया गया है—भारत के उन हिस्सों में तो कदापि नहीं, जहां रेशम के कीड़े अभी पाले जाते हैं।' बंगाल में रेशम के कीड़ों का प्रचलन चीनी कागज़ के प्रचलन के समान चीनी प्रभाव के कारण हुआ होगा, जिसका वर्णन शीघ्र ही किया जाएगा।

1. खुसरो का वर्णन तुलनीय है। कि० स०, 32-3; सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के निषेधों के लिए ब०, 311 भी देखिए, जो अमीरों की आवश्यकताओं को नियंत्रित करने हेतु निरूपित की गई थीं। जरी और स्वर्ण वस्त्र, दिल्ली और खम्भायत (या खँम्बे) के उत्कृष्ट रेशम, 'शुस्तरी', 'शिराई', 'देवगिरि' और वस्त्रों के अन्य प्रकार भी इन निषेधों से अछूते नहीं बचे थे।

पर्याप्त उल्लेख करते है।[1] दक्षिण में देवगिरि और महादेव-नगरी वस्त्र निर्माण के प्रसिद्ध केन्द्र थे और वहां के बने कपड़े उन्हीं स्थानों के नाम से प्रसिद्ध थे तथा वे असाधारण रूप से उत्कृष्ट और सुन्दर समझे जाते थे।[2] प्रसिद्ध वस्त्रों के अन्य प्रकारों मे कुछ के नाम ये है—बैरामियां, सलाहिया, शीरीन, कत्तान-ए-रूमी, सिराज, किथाव, यद्यपि उनकी यथार्थ प्रकृति स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः ये नाम विशेष स्थानीय और विशिष्ट सम्पर्कों को प्रकट करते है, जिन्हे अब स्पष्ट करना कठिन है। उत्तर में दिल्ली एक बड़ा केन्द्र था, किन्तु यह स्पष्ट नही हैं कि उसकी प्रसिद्धि वहां उत्कृष्ट वस्तुओं का बाजार होने के कारण थी या उनके निर्माण के कारण। असाधारण रूप से उत्तम मलमल के एक थान की कीमत [illegible] तक जाती थी।[3] दिल्ली और सम्भवतः अन्य बड़े शहरों मे उत्कृष्ट मलमल, रेशम और जरी का विशाल भण्डार था।[4]

वस्त्रों के निर्माण और निर्यात मे सारे हिन्दुस्तान में बंगाल और गुजरात सबसे आगे थे। इन प्रान्तों की बन्दरगाह-सम्बन्धी सुविधाएं और बाह्य ससार से उनके वाणिज्य सम्बन्ध एक विस्तृत वस्त्रोद्योग स्थापित करने मे सहायक हुए।

अमीर खुसरो, महुअन, वर्थेमा और बरबोसा सब बगाल के माल की उत्तमता का साक्ष्य देते है। अमीर खुसरो बंगाल के गवर्नर बुग़राखां द्वारा सुल्तान मुईजुद्दीन

---

1. उदाहरणार्थ, एक स्थान पर उसका बगाली मलमल का वर्णन देखिए। वह इतना उत्कृष्ट और हल्का था कि सौ गज मलमल भी सिर पर लपेटने पर भी भीतर के केश देखे जा सकते थे। कि० स०, 32-3 के अनुसार। एक अन्य स्थल पर वह देवगिरि के रंगबिरंगे वस्त्र की तुलना 'पहाड़ी के बहुरंगे फूलों और उद्यान के गुलाबों से करता है। एक स्थल पर वह देवगिरि के कपड़े की उत्कृष्टता और पारदर्शिता की तुलना जल की एक बूंद से करता है। यह सौ गज कपड़ा सुई के छिद्र से निकाला जा सकता था फिर भी यह इतना मजबूत था कि सूई इसे छेद नही सकती थी। खुसरो के अनुसार इसे पहनने पर भी व्यक्ति नग्न प्रतीत होता था और 'केवल बाह्य तरलता दर्शित होती थी।' लेखक का विचार है कि देवगिरि का वस्त्र एक अप्सरा को लुभाने के लिए पर्याप्त था और रेशम तथा जरी से अतुलनीय रूप से श्रेष्ठ था। एफ० के० 11, कु० गु०, 867 और एइ० 25, 807 फलक 459 के अनुसार।
2. तुलनीय, वही के० एफ०, 11।
3. तुलनीय, इब्नबतूता, कि० रा, द्वितीय, 90-1।
4. उदाहरणार्थ, मलफूजात, 280 तुलनीय जहां तैमूर संतोष के साथ लिखता है कि दिल्ली की लूट मे उसने अन्य वस्तुओं के साथ रेशम, जरी का माल भी एकत्र किया जो 'अनुमान, संख्या, सीमा और गणना से परे था।'

कैकुबाद को भेंट में दिये गये वस्त्र की बड़े उत्साह से प्रशंसा करता है।[1] अपने बंगाल भ्रमण के समय महुअन उत्कृष्ट मलमल, सोने के काम की टोपियों और रेशमी रूमालों के पांच या छः प्रकार गिनाता है।[2] वरथेमा और वरवोसा के वर्णनों में तात्विक सहमति है। केवल वरथेमा संसार के किसी भी भाग की अपेक्षा बंगाल में सूती कपड़े अधिक प्रचुरता से पाता है। वह कई प्रकार के उत्कृष्ट कपड़ों; जैसे—वैराम, नामोन, लिजाती, सेंतर, दोंजर, सिनवफ का उल्लेख करता है, किन्तु ये क्या हैं यह ठीक-ठीक स्पष्ट नहीं है। वरवोसा लिखता है कि बंगाल में निर्मित सिरबंद नामक दुपट्टा स्त्रियों के शिरो-वस्त्र हेतु योरोपियनों को बहुत प्रिय था और पारसी और व्यापारियों को वह पगड़ी के लिए बहुत पसन्द था। इसी प्रकार अरबी व्यापारी कमीजों के लिए बंगाल के सिनवफ के बहुत शौकीन थे।[3] देश के प्रयोग की वस्तुओं में रेशमी और सूती धोतियाँ और साड़ियाँ विशाल परिमाण में तैयार की जाती थीं।[4]

गुजरात में भी वस्त्रों का निर्माण प्रचुरता से किया जाता था। कैम्बे (खम्भायत) के रेशम उन मूल्यवान वस्तुओं में से थे जिन पर दिल्ली में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने नियन्त्रण लगा दिया था। उनका उपयोग बड़े अमीरों तक ही सीमित था।[5] बरवोसा

---

1. तुलनीय है कि० स०, 100-1 जहां खुसरो कपड़े के एक थान का वर्णन करता है जो बुनाई में इतना उत्कृष्ट था कि शरीर उसके आरपार दिखता था। इस कपड़े का एक पूरा थान कोई अपने नाखून के भीतर रख सकता था; फिर भी वह खोले जाने पर संसार को ढकने के लिए पर्याप्त था।
2. तुलनीय, ज० रा० ए० सो० 1895, 531-32।
3. वरथेमा के वर्णन के लिए, 212, वरवोसा के लिए, जिल्द द्वितीय, 145 देखिए।
4. ज० डि० लै०, 1929, 224-231 में श्री गुप्ता बंगाल में बनी धोतियों और साड़ियों का रोचक वर्णन प्रस्तुत करते हैं। वे हमें बताते हैं कि चार विभिन्न प्रकार की साड़ियां बनाई जाती थीं—कालापाट साड़ी, अगुन पाट साड़ी, पातेर भूमि और कांची पाट साड़ी। रेशम के अन्य किस्मों में वे नेता, टसर और पतेर पछड़ा का उल्लेख करते हैं। वह साड़ियों के नमूनों और बुनतियों के अनेक वर्णन देता है। उसी तरह वे कई प्रकार की सूती और रेशमी धोतियों का उल्लेख करता है। वह कहता है कि बंगाल के प्रारम्भिक मलमल रेशम और सूत के मिश्रण से बनाये जाते थे और उनमें सुरुचिपूर्वक कसीदाकारी की जाती थी। उनके लम्बे चौड़े नाम उनकी उच्च-स्तरीय उत्कृष्टता प्रकट करते हैं। उनका वर्णन किस काल से सम्बन्धित है यह कहना कठिन है। अपनी पुस्तक 'बंगाल इन दी सिक्सटीन्थ सेन्चुरी' में वे लिखते हैं कि बंगाल में वीर की छोटी-सी बस्ती में सैकड़ों धोतियाँ बनाई जाती थीं, जिससे वस्त्र का वृहत् उत्पादन प्रकट होता है।
5. देखिए व०, 311 वरथेमा का अभिमत भी देखिए, जो कहता है कि खम्भायत (या कैम्बे) भारत के वस्त्र निर्यात के लगभग आधे भाग की पूर्ति करता था। हम विदेशी व्यापार के बारे में इसके सम्बन्ध में लिखेंगे।

हमें बताता है कि कैम्बे अन्य सस्ते मखमल, साटिन, ताफ़ता (टफेटा) और मोटे गलीचों के साथ ही सब प्रकार के उत्कृष्ट, मोटे और छपे सूती कपड़ों का निर्माण-केन्द्र था। विभिन्न प्रकार के छपे कपड़े और 'रेशमी मलमल' भी गुजरात के अन्य भागों में बनाये जाते थे।[1]

वस्त्र निर्माण के अतिरिक्त अन्य विविध वस्तुएँ—गलीचे, गद्दे, चादरें, दरियाँ, आसनी, निवाड़ और अन्य अनेक वस्तुएँ भी निर्मित की जाती थीं।

हिन्दुस्तान में रंगरेजी के उद्योग का उल्लेख करना भी उचित होगा। यहाँ नील प्रचुरता से होता था और स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध सब भड़कीले रंगों के शौकीन थे। रंगीन किनारी की साड़ियों और कई रंगीन पट्टियों वाले मलमल और रेशम के अनेक वर्णन मिलते हैं। इस प्रकार रंगरेजी का व्यवसाय और कपड़ा रंगाई वस्त्र-निर्माण के साथ-ही-साथ चलते थे। वरवोसा और वरथेमा दोनों 'कपड़ा रंगाई' का उल्लेख करते हैं। वरबोसा 'विस्तार के सुन्दर काम वाले रंगीन लिहाफ और चंदोवा' और वेशभूषा की सिली हुई सामग्री के बारे में भी कहता है।[2]

2. धातु-कार्य—बुनकरी के बाद धातु-कार्य पर अवलंबित अनेक उद्योग महत्त्वपूर्ण थे। भारत में धातु-कार्य की अति प्राचीन परम्परा है। प्राचीन मूर्तियाँ और दिल्ली का स्तम्भ इसके साक्षी हैं। पिछली शताब्दी में ही भारतीय धातु-शिल्पियों की स्थिति पूर्णतः बदली है।[3] भारत में लोहे, पारे और सीसे की खानें थीं और कुछ सीमा तक धातु निकाली जाती थी, यद्यपि निकाले हुए माल की मात्रा अधिक नहीं प्रतीत होती।[4] अबुलफजल निश्चयपूर्वक कहता है कि भारतीय धातु-शिल्पी पूर्णत: समझते हैं

1. तुलनीय, वरबोसा, प्रथम, 141, 154-155।
2. वहीं, 142।
3. रासायनिक उद्योगों के अवनति के सम्बन्ध में इम्पी० गै० इण्डि०, चतुर्थ, 128 तुलनीय है :—इस सम्बन्ध में आज के भारत और एक शताब्दी पूर्व के भारत में विरोधाभास है। देशी लोहे की उत्तमता, उत्तम इस्पातों के निर्माण के लिए योरोप में प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया का पूर्वज्ञान और तांबा और पीतल के कलात्मक उत्पादन के कारण भारत को प्राचीन धातु-शोधन-संसार में प्रमुख स्थान प्राप्त था, जबकि शोरे के प्रमुख स्रोत के रूप में भारत का एक विलक्षण राजनीतिक महत्त्व रहा, जब तक कि चालीस वर्ष से भी कम पहले योरोप के रासायनिक उत्पादकों को अपने उप-उत्पादनों से विस्फोटक पदार्थों के निर्माण के लिए सस्ते और अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशील मिश्रण प्राप्त नहीं हो गए।"
4. 'मसालिक उल अबसार' का अभिमत तुलनीय है। नोतिसेज इ०, 166-7। जावरा (मेवाड़) में टीन (सम्भवतः सीसा और जस्ता की खदानें जैसा कि इम्पी० गै० इण्डि०, 'राजपूताना' में स्पष्ट किया गया है) और चाँदी की खदानों की चौदहवीं शताब्दी में खोज के सम्बन्ध में टॉड, प्रथम, 321।

कि विभिन्न धातुओं यथा, लोहा—पीतल, चांदी, जस्ता, (कांसी) मिश्र धातुओं (अष्ट धातु) और अभ्रक (कोल-पत्तर) का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए।[1] तलवार बनाने का उद्योग अति प्राचीनकाल में भी सुस्थापित था, फलतः भारतीय तलवार और कटार अरबी और फ़ारसी की पारिभाषिक शब्दावली में आ गए हैं। दिल्ली के सुल्तानों के अन्तर्गत उत्कृष्ट इस्पात बनाने की कला किसी भी दशा में मृत नहीं थी, वास्तव में सारी परिस्थितियां इस दिशा में अधिक प्रोत्साहन और वृद्धिगत क्रियाकलाप की ओर इंगित करती हैं।[2] हम सामान्य उपयोग की कुछ वस्तुओं के सम्बन्ध में पहले कह चुके हैं। उनमें हम 'तश्तरियाँ, कप, फौलादी बन्दूकें, छुरियाँ और कैंचियाँ' जिन्हें चीनी यात्री महुअन ने बंगाल में देखा था, सम्मिलित कर सकते हैं।[3]

हम जड़ाऊकाम के सम्बन्ध में पहले ही कह चुके हैं। यह भी कहा जा सकता है कि धातुओं, खासकर सोने और चाँदी की उत्कृष्ट कारीगरी दिल्ली के सुल्तानों के अन्तर्गत बहुत उन्नति कर चुकी थी।[4] तिमूर के समय तक सोने और चाँदी के बर्तन,

---

1. आ० अ०, प्रथम, 35-6।
2. तुलनीय, फखरुद्दीन मुबारकशाह का आकलन (आ० मु०, 77 के अनुसार) कि तलवार की सारी विद्यमान किस्मों में भारतीय तलवार श्रेष्ठ और उत्कृष्ट पानी वाली होती है। भारतीय तलवारों की अन्य किस्मों में वह 'मान-गोहर' नामक एक दुष्प्राप्य किस्म का विशेष उल्लेख करता है। सामान्यतः शासकों के शस्त्रागारों और कोषागारों में इस किस्म की एक से अधिक तलवार नहीं रहती थी, क्योंकि इसे तैयार करने के लिए अत्यधिक समय, श्रम और धन तथा असाधारण कौशल की आवश्यकता पड़ती थी। उसके युग के प्रमुख तलवार बनाने वालों में वह सिंधुतट के कुरज (?) के कारीगरों का उल्लेख करता है।
3. ज० रा० ए० सो०, 1895, 532।
4. मुस्लिम वृत्तान्तों में इसके अनेक उदाहरण हैं। प्रारम्भ में अजमेर के गवर्नर राय पिथौरा ने कुतबुद्दीन ऐबक को अन्य भेंटों के साथ चार 'सोने के तरबूज' भी भेजे, जिन पर सोने का उत्कृष्ट काम किया गया था और वे सच्चे फलों की भाँति प्रतीत होते थे। सेनानायक ने इन्हें गौर के सुल्तान मुहम्मद बिन-साम को कला के एक दुष्प्राप्य नमूने के रूप में भेज दिया। (ता० फ० मु०, 22-23, 'तबकात-ए-नासिरी' पाण्डुलिपि ऐक० ब०, 91 के अनुसार)। आगे के एक भाग में हुमायूं के अन्तर्गत 'सोने के तरबूजों' का उल्लेख भी तुलनीय है। धातु-कार्य की अन्य लोकप्रिय वस्तु थी बहुमूल्य धातुओं और जवाहिरातों से बना हुआ नकली बगीचा। उदाहरण के लिए कु० खु०, 772 में सुल्तान मुबारकशाह खिलजी द्वारा अपने ज्येष्ठ पुत्र के जन्म के उपलक्ष में आयोजित उत्सवों के सम्बन्ध में अमीर खुसरो का वर्णन देखिए। उसने एक नकली उद्यान बनवाया, जिसमें फलों के वृक्ष सोने के और उनके पत्ते पन्ने के बनाए गए थे। सरो के वृक्ष लालों से बनाए

जड़ाऊ अलंकार, कसीदेकारी और बेलबूटेदार काम, बिदारी के इस्पात की सुराहियाँ, मुकुट, कसीदे के काम वाले कमरबन्द, हार, तश्तरियाँ, तश्तरीपोश और अन्य वस्तुएँ कई बड़े नगरों में सामान्य थीं।[1] बरबोसा गुजरात के 'बहुत अच्छे स्वर्णकारों' के 'अत्युत्तम कार्य' का प्रमाण देता है।[2] भारतीय कारीगरों का यह कौशल अंशतः स्पष्ट कर देता है कि तिमूर भारतीयों के अन्धाधुन्ध कत्लेआम में भारतीय कारीगरों को क्यों साधारणतः जीवनदान दे देता था। तिमूर ऐसे कारीगरों की विशाल संख्या में अपनी राजधानी समरकन्द ले गया।[3] अकबर के काल में धातु-कार्य ने और अधिक उत्कृष्टता प्राप्त कर ली थी। उसका सचिव अबुलफज़ल अलंकार बनाने वाले स्वर्णकारों की कुशलता की बहुत प्रशंसा करता है, जिन्हें कभी-कभी अलंकार में प्रयुक्त धातु के मूल्य का दस गुना पारिश्रमिक दिया जाता था। वह स्वर्णकारों के कई वर्गों के नाम गिनाता है, *जिन्होंने विभिन्न अलंकार बनाने में विशिष्टता प्राप्त कर ली थी।* वे विभिन्न नमूनों के झाड़-फानूस, जो कभी-कभी दस मन और इससे भी अधिक भारी होते थे, बनाते थे, इसी प्रकार वह मीनाकारी, जड़ाऊ, बेलबूटे, कसीदाकारी, सजावट और अन्य नाज़ुक कार्यों के विशिष्ट कारीगरों का उल्लेख करता है।[4]

3. पत्थर और ईंट का कार्य—इससे कहीं अधिक कारीगर भवनों के निर्माण के सिलसिले में पत्थर, ईंट आदि के कार्यों में लगे थे। केवल हिन्दुस्तान के भवन ही नहीं, काबुल, गजनी और समरकन्द के भवन भारतीय राजगीर के कौशल का प्रमाण देते हैं।[5] अमीर खुसरो ने गर्व के साथ यह दावा किया है कि दिल्ली के राजगीर

गए थे। घास की हरियाली दर्शाने के लिए फर्श पर प्रचुर संख्या में पन्ने बिखरा दिये गए थे। एक सोने का गिद्ध चोंच में एक मोती लिए एक वृक्ष पर बैठा था। कुल मिलाकर अमीर खुसरो का अभिमत है कि सोने में किये गए उत्कृष्ट काम को *मोम में किए जाने की कल्पना भी कठिनता से की जा सकती है।*

1. बिदारी इस्पात और बेलबूटेदार चाँदी के काम के नमूने के रूप में तिमूर की सेवा में रत एक कारीगर द्वारा हस्ताक्षरित और 803 हिज्री (1400 ई०) में अंकित एक सुराही के लिए इण्डियन म्यूज़ियम, लंदन, 10 का सूचीपत्र तुलनीय है : मुल्तान विजय के पश्चात् तिमूर को पीर मुहम्मद द्वारा दिये गए भेंटों की सूची देखिए। इसकी विवरण-पत्रिका बनाने के लिए लिपिक को दो दिन लगे।
2. बरबोसा, प्रथम, 142।
3. उदाहरणार्थ, देखिए म०, 259।
4. आ० अ०, प्रथम, 155-7, वही : प्रथम, 11।
5. गजनी के सुल्तान महमूद मथुरा को अधिकृत करके उसे विनष्ट करने के पश्चात् भारतीय कारीगरों को गजनी की मस्जिद 'स्वर्गवधू' को बनाने हेतु बलात् ले गया। इसी प्रकार जब तिमूर ने दिल्ली में मुहम्मद तुगलक द्वारा निर्मित जामा मस्जिद देखी तो उसने समरकंद में वैसा ही भवन बनवाने का निश्चय किया और दिल्ली के संगतराशों को अपने साथ अपनी राजधानी ले गया। (ता०फ०, प्रथम, 257 के अनुसार)।

और संगतराश समग्र मुस्लिम जगत के कारीगरों से श्रेष्ठ हैं।[1] इन श्रेष्ठ निर्माणों का एक प्रमुख कारण राज्य का संरक्षण भी था। हम पहले ही देख चुके हैं कि सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने राज्य की इमारतों के निर्माण के लिए 70,000 कारीगर नियुक्त किये थे। हम यह भी देख चुके हैं कि कुशल राजगीरों की विद्यमान संख्या के बावजूद भी फीरोज़ तुगलक ने अपने 4000 गुलामों को इन शिल्पों में प्रशिक्षित किये जाने की आज्ञा दी। इसी तरह बाबर को भारतीय कारीगरों के कौशल पर बहुत गर्व था और वह लिखता है कि उसने आगरा में अपने भवनों के निर्माण हेतु 680 और अन्य अनेक स्थानों में 1,491, संगतराश नियुक्त किये।[2] यह उल्लेख करना निरर्थक है कि हिन्दू राजा राजगीरों और अन्य कारीगरों को मुस्लिम शासकों से अधिक संरक्षण प्रदान करते थे। माउन्ट आबू के दिलवारा के मन्दिर, ग्वालियर और चित्तौड़ के भवन सब इस बात की साक्ष्य देते हैं कि प्राचीन भवन-परम्पराएं सावधानी से संरक्षित रखी गई थीं और सम्भवतः कुछ दिशाओं में उनमें सुधार भी हुआ था। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि मीनाकारी वाले खप्परों और ईंटों का प्रचलन हिन्दुस्तान में भी होने लगा और कई भागों में इनका सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता था, बंगाल भी इनसे अछूता नहीं बचा।[3]

अन्य लघु उद्योग

इस सम्बन्ध में कुछ लघु उद्योगों का उल्लेख किया जा सकता है, जैसे—मूँगे का काम, हाथी दाँत का काम, नकली जवाहिरातों का काम। मूँगे का काम गुजरात और बंगाल में किया जाता था। गुजरात के अक़ीक अति उत्तम रहते थे और भारत के बाहर भी भेजे जाते थे।[4] हाथी दांत का भी कुछ काम कुछ स्थानों पर होता था। हाथी दाँत के कारीगर जड़ाऊ और अन्य सादी वस्तुएँ, जैसे एवं कंगन, चूड़ियाँ, तलवार की मूँठें, पासे, शतरंज के मोहरे, शंतरज की तख्ती, पलंग—काले, पीले, लाल और नीले तथा अन्य रंगों में तैयार करने में अति कुशल थे। ये सब वस्तुएँ भारत के अनेक बड़े नगरों को भेजी जाती थीं।[5] नकली मोती बनाने का काम लोकप्रिय हो रहा था। बरबोसा गुजरात के नकली मोतियों से विशेष प्रभावित हुआ था।[6] इसी प्रकार

1. ख० फु०, 13 तुलनीय है।
2. बा० ना०, 268-9।
3. इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता में गौर (बंगाल) के पन्द्रहवीं शताब्दी के नमूने द्रष्टव्य हैं।
4. तुलनीय, बरबोसा, प्रथम, 155।
5. वहीं, 142।
6. वहीं, मियां बहुआ नामक एक प्रसिद्ध अफ़गान अमीर, जिसने अनेक मनोरंजक अलंकारों का आविष्कार किया और अत्युत्तम नकली मोती बनाए, उसकी दक्षता और यांत्रिक प्रतिभा के अनेक संदर्भ वृत्तांतों में देखिए।

बंगाली साहित्य में नकली पक्षियों, पौधों और पुष्पों के निर्माण के अनेक संदर्भ मिलते हैं।[1] *काष्ठ का बढ़िया काम सारे देश में होता था। घर की विभिन्न आवश्यकताओं,* जैसे—दरवाजों, खूँटियों, कुर्सियों, खिलौनों, पलंगों और अन्य उपकरणों और बर्तनों के लिए इसकी जरूरत पड़ती थी।

4. कागज—यह सामान्य धारणा है कि चीनियों ने कागज के प्रयोग का आविष्कार किया और मुस्लिमों ने कागज का उद्योग उनसे सीखा। हाल के अन्वेषणों में यह बात स्पष्ट हो गई है कि जबकि चीनी लोग शहतूत के वृक्ष से बनाए जाने वाले काघध या कोकज (जिसे साधारणतः 'घास और पौधों' से बना बताया जाता है) नामक कागज तैयार करने की कला से परिचित थे। कपड़े के टुकड़ों से कागज की खोज करने का श्रेय अरबों या समरकन्द के कागज बनाने वालों को है।[2] मूल चीनी *कागज में बंगाल के 'सफेद कागज' का उल्लेख किया जाता है, जो, कहा जाता है कि* एक वृक्ष की छाल से बनाया जाता था और मृगछाल के समान चिकना और चमकदार होता था।[3] निकोलो काण्टी गुजरात में कागज के उपयोग के बारे में लिखता है

1. तुलनीय, ज० डि० लै०, 1920, 240।
2. चिथड़ों से बने कागज के विषय में अन्य विवरणों के लिए ज० रा० ए० सो०, 1903 में वियना यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर विएसनर और काराबेसक की खोजों का आर० होर्नले द्वारा किया गया सारांश 'हू वाज दि इन्वेन्टर ऑफ रेग-पेपर ?' पृष्ठ 663-684 तुलनीय है। यह स्पष्ट किया गया है कि जब मुसलमान पहले-पहल चीनियों के सम्पर्क में आये तब चीनी लोग कागज बनाने में 'घास और पौधों' के अतिरिक्त प्रायः भीगे हुये वस्त्र-खण्डों और रस्सियों (लिनेन, हेम्पेन और अन्य) का प्रयोग करते थे। अन्त में अरबों ने उनके स्थान पर कपड़ों के रेशों का प्रयोग क्रमशः बढ़ाया और अन्त में उन्होंने वस्त्र-खण्डों, रस्सियों, जालों और ऐसी ही अन्य वस्तुओं, विशेषकर लिनेन में बुने हुए रेशों तक में अपना प्रयोग सीमित कर लिया। अब इस सुधार के अनुसार रेशे एक यान्त्रिक प्रक्रिया से निकाले जाते, फिर उन पर माण्डी या कलफ दिया जाता जिससे कागज की सतह पर प्रभाव पड़ा। यह है संशोधित पद्धति से कागज बनाने की विधि, जिसका श्रेय अरबों को या अधिक ठीक कहा जाय तो समरकन्द के कागज बनाने वालों को है। अरबों ने ऐसे ही चीनियों से कागज में 'कलफ लगाने' और 'भार देने' की प्रक्रियाएं सीखीं। आठवीं शती के अंत तक कागज बनाने की सारी प्रक्रिया, जिनका अनुसरण निश्चय ही कागज की मशीनों के आविष्कार के पहले तक किया जाता था, पूरी हो चुकी थी। इससे पहले के सिद्धान्त के लिए देखिए इम्पी० गै० इण्डि०, चतुर्थ, 206।
3. तुलनीय, मट्ठअन, ज० रा० ए० सो०, 1895, 532।

किन्तु वह उसकी उत्तमता के बारे में कुछ नहीं कहता, पर सम्भवतः गुजरात का कागज़ संशोधित पद्धति के अनुसार बनाया जाता था।[1] अमीर खुसरो दिल्ली में शमी (सीरियाई) नामक कागज के प्रयोग का उल्लेख करता है। इस कागज (जिसका नाम संभवत: दमिश्क से लिया गया था और जो संभवतः संशोधित प्रकार का था) के दो भेद थे, 'सादा' और 'रेशमी'। दूसरी प्रकार का कागज़ संभवत: एक प्रकार का नमदा (फ़ेल्ट) था, यद्यपि इसे पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया गया है।[2] वृहत् संख्या में प्राप्त इस काल की सादी और चमकदार पाण्डुलिपियों को देखते हुए कागज-उद्योग के अस्तित्व के बारे में शंका नहीं रह जाती। दिल्ली में पुस्तक-विक्रेताओं के नियमित बाजार का भी उल्लेख किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कागज़ की मात्रा कागज़ की माँग पूरी करने के लिए पर्याप्त नहीं थी और लोगों को कागज़ के उपयोग में बड़ी मितव्ययिता से काम लेना पड़ता था।[3]

5. शक्कर—गन्ने की खेती हिन्दुस्तान में साधारणतया से विस्तृत रूप से की जाती थी। शक्कर सामान्यतः गन्ने से बनाई जाती थी। शक्कर तैयार करने की सामान्य प्रक्रिया इस प्रकार थी —गन्ने के टुकड़े कर लिये जाते थे, फिर उन्हें चरखी में दबाया जाता था; निकले हुए रस को लोहे की बड़ी-बड़ी कढ़ाइयों में तब तक गरम किया जाता था, जब तक कि वह रवेदार गुड़ का रूप धारण न कर लेता था, तब उसे या तो 'गुड़' की भेलियों में परिवर्तित कर लिया जाता या थोड़ा और साफ़ करके उसकी 'खांड' बना ली जाती। शक्कर का स्वच्छतम रूप रवेदार सफ़ेद कन्द था।[4] शक्कर तैयार करने का काम हिन्दुस्तान में साधारण तौर से बड़े पैमाने में होता था। बंगाल में इतनी शक्कर तैयार की जाती थी कि स्थानीय और आन्तरिक उपभोग के बाद भी निर्यात के लिये अच्छी बचत हो जाती थी। लोग निर्यात के लिए कच्चे और सिले हुए चमड़े में शक्कर बन्द करके कई स्थानों को इसका विशाल भण्डार ले जाते थे। इन शक्करों के अतिरिक्त बंगाल में लोग दानेदार शंक्कर तैयार करते थे और फलों के मुरब्बे और संरक्षित फल तैयार करते थे।[5] समकालीन साहित्य में मिष्टान्नों और पकवानों के विभिन्न वर्णनों से और शक्कर की तथा शरबतों की बिक्री

1. फ्रेम्प्टन, 143।
2. कि० स०, 173 जहां कागज़ तैयार करने की विधि का भी वर्णन किया गया है।
3. बलबन के काल में शाही फरमानों के धोए जाने का रोचक उदाहरण तुलनीय हैं। ब० 64, दिल्ली के पुस्तक विक्रेताओं का उल्लेख अमीर खुसरो की 'इजाज़-ए-खुसरवी' और बरनी के वृत्तांत में किया गया है।
4. अमीर खुसरो, कु० खु०, 74 में एक वर्णन देखिए।
5. तुलनीय, महुअन ज० रा० ए० सो०, 1895, 531, जो शक्कर के निर्यात में इस व्यवसाय को बहुत लाभप्रद बताता है।

से प्रकट होता है कि शक्कर सारे देश में सार्वभौम रूप में उपयोग में लाई जाती थी। शहद सारे देश में एकत्र की जाती थी, किन्तु न तो यह सार्वजनिक रूप से उपयोग में लाई जाती थी और न ही निर्यात की जाती थी।

6. **चमड़े का कार्य** —कारीगरों का एक विशाल समुदाय चमड़े के काम से जीविका चलाता था और यह समुदाय चमारों के एक अलग वर्ग के रूप में अभी भी विद्यमान है।[1] चमड़े के सामान की मांग अधिक न होने पर भी सामान्य तो थी ही। उदाहरणार्थ, दिल्ली के सुल्तान द्वारा अपने अमीरों को उपहारस्वरूप दिये गए 10,000 से अधिक घोड़ों में से कईयों के साथ चमड़े की जीन और लगामें भी थी।[2] तलवारों की म्यानें, पुस्तकों की जिल्दें और जूते जो सब उच्च वर्गों के साधारण उपयोग की वस्तुएं थी, सामान्यतः चमड़े की ही बनती थीं। बंगाल में निर्यात हेतु शक्कर के पार्सल तैयार करने में चमड़े के प्रयोग का उल्लेख किया ही जा चुका है। उसी प्रकार, एक औसत किसान का काम बिना चमड़े की मशक, ढ़ेड़ की ऋतु के लिये जूते, और कृषि-कार्य के उपयोग की चमड़े की अन्य कई छोटी वस्तुओं के बिना नहीं चल सकता था। इनके अतिरिक्त बहुत-सी उत्कृष्ट वस्तुएं चमड़े से निर्मित की जाती थीं। गुजरात में लोग 'पक्षियों और पशुओं के चित्रों से उत्कृष्ट रूप से चित्रित और सोने और चांदी के तारों की कसीदाकारी वाली चमड़े की लाल और नीली दरियां बनाते थे। लोग बकरे, बैल, भैंसे, जंगली बैल तथा गैंडे तथा अन्य पशुओं का चमड़ा बड़ी मात्रा में साफ करते थे। वास्तव में, गुजरात में प्रतिवर्ष इतने चमड़े साफ किए जाते थे कि लोग अरब और अन्य देशों को इस माल के कई जहाज निर्यात करते थे।[3]

औद्योगिक श्रम की प्रकृति

हिन्दुस्तान के प्रमुख उद्योगों की सगणना के पश्चात औद्योगिक श्रम के सगठन और प्रकृति के बारे में कुछ कहना अनुचित न होगा। मुख्य बातों में औद्योगिक श्रमिक ग्रामीण कारीगरों से अधिक भिन्न नहीं थे और उन्हें भी वे ही लाभ और हानियां थीं जो ग्रामीण कारीगरों को थी। औद्योगिक सघ जातियों और वंशानुक्रम पर आधारित थे; उनके औजार और कार्य करने की तकनीक अनगढ थी और उत्पादन थोड़ा, किन्तु श्रेष्ठ होता था। शाही कारखानों में काम करने वाले या सरकार द्वारा नियुक्त कारीगरों के सिवाय, अन्य कारीगरों को उनके हितों की सुरक्षा हेतु कोई समुचित राजकीय संरक्षण नहीं दिया गया था। औद्योगिक माल की पूर्ति एक सकुचित उच्च वर्ग की

1. अनेक स्थानों में चमारों के सघों के सदर्भ के लिये इ० ग० द्रष्टव्य है।
2. तुलनीय, 'मसालिक-उल्-अबसार' का वर्णन इलि० डाउ० तृतीय, 578।
3. मार्कोपोलो का अभिमत द्रष्टव्य है, जो इन दरियों को अति सुन्दर कहता है। यूले, द्वितीय, 393-4।

आवश्यकताओं तक सीमित थी। यह वर्ग बुनकरी की कुछ वस्तुओं, धातु-कार्य या काष्ठ-कला की कुछ वस्तुओं, भवन-निर्माण-शिल्प के निश्चित स्वरूपों और अत्यन्त सीमित कुछ अन्य वस्तुओं में ही संतुष्ट था। कारीगर समग्र समुदाय की विस्तृत आवश्यकताओं के बारे में नहीं सोचते थे। यह निस्संकोच स्वीकार किया जा सकता है कि इन वस्तुओं का कलात्मक मूल्य बहुत था और काम के लम्बे प्रवाह में भारतीय कारीगर के कौशल ने असाधारण दर्जा प्राप्त कर लिया था।[1] दुर्भाग्यवश, व्यवसाय-संघों और शिल्प-परम्पराओं ने बड़ा अलगाव उत्पन्न कर दिया और कभी-कभी तो शिल्पों के रहस्य शिल्पियों के साथ ही मर जाते और भावी पीढ़ी उनसे वंचित रह जाती थी।[2]

II. व्यवसाय और वाणिज्य

लगातार अच्छी फसल आ जाने से गांव में अनाज बच जाता था जो देश में वितरण के लिए समीपस्थ शहरों या किसी मण्डी को ले जाया जाता था। औद्योगिक वस्तुएँ साधारणतः किसी उपयुक्त बाजार में बिक्री के लिए ही तैयार की जाती थीं। हिन्दुस्तान के कुलीन वर्ग को सदैव ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता रहती थी जो केवल बाहर से आयात की जा सकती थीं। सुल्तान सदैव ही समीपस्थ देशों से घोड़े आयात करके अपने अस्तबल को भरने के फिकर में रहता था। ये तथा और भी मांगें देश के भीतर और बाहर माल के विनिमय और यातायात को प्रोत्साहन प्रदान करती थीं। वास्तव में, देशी और विदेशी दोनों व्यापार की भारत में लम्बी और अनवरत परम्परा थी। दूकानदारों और मालवाहकों के लिये माल के वहन और यातायात की समस्या साधारण रूप से हल हो गई थी। भूमि-यातायात के लिये सारे देश में सड़कें और पगडण्डियाँ फैली थीं, जो राज्य के द्वारा प्रशासन कार्य के लिये विशेषकर विशाल सेना और उनके भारी समान के आवागमन के लिये, अच्छी दशा में रखी जाती थीं। व्यापारी वर्ग को भूमि पर की ये सारी सुविधाएं उपयोग करने की अनुमति थी।

आधुनिक समुद्री यातायात के साधनों के अभाव में, समुद्री यात्रा स्पष्टतः आपदाओं से परिपूर्ण थी। समुद्री डाकुओं से भी कम भय नहीं था। किन्तु सारे खतरों के बावजूद भी भारतीयों में समुद्र-तटीय व्यापार लोकप्रिय था और अरब तथा अन्य विदेशी व्यापारी कई देशों से व्यापार करते थे। एक सफल यात्रा से प्राप्त

---

1. तुलनीय, बरबोसा, प्रथम, 142, जिसका विचार है कि खम्भायत (कैम्बे) में हर प्रकार के श्रेष्ठ कारीगर थे। देखिए वरथेमा, 286, जो भारतीयों को संसार में 'महानतम और कुशलतम कारीगर' घोषित करता है।
2. तुलनीय, बरबोसा, द्वितीय, 146; वरथेमा, 214, किस प्रकार स्त्रियां बंगाल में उत्कृष्ट वस्त्र कातने और बुनने से वंचित थीं।

लाभ से न केवल समुद्र में हुई क्षति या विनाश की पूर्ति हो जाती थी, बल्कि अधिक धन भी प्राप्त हो जाता था। कुछ विदेशी व्यापारी तो विभिन्न देशों में भी अपने कर्मचारी या कारोबार रखते थे। देश के भीतर माल ढोने वाले अच्छी तरह संगठित थे। इन सारी परिस्थितियों से आन्तरिक और विदेशी दोनों व्यापारों में विस्तृत क्रियात्मकता को प्रोत्साहन मिला।

(क) भीतरी व्यापार—जैसा कि कहा जा चुका है, भारत में व्यापार की बहुत प्राचीन परम्पराएँ हैं और जाति प्रथा में व्यापार-कार्य के लिए वैश्यों की एक प्रमुख जाति की व्यवस्था की गई है। उत्तर के गुजराती (या मारवाड़ी) और दक्षिण के चेट्टी अभी भी अपनी प्राचीन और सम्माननीय स्थिति को लिए हैं और अपने व्यापारी क्रिया-कलापों में रत हैं। गत शताब्दी के पहले तक राजपूताना के 'बंजारा' नामक पुराने व्यापारी-वर्ग के पास व्यापार के लिए लाखों बैल थे। उनके कुछ काफिलों में तो 40,000 बैल तक थे।[1]

मैंने ग्राम के लघु बाजार का उल्लेख कर दिया है। नगर के बाजार का वर्णन अन्य स्थान पर किया जायगा। बाजार की नियमित दूकानों में व्यापार के अतिरिक्त छोटे दूकानदार और व्यापारी चलती-फिरती दूकानों और घोड़ों पर व्यापार करते थे। फेरी वाले घुमक्कड़ व्यापारी भी सामान्यतः थे।[2] वस्तुओं का विशाल परिमाण में लेनदेन मण्डियों में होता था, जहाँ समीपस्थ क्षेत्र में उत्पन्न माल या अनाज के बचे हुए अंश का विनिमय भी सुविधापूर्वक हो जाता था। मुल्तान और लाहौर जैसे प्रशासकीय केन्द्र या दिल्ली जैसे राजधानी वाले नगर कभी-कभी समग्र प्रान्त के लिए निकासीगृह का काम करते थे। किसी समीपस्थ शहर के मेलों में आसपास के स्थानों के फुटकर व्यापारी और छोटे दूकानदार माल खरीदकर नया भण्डार बना लेते थे या पुराने भण्डार में ही और माल भर लिया करते थे। विख्यात स्थानों में सब प्रकार के पशुओं—जैसे, घोड़ों, बैलों, ऊँटों, गायों और भैंसों के क्रय-विक्रय के लिए विशेष रूप से बड़े पशु-मेले होते थे और लोग वहां बड़ी दूर-दूर से अपने-अपने पशु बेचने या खरीदने आते थे।[3]

बड़े पैमाने के व्यापार पर विशेष वर्गों या ग्राम समुदायों का एकाधिकार था। शहर का छोटा-मोटा व्यापारी भी उसी प्रकार पेशेवर व्यापारियों के हाथ में था। कारीगरों के कुछ वर्ग अपना तैयार माल सीधे ऐसे ग्राहकों या उन वस्तुओं के व्यापारियों को बेचना पसन्द करते थे। उनका मार्गदर्शन अति प्राचीन परम्पराएँ करती थीं। उनके व्यवसायिक उद्यमों के स्वरूप को नियन्त्रित करने के लिए कोई नैतिक संहिता

---

1. तुलनीय, टॉड, द्वितीय, 1117।
2. मध्यकालीन इंग्लैंड में व्यापार परिस्थितियों के लिए तुलनीय साल्ज़मेन, 241।
3. मारवाड़ के सादृश्य के लिए तुलनीय, टॉड, द्वितीय, नोन-12।

नहीं थी, सिवाय उनके जिनका नियमन राज्य निर्धारित करना उचित समझता था।[1] हिन्दुस्तान की अति महत्वपूर्ण व्यवसायी जातियाँ थीं—उत्तर में मुल्तानी और पश्चिमी समुद्री तट में गुजराती बनिये। गुजराती बनिये भारतीय और विदेशी दोनों प्रकार के मालों का व्यापार करते थे और ये मालाबार और कोचीन तक फैल गए थे जहाँ वे 'कई देशों से आए हुए प्रकार के' मालों का व्यापार करते थे। विदेशी मुस्लिम व्यापारी सामान्यतः 'खुरासानी' कहे जाते थे। वे सारे देश में व्यापार करते थे और अन्य अनेक मुस्लिम-वर्ग तटीय शहरों में व्यापार करते थे। कुछ 'बंजारे' और सार्थवाह भी अपना खुद का व्यापार करते थे।[2] दक्षिण में समुद्र-तटीय राज्यों के शासक विदेशी व्यापारियों को कुछ प्रदेशोत्तर अधिकार और विशेष रियायतें दे दिया करते थे, क्योंकि ये सरकारी कोषागार को बढ़ाते थे दक्षिण में व्यापार करने वाले हिन्दुस्तानी व्यापारियों को भी ये सारी सुविधाएँ और रियायतें प्राप्त थीं।

उन वर्गों में जो भीतरी और बाहरी व्यापार में भाग तो नहीं लेते थे किन्तु अपनी जीविका के लिए उन पर अवलम्बित रहते थे, हम मालवाहकों और दलालों के वर्गों का उल्लेख कर सकते हैं। बंजारे, जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, कृषि और अन्य उत्पादनों को देश के एक भाग से दूसरे भाग को ले जाने का कार्य विस्तृत पैमाने पर करते थे। उनकी प्रवासी आदतें, बैलों, बैलगाड़ियों और छकड़ों तथा लद्दू घोड़ों की बृहत् संख्या और देश के मार्गों का सूक्ष्म ज्ञान के कारण वे अपने इस कार्य के लिए विशेष उपयुक्त थे।[3] गुजरात और राजपूताना के खतरनाक और असुरक्षित देहाती क्षेत्रों की सड़कों पर काफ़िलों का मार्गदर्शन सामान्यतः राजपूताना के भाट करते थे।[4]

समुद्र तट और देश के भीतरी भाग में बड़ा व्यापार सामान्यतः दलालों के एक संगठित वर्ग द्वारा किया जाता था जो 'लेनदेन के दोनों पक्षों से दस्तूरी लेकर कुशलता से वस्तुओं की कीमत बढ़ा देते थे।' जब सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने अपने राज्य, खासकर दिल्ली की मांग और पूर्ति को नियन्त्रित करने का निश्चय किया तो उसे कठोरता और शीघ्रता से दलालों के वर्ग का दमन करना पड़ा।[5] किन्तु जैसे ही

1. तुलनीय, तु० 13 व। किस प्रकार मुस्लिम मत दास व्यापार और अनाज की जमाखोरी के विरुद्ध था, जिसका व्यापारी वर्गों द्वारा लगातार उल्लंघन किया जाता था।
2. गुजराती बनियों के लिए तुलनीय है बरबोसा, द्वितीय, 73; खुरासानियों के लिए इ० खु० में अनेक सन्दर्भ, मुल्तानियों और बंजारों के लिए ब० 385। ले वान (उर्दू अनुवाद, 91-2 के अनुसार) भी है, तुलनीय जो मुल्तानियों और बंजारों को और मुख्यतः कृषि कार्य में रत जाटों के दो वर्गों को एक ही बताते हैं।
3. मलिक मुहम्मद जायसी पृष्ठ 484 का अभिमत तुलनीय है।
4. टॉड में और सीदी अली रायस में भी अनेक सन्दर्भ तुलनीय है।
5. तुलनीय, बरानी, ब० (पाण्डुलिपि), 155।

वाणिज्यीय कार्यकलाप राज्य के नियन्त्रण से मुक्त हुए, दलालों ने फिर अपना सामान्य कार्य प्रारम्भ कर दिया। सुल्तान फीरोज़ तुगलक के समय तक दलालों के व्यापार-नियम और व्यवहार इतने महत्वपूर्ण हो गये थे कि उन्हें राज्य की विधि-सहिता में स्थान मिल गया।[1] एजेन्सी की पद्धति भी ज्ञात थी और प्रचलित भी थी। श्रेष्ठियों द्वारा उनकी ओर से व्यापार कार्य चलाने के लिए नियमित रूप से वकील भी नियुक्त किये जाते थे।[2] देशी महाजन वर्तमान बैंकिंग के कुछ सामान्य प्रचलित कार्य सम्पन्न करते थे। वे कर्ज देते और हुण्डियाँ लेते थे।[3] व्यापार की अन्य सुविधाओं में हम व्याज पर धन देने की पद्धति को ले सकते हैं। अनुबंध, जिन्हें 'तमस्सुक' कहते हैं, नियमित रूप से भरे जाते थे और कानून में साक्ष्य प्रस्तुत करने तथा उनकी परीक्षा के लिये और व्याजदर निश्चित करने के लिये उचित नियमों की व्यवस्था थी। ये सारे नियम राज्य में न्यायिक अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित किये जाते थे।[4]

हम साहूकार के प्रश्न पर अन्य व्यापार परम्पराओं और व्यवहारों से अलग

---

1. तुलनीय फि० फी०, 340 ब, कि यदि किसी दलाल ने दो पक्षों के मध्य किसी वस्तु के विक्रय की चर्चा की और दलाल की गलती के बिना लेनदेन की शर्तें मान लिये जाने के बाद, यदि लेनदेन टूट गया, तो दलाल अपनी दस्तूरी वापस करने के लिये बाध्य नहीं था, क्योंकि वह उसकी मजदूरी थी।
2. वा० मु०, 31 ब, में एक उदाहरण तुलनीय है।
3. तुलनीय है एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' 1929 संस्करण, जिल्द तीसरी, 44, किस प्रकार अन्य कार्यों के साथ ही साथ बैंकिंग (1) लोगों का धन सुरक्षित रूप से रखना, (2) धन रखने की अवधि तक व्याज देते हुए और अनुबंध के अनुसार मांगने पर मूल वापस करते हुए धन का अस्थायी विनियोग और (3) सारा धन, बैंक नोट और चैक इत्यादि में चुकाने के एक साधन का प्रावधान सम्भव बना देती है; भारत में देशी बैंकिंग की परिभाषा के लिये जैन, 10 भी तुलनीय है। 'कोई भी देशी या निजी फर्म, जो ऋण देने के अतिरिक्त या तो जमा प्राप्त करती है या हुण्डियों का लेनदेन करती है या दोनों कार्य करती हैं'; लोदियों के शासन-काल से वा० मु०, 31 ब में उदाहरण। बरनी का अभिमत द्रष्टव्य है, किस प्रकार ऋणग्रस्त अमीर इन देशी महाजनों को अग्रिम के नकदी के रूप में 'अवना' रखने का अधिकार सौंप देते थे (ब०, 63 के अनुसार)। इसी प्रकार सुल्तान फीरोज तुगलक के समय विकसित 'इतलक' या 'नकद-पत्र' की पद्धति के लिये जैन, 10 देखिए। सैनिकों को बाहरी स्थानों में राज्य द्वारा ये नकद-पत्र दे दिये जाते थे और दिल्ली के महाजन एक निश्चित दस्तूरी की दर से उनसे बट्टा काटते थे।
4. उदाहरण के लिये तुलनीय है ता० फ०, प्रथम, 166।

विचार करेंगे। दोनों जातियों का एक समूचा वर्ग साहूकारी के धन्धे में उन्नति करने लगा। वे व्यापार-सम्बन्धी कार्यों में सहायता देने के लिये कर्ज देते थे, किन्तु उनका प्रमुख धन्धा अधिक से अधिक लाभप्रद ब्याज दर पर कर्ज देना था। ये साहूकार और महाजन सब उच्च वर्गों—जिनकी अपव्ययता और धन की लगातार माँग लोक-प्रसिद्ध है—में बहुत ही लोकप्रिय थे। ब्याज की दर निश्चित करना कठिन है, किन्तु अमीर खुसरो के कई कथनों से मिलान करके मोटे तौर पर हम बड़ी राशि पर 10 प्रतिशत वार्षिक और छोटी-मोटी राशि पर 20 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर निश्चित करेंगे।[1] अधिक ब्याज के इन कर्जों और चक्रवृद्धि ब्याज दर की प्रथा के कारण अपेक्षाकृत गरीब लोग, जो थोड़ी-सी रकम उधार लेते, किन्तु शायद ही उसे वापस कर पाते, ऋण के भार से दब गये, जबकि अमीरों के बड़े साधन और अन्त में उनकी शक्ति और प्रभाव ही उन का ऋण से उद्धार करते।[2] इस सम्बन्ध में हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि लोग अपनी नकदी और मूल्यवान् 'हिमयानियों' या मोटे कपड़े के खोखले कमरबन्दों में रखते थे जिसे वे यात्रा के समय कमर में लपेट लेते थे।[3]

जहां तक व्यापार सम्बन्धी नैतिकता का प्रश्न है, हमें यह याद रखना चाहिये कि मध्यकालीन व्यापारियों का नैतिक स्तर सामान्यतः प्रत्येक देश में निम्न था, जो कि वर्तमान संगठन और नियन्त्रण के अभाव में बिलकुल स्वाभाविक है। बेईमानी से धन कमाने के शायद ही ऐसे कुछ साधन हों जिनका सहारा व्यापारी न लेता हो। मिलावट और जाली बांट का प्रयोग सामान्य बात थी और उन्हें ठीक करने के लिये उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।[4] सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने उनके कार्यकलापों पर अत्यन्त कठोर दण्ड और कट्टर नियमन लागू किये थे। उन पर

1. मुस्लिम ऋणदाताओं के लिये तुलनीय म० अ०, 150 ब्याज की दरों के लिये कु० खु, 312 देखिए. जहां अमीर खुसरो एक टंका के मूलधन पर एक जीतल प्रतिमाह या 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज दर का उल्लेख करता है। 'इज्जाज-ए-खुसरवी', जिल्द प्रथम, 147 में वह निश्चितरूप से : 10 प्रतिशत वार्षिक का उल्लेख करता है जो सम्भवतः विशाल राशि के लिये लागू होता था। 'मत्ला-उल-अनवार', 150 में वह मासिक ब्याज चुकाने की पद्धति का वैसा ही उल्लेख करता है।
2. एक ऐसे प्रदेश में जाने के बारे में लल्ला का निराशापूर्ण विलाप देखिए, जहाँ न तो ऋण की पद्धति थी और न ही कोई ऋणदाता ही था'। उधार लेने के दोषों के लिये टेम्पील 185 और तु० 15 देखिए।
3. तुलनीय, ह०, 130-1।
4. इंगलैंड के आकलन के लिये साल्ज़मैन, 75 तुलनीय है; दूकानदारों के बेईमानी-पूर्ण तरीकों के सम्बन्ध में रेटिस्बन के बरथोल्ड के उपदेश के लिये भी वहीं 241-2, तुलनीय है। .इ० खु०, प्रथम, 174, कबीर, शाह, 162 भी; विशेषतः

नियन्त्रण रखने हेतु विशेष बाजार-कर्मचारी और गुप्तचर नियुक्त किये गये थे और कभी-कभी सुल्तान उनकी बेईमानियां पकड़ने के लिये विभिन्न वेषों में बच्चों को भेजा करता था। जब सुल्तान ने अन्तिम रूप से व्यापार-सम्बन्धी बेईमानी और व्यावसायिक धोखाधड़ी को दबाने या अस्थायी रूप से दूर करने में सफलता प्राप्त कर ली तब सारी सल्तनत में उसकी जयजयकार हुई और उस क्षण के उत्साह में उसकी क्रूरता, यहां तक कि उसकी अधार्मिकता को भी भुला दिया गया।[1] यह सन्तोष का विषय है कि समुद्री व्यापार को असुरक्षाओं और शासकीय नियन्त्रण से लगभग पूर्णतः स्वतन्त्रता के बावजूद भी तटीय शहरों में, जहां भारतीय व्यापारी विदेशी व्यापारियों से लेनदेन करते थे, एक बिलकुल भिन्न वातावरण विद्यमान था। विदेशी यात्री एकमत से भारतीय व्यापारियों की एकनिष्ठा और सच्चाई, व्यापार के उनके ईमानदार तरीके, उनकी तीक्ष्णता और उनके माप और तौल 'जो सिर के एक बाल का भी वजन निकाल सकते थे', की प्रशंसा करते हैं।[2]

हिन्दुस्तान के आन्तरिक व्यापार के आधार का ठीक-ठीक या कामचलाऊ आकलन करना भी संभव नहीं है। गांवों और उनकी मण्डियों में सामान्य शांतिकाल में अपेक्षाकृत तुरत-फुरत विनिमय हो जाता था। हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि दिल्ली और अन्य प्रान्तीय राजधानियां अपने क्षेत्रों के भीतरी व्यापार का केन्द्र-बिन्दु थीं और वहां पर्याप्त व्यापार-सम्बन्धी क्रियाकलाप होते थे। साधारणतः भीतरी व्यापार का आकार बड़ा था, जब तक कि राज्य के एकाधिकार या कठोर प्रशासकीय नियन्त्रण द्वारा उसका गतिरोध न हो।[3] अनेक व्यापारियों द्वारा वाणिज्यीय कार्यों से

बरनी का अभिमत और उसका पर्यवेक्षण देखिए जो सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के नियमों का जोरदार समर्थन करता है और व्यापारी वर्ग के एक वर्णन में वह उन्हें 'सबसे झूठे और 72 जातियों में नीचतम' कहता है। ब०, 316-7, 343 के अनुसार।

1. उदाहरणार्थ सुल्तान के प्रति शम्सुद्दीन नामक प्रसिद्ध धर्मशास्त्री का अभिनन्दन तुलनीय है, जो भारत में मुस्लिम धर्म का प्रचार करने के लिए आया, किन्तु जो सुल्तान के व्यक्तिगत धर्म और मुस्लिम उपदेशों के प्रति सुल्तान के कटु अनादर से निराश होकर लौट गया। उसके अनुसार व्यापारिक धोखाधड़ी का दमन करने में अलाउद्दीन की सफलता 'आदम के काल के बाद' एक अतुलनीय सफलता थी। (ब०, 298 के अनुसार)।
2. बरथेमा, 169 तुलनीय है।
3. राजपूताना के आंतरिक व्यापार पर एकाधिकार के प्रभाव के चित्रण के लिये देखिए टॉड, द्वितीय, 1110 : 'इन पिछले बीस वर्षों में वाणिज्य लगभग लुप्त सा हो गया है; और यह विरोधाभास-सा प्रतीत होगा कि सार्वभौम शांति के इन दिनों से कहीं दस गुने अधिक कार्यकलाप और व्यापारिक साहस उन लुटेरे-युद्धों

सम्पत्ति एकत्र करने के अनेक उल्लेख मिलते हैं। ये आकलन कहां तक आंतरिक व्यापार की धाराओं या उसके आयतन पर प्रकाश डालते हैं, यह अत्यन्त संदेहास्पद है।[1]

(ख) विदेशी व्यापार—भारत का विदेशों से सदैव ही, यहाँ तक कि प्राचीन-काल में भी, ठोस व्यापारिक सम्बन्ध था। समीक्षान्तर्गत काल में समुद्र पर इस्लाम और मूरों के प्रभुत्व ने भारत को योरोप से सीधे वाणिज्यीय-व्यापार से अलग कर दिया था। फिर भी इससे भारतीय व्यापार के आयतन या पश्चिमी देशों में भारतीय वस्तुओं के वितरण पर कोई असर नहीं पहुँचा। भारतीय वस्तुएँ अरबों के द्वारा लाल सागर में ले जाई जातीं और वहां से वे वस्तुएँ दमिश्क और सिकन्दरिया जाती थीं, जहाँ से वे सारे भू-मध्यसागरीय देशों में और उसके आगे भी वितरित की जाती थीं। वे भारतीय माल पूर्व अफ्रीका के तट को, सुदूर पूर्व में मलय द्वीपों और चीन को और प्रशान्त महासागर के अन्य देशों को मूर व्यापारियों के द्वारा पहुँचता था। इसी प्रकार भारत मुख्य भूमि पर मध्य-एशिया, अफ़गानिस्तान, फ़ारस से मुल्तान-क्वेटा, खैबर दर्रे और काश्मीर के रास्तों द्वारा जुड़ा था। व्यापारियों के काफ़िले, जो प्राचीनकाल से ही इन रास्तों से परिचित थे, भारत, बुखारा और ईराक के मध्य और दमिश्क तक बहुधा आवाजाही करते रहते थे।

1. **सामुद्रिक व्यापार**—16वीं शती के मध्य में पुर्तगालियों के आगमन से पूर्व तक समुद्री यात्रा का एक महान् लाभ यह था कि यह उपेक्षाकृत सुरक्षित था। दूसरी ओर थल सीमान्तों को लगातार मंगोल आक्रामकों से खतरा रहता था। समुद्री रास्ते मूर व्यापारियों के हाथ में थे, जिनके पास भारत के समुद्री व्यापार का लगभग पूरा एकाधिकार था जिसका परिमाण पर्याप्त था। उच्च वर्गों के लिए विलास की कुछ सामग्रियाँ और सब प्रकार के घोड़े और खच्चर आयात की मुख्य वस्तुएँ थीं।

विलास की सामग्रियों में रेशम, मखमल और कसीदे के काम वाले परदों के साथ अन्य उपस्कर और सजावट के सामान का भी उल्लेख किया जा सकता है।

के मध्य थे, जिन्होंने भारत को एक विस्तृत युद्धक्षेत्र में परिवर्तित कर दिया था। एकाधिकार के विध्वंसन स्पर्श का कितारों (अर्थात् काफ़िले की पंक्तियों) पर सहारिया मरुस्थल के भाले से भी अधिक प्रभाव पड़ा।'

1. उदाहरण के लिए देखिए फ्रेम्प्टन, 135; मेजर 22, जहाँ निकोलो काण्टी कहता है कि सिन्धु और गंगा के बीच के व्यापारी इतने सम्पन्न हैं कि उनमें से एक के पास चालीस जहाज हैं जिनका प्रयोग वह अपने माल के आयात-निर्यात में करता है। उनमें से प्रत्येक का मूल्य अनुमानतः 50,000 स्वर्णखण्डों के बराबर था, जैन समाज के दो साहूकारों द्वारा बारहवीं शती में अपने खुद के व्यय से माउन्ट आबू पर दिलवारा का उत्कृष्ट मन्दिर बनवाए जाने के उदाहरण के लिए, देखिए जैन, 10।

हम यह उल्लेख कर ही चुके हैं कि किस प्रकार जरी और रेशम की वस्तुएँ सुल्तान मुहम्मद तुगलक के समय अंशतः सिकंदरिया, ईराक और चीन से आयात की जाती थीं। उसी प्रकार एक वृत्तान्त-लेखक के अनुसार गुजरात के शाही भण्डार में सदैव योरोपीय देशों में निर्मित विलास की वस्तुएँ रहती थीं।[1] हुमायूँ के समय तक ये विदेशी वस्तुएँ सामान्यतः हिन्दुस्तान के अमीरों और राजघरानों में लोकप्रिय हो गई थीं।[2] बन्दूकों, बारूद और अन्य मशीनी हथियारों के अविष्कार से हिन्दुस्तान के आयात-व्यापार को एक नई उत्तेजना मिली। सोना, चाँदी, ताँबा और तूतिया (नीलाथोथा) भी अल्प मात्रा में आयात किए जाते थे।[3]

हिन्दुस्तान में घोड़ों की बहुत माँग थी। सेना के लिए घोड़ों की विशाल माँग के अतिरिक्त यह पशु साधारणतः यातायात, घुड़सवारी और घुड़दौड़ के लिए भी प्रयुक्त किया जाता था। श्रेष्ठ पशुओं की हिन्दुस्तान में बहुत माँग थी। घोड़ों की रुचि केवल मुस्लिमों तक ही सीमित न थी। हिन्दू भी सैन्य उपकरणों के अपने पुरातन विचारों को संशोधित करने के लिए उत्सुक थे और क्रमशः हाथियों के स्थान पर घोड़े रख रहे थे। इस प्रकार राजपूताना और दक्कन के हिन्दू राज्यों में घोड़ों की बहुत माँग थी, विशेषकर दक्कन में, जहाँ की जलवायु और अन्य परिस्थितियाँ घोड़ों की पैदावार के लिए अनुपयुक्त थीं। फलतः समय-समय पर बाहर से आवश्यकता की पूर्ति करनी पड़ती थी। सुल्तान की वार्षिक भेंटों के लिए प्रत्येक देश से उत्तम घोड़े प्राप्त करने की विशेष व्यवस्था की जाती थी और उनके लिए अच्छा मूल्य दिया जाता था।[4] शाही घुड़साल के लिए भी नियमित रूप से घोड़े खरीदे जाते थे। हम बाद में थल-सीमान्तों से घोड़ों के आयात का उल्लेख करेंगे। यह ध्यान में रखना उचित होगा कि कुछ श्रेष्ठ नस्लों के घोड़े धोफर (यमन के छोर पर) से, कुछ किश, होरमुज और अदन से और अन्य घोड़े खच्चरों के साथ ही फारस से लाए जाते थे।[5]

---

1. तुलनीय त० अ०, प्रथम, 198 (लखनऊ संस्करण)।
2. हुमायूँ के शाही भोजों में सजावट की पुर्तगाली और इटालियन वस्तुओं के प्रयोग तुलनीय जिनका वर्णन बाद के अध्याय में किया गया है, सुल्तान इब्राहीम सूर द्वारा योरोपीय मखमल और पोर्तुगाल के कसीदे के अस्तर वाले बृहदाकार चदोवे के प्रयोग के लिए तुलनीय, वही, 423।
3. तुलनीय, यूल, द्वितीय, 398।
4. तुलनीय, इलि० डाउ०, तृतीय, 578।
5. यूल, प्रथम, 83-4 में मार्कोपोलो (जो खच्चरों को 'गधे' कहता है) का वर्णन देखिए; वही, जिल्द द्वितीय, 340; इब्नबतूता का वर्णन, कि० रा०, प्रथम, 150, चित्तौड़ पर सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी की आक्रमणकारी सेना का मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा किया गया वर्णन तुलनीय है; जो अनेक देशों, ईराक, तुर्किस्तान, बल्ख, भूटान इत्यादि के घोड़ों का वर्णन करता है। पद्मावत (हिंदी), 227 के अनुसार।

हिन्दुस्तान से निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ कई थीं और उनमें विभिन्न देशज उपजें, विशेषकर अनाज और सूती वस्त्र सम्मिलित थे। फ़ारस की खाड़ी के आस-पास के कुछ देश अनाज के लिए पूर्णतः भारत पर अवलम्बित थे।[1] प्रशान्त महासागर के द्वीप, मलय द्वीप समुदाय और अफ्रीका का पूर्वी समुद्री तट भारतीय वस्तुओं के पर्याप्त विस्तृत बाजार थे। हिन्दुस्तान का निर्यात-व्यापार मुख्यतः गुजरात और बंगाल के बन्दरगाहों द्वारा होता था। गुजरात से मुख्यतः बहुमूल्य पत्थर, नील, कपास, हड्डियाँ, और 'अन्य अनेक प्रकार का माल जिनका उल्लेख करना श्रमसाध्य होगा', निर्यात किये जाते थे। सूती वस्त्र और अन्य वस्त्र निर्यात की विशेष महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ थीं।[2] अन्य गौण निर्यातों में अक़ीक, जिन्ज़लि का तेल, दक्षिणद्र, बालछड़, तुरबनाग, अफ़ीम, नील और योरोपवासियों के लिए अनजान, किन्तु मलक्का और चीनवासियों की प्रिय कुछ अन्य दवाईयाँ सम्मिलित थीं।[3] कृषि सम्बन्धी उपजों के निर्यात में प्रचुर परिमाण में गेहूँ, बाजरा, चावल, दालें, तेल के बीज, इत्र और अन्य ऐसी ही वस्तुएं सम्मिलित थीं। यह सूची किसी भी प्रकार पूर्ण नहीं है। वरथेमा के अनुसार बंगाल कपास, अदरख, शक्कर, अनाज और हर प्रकार के माँस के लिए संसार में सर्वाधिक सम्पन्न प्रदेश था। बरबोसा शक्कर को बंगाल की प्रमुख निर्यात की वस्तु मानता है और अन्य बातों में वह वरथेमा के कथन से सहमत है।[4] बैरास का कथन है कि शेरशाह का आधिपत्य स्थापित होने के पहले बंगाल की सम्पत्ति गुजरात और विजयनगर के संयुक्त धन के तुल्य समझी जाती थी।[5] यह सम्पत्ति कहाँ तक बंगाल के निर्यात व्यापार पर अवलम्बित थी, स्पष्ट नहीं है।

---

1. उदाहरणार्थ, तुलनीय इब्नबतूता, कि० रा०, प्रथम, 157 का वर्णन कि क़लहट के निवासी लगभग पूर्णतः भारतीय वस्तुओं—अनाज, वस्त्र, आदि पर निर्भर रहते थे; वहीं, 156 कि येमन का प्रधान भोजन चावल भारत से आयात किया जाता था।
2. तुलनीय—यूले, द्वितीय, 398, मेजर, 9, फ्रेम्प्टन। बरबोसा का वर्णन देखिए कि 'तुरकों के लिए कई प्रकार की सूती मलमल और उसके ही अन्य श्वेत और मोटे वस्त्र' फ़ारस की खाड़ी के अनेक देशों को और मलय द्वीपों को जहाजों द्वारा भेजे जाते थे। गुजरात के निर्यातों में वह विभिन्न प्रकार के छपे वस्त्रों, रेशम और मलमल (नीचे लिखे अनुसार) का भी उल्लेख करता है। निकटिन गुजरात के निर्यातों में कम्बल भी सम्मिलित करता है (मेजर, 19 के अनुसार)।
3. तुलनीय, बरबोसा, प्रथम, 154-156।
4. वहीं, जिल्द द्वितीय, 145-47।
5. तुलनीय, बरबोसा, द्वितीय। परिशिष्ट, 246।

हिन्दुस्तान के विदेशी व्यापार का परिमाण निश्चित करना लगभग असम्भव सा है, क्योंकि कभी भी आयात और निर्यात के कोई आंकड़े नहीं रखे जाते थे। आज के विशाल और वृद्धिगत आँकड़ों की तुलना में विदेशी व्यापार का परिमाण सम्भवतः बहुत लघु था। गुजरात में खम्भायत (कैम्बे) और बंगाल में बंगाला, उत्तर में विदेशी व्यापार के दो महत्वपूर्ण बंदरगाह थे।[1] वरथेमा के अनुसार ये दो बंदरगाह 'फ़ारस, तारतारी, तुर्की, सीरिया, बरबेरी या आफ्रीका, अरब, फेलिक्स, इथोपिया, भारत' और अन्य बहुसंख्यक द्वीपों को रेशमी और सूती वस्त्र निर्यात करते थे। वह प्रतिवर्ष खंभायत आने वाले विभिन्न देशों के लगभग तीन सौ जहाजों का उल्लेख करता है। वह बंगाल में पचास जहाज-भार कपास और रेशम के उत्पादन का आकलन करता है।[2] जहाज का औसत भार और भार-वहन क्षमता निश्चित नहीं की जा सकती। यह केवल एक सामान्य अनुमान है और सारी सूचना बहुत संदिग्ध है। इससे पता चलता है कि फ़ारस की खाड़ी के आसपास और लालसागर तथा हिंदमहासागर के किनारे के देशों में भारत का अच्छा व्यापार था; किन्तु हम उन देशों की माँगों और इन वस्तुओं की उनकी उपभोग-क्षमता के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। हम केवल यही कह सकते हैं कि भारत का व्यापार, उसकी ठोस सम्पत्ति और विकास के अवसर और अन्त में स्वयं भारतीय बाजार, पुर्तगाल के राजा को, जिसने भारत की विजय के समय संसार का सबसे सम्पन्न राजा होने की आशा की, आकर्षित करने के लिये, पर्याप्त विस्तृत थे।[3]

सामुद्रिक व्यापार में भारतीयों का हिस्सा विशेष नहीं था। भारतीय समुद्रतट का व्यापार और जहाज चलाना विदेशियों, मुख्यतः अरबों के हाथ में था। गुजराती बनियों, दक्षिण के चेट्टियों और भारत में बसे कुछ मूरों के एक छोटे व्यापारी समुदाय का विदेशी व्यापार और समुद्री व्यापार में कुछ हिस्सा था। यदा-कदा कुछ अन्य भारतीय इन लाभप्रद उद्यमों की ओर आकर्षित होते थे।[4] किन्तु सामान्यत: भारतीयों ने बड़े पैमाने पर मल्लाही और समुद्री कार्यकलाप नहीं अपनाया। उनके व्यवहारों और रीतिरिवाजों और उनके सारे दृष्टिकोण ने किसी ऐसे साहसी उद्यम को राष्ट्रीय पैमाने पर अपनाने के लिए निरुत्साहित किया।

1. 'बंगाला' के लिए देखिये परिशिष्ट, मोरलैंड, 'इण्डिया एट दी डैथ ऑफ़ अकबर'।
2. तुलनीय, वरथेमा, 111, 112।
3. पुर्तगाल के राजा को कही गई वरथेमा की अन्तिम अभ्युक्ति देखिए; 290।
4. तुलनीय, उदाहरण के लिए बंगाल के धनी लोगों के एक वर्ग का, जो जहाज बनाते थे और विदेशी राष्ट्रों से व्यापार करते थे, महुअन द्वारा अवलोकन। वह *यहाँ तक कहता है कि बंगाल का एक सुल्तान जहाज तैयार कराता था और उन्हें* विदेशी व्यापार के लिए बाहर भेजता था (ज० रा० ए० सो०, 1895, 533 के अनुसार); बम्बई प्रेसीडेन्सी के कुछ जिलों जैसे, थाना, रत्नागिरी, सूरत इ० के अवलोकनों के लिए इम्पी० गै० इण्डि० भी द्रष्टव्य है।

2. **थल सीमान्तों से व्यापार**—थल सीमान्तों से भारत का व्यापार, जैसा हम कह चुके हैं, बहुत पुराना है। अधिकांश समय मंगोलों का खतरा होने पर भी व्यापारियों के काफ़िले आते ही रहे। वास्तव में तुर्किस्तान के निवासी और स्वयं मंगोल लोग, जब भी पड़ोसी प्रदेशों की लूटपाट के अपने लाभप्रद व्यवसाय से अवकाश पाते तो कस्तूरी, बालदार-चमड़ों, शस्त्रों, बाज पक्षियों, ऊंटों और घोड़ों का विस्तृत व्यापार करते थे।[1] हम खुरासान के व्यापारियों, तुर्की और चीनी दासों और 'शुस्तरी' नामक कपड़े का, जो सम्भवतः शुस्तर से आता था, उल्लेख कर ही चुके हैं। मंगोल-संकट समाप्त हो जाने के पश्चात् थल सीमान्तों से सम्भवतः अधिक व्यापार-कार्य होने लगा। बाबर और हुमायूं के समय, जबकि इन सीमान्तों को दृष्टिगत रखते हुए व्यापारिक परिस्थितियाँ सामान्य या स्थिर नहीं कही जा सकतीं, हम बाहर से भारत की ओर काफ़िले आते हुए और उनमें आपसी सम्पर्क के अन्य उल्लेख पाते हैं। अकबर[2] के समय और उसके काफ़ी बाद तक अधिक शान्तिपूर्ण परिस्थितियों ने भारत के इस भाग में व्यापार-सम्बन्धी कार्यों पर अच्छा प्रभाव डाला होगा।

घोड़े आयात की प्रमुख सामग्री थे, यद्यपि विलास की अन्य वस्तुएं और बालदार चमड़े और शस्त्र की भी माँग थी।[3] भारत में घोड़े विशाल संख्या में आयात किये जाते थे यहाँ तक कि मंगोल संकट के समय भी, उन्हें आयात किया जाता था और अपेक्षाकृत सस्ता मूल्य होने के कारण दिल्ली में उनका बाज़ार गरम था। तुर्किस्तान में 'अज़क' के लोग हिन्दुस्तान को भेजने के लिए विशेष नस्ल के घोड़े उत्पन्न करते थे और उनके सुरक्षित परिवहन और रास्ते में देख-रेख के लिए उन्होंने एक सुविकसित संगठन की व्यवस्था की थी।[4] भारतीय प्रदेश में प्रवेश करने पर इन

1. तुलनीय, फ़खरुद्दीन मुबारकशाह, ता० फ० मु०, 38 का वर्णन।
2. बाबर के लिए देखिए मेकालिफ, प्रथम, 51, जहाँ दिल्ली, मुल्तान और काबुल के मध्य व्यापार-सम्बन्ध पंजाब के व्यावसायिक जीवन का एक परिचित अंग दिखता है; फ़ारस में हुमायूं के लिए शाही मनोरंजनों के कार्यक्रमों और भोजों तथा भोजन-व्यवस्था की सूची—जिसमें कई भारतीय मिष्ठान्न और भोजन सम्मिलित हैं—के लिए देखिए अबुलफ़ज़्ल का विवरण (अ० ना०, प्रथम, 207) काफ़िलों के प्रायः भ्रमण के लिए द्रष्टव्य है वहीं, 242, 299।
3. 'खुरासान की चार राजधानियों में से एक' निशापुर से रेशमी और मखमली पोशों के आयात के लिए देखिए कि० रा०, प्रथम, 239; मार्कोपोलो भी। केरमान में भारतीय तलवारों के लिए इस्पात के निर्माण के लिये यूले, प्रथम, 90।
4. तुलनीय, इब्नबतूता कि० रा०, प्रथम, 199-200 का वर्णन। अज़क के लोग 6,000

पशुओं पर उनके मूल्य का एक चौथाई कर लगाया जाता था। सुल्तान मुहम्मद तुगलक के काल में आयातकर कम कर दिये गए थे और घोड़ों के स्वामियों को सिंध की सीमा में प्रवेश करने पर सात टंकाप्रति घोड़े के हिसाब से कर देने के पश्चात् मुल्तान में भी कर देना पड़ता था,[1] जो पहले से कहीं सस्ता पड़ता था। थल-सीमान्तों पर किये जाने वाले व्यापार के आकार का एक स्पष्ट आकलन देना भी सम्भव नहीं है।

हिन्दुस्तान में विदेशी व्यापारी—समकालीन वृत्तान्त लेखक, भारत में विदेशी व्यापारियों की लाभ कमाने की मनोवृत्ति और हिन्दुस्तान तथा उसके निवासियों के प्रति उनमें सहानुभूति की अतिशय कमी की, कभी-कभी शिकायत करते हैं। हम मुहम्मद तुग़लक के समय विदेशियों के उदाहरण का उल्लेख कर चुके हैं।[2] इस दोषारोपण का औचित्य और उसकी प्रबलता सिद्ध करने के लिए और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस बात को बहुधा भुला दिया जाता है कि जो विदेशी व्यापारी भारत आते थे उन्हें किसी भी देश के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं रहता था और जहाँ भी अधिक लाभ की आशा उन्हें आकर्षित करती थी, वे वहीं चले जाते थे। उनमें से कुछ इस्लाम धर्म के प्रसार में रुचि रखते होंगे,[3] अन्यों ने विवाह कर लिये होंगे और वहीं बस गये होंगे और इस प्रकार जिस देश में वे बस गये वहीं के प्रति उनके हृदय में कुछ सहानुभूति उत्पन्न हो जाती थी।[4] किन्तु सामान्यतः विदेशी

या उससे कुछ कम या अधिक के झुण्डों में भारत को घोड़े निर्यात करते थे। इन झुण्डों में विभिन्न व्यापारियों में से प्रत्येक के लगभग 200 घोड़ों के हिस्से रहते थे। प्रति पचास घोड़ों के लिए वे एक रखवाला रखते थे जिसे 'कशी' कहते थे और जो रास्ते में उनकी तथा उनके दाने-चारे की देख-भाल करता था।

1. वहीं।
2. तुलनीय, अमीर खुसरो द्वारा उद्धरित (इ० यू०, द्वितीय, 319 के अनुसार) एक अर्ज़ी। यह एक नागरिक की ओर से दिल्ली के एक ऊँचे प्रशासनीय अधिकारी को सम्बोधित की गई है और एक विदेशी व्यापारी के विरुद्ध उसके हस्तक्षेप के लिए प्रार्थना करती है। आवेदक संक्षेप में एक वाक्य में अपना मुख्य दोषारोपण करता है। कुपित अमीर खुसरो लिखता है कि 'चूंकि हमारे भव्य दिल्ली शहर से स्वर्ण की धारा बहती है, विदेशी व्यापारियों का कबीला हमारे साथ प्रगाढ़ मित्रता का दिखावा करता है, जिसका उद्देश्य केवल आगे चलकर हमारी सम्पन्नता की नींव को नष्ट करना ही है।'
3. वहीं।
4. नए धर्म परिवर्तित सिख व्यापारी को, जो व्यापार के लिए और गुरु नानक का सदेश प्रसारित करने के लिए भेजा जाता है, रोचक कथा के लिए देखिए-मेकॉ-

व्यापारी एक समुदाय के रूप में केवल अपना व्यापार करने और लाभ कमाने में रुचि रखते थे। यह बात नहीं भुला देनी चाहिये कि विदेशियों के सम्पर्क से, कुछ अहितकर सामाजिक परम्पराओं में, संयोगवश सुधार हो जाता था और उससे कुछ स्थानों का जीवन-स्तर ऊंचा हो जाता था। भारत के तटीय नगर और भीतरी केन्द्र, जैसे मुल्तान, लाहौर, दिल्ली और गौड़, जो विदेशी व्यापारियों के प्रमुख अड्डे थे, कई मानों में, हिन्दुस्तान के अत्यन्त प्रगतिशील केन्द्र थे।

जीवन-स्तर

विभिन्न सामाजिक वर्गों का जीवन-स्तर

यदि हम पूर्वोल्लिखित विभिन्न सामाजिक वर्गों के व्यय, आय और कमाई के कुछ मद्दों का निरीक्षण करें तो हमें विषय को अधिक अच्छी तरह से समझने में सहायता मिलेगी।

(क) सुल्तान—हम दिल्ली के सुल्तानों के कर्मचारी-वृन्द के सम्बन्ध में पहले ही कह चुके हैं। आइए, हम यहां उनके आवर्ती और अनावर्ती व्यय के कुछ मद्दों पर विचार करें।

उदाहरणार्थ, सुल्तान अपने प्रत्येक अमीर को सम्मानसूचक दो पोशाक, एक शीतकाल में और दूसरा ग्रीष्मकाल में भेंट देता था।[1] 'मसालिक-उल्-अबसार' (जिसे हम पहले उद्धरित कर आये हैं) के वर्णन के अनुसार इन सम्मानसूचक वस्त्रों की संख्या 2 लाख तक आती है। एक सामान्य सम्मान-सूचक वस्त्र, जिसमें कसीदाकारी, मखमल और बहुमूल्य सामग्री का प्रयोग किया जाता था, के भी व्यय का सामान्य आकलन बहुत होगा। इसी प्रकार, 'कारखाना' या शाही भण्डार के प्रदाय की कुछ वस्तुएं भी देखिए। सुल्तान फीरोज़ तुग़लक के शासनकाल में चुनंदी और दुष्प्राप्य सामग्रियों के 36 विभिन्न भण्डार थे। भांडारों के अधीक्षकों को अनुदेश थे कि वे दुष्प्राप्य और उत्कृष्ट कारीगरी की प्रत्येक वस्तु कहीं भी कितनी भी मूल्य पर खरीद लें।[2] उदाहरणार्थ, एक बार शाही जूतों के एक जोड़े का मूल्य 70,000 टंका दिया गया था।[3] शाही उपयोग की अनेक वस्तुओं पर बहुधा सोने और चांदी की बहुमूल्य कसीदाकारी और जवाहिरातों का काम रहता था। 'कारखानों' के विभिन्न विभागों के वार्षिक व्यय का पुनः अनुमान कीजिये। चारा और शाही पशुशालाओं की व्यवस्था का व्यय

लिफ, प्रथम, 146-47। अन्य मुसलमानों के समान मूर भी धर्मपरिवर्तित कराने की प्रवृत्तियों के लिए प्रसिद्ध हैं।

1. प्रमाण के लिए देखिए कि० रा०, द्वितीय, 69-70।
2. न०, 99।
3. न०, 401।

राज्य पर 60 हजार से 1 लाख टंका तक बैठता था। इसमें स्थायी कर्मचारियों या *व्यवस्था के लिए प्रयुक्त उपकरणों पर किया गया व्यय सम्मिलित नहीं है।* समय-समय पर इन व्यवस्थाओं की पुनः पूर्ति के लिये भी इतना ही व्यय होता था। केवल शीतकाल में ही शाही वस्त्रों के लिये 6 लाख टंके व्यय किये जाते थे। इसी प्रकार शाही ध्वज और पताकाओं पर 80 हजार टंके और गलीचों और उपस्करों पर 2 लाख टंके प्रतिवर्ष व्यय किये जाते थे। ये स्थायी व्यय की कुछ ही मदें हैं जिन्हें *अत्यधिक भारी मद कदापि नहीं कहा जा सकता।*[1] *यह अनुमान करना सरल है कि* 'हरम', दासों, अंगरक्षकों, घरेलू कर्मचारियों और कुशल कर्मचारियों, राजमहलों के निर्माण, बहुमूल्य जवाहिरातों और बहुमूल्य पत्थरों पर राज्य का कितना खर्च होता होगा। इस संगणना में अदली नामक अन्तिम सूर सुल्तान के अभिलेखों से घरेलू व्यवस्था की एक अत्यन्त उपेक्षणीय किन्तु मनोरंजक बात का उल्लेख किया जा सकता है। ऐसा कहा जाता है कि शहंशाह को दुर्गंध से बहुत चिढ़ थी, इसलिये भंगियों को शाही पाखानों से प्रतिदिन दो या तीन बोझ कपूर उठानी पड़ती थी।[2]

आइए, अब हम असाधारण व्यय की कुछ मदों पर विचार करें, जो सल्तनत का एक नियमित अंग थे। उदाहरणार्थ, प्रतिवर्ष शाही उपहारों पर किये गये व्यय को ही लें। प्रत्येक सुल्तान किसी व्यक्ति को किसी भी बहाने और लगभग प्रतिदिन कुछ-न-कुछ देता रहता था। साथ ही, एक शाही उपहार विशेषता और मूल्य में विशिष्ट होता था। हम आगे इन शाही उपहारों की उपयोगिता और मूल्य को स्पष्ट करेंगे। *आइए, हम कुछ विशिष्ट मामलों का निरीक्षण करें।* सुल्तान *अलाउद्दीन* खिलजी अपनी उदारता के लिए विशेष विख्यात नहीं है, किन्तु राज्यारोहण के अवसर पर उसने असंख्य उपहार प्रदान किए। अन्य अवसरों पर उसे बिल्कुल ही मितव्ययी नहीं कहा जा सकता।[3] मुहम्मद तुगलक का नाम धन के अपरिमित उपहारों के लिये प्रसिद्ध है। समकालीन इतिहासकार की आलंकारिक भाषा में, "वह एक ओर तो 'कारू' के खजाने और दूसरी ओर फ़ारसी कयानी सम्राटों की धनराशि एक ही उपहार में लुटाने को उत्सुक था।" उसकी भेदभाव-रहित उदारता के समक्ष योग्य और *अयोग्य, परिचित और अजनबी, नए और पुराने मित्र, नागरिक और विदेशी या* सम्पन्न और दरिद्र में कोई अन्तर नहीं था। उसके लिये सब बराबर थे। इतना ही नहीं, शासक की भेंट के पहले आग्रह भी किया जाता था और दान का आकार या मूल्य प्राप्तकर्ता की उच्चतम आशा से भी परे पहुंच जाता, जिससे उपहार पाने वाला

1. तुलनीय, अ०, 337-338।
2. तुलनीय, मु० त०, प्रथम, 435।
3. तुलनीय, उदाहरण के लिए कोतवाल को सामान्य सलाह के बदले एक कसीदाकारी बाना सम्मानसूचक वस्त्र, 10,000 टंके नक़द, साजयुक्त दो घोड़े और 2 माफी के गाव का पुरस्कार। (ब०, 271 के अनुसार)।

व्यक्ति अक्षरशः हक्का-बक्का हो भूल जाता । शाही पारितोषिक पाने वालों की संख्या हजारों तक रहती थी और ये लोग कई देशों में फैले हुए थे। उपहार देने में, ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक लाख या एक करोड़ टंकों से कम 1 मन सोना, चांदी या बहुमूल्य सामग्री से कम तौल के बारे में सोचता ही नहीं था। वृत्तांत-लेखक आगे स्पष्ट करता जाता है कि उदारमना सुल्तान सोना, चांदी, मोतियों और माणिक्यों को टूटे-फूटे बर्तनों और पत्थरों से अधिक कुछ नहीं समझता था।[1] इस शासक के अनेक प्रशासकीय नियमों को इन प्रवृत्तियों के प्रकाश में कहीं अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। यह सत्य है कि एक महान् सुल्तान के भाग्यहीन उत्तराधिकारी को आवश्यक रूप से कुछ मितव्ययिता से संतोष करना पड़ा। किन्तु यह तब तक ही रहता था जब तक कि आवश्यक धन प्राप्त नहीं होता था। ये उदाहरण आगामी उत्तराधिकारियों के लिये सदैव ही ज्वलंत दृष्टांत छोड़ जाते थे, और यदि इसके लिये उनके साधन अपर्याप्त सिद्ध होते तो इसमें उनका अपराध नहीं था।[2]

इन प्रासंगिक उपहारों के अतिरिक्त कुछ अवसर प्रचुर व्यय के लिये विशेष विख्यात थे, जिनमें से एक था शासक का सिंहासनारोहण। अलाउद्दीन खिलजी के राज्यारोहण के समय जनता के लिए मंजनीकों से सोने और चांदी की वर्षा की जाती थी; अमीरों को तौल से सोना उपहार में दिया जाता है और एक उपहार पा लेने के बाद भी प्राप्तकर्ता को दूसरा उपहार प्राप्त करने की मनाही नहीं थी। परिणाम-स्वरूप चाचा की हत्या करने का उसका अपराध बिलकुल भुला दिया गया और असंतोष और अस्वीकृति के स्थान पर सारे देश में आनंद की सामान्य लहर दौड़ गई।[3] अलाउद्दीन खिजली के उपहार, कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण होने पर भी अपवाद

---

1. बरनी, व० 460 का आकलन तुलनीय है।
2. अंतिम सूर सुल्तान अदली के, जो इतिहास में दूसरा मुहम्मद तुग़लक बनना चाहता था, एक अति रोचक उदाहरण के लिए तुलनीय है मु० त०, प्रथम, 418। सिंहासन पर बैठने पर उसे शाही उपहार देने में प्रसिद्धि प्राप्त करने का एक विलक्षण उपाय सूझा। उसने अपने लिए विशेष प्रकार के तीर बनवाये जिन्हें वह सब दिशाओं में बिना कुछ सोचे छोड़ता था। इन तीरों में से एक तीर उठा लाने वाला भाग्यशाली व्यक्ति शाही कोषागार से 500 टंका पाने का अधिकारी होता था। दुर्भाग्य से राज्य के स्वल्प साधनों के कारण यह साधारण सा प्रदर्शन भी संभव न हो सका और इस योजना का परित्याग कर देना पड़ा; अवश्य ही इसके लिए शासक और उसके प्रशंसकों को वास्तविक शोक हुआ होगा।
3. बरनी, व०, 248 की टीका तुलनीय है। बरानी इन मंजनीकों का सजीव वर्णन करता है, जिनका अलाउद्दीन ने दिल्ली की यात्रा के प्रत्येक पड़ाव पर उपयोग

मात्र न होकर नियमित से थे। सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने, रिक्त कोष के बावजूद भी फीरोज़ तुगलक ने, और मुगल सम्राटों ने सबने राज्यारोहण के अवसर पर अपने-अपने तरीकों से विशाल धन-राशि व्यय करने का नियम बना लिया था।[1]

इन प्रासंगिक व्ययों के अतिरिक्त गौण प्रसंगों पर भी कोष द्वारा विशाल राशि खर्च की जाती थी। उदाहरणार्थ, यदि सुल्तान प्रथम बार किसी स्थान को जाता था, उसके सम्मान-सूचक भ्रमण के उपलक्ष में उपयुक्त उपहार दिये जाते और उत्सव मनाये जाते थे।[2] राज्य के लिये सुल्तान और उसका विशाल लवाजमा सार्व-

किया था। उसने टोकरियों (या भव्वे) में भरकर 5 मन स्वर्ण-मुद्राएं बिखेरी और दिल्ली पहुंचने के पहले उसने मार्ग में अपने आसपास 50 से 60 हजार तक अनुयायी एकत्र कर लिये थे। प्रत्येक अमीर जो उसके पक्ष में आ गया, 20 से 30 मन तक और किसी-किसी ने तो 50 मन तक भी सोना पाया। उसके पक्ष में आने वाले प्रत्येक सैनिक को 300 टंका प्राप्त हुए (वही, 243-244)। बरनी के समान अमीर खुसरो भी 'भव्वों' का प्रयोग करता है (ख० फु०, 6, 8 के अनुसार)। जिसे 'अख्तर' समझ लिया गया है और 'टोकरियों' के स्थान पर उसका अनुवाद 'सुनहले सितारे' कर दिया गया है (इलि० डाउ०, तृतीय, 158 के अनुसार)। 'भव्वा' शब्द अपने मूल अर्थ में अभी भी उत्तर प्रदेश में प्रयुक्त किया जाता है।

1. मुहम्मद तुगलक के राज्यारोहण के लिये बरनी का विवरण तुलनीय है—जब शाही जुलूस दिल्ली के मार्गों से निकला तब सोने और चांदी के सिक्के मुट्ठी भर-भर कर भीड़ पर छोटी गलियों, घरों की छतों और राहगीरों पर—सब जगह बिखेरे गये। जब शाही जुलूस राजमहल में प्रविष्ट हुआ तब अमीरों और उच्चाधिकारियों ने सुल्तान के स्वास्थ्य की कामना के रूप में तश्तरियों में भर कर सोना और चांदी बिखेरा (निसार)। संक्षेप में, वृत्तांत लेखक के अनुसार, दिल्ली नगर एक ऐसे उद्यान के समान प्रतीत हो रहा था जिसका सौंदर्य यत्र-तत्र बिखरे 'लाल और श्वेत' पुष्पों से द्विगुणित हो रहा था (ब०, 456-7 के अनुसार)। इसी प्रकार जब फीरोजशाह तुगलक सिंहासनासीन हुआ, राजधानी में उसके स्वागत हेतु छः जयस्तंभों का निर्माण किया गया जिसमें प्रत्येक पर एक लाख टके व्यय किये गए थे (अ०. 88 के अनुसार)। हुमायूं के राज्याभिषेक के सम्मान में आयोजित एक शाही भोज में अत्युत्तम घोड़ों और सम्मानसूचक वस्त्रों के अतिरिक्त 10 हजार पगड़ियां अमीरों को प्रदान की गई थीं (त० अ०, प्रथम, 194 लखनऊ संस्करण के अनुसार)।
2. मु० त०, प्रथम, 409-10 में सलीम सूर का कालपी भ्रमण तुलनीय है, जब उसने शाही भ्रमण का उत्सव मनाने के लिए रणथम्भोर में सब लोगों में 2 लाख रुपयों के मूल्य के बयाना के आम और मिष्टान्न बांटने का आदेश दिया।

जनिक कोष एक बड़े निकास का मार्ग था।[1] दुर्भाग्य से उसकी आवश्यकताएं उसके सांसारिक अस्तित्व तक ही सीमित नहीं रहती थीं, उसकी मृत्यु के पश्चात् भी राज्य द्वारा आवश्यक व्यय किया जाता था। शासक की मृत्यु होने पर परलोक में उसकी आध्यात्मिक व्यवस्था के लिये विशेष कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी, उसकी कब्र पर एक बहुमूल्य समाधि का निर्माण किया जाता, उसके आसपास दान-शालाएं खोली जातीं थीं और शाही आत्मा के लाभार्थ विशेषरूप से कुरान पढ़ने वाले अनवरत प्रार्थना में व्यस्त रहते थे। भोजन-वितरण के लिए विशाल परिमाण में भोजन पर व्यय किया जाता था, जिससे पेशेवर भिखमंगों के विशाल समूह आकर्षित होकर राजधानी में आते थे।[2]

हम दिल्ली के सुल्तानों की आय के स्रोतों और सोने-चांदी के शाही भाण्डारों का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। यह कहना शेष है कि भारी भूमि-कर के अतिरिक्त अन्वाव और विशेष कर, आयात कर और अधीनस्थ राज्यों से प्राप्त कर, सब राज्य और उसके स्रोत सुल्तान के अधीन थे। उसे अन्य लोगों की सम्पत्ति जब्त करने और अधिकार में करने का पूरा अधिकार था।[3] यदि उसके राज्य के स्रोत उसकी माँगों को पूरा करने में असमर्थ रहते तो किसी पड़ोसी राज्य पर आक्रमण करने और अपनी विजय को एक आय के साधन में परिवर्तित करने से उसे रोकने के लिये कोई अन्तर्राष्ट्रीय कानून या नैतिक बन्धन नहीं था।

---

1. उदाहरण के लिये कि० स० 77 देखिए कि किस प्रकार जब सुल्तान कैकुबाद और उसके अनुयायी जयपुर में ठहरे, भूमि घास-विहीन हो गई और नदी का पानी सूख गया और शाही दल की आवश्यकताओं के कारण लोगों के पास न तो भोजन ही बचा और न उनके पशुओं के लिये घास और चारा ही शेष रहा।
2. दिल्ली के भिक्षुकों के लिए कु० सु०, 864 देखिए। सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक के दिल्ली स्थित मकबरे के कर्मचारियों के लिये इब्नबतूता का वर्णन भी देखिए। मुहम्मद तुग़लक ने उसके लिये एक लाख मन गेहूं और चावल का भत्ता निश्चित किया था। दरिद्रों और जरूरतमंदों के लिये प्रतिदिन 12 मन आटा और उतना ही गेहूँ निश्चित किया गया था। दुर्भिक्ष काल में इब्नबतूता (जो व्यवस्था का निरीक्षण कर रहा था) ने वह परिमाण बढ़ाकर 35 मन गेहूं और आटा करके शक्कर, घी और पान के पत्तों में भी अनुपातिक वृद्धि कर दी थी। (कि० रा०, द्वितीय, 85 के अनुसार); गु० ने० 25-6 भी। गुरु नानक द्वारा उनके प्रसिद्ध शिष्य मरदाना की मृत्यु के पश्चात् उसकी कब्र पर एक मकबरा निर्मित करने के प्रस्ताव के लिये तुलनीय है मेकालिफ, प्रथम, 181।
3. सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल के एक उदाहरण के लिये ब०, 250-1 देखिए।

(ख) **नौकरशाही और राज्य के कर्मचारीगण**—राज्य के अमीर आंशिक भेद के साथ शाही परम्पराओं का पालन करते थे। पारिवारिक आय-व्यय या घरेलू मितव्ययिता का विचार उनकी जीवन-योजना के लिये उतना ही अजनबी था जितना कि शासकों की जीवन-योजना के लिये। इस विशेष दृष्टिकोण के विकास का एक मुख्य कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह था कि उनके सारे सम्मान और वेतन व्यक्तिगत थे। इस प्रकार बचत या मितव्ययिता का कोई प्रेरणा-स्रोत नहीं था और न ऐसे सामाजिक सद्गुणों के विकास के लिये कोई स्थान ही था जो उसका पोषण करते हैं।[1] अमीर सुल्तान का (या हिन्दू राज्य में राजा का) अभिनय करता था। उसके पास यथासम्भव विशाल लवाजमा होना चाहिये। उसके पास स्वयं के संगीतज्ञ और कवि होने चाहियें और उन्हें पुरस्कारस्वरूप हजारों टंके और सुन्दर घोड़े और वस्त्र दिये जाने चाहियें। शाही राजकुमारों और राजकुमारियों के समान उसकी सन्तानों के भी विवाहोत्सव उपयुक्त प्रदर्शन और भव्यता से मनाए जाने चाहियें, और उसे भी परलोक में अपनी आध्यात्मिक सुश्रूषा के लिये अपने जीवन-काल में ही अच्छी परोपकारी संस्थाएं और खोलने और उनमें पर्याप्त संख्या में कुरान पढ़ने वालों की नियुक्ति कर लेनी चाहिये। अमीरों के व्यय का यदि आधुनिक मुद्रा-मूल्य में अनुमान लगाया जाय तो वह हमें विचलित कर देगा।[2]

---

1. ता० फ० प्रथम, 416 में सैरखां की एक उक्ति तुलनीय है।
2. अधीनस्थ राजपूत राजाओं के सम्बन्ध में टॉड के विचार तुलनीय हैं। एक प्रमुख सरदार का दरबार और उसके घर का खर्च शासकों का संक्षिप्त रूप है, उनके पास भी वैसे ही अधिकारी प्रधान या मन्त्री से लेकर साकी (पनियारी) तक—और वैसी ही घरेलू-व्यवस्था रहती थी। उसके पास उसके राजा के समान स्वयं का 'शीश-महल' 'बड़ी-महल', और 'मन्दिर' होना चाहिये। वह 'दरीखाना' में प्रवेश करता है, और भाट उसके परिवार की प्रशंसा करते हुए आगे-आगे चलते हैं; और वह अपने सिंहासन पर आसीन होता है, जबकि दायीं और बायीं ओर पंक्तिबद्ध अनुचर एक साथ 'स्वामी स्वस्थ रहें !' चिल्लाते हैं। (टॉड, प्रथम, 199-200 के अनुसार)। अमीरों के कर्मचारियों के समूह के लिये देखिए अध्याय तृतीय। बलबन के एक अमीर किशलीखान द्वारा कवियों और भाटों को सारे घोड़े और 10,000 टंके उपहार में देने के सम्बन्ध में देखिए ब०, 113, तुलनीय है वहीं, 197 (पाण्डुलिपि 220)। जब सुल्तान जलालुद्दीन सेनाधिकारी था तब वह कई कवियों को अपने पास रखता था। वह अमीर खुसरो के पिता को 1200 टंके प्रतिवर्ष देता था। तुलनीय कि० रा०, द्वितीय, 36 मुहम्मद तुग़लक का मीर कुबाला (मीर मक़बूल) नामक अमीर अपने व्यक्तिगत कर्मचारियों पर 35 लाख टंके व्यय करता था। मलिक अली नामक बलबन के एक अमीर के लिये, जिसने बिना चांदी की मुद्राओं वाली थैली सहित कभी किसी

अब हम अमीरों के वेतन और उनकी प्राप्तियों से सम्बन्धित कुछ तथ्यों पर विचार करेंगे, जिससे हम उनके व्यय और सामान्य अति-व्ययता को अधिक अच्छी तरह से समझ सकें। हम पिछले अध्यायों में उनके राजस्व नियोजनों का उल्लेख कर आए हैं। हमें कुछेक अधिकारियों के वेतनों का उल्लेख करने का भी अवसर मिला है। कर्मचारियों का वेतन और उनकी प्राप्तियाँ उनके पद के अनुरूप न होकर व्यक्तिगत थीं। इसलिए आयों का कोई एकीकृत नियम निर्धारित करना कठिन है। फिर भी, जो तथ्य हमने एकत्रित किए हैं उनसे हमें कुछ ज्ञान हो सकेगा। सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी को कृपापूर्वक अपने एक पुराने मित्र को 'वकील-ए-दर' नियुक्त कर दिया था और उसका पारिश्रमिक 1 लाख जीतल निश्चित किया था।[1] मुहम्मद तुग़लक के अन्तर्गत सुल्तान का 'नायब' ईराक के समान बड़े एक प्रान्त की आय का उपभोग कर रहा था, 'वज़ीर' को भी उतना ही द्रव्य दिया जाता था. 'चार मंत्रियों' में से प्रत्येक को प्रतिवर्ष 20,000 से 40.000 टंका मिलते थे, सचिवालय के कर्मचारी, जो लगभग 300 थे, कम-से-कम 10 हज़ार टंका प्रतिवर्ष वेतन पाते थे। उनमें से कुछ को 50 हज़ार टंके भी मिलते थे, 'सद्र जहाँ' और 'शेख़-उल्-इस्लाम' को 60 हज़ार टंके वार्षिक दिए जाते थे, यहां तक कि 'मुहतसिब' को पूरा एक ग्राम मिलता था।[2]

को घोड़ा नहीं दिया, और सदैव ही भिक्षुक को सोने या चांदी का सिक्का दिया, देखिए ब०. 118। वहीं, देखिए, 202 कि किस प्रकार जलालुद्दीन खिलजी के एक अमीर कुतुबुद्दीन अलवी ने दुर्भिक्षकाल में अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाह पर 2 लाख टंके खर्च किये। उसने इसका उत्सव मनाने के लिये सज्जासहित 100 घोड़े और एक हज़ार पोशाकें भी बांटीं। इसी प्रकार जलालुद्दीन के भतीजे अहमद चप ने एक बार शाही संगीतज्ञों को अपने घर आमन्त्रित किया और उन्हें 1 लाख टंके, 100 घोड़े और 320 पोशाकें दीं (वहीं, 203 के अनुसार)। बलबन के एक अमीर फ़खरुद्दीन कोतवाल का उदाहरण भी तुलनीय जो 12 हज़ार कुरान पढ़ने वाले रखता था और प्रतिवर्ष दरिद्र लड़कियों के लिये 1 हज़ार दहेजों की व्यवस्था करता था। कहा जाता है कि वह कभी दूसरी बार उसी शैया पर नहीं सोया या कभी उसने उन्हीं कपड़ों को दूसरी बार धारण नहीं किया। (ब०, 117-18 के अनुसार) बलबन के सेनाधिकारी इमादुलमुल्क का उदाहरण तुलनीय है, जो अपने कर्मचारियों को प्रतिवर्ष कुल 20 हज़ार टंके और प्रत्येक को एक पोशाक देता था। उसने अपने कर्मचारियों के लिये प्रतिदिन मध्याह्न के भोजन की व्यवस्था की जिसमें 50 थाल उत्कृष्टतम भोजन परोसा जाता था (ब०, 115-17 वहीं के अनुसार)।

1. ब०, 195।
2. 'मसालिक-उल्-अबसार' के वर्णन के लिए देखिए, इलि० डाउ०, तृतीय, 578-579।

अब हम सुल्तान फीरोजशाह तुगलक के शासनकाल के कुछ आंकड़ों पर दृष्टिपात करेंगे। सुल्तान के वजीर प्रसिद्ध 'खान-ए-जहान' को राजस्वप्रदेश पर 15 लाख टंके और अलग व्यक्तिगत भत्ता दिया जाता था। उसके रनिवास में कुछ हजार स्त्रियां और अनेक संतानें थीं। राज्य ने उसके सब पुत्रों और दामादों को, जिनकी संख्या विशाल थी, अलग से भत्ते निश्चित कर दिए थे।[1]

अब हम कुछ एक अमीरों की व्यक्तिगत सम्पत्ति का कुछ परिचय देंगे। फीरोज तुगलक के अमीरों में मलिक शाहिन ने मृत्यूपरान्त मूल्यवान वस्तुओं और जवाहिरातों के अतिरिक्त, 50 हजार टंके अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़े,[2] फीरोज के अन्य अमीर बशीर ने 16 करोड़ टकों की विशाल राशि एकत्र की थी।[3] ऐसा कहा जाता है कि कुछ काल पश्चात् मियां मुहम्मद काला पहाड़ के पास 300 मन सोना था।[4] बंगाल के सुल्तान के हिन्दू अमीर अधिक पीछे नहीं थे। हिरण्य और गोवर्धनदास के पास सात गांव और नकद 10 लाख से अधिक टंके थे।[5] हम मालवा के एक मंत्री और अंतिम अफगान शासक के हिन्दू सेनानायक हेमू का उल्लेख पहले ही कर चुके हैं। तदनुसार राज्य के अन्य उच्चाधिकारियों की और अमीरों की आय का अनुमान लगाया जा सकता है।[6] छोटे अमीरों और सेवा-निवृत्त-कर्मचारियों के लिए एक सामान्य नियम बना दिया गया था कि सम्मानपूर्ण और गौरवपूर्ण जीवन-यापन के लिए राज्य द्वारा उन्हें पर्याप्त धन दिया जाना चाहिए।[7] राज्य के अन्य कर्मचारियों में गौण सैनिक अधिकारी, सैनिक और मुकद्दम अधिक महत्वपूर्ण थे।

हम सैनिक दर्जों की विभिन्न श्रेणियों के वेतन का अनुमान लगाने में समर्थ नहीं हैं। एक घटना का हमें ज्ञान है कि जब सुल्तान बलबन द्वारा कुछ वृद्ध सैनिक अधिकारी पदमुक्त किए गए तब उन्हें 40 से 50 टका मासिक भत्ता पेन्शन के रूप में दिया।[8] सुल्तान अलाउद्दीन ने सैनिक का वेतन 234 टके वार्षिक या $19\frac{1}{2}$ टंके मासिक निश्चित किया था और 'दो अस्पा' सैनिक को इसके अलावा घोड़े के लिए 78 टका वार्षिक अतिरिक्त भत्ता दिया जाता था।[9] सैनिक को सदैव वार्षिक रूप से या सामयिक किश्तों में नकद भुगतान किया जाता था।[10] मुकद्दम, गांव का मुखिया

1. तुलनीय, अ०, 297, 400।
2. अ०, 297।
3. वही, 440।
4. सा० पे० भा०, 34 अ।
5. सरकार, 196।
6. तुलनीय, ब०, 294।
7. तुलनीय, बर्नी, ब० 292।
8. ब०, 62-3।
9. वही, 303।
10. वही, 319।

या राजस्व प्रतिनिधि अर्द्धसरकारी कर्मचारी था। वह अपने गाँव से शासन के लिए भू-राजस्व वसूल करता था और उसे वसूल किये गए धन का कुछ प्रतिशत कमीशन के रूप में दिया जाता था। उसे व्यक्तिगत कृषि के मामलों में कुछ अन्य सुविधाएँ भी प्राप्त थीं। मुकद्दम के लाभ पर प्रशासन का नियंत्रण सम्भव नहीं था। अशान्ति के समय वसूल किये गए राजस्व में से गुप्त या प्रकट रूप से धन रख लेने, अन्यायपूर्ण और अतिरंजित करों और ऊपरी आमदनी से अधिक लाभ की वसूली और प्रशासकीय कुव्यवस्था के समय प्राप्त आर्थिक लाभ से उसे सम्मानजनक सम्पत्ति प्राप्त हो जाती थी।[1] सुल्तान अलाउद्दीन इससे अत्यन्त रुष्ट हुआ कि अन्य अमीरों के समान गांव के मुखियों को भी सुन्दर वस्त्रों, फ़ारसी तीर-कमानों और घुड़सवारी हेतु सुन्दर घोड़ों के प्रति रुचि उत्पन्न हो गई थी। दृढ़ और स्थायी प्रशासन की स्थापना हेतु इस वर्ग की अत्याचारपूर्ण और बेईमानीपूर्ण प्रवृत्तियों का दृढ़ता से दमन करना आवश्यक था; किन्तु चाहे अलाउद्दीन उनके प्रति दयालु न रहा हो, वह उनका निम्नतम जीवन-स्तर संपन्नतम कृषक से काफ़ी ऊँचा निश्चित करना नहीं भूला। उसने उन्हें 'कृषि के लिए चार बैल, दो भैंसे, दो दुधारु गायें और बारह बकरियाँ' रखने की अनुमति दी।[2]

इस स्थान पर घरेलू नौकर या दास के जीवन का कुछ परिचय देना उचित होगा क्योंकि उनमें से अधिकांश शासकीय कर्मचारियों द्वारा काम पर रखे जाते थे। हम पहले ही इस तथ्य पर जोर दे चुके हैं कि व्यक्तिगत सेवाओं के लिए लगने वाले श्रम का परिमाण इस काल का एक प्रमुख आर्थिक तथ्य है। उच्चतम कर्मचारियों के जीवन से उदाहरण देने के लिए हम सुल्तान बलबन के सेनाधिकारी का उदाहरण देंगे, जिसने केवल पान बनाने के लिए 50 से 60 तक चाकर रखे थे।[3] एक स्थान पर अमीर खुसरो हमें बताता है कि बच्चे को दूध पिलाने के लिए एक धाय को 10 टंके दिये जाते थे।[4] घरेलू दासों के जीवन की हमें अपेक्षाकृत अधिक जानकारी है। एक साधारण व्यक्ति के दास को पारिश्रमिक या वेतन देने की आवश्यकता नहीं होती थी, जैसा कि दास की स्थिति की पूर्वोल्लिखित चर्चा से प्रतीत होगा। केवल सुल्तान ही अपने दासों को एक मान्य स्थिति प्रदान करता था और उनकी मजदूरी निश्चित करता था। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक अपने दासों को प्रतिदिन अन्य मसालों सहित 3 सेर गोश्त देता और 2 मन गेहूं और चावल मासिक ख़ुराक के रूप में देता था—ऐसा उल्लेख मिलता है। इन भत्तों के अतिरिक्त उन्हें प्रतिमाह 10 टंके और प्रतिवर्ष

1. बरनी के मूल्यांकन के लिए व०, 291 देखिए।
2. तुलनीय, फ़ारिश्ता 191।
3. तुलनीय, एक पिछली कण्डिका में उल्लिखित ब०, 117। अकबर के समय की स्थिति के लिए मोरलैंड के विचार द्रष्टव्य हैं। इण्डिया इ०, 87।
4. इ० ख़ु०, द्वितीय, 152।

चार जोड़ी कपड़े दिए जाते थे। फीरोज तुगलक, जो अपने दासों के कल्याण के प्रति अधिक व्यग्र था, व्यवस्थानुसार शाही कोषागार से 10 से 100 टंके मासिक देता था।[1]

(ग) व्यापार और कुशल व्यवसाय—हम व्यापारियों के संबंध में पिछले भाग में कह चुके हैं। हम यहां इस सम्बन्ध में केवल यही अवलोकन करेंगे कि राज्य कुछ सीमा तक व्यापारियों की सम्पत्ति और उनके अधिकारों की रक्षा करता था। ऐसा भी प्रतीत होता है कि जबकि अमीरों की निजी सम्पत्ति को सदेह की दृष्टि से देखा जाता था, व्यापारियों की सम्पत्ति का समुचित सम्मान किया जाता था, वास्तव में सुल्तान फीरोज तुगलक उन चुगलखोरों को कठोर दण्ड देता था जो ईर्ष्यापूर्वक कुछ व्यापारियों या साहूकारों की बढ़ती हुई सम्पत्ति की ओर सुल्तान का ध्यान इसलिये आकर्षित करते थे कि वह उनकी आंशिक या सारी संपत्ति जब्त कर ले।[2] अतः यह आश्चर्य की बात नहीं कि वैश्यगण साक्षर और उन्नत थे और उनके पास काफी मात्रा की भूमि थी।[3]

---

1. मसालिक-उल-अबसार का कथन तुलनीय है, इलि० डाउ०, तृतीय, 577।
2. तुलनीय, अफीफ का वर्णन, अ०, 270।
3. इस सम्बन्ध में स्वयं फीरोजशाह की घोषणा देखिए, फु० 16। उदाहरण के लिये सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के जब्ती के नियमों के लिये ब०, 283 देखिए, जिसमें हिन्दू साहूकार और मुल्तानी व्यापारी की सम्पत्ति इन नियमों के प्रभाव क्षेत्र में नहीं आते थे। सुल्तान मुहम्मद तुगलक का भी उदाहरण देखिए, जिसने दिल्ली की संपूर्ण जनसंख्या को एक साथ देवगिरि को स्थानांतरित किया और उन लोगों को समुचित क्षतिपूर्ति दी, जिन्होंने अपना घर और जायदाद बेच दी थी। इस समय कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति की आवश्यकता नहीं थी। हमारा विश्वास है कि ये नियम लोगों को उनके व्यक्तिगत व्यवसायों और व्यापारों की हानि की अंशतः पूर्ति करने के लिए बनाए गए थे। एक शस्त्र बनाने वाले द्वारा सुल्तान इल्तुतमिश को अपना दास बेचने (भेंट के रूप में नहीं) के प्रस्ताव के लिये रेवर्टी, 729 दे०; जीवन-वृत्ति चुनने के सम्बन्ध में अपने पुत्र को अमीर खुसरो की सलाह के लिए इ० खु०, 272 दे०; व्यापार में लाभ की प्रत्याशा के लिये प०, 123-126 भी देखिए। नानक के पिता कालू की सलाह के लिए तुलनीय है मेकालिफ, प्रथम, 23, 30, जिसमें वे अपने पुत्र को व्यापार कार्य कर देने पर जोर देते हैं।
4. वैश्यों की समृद्धि की देवी सरस्वती की एक विशेष प्रार्थना के लिए तुलनीय, गुप्ता, वगास इ०, 157; 'वाणी की देवी हम सबके लिये उदार है, हम सब पढ़ लिख सकते हैं। हम एक शहर के अलंकार हैं। हमें सर्वोत्तम भूमि और घर देने का निर्णय करो और उन्हें भूमिहीन बना दो।'

कुशल व्यवसायों में चिकित्सक का व्यवसाय सब बड़े शहरों और हिन्दुस्तान की विभिन्न राजधानियों में सुस्थापित था।[1] उनमें से कुछ के सम्बन्ध में, जो शाही महलों में कार्य करते थे, पहले कहा जा चुका है। औषधि-चिकित्सा में कोई खोज या कोई संशोधित पद्धति प्रारम्भ करने से सम्बन्धित चिकित्सकों को प्रसिद्धि और पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता था।[2] हम पिछले अध्याय में कुशल कारीगरों का अध्ययन कर चुके हैं और इस तथ्य से अवगत हो गये हैं कि उनकी मजदूरी और उनके जीवन के स्तर से सम्बन्धित सूचना उपलब्ध नहीं है।

गौण कारीगरों में से हम उनकी मजदूरी जानते हैं जो दिल्ली और फीरोज़ाबाद (5 कोह या करीब 10 मील की दूरी) के मध्य लोगों को सूचना देने के लिये नियुक्त किये गये थे। गाड़ी की सवारी के लिये 4 जीतल, खच्चरों की सवारी के लिये 6 जीतल, घुड़सवारी के लिये 12 जीतल और पालकी के लिये 25 जीतल लगते थे।[3] यह स्पष्ट नहीं है कि पशुओं को रखने का खर्च कितना बैठता था या कितने लोग प्रति माह औसत दर पर उन्हें किराये पर लेते थे। पक्षी या बकरे हलाल करने और निकाह जैसे धार्मिक कार्यों के लिये बंगाल में दिया जाने वाला पारिश्रमिक अत्यन्त कम बताया जाता है, जो स्पष्टतः विश्वास करने योग्य नहीं है।[4]

II वस्तुओं की कीमतें

आय के स्तर से सम्बन्धित कुछ तथ्यों का अवलोकन करने के पश्चात् जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं की कीमतों के सम्बन्ध में कुछ तथ्यों पर विचार करना अनुचित न होगा। हमें वस्तुओं की कीमतों के उल्लेख समकालीन वृत्तांत-लेखकों और अन्य लेखकों के वर्णनों में बहुलता से मिलते हैं, जिनमें अकाल और दुर्भिक्ष के समय के अलावा अति उपज के समय के असाधारण सस्तेपन का भी उल्लेख है। हम ऐसे कुछ शासकों के समय की कीमतों की तुलना करके सामान्य कीमतों की धारणा बनाने का प्रयत्न करेंगे, जिनके शासनकाल में कोई प्रबल आर्थिक उथल-पुथल नहीं

1. दिल्ली के एक मुसलमान चिकित्सक के रोचक और विस्तृत वर्णन के लिये 'बसातिन-उल-उन्स' की ब्रि० म्यू० पाण्डु० तुलनीय है। जब नानक को कोई पीड़ा होने का अंदेशा हुआ तब एक चिकित्सक की सेवाओं के लिये मेकालिफ प्रथम, 26 देखिए।
2. तुलनीय, सरकार, 127, कि किस प्रकार 'तंत्रों में वर्णित पारे की चिकित्सा' का प्रयोग करके कुछ हिंदू चिकित्सक प्रसिद्ध हो गये थे।
3. तुलनीय अ०, 135-6; 'ईमानदारी से मजदूरी कमाने वालों' के सम्बन्ध में अमीर खुसरो भी देखिए, म० अ०, 128।
4. तुलनीय, गुप्ता, बंगाल इ०, 91 लेखक द्वारा आधुनिक मूल्य में दिया गया सादृश्य उस समय की मजदूरी का ठीक ज्ञान नहीं देता।

हुई थी। फिर भी इस प्रकार प्राप्त निष्कर्षों या उन पर आधारित अनुमानों की यथार्थता पर जोर देने के विरुद्ध सतर्क रहना उचित होगा। अच्छी और बुरी फसल के सालों की कीमतों के अन्तर पर, यातायात और समाचार भेजने के साधनों का बहुत प्रभाव पड़ता था। यदि कोई जिला भौगोलिक रूप से पृथक रहता और उसे प्रचुरता के समय बचे अनाज बाहर भेजने की और दुर्भिक्ष या अकाल के समय अनाज की पूर्ति होने की सुविधा न होती तो ऐसा कीमत-स्तर उत्पन्न हो जाता था जो उन कीमतों से अपेक्षाकृत निम्न (अति उपज की दशा में) या अपेक्षाकृत अधिक (दुर्भिक्ष या अकाल की स्थिति में) रहता था जो आधुनिक परिस्थितियों में प्राप्त होता है। एक दूसरा भी पहलू है जो और भी महत्वपूर्ण है। जब कीमतें भारतीय पद्धति के अनुसार प्रति टंका या प्रति जीतल के बदले बेचे गये सेरों में प्रकट की जाती है, यह नहीं भूल जाना चाहिये कि जबकि मुद्रा-मूल्य परिमाण मूल्य के अनुकूल चलना है; गणना की दो पद्धतियों के अनुसार कीमतों के चढ़ाव-उतार की प्रतिशतता बिल्कुल भिन्न है। 'इस प्रकार', जैसा कि, 'इम्पीरियल गैजेटियर आफ इण्डिया' स्पष्ट करता है 'यदि एक रुपये (या टंका) में प्राप्त होने वाले सेरों की संख्या आधी कर दी जाय अर्थात् 50 प्रतिशत कम कर दी जाए, तो मुद्रा-मूल्य दुगुना हो जाता है अर्थात् 100 प्रतिशत बढ़ जाता है; किन्तु यदि परिमाण मूल्य 50 प्रतिशत अधिक हो जाता है अर्थात् सस्ता हो जाता है तो मुद्रा-मूल्य 33 प्रतिशत कम हो जाता है।' यह सब विचार करने के पश्चात् हम आगे कह सकते हैं कि हमारे उत्तर केवल दिल्ली और उससे संलग्न कुछ क्षेत्र की ही विश्वस्त सूचना देते हैं। किन्तु ये सीमाएं होने पर भी इस प्रश्न पर विचार करना उचित होगा।

हम दुर्भिक्ष के समय की कीमतों से प्रारम्भ करेंगे। जलालुद्दीन खिलजी के समय, जबकि दुर्भिक्ष फैला था, गेहूं एक जीतल प्रति सेर के भाव से बेचा जाता था।[1] मुहम्मद तुगलक के समय, असाधारण, कठिन दिनों में अनाज की कीमत 16-17 जीतल प्रति सेर तक चढ़ गई थी। परिणामस्वरूप लोग भूखों मरने लगे।[2] इसी प्रकार जब फीरोज़ तुगलक ने सिन्ध पर आक्रमण किया और परिणामस्वरूप दुर्भिक्ष पड़ गया तो अनाज की कीमत 2.3 टके प्रति मन (या 3.2 और 4.6 जीतल प्रति सेर) तक आ गई।[3] पुनः सिन्ध पर आक्रमण के समय अनाज का भाव 8.10 जीतल प्रति पसेरी और दाल का भाव 4 या 5 टके प्रति मन (या क्रमशः 6.4 और 8 जीतल प्रति सेर) तक बढ़ गया।[4]

---

1. तुगलीय, ब०, 212।
2. तुगलीय, वहीं, 482।
3. तुगलीय, अ०, 200।
4. वहीं, 232-3।

अब हम अत्यन्त निम्न कीमतों के सम्बन्ध में विचार करेंगे। इब्राहीम लोदी का शासन-काल इस सिलसिले में अतिपूर्ण किन्तु विचित्र है। एक बहलोली में 10 मन गेहूं, 5 सेर तेल और 10 गज मोटा कपड़ा खरीदा जा सकता था। उसी सिक्के (जिसका मूल्य 1·6 जीतल था) से कोई भी व्यक्ति एक घोड़े और एक सेवक के साथ दिल्ली से आगरा जा सकता था और इसमें उन सब का यात्रा में भोजन खर्च भी निकल सकता था। वृत्तांत-लेखक के अनुसार उन दिनों 5 टंके में एक पूरे परिवार और उसके सेवकों (जो उस समय थोड़े ही थे) का एक माह का खर्च निकल सकता था। तिस पर भी एक सैनिक का वेतन 20 से 30 टंके के बीच में रहता था। अनाज की कीमतें मंद होने के कारण सोने और चांदी पर कुप्रभाव पड़ा, जिसे बड़ी कठिनाई के बाद ही दूर किया जा सका।[1] इसी प्रकार गुप्ता बंगाल की असाधारण कम कीमतों के उदाहरण देते हैं; किन्तु वे इस आवश्यक निष्कर्ष पर ध्यान नहीं देते कि ये कीमतें या तो अति उपज दर्शाती हैं या बाहरी मांग की गिरावट दर्शाती हैं और निश्चिततः सामान्य नहीं कही जा सकतीं। उदाहरणार्थ, चैतन्य का सारा विवाह कुछ कौड़ियों में ही सम्पन्न हो गया था और यह घटना 'वर्णन करने वाले कवियों द्वारा खर्चीले विवाह का भव्य अवसर कहकर वर्णित की गई।'[2]

कीमतों के असाधारण उतार और चढ़ाव के इन मामलों को छोड़कर हम अलाउद्दीन खिलजी के समय की कीमतों का विचार करेंगे, क्योंकि अलाउद्दीन का समय सामान्य माना गया है।[3] अलाउद्दीन, मुहम्मद तुग़लक और फ़ीरोज़ तुग़लक के शासन कालों की आपस में तुलना करने पर पता चलेगा कि सामान्यतः इन वस्तुओं की, और आनुपातिक रूप से सम्भवतः सब वस्तुओं, की कीमतें मुहम्मद तुग़लक के समय ऊंची हो गई; किन्तु ये फ़ीरोज़ तुग़लक के समय पुनः अलाउद्दीन के काल के तुल्य हो गई। कुछ कारणों से शक्कर की कीमत पर इस हलचल का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।[4]

---

1. देखिए इलियट, 292। तुलनीय, मूल ता० दा०, 63।
2. ज० डि० ले०, 1929, 247-8 में वर्णन देखिए।
3. थामस, 159 का अभिमत तुलनीय है।
4. अंकों के लिये क्रमशः थामस, 160, 260 और 283 तुलनीय हैं, बरनी और अफ़ीफ़ भी देखिये।

वस्तुएं	अलाउद्दीन	मुहम्मद तुग़लक	फीरोज़ तुग़लक
		(जीतल प्रति मन में कीमतें)	
(1) गेहूं	$7\frac{1}{2}$	12	8
(2) जौ	4	8	4
(3) धान	5	14	—
(4) दालें	5	—	4
(5) मसूर	3	4	4
(6) शक्कर (सफ़ेद)	100	80	—
(7) शक्कर (नर्म)	60	64	120, 140
(8) भेड़ (गोश्त)	10	64	—
(9) घी	16	—	100

अब हम अलाउद्दीन के समय की कीमतों पर विचार करेंगे, जिन्हें मोटे तौर पर सामान्य माना गया है। हम उन्हें तीन भागों में बांटते है—अनाज और सामान्य उपभोग की वस्तुएं, कपड़े और घरेलू दास।

(क) अनाज इत्यादि—(कीमतें प्रति मन के हिसाब से दी जा रही हैं) गेहूं, $7\frac{1}{2}$ जीतल; जौ, 4 जीतल; धान (या चावल), 5 जीतल; उड़द, 5 जीतल; दालें, 5 जीतल; मसूर, 3 जीतल, शक्कर-सफेद, 100 जीतल, नर्म, 60 जीतल, बिना साफ़ की हुई, 20 जीतल; अन्य वस्तुओं में बकरे का गोश्त 10 से 12 जीतल प्रतिमन; घी, 16 से 26·3 जीतल तक; तिल, लगभग 14 जीतल; नमक 2 जीतल। पशुओं में ऊट दो प्रकार के—क्रमशः 12 और 24 टका में खरीदे जा सकते थे; सांड 3 टंका में; मांस के लिये गायें $1\frac{1}{2}$ से 2 टंका की दर से; दुधारू गाय 3 से 4 टंका और भैंसें 10 से 12 टंका; मांस के लिये भैंसें 5 से 6 टका तक खरीदे जा सकते थे। इसके आधार पर उपभोग की अन्य वस्तुओं के भावों का अनुमान लगाया जा सकता है।[1]

(ख) वस्त्र :

(1) मलमल—दिल्ली का 17 टंका प्रति थान, कोइल (अलीगढ़) का [illegible] टंका प्रति थान। सर्वोत्तम श्रेणी के मलमल का मूल्य 2 टंका प्रति गज होता था।[2] 'मुशरू' नामक एक अन्य प्रकार के मलमल का मूल्य [illegible] टंका प्रति थान होता था।

(2) ऊनी कपड़े—मोटे कम्बल (बहुधा लाल किनारी वाले) 6 जीतल

1. तुलनीय, थामस, 159।
2. अमीर खुसरो इ० खु०, चतुर्थ, 174 का आकलन तुलनीय है।

और अच्छे दर्जे के 36 जीतल प्रति कम्बल की दर से मिलते थे (ब०, पाण्डु०, 153 के अनुसार)।

(3) अन्य मूल्यवान वस्तुओं में—'शिरीन' 3 प्रकार का मिलता था—क्रमश: 5, 3 और 2 टंका प्रति थान; इसी प्रकार सलाहिया 6, 4 और 2 टंका प्रति थान।

(4) लिनेन—साधारण लिनेन प्रति टंका 20 गज के भाव से और अन्य मोटे प्रकार का 40 गज प्रति टंका के भाव से मिलता था। एक चादर 10 जीतल की दर से मिलती थी।

(ग) **घरेलू सेवक और दास**—दासों और रखैलों की कीमतें अनिश्चित रहती थी और युद्धों और दुर्भिक्षों के अनुरूप बदलती रहती थी। कुशल दास का कुछ भी मूल्य हो सकता था। ऐसे मामलों के लिये कोई भी नियम निश्चित नहीं था। अलाउद्दीन के समय अति कुशल दास का मूल्य 120 टंका होता था। कवि बद्र-ए-चाच गुल-चेहरा नामक दास को 900 टंका में क्रय करने का दावा करता है (क०, 39 के अनुसार) 'मसालिक-उल-अबसार' का मत है कि असाधारण मामलों में दासों का मूल्य 20 हजार टंका या इससे भी अधिक हो सकता था। (इलि० डाउ०, तृतीय, 580 के अनुसार)। अलाउद्दीन के समय घरेलू काम-काज के लिये एक स्त्री 5 से 10 टंकों में, एक रखैल 10 से 15 टंकों में और एक सजीला पुरुष दास 20 से 40 टंकों में मिलता था।[1] बाद में, मुहम्मद तुगलक के शासन काल में एक घरेलू नौकरानी 8 टंके में और रखैल 15 टंकों में मिलती थी।[2]

आसपास के प्रान्तों में सामान्य कीमतें क्या थीं इसके हमारे पास अत्यल्प निर्देश हैं। इन भागों की कीमतें स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर रहती थीं और सामान्यत: दोआब क्षेत्र में या दिल्ली के आसपास के क्षेत्र की परिस्थितियों का उन पर प्रभाव पड़ने की कोई सम्भावना नहीं थी। इसीलिये दिल्ली के बाजार की कीमतों और प्रान्तों की कीमतों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना अत्यन्त कठिन है। इब्न-बतूता, जो दिल्ली से बंगाल गया था, इस प्रकार कीमतों का उल्लेख करता है—

1 मुर्गी 1 जीतल में।
15 कबूतर 8 जीतल में।
1 भेड़ 16 जीतल में।
30 हाथ उत्कृष्ट कपड़ा 2 टंकों में।
चावल 8 जीतल प्रति मन।
बकरे 3 टंके प्रति बकरे की दर से।

---

1. तुलनीय, ब०, 314।
2. तुलनीय, इलि० डाउ०, तृतीय, 580।

शक्कर 32 जीतल प्रति मन।
शुद्ध शक्कर 1 टंका प्रति मन।
बिना साफ़ की हुई शक्कर 1[illegible] जीतल प्रति मन।
दास 8 टंके में।

विदेशी मुस्लिम व्यापारियों (खुरासानियों) में यह एक लोकप्रिय कहावत थी कि 'बंगाल अच्छी चीजों से युक्त एक नरक है', जिससे रहन-सहन की वस्तुओं का बहुत सस्ता मूल्य और प्रान्त की अस्वास्थ्यकर जलवायु प्रकट होती है।[1] गुलबदन बेगम राजपूताना अवस्थित अमरकोट के जीवन को सस्ता समझती है, क्योंकि वहाँ एक रुपए में चार बकरे मिल जाते थे।[2]

III. निर्वाह-व्यय

रहन-सहन के औसत खर्च का अनुमान करने के लिए हमारे पास प्रमाण नहीं के बराबर है। कुछ कारणों से एक वर्ग से दूसरे वर्ग का रहन-सहन का स्तर इतना भिन्न था कि औसत निकालना असम्भव है। हम देख चुके है कि किसानों और उच्च वर्गों के बीच ज़मीन-आसमान का अन्तर था। फिर भी हमें इससे कम-से-कम अस्पष्ट और काम-चलाऊ धारणा बनाने में सहायता मिलेगी।

'मसालिक-उल-अबसार' का लेखक अपने सूचनादाताओं के आधार पर खोजन्दी नामक व्यक्ति का उदाहरण देता है। खोजन्दी और उसके तीन मित्रों को भुना हुआ गोमांस, रोटी और मक्खन परोसा गया था जिसका कुल मूल्य 1 जीतल हुआ।[3] यदि हम इस आधार पर गणना करें और एक औसत व्यक्ति का भोजन प्रतिदिन 2 खुराक ले तो इसका व्यय 15 जीतल प्रतिमाह होता है। प्रातःकाल के कलेऊ के लिए यदि 5 जीतल रख लिए जाएँ, तो एक व्यक्ति का भोजन व्यय 20 जीतल प्रतिमाह आएगा। यदि हम वस्त्रों और अन्य खर्चों के लिए ऐसा ही व्यय निर्धारित करें, तो अधिकतम खर्च 1 टंका प्रतिमाह से अधिक नहीं बैठेगा। एक पुरुष, उसकी पत्नी, एक सेवक या दो बच्चे 5 टके में एक माह तक जीवन-यापन कर सकते थे। इसमें सामाजिक और आर्थिक अन्तर को ध्यान में नहीं रखा गया है और यह केवल मोटा हिसाब है।[4]

---

1. कि० रा०, द्वितीय, 142-3।
2. गु० ब०, 58।
3. नोनिसेज़ इ० 210-11 तुलनीय है।
4. टंका के क्रय-मूल्य पर परिशिष्ट अ में चर्चा की गई है।

भाग तीन

सामाजिक स्थिति

पारिवारिक जीवन

I. **संयुक्त परिवार**—ग्रामीण क्षेत्रों में कुटुम्ब पारिवारिक जीवन की मुख्य संस्था है; यह धार्मिक-संघ (चर्च) और राज्य से भी ऊँचा स्थान रखता है। इस अर्थ में भारतवासी सभी भी एक 'पारिवारिक समुदाय' हैं। एक भारतीय कृषक के लिए उसके परिवार का एक विशेष आर्थिक महत्त्व है। उसकी पत्नी और बहुसंख्यक बच्चों, उसके वृद्ध माता-पिता और अन्य सम्बन्धियों के लिए एक घर होने के साथ ही उसका परिवार उसके कृषि-प्रबन्ध में एक अनिवार्य स्थान रखता है। उसके परिवार का प्रत्येक सदस्य किसी-न-किसी रूप में कृषि-उत्पादन में योगदान देता है। हम इसके सम्बन्ध में पहले के एक अध्याय में चर्चा कर चुके हैं। हिन्दुस्तान में पारिवारिक परम्परा प्रायः इतिहास के प्रारम्भ से ही संगठित सामाजिक जीवन का कार्य चलाने के लिए प्रमुख तत्त्व रही है। कालान्तर में विकसित होकर इसने हिन्दू-परिवार का रूप धारण कर लिया।[1] इसकी मोटी विशेषताएँ ये हैं कि परिवार के भीतर व्यक्तिगत सम्पत्ति को कोई स्थान नहीं है, किन्तु संयुक्त सम्पत्ति से परिवार के सारे पुरुष-सदस्यों, पत्नियों और बच्चों का खर्च पाने का अधिकार होता है।[2] विवाह होने पर लड़की अपने पति के परिवार की सदस्या हो जाती है। यदि परिवार में ऐसे किसी पुरुष

1. तुलनीय मुल्ला, 'हिन्दू लॉ' 15, संयुक्त और अविभाजित हिन्दू परिवार हिन्दू समाज की सामान्य शर्त है। एक अविभाजित हिन्दू परिवार साधारणतः संयुक्त होता है। न केवल जायदाद में, बल्कि भोजन और उपासना में भी। ऐतिहासिक क्रम में संयुक्त-परिवार प्रथा पहले आती है। उत्तराधिकार का नियम बाद में उत्पन्न हुआ।
2. वहीं, 428।

को गोद लिया जाता है, जो समाज में मान्य है और इसे कुछ स्थितियों में प्रोत्साहित भी किया जाता है—तो 'गोद लिया हुआ लड़का अपने स्वाभाविक परिवार से अलग होकर गोद लेने वाले परिवार का हो जाता है ।' और, जबकि उसे नए परिवार में एक पुत्र के सारे अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, वह अपने स्वाभाविक परिवार के सारे अधिकार त्याग देता है । साथ ही वह अपने असली पिता या अन्य सगे सम्बन्धियों की जायदाद में और अपने मूल परिवार की संयुक्त जायदाद में हिस्सा पाने के दावे को त्याग देता है ।[1] इससे हिन्दुस्तान के आज के, तथा सम्भवतः भूतकाल के, हिन्दू परिवार का साधारणतः ठीक-ठीक परिचय मिल जाता है । संयुक्त परिवार का विकास स्वाभाविकतः भारतीय ग्राम की जीवन और उत्पादन सम्बन्धी परिस्थितियों से हुआ ।[2] मुसलमान उत्तराधिकार और तलाक के भिन्न नियम और सामाजिक जीवन की बिल्कुल भिन्न अवधारणा अपने साथ लाए ।

एक बात में—अर्थात् स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष को विशेष प्राथमिकता देने में हिन्दू और मुस्लिम समाज आपस में एकमत हैं । पुत्र सदैव ही पुत्री की अपेक्षा प्राथमिकता पाता है और पुत्रों में भी प्रथम पुत्र को प्राथम्य मिलता है ।[3] दोनों सामाजिक पद्धतियों की अपनी सामान्य विशेषता है, माता-पिता के प्रति प्रेम और सम्मान, जो पारस्परिक रहता है, क्योंकि माता-पिता अत्यंत ममतालु और अत्यधिक स्नेही होते

---

1. वही, 398 ।
2. 'वर्व' या संयुक्त परिवार का रूसी पर्याय तुलनीय है······वर्व, जिसके अधिकार में उसका स्वयं का प्रदेश रहता है, उस गृह-समुदाय के बिलकुल अनुरूप होता है जिसमें एक ही छप्पर के नीचे रहने वाले और सामूहिक रूप से भूमि के स्वामी अनेक व्यक्ति अपनी जायदाद की सीमा के भीतर किये गए अपराधों और दुष्कर्मों के प्रति संयुक्त रूप से जवाबदार रहते हैं ।' कोवलेव्हस्की, 51 ।
3. हिन्दू जीवन का एक सर्वप्रमुख उद्देश्य है, एक पुरुष-संतान की उत्पत्ति जो परलोक में पिता की देखभाल करके नरक से बचाने के लिये आध्यात्मिक रूप से योग्य हो । कुरान के अनुसार (पवित्र कुरान, 4 : 34 के अनुसार) 'पुरुष स्त्रियों के पोषक है,' इ० (राडवेल; पवित्र कुरान, 415 : 'ईश्वर प्रदत्त श्रेष्ठ गुणों के कारण पुरुष-स्त्रियों से श्रेष्ठ है ।') हिन्दू परिवार का ज्येष्ठ पुरुष-सदस्य, संयुक्त सम्पत्ति का कर्ता या प्रबंधक होता है । राजपूत सरदार का ज्येष्ठ पुत्र 'कुंवर' बहुधा उत्तराधिकार में पारिवारिक सम्मान पाता है । इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि शेरखाँ के पिता मियां हसन की मृत्यु होने पर उसके एक छोटे सौतेले भाई सुलेमान ने मृतक की पगड़ी धारण कर ली थी, जिसपर उसके एक चचेरे भाई ने उसके सिर से पगड़ी छीन ली और चेतावनी दी कि हम उसके सम्बन्धी परिवार के ज्येष्ठ पुत्र के विशेषाधिकार का इस प्रकार हनन सहन नहीं करेंगे ।

हैं।[1] सामान्यतः भारतीय सामाजिक परम्परा पश्चिमी देशों के लघु-परिवारों की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा के पारस्परिक अवलम्बन और संयुक्त सम्बन्ध की भावना को विकसित करती है। संयुक्त परिवार में संयुक्त-संपत्ति का ही अस्तित्व होने और संपत्ति के सारे भौतिक आनंदों में समान हिस्सा होने के कारण संयुक्त परिवार के सदस्य आर्थिक प्रतियोगिता के निराशाजनक प्रभाव से मुक्त रहते हैं। उनके जीवन की परिस्थितियां उनमें आवश्यक रूप से पारस्परिक उत्तरदायित्व की सारी चेतना का, और इस धारणा का, कि बिना एक-दूसरे के वे जीवन के संकटों और कठिनाइयों से पार नहीं पा सकते, विकास करती है।[2] दूसरी ओर संयुक्त परिवार वैयक्तिकता के विकास को रोकता है। यह जोखिम और आत्मनिर्भरता की भावना, जो आधुनिक काल में किसी भी देश की औद्योगिक उन्नति के लिये अति महत्वपूर्ण है, को कुंठित कर देता है।[3]

2. **स्त्रियों की स्थिति**—स्त्रियों के कार्य और उनकी स्थिति विशेष रूप से आधीनस्थ रही है और कालान्तर में पुरुष की सेवा और जीवन के प्रत्येक चरण में उस पर निर्भर रहना ही क्रमशः उसके कार्य और स्थिति माने जाने लगे। वह पुत्री के रूप में अपने पिता के संरक्षण में, पत्नी के रूप में अपने पति के संरक्षण में, और विधवा के रूप में (उस स्थिति में जबकि उसे अपने पति की मृत्यु के पश्चात् जीवित रहने दिया जाता) अपने ज्येष्ठ पुत्र की देखरेख में रहती थी।[4] संक्षेप में उसका जीवन निरन्तर संरक्षण का जीवन था और सामाजिक विधान और परम्पराओं में उसे एक प्रकार से मानसिक रूप से अविकसित ठहराया गया है। पैदा होने पर लड़की को अनचाहा मेहमान समझा जाता, क्योंकि, हिन्दुओं के धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हतभागी पुत्री भूली बिसरी घड़ी में किये गए अपने पिता के पाप-पुंज का शोधन नहीं कर सकती।[5] अतः उसे कुछ कबीलों में तो शिशुकाल में ही मार डाला जाता था।[6] यदि

1. माता-पिता के प्रेम के लिये तुलनीय है म० अ०, 119-21, नानक की भावनाएं, मेकालिफ, प्रथम, 97-8।
2. रूसी संयुक्त परिवार के लिये कावलेव्स्की के आकलन के लिए देखिए 60।
3. इस संस्था की एक आधुनिक आलोचना तुलनीय, के० एम० पणिक्कर, 'ज्वाइन्ट फेमिली एण्ड सोशल प्रोग्रेस'। विश्वभारती, अप्रैल, 1925 विभिन्न कारणों से कबीर द्वारा इसका विरोध भी देखिए, शाह, 89-90।
4. हिन्दू विवाह पद्धति में पत्नी के स्थान के लिए तुलनीय मुल्ला, 'हिन्दू ला', 371। सामान्य हिन्दू विधान में तलाक को स्थान नहीं है, क्योंकि हिन्दू विवाह पति और पत्नी के मध्य न टूटने वाला बंधन है।
5. तुलनीय, लल्ला, टेम्पल, 230; राजपूतों में बालिकाओं की हत्या के लिये देखिये टॉड, द्वितीय, 739-40।
6. तुलनीय, कुक, पापुलर रिलीजन, 194।

उसे जीवित रहने दिया जाता तो उसे पति के साथ अटूट बंधन में बाँध दिया जाता। यदि गर्भावस्था में उसकी मृत्यु हो जाती तो वह कभी-कभी 'चुड़ैल' नामक भयानक प्रेतात्मा का रूप धारण करके पड़ोस में अड्डा जमा लेती। मृत्यु या आत्म-बलिदान ही उसे मुक्ति प्रदान करते थे। इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्री की दशा अत्यन्त दुखद रहती थी। उसका धर्म और अन्य सुधारवादी आध्यात्मिक आंदोलन भाग्य पर संतोष करने की बात कहकर उसे सांत्वना प्रदान करते; किन्तु, उन्होंने भी सावधानी से उसे किसी आधिकारिक स्थिति से और उसे अपनी आंतरिक धर्मसत्ता से भी परे रखा।[1] ✓

हिन्दू विचारधारा के अनुसार स्त्री का प्रमुख कार्य पुत्र पैदा करना था और यदि वह पुत्र को जन्म दे देती तो लोग उसका सम्मान करते, उसकी देखभाल करते। मैं माता-पिता के प्रति सन्तानों के प्रेम की बात कह चुका हूं। यह बिलकुल सत्य था और एक भारतीय माँ के लिये यह महान् सन्तोष की बात थी। अन्य बातों में भारतीय नारी का क्षेत्र कठोर रूप से घर और घरेलू देख-भाल तक ही सीमित था। उसके सारे स्वप्न स्वयं को पतिव्रता सिद्ध करने और पति को प्रसन्न रखने में ही केन्द्रित रहते थे।[2] दूसरी ओर पुरुष उसे निर्बल मस्तिष्क वाली और महत्वपूर्ण मामलों में विश्वास न करने योग्य समझने लगा। वह घरेलू मामलों में उसकी सहायता का स्वागत करता और उसका महत्व मानता था। कुछ अपवादस्वरूप महिलाएं रही होंगी, किन्तु सामान्यतः स्त्रियों की स्थिति का यह आकलन तत्कालीन हिन्दू समाज को देखते हुए ठीक है।[3]

स्त्रियों के सम्बन्ध में मुस्लिम परम्परा देश-देश में भिन्न थी। तुर्क लोग सामान्यतः अपनी स्त्रियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता देते थे।[4] फ़ारसी नारी की दशा में

1. मीरा बाई की रोचक कथा देखिए, जिसे वृंदावन के गोसाईं ने अपने सम्मुख उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी। मेकालिफ, चतुर्थ, 353 के अनुसार। 'सती' के सम्बन्ध में अन्य संदर्भों का उल्लेख बाद में किया जाएगा।
2. सन्तानोत्पत्ति के स्त्री के कार्य और उसे दिये जाने वाले सम्मान के लिये तुलनीय है म० अ०, 192, 117।
3. तुलनीय, पृ० 256 पी० वी० नारियों के आकलन के लिए। जिसमें राधा के नारी जाति के सम्बन्ध में अपनी स्वीकृतियां में अल्पवृद्धि भी एक दुर्बल बालिका के रूप में।
4. राजपूत नारी के सम्बन्ध में टॉड का आकलन तुलनीय, जिल्द द्वितीय, 744— 'अन्य देशों की स्त्रियों को राजपूतनी का भाग्य भयानक कष्टप्रद प्रतीत होगा। जीवन के प्रत्येक चरण में मृत्यु उसका आलिंगन करने के लिये तैयार है; जीवन के उषाकाल में अफीम द्वारा; परिपक्वावस्था में ज्वालाओं द्वारा; और जबकि मध्यान्तर काल में उसकी सुरक्षा युद्ध की अनिश्चितता पर निर्भर रहती है, किसी

भारतीय मुस्लिम नारी की अपेक्षा सुधार हो रहा था।[1] हिन्दुस्तान में मुसलमान प्राचीन फ़ारसी परम्पराओं का पालन करते थे, जो स्त्रियों को नीची कोटि में रखते हैं।[2] सामान्य विषयासक्ति और कामुकता के उद्भव के साथ ही चारों ओर एक

भी समय उसका अस्तित्व साल भर के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्य से अधिक नहीं है।' कृष्णाकुमारी के विदारक अन्त के लिये भी तुलनीय वहीं, प्रथम, 540, जहां राजकुमारी स्त्रियों की स्थिति का इस प्रकार वर्णन करती है : 'हमने बलिदान के लिये ही जन्म लिया है; हमें संसार में प्रवेश किये देर नहीं होती और हम लोग परलोकगामिनी हो जाती हैं; मुझे अपने पिता को धन्यवाद देना चाहिये कि मैं इतना जी चुकी हूं......' अभिमत और उदाहरण के लिये पेरे तेफ़ुर, 90 भी। तुर्कों में स्त्रियों की दशा पर इब्नबतूता के विचार के लिये कि० रा० 200-201 तुलनीय है।

1. देखिये वहीं, कि० रा०, प्रथम, 121, किस प्रकार शिराज की महिलाएं उपदेशक के उपदेश सुनने के लिए सप्ताह में तीन बार मुख्य मस्जिद में एकत्र होती थीं। इब्नबतूता का विचार है कि उसने उससे अधिक बड़ा नारी-समूह कभी नहीं देखा; हेरात की स्त्रियों के लिये, जो परदे का पालन करती थीं, किन्तु अन्य बातों में स्वतन्त्र थीं, देखिये श्रेस्नीडर, द्वितीय, 287-88 मदीना और अन्य स्थानों की स्त्रियों के सम्बन्ध में इब्नबतूता का वैसा ही आकलन।
2. प्राचीन फ़ारस के सम्बन्ध में तुलनीय है, रॉलिन्सन, फ़ाइव इ०, तृतीय, 222। 'फ़ारसी मूर्तिकला और शिलालेखों में यह विशेष रूप से प्रतीत होता है कि वे उस तटस्थता को अति तक ले जाते हैं, जिसे पूर्वीय लोगों ने स्त्रियों के सम्बन्ध में सदैव बनाए रखा है। प्राचीन लेखों में स्त्रियों का कोई भी निर्देश नहीं मिलता और स्त्रियों की कोई मूर्तियाँ भी नहीं मिलतीं।' प्राचीन फ़ारसी कवि फ़िर्दौसी के नाम से सम्बन्धित लोकप्रिय फ़ारसी परम्परा के लिये, कि स्त्री और दैत्य खतरनाक प्राणी हैं और उनका नाश ही ठीक है. तुलनीय अ०, 332। इसलिये यदि स्त्री मृत्यु को प्राप्त नहीं होती, तो उसे घर की चहारदीवारी में बन्द करके रखा जाना चाहिये। देखिये ज० हि० (पादटिप्पणी 321) जिसके पूरे एक अध्याय में स्त्रियों के दुर्गुणों को दर्शाया गया है। वह न केवल मानसिक रूप से निर्बल ठहराई गई, बल्कि निश्चित रूप से दुष्ट स्वभाव वाली भी बताई गई (वे०, 245; अ०, 254 के अनुसार)। व्यावहारिक बुद्धि के लिये तुलनीय, अ० इ०, 67। महत्वपूर्ण मामलों में पत्नी का विश्वास किया जाना उचित नहीं था और यदि उससे परामर्श करना अनिवार्य ही था तो उसकी सलाह के विरुद्ध चलना ही ठीक था। तुलनीय, ता० जे० आ०, 15 जिसमें पाठक को सलाह दी गई है कि वह अपनी पत्नी को अपनी सम्पत्ति और मूल्यवान वस्तुओं का ज्ञान न होने दे। विषय-भोग के साधन के रूप में स्त्री की एकमात्र बहुमूल्य विशेषता के लिये देखिए रा०, 121। फिर भी, इस दुःखद

अस्वस्थ दृष्टिकोण विकसित हो गया था। लोग स्त्रियों की पवित्रता का उतना ही अतिरंजित मूल्य करने लगे, जितना कि वे पुरुषों में इसकी हीनता को प्रोत्साहन देते थे।[1]

ये सामान्य तथ्य हिन्दुस्तान की स्त्रियों की संस्कृति और परम्परा की पृष्ठ-भूमि पर प्रकाश डालने में सहायक होंगे। साधारणतः स्त्रियों को पुरुषों का साहचर्य प्राप्त नहीं हो पाता था। बाल्यावस्था में साथ खेलने वाली बालिकाएं और लड़कों में उनका भाई ही लड़की के साथी रहते थे।[1] विवाहोपरान्त वह अपने पति के साथ

मानवीय दुर्बलता से सन्यासी प्रभन्न नहीं थे। उन्होंने जोर दिया कि स्त्रिया नरक के लिये पैदा हुई और उसके लिये ही बनी हैं, केवल पुरुष ही स्वर्ग के लिये बना है (त०, 26 ब के अनुसार, जहां स्वर्ग और नरक की जनसंख्या के तुलनात्मक आँकड़े भी दिये गए हैं)। सन्त एक पग और आगे बढ़ गये और उन्होंने अच्छाई और बुराई की शक्तियों के लिंग भी निर्धारित कर दिये, जो वास्तव में क्रमशः पुरुष और स्त्रीलिंग के सूचक थे (स० शे० स०, 87-8 के अनुसार)।

1. विषय-सुख के लिये 'शिष्टाचार' से सम्बन्धित अध्याय देखिये। यहां एक विशेष उदाहरण देना पर्याप्त होगा। एक बार एक *अत्यन्त सुन्दर युवती शेरशाह के सैनिकों द्वारा कैद कर लाई गई थी और उसे शेरशाह को भेंट-स्वरूप दिया गया।* हिकारत से शेरशाह चिल्ला उठा 'ले जाओ पातकी की इस मूर्ति को और इसे मेरे शत्रु हुमायूं के तम्बू में भेज दो।' उसकी आज्ञा का पालन किया गया। तब शेरशार ने अपने सैनिकों को समझाया कि यदि वह ऐसी सुन्दर कुमारी को अपने पास रख लेता तो इससे वह दूषित ही होता, फलतः उसकी राजनैतिक उपलब्धियाँ ही नष्ट होतीं। ऐसा कहा जाता है कि जब वह युवती हुमायूं के पास ले जाई गई तो सुल्तान हुमायू उसमें इतना लीन हो गया और सैनिक कार्यवाहियों के प्रति इतना उदासीन हो गया कि यह उदासीनता धूर्त शेरशाह से उसकी पराजय का कारण बनी और उसे अन्त में गद्दी से हाथ धोना पड़ा (ता० दा०, 75 के अनुसार)। नारी-पवित्रता के लिए अमीर खुसरो का अवलोकन देखिये जिन्हें, संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है: *यदि किसी लड़की के कौमार्य पर कोई छींटा पड़ जाता तो वह विवाह हेतु कोई सम्माननीय वर पाने की आशा नहीं कर सकती थी, चाहे ये दोषारोपण बिलकुल निराधार क्यों न सिद्ध हो गये हों। अतः कवि प्रत्येक ईमानदार लड़की को सलाह देता है कि वे ऐसे प्रेमी को, जो कि* उनका पति नहीं है, समर्पण करने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन कर लें। (म० अ०, 198 के अनुसार)। विरोधाभास के लिए दक्षिण की स्त्रियों से तुलना कीजिये। 'देवदासियों' के लिए बरबोसा द्वितीय, 54 वहीं, 216।

1. लल्ला की विशिष्ट उक्ति देखिए, 'मैंने कहा, भाई के समान कोई सम्बन्धी नहीं।' टेम्पल, 232।

रहती थी; किन्तु संयुक्त परिवार के अन्य सदस्यों और सम्भवतः कुछ स्रोतों की उपस्थिति के कारण विवाहित युगल में स्वस्थ प्रेम और साहचर्य की भावना का विकास नहीं हो पाता था। एक बार स्त्री का व्यक्तित्व दबा दिये जाने पर स्त्री-पुरुष में असहमति का अंदेशा नहीं रह जाता था; घरेलू जीवन सुखी और सद्भावनापूर्ण हो जाता था और बच्चों का लालन-पालन ममत्व से, फिक्र और प्रेम से किया जाता। असहाय होने और पुरुष पर अवलम्बित होने के कारण लोग स्त्री के प्रति शिष्ट और शौर्यपूर्ण होने से न चूकते,[1] यद्यपि यह संदेहास्पद है कि घरेलू स्त्रियों और दासों के साथ व्यवहार में ऐसी ही नम्रता का प्रदर्शन किया जाता था।[2] फिर भी स्त्रियों का रक्त बहाना एक घृणित अपराध समझा जाता था।[3]

स्त्रियों की बौद्धिक संस्कृति में वर्गानुसार भेद था। ग्रामों में, जहाँ स्त्री ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का एक अंग थी, साधारण अर्थ में सांस्कृतिक उत्थान की गुँजाइश नहीं थी। हम पहले इंगित कर चुके हैं कि किस प्रकार स्त्रियों को बुनाई की कुछ क्रियाओं से वंचित रखा गया था, यद्यपि घरेलू कार्यों में ये बन्धन नहीं थे। दूसरी ओर कृषक-स्त्रियों के दरिद्र वर्ग को दुर्भाग्य से घरेलू काम, कृषि-कर्म और बच्चों के साथ इतना अधिक व्यस्त रहना पड़ता था कि उन्हें बौद्धिक कार्य-कलापों या मनोरंजन के लिए भी समय नहीं मिल पाता था। इस प्रकार उनकी मानसिक संस्कृति बहुत पिछड़ी रहती थी, जिससे लोक-कथाओं के विद्यार्थी अच्छी तरह परिचित हैं।

उच्च वर्ग का जीवन साहसिक कार्यों और संकटों से परिपूर्ण रहता था जिससे कलाओं और विज्ञानों की उन्नति को प्रोत्साहन मिलता था।[4] देवलरानी, रूपमती,

1. राजपूतों में स्त्री को दिये जाने वाले सम्मान और आदर के लिए तुलनीय टॉड, द्वितीय, 711; चौसा में हुमायूँ की पराजय के पश्चात् मुग़ल हरम की स्त्रियों के प्रति शेरशाह की उदारता के लिए तुलनीय, ता० शे० शा०, 37।
2. फि० फि०, 170 में घरेलू सेवकों से दुर्व्यवहार के उदाहरण देखिये।
3. फीरोज़ तुग़लक के एक रोचक उदाहरण के लिए तुलनीय है ज० ए० सो० बं०, 1923, 279, जिसमें फिरोज़ तुग़लक बंगाल के सुल्तान इलियास शाह पर आक्रमण करने का बहाना प्राप्त कर लेता है। उसके अनुसार अन्य अपराधों के साथ इलियास शाह स्त्रियों का रक्त बहाने का दोषी है; जबकि, जैसा कि फीरोज़ तुग़लक पवित्रतापूर्वक स्वीकार करता है, 'सारे धर्मों और परम्पराओं के अनुसार किसी भी स्त्री की हत्या नहीं की जा सकती, चाहे वह काफ़िर ही क्यों न हो।'
4. क्षत्रिय स्त्री के लिए जायसी की प्रसिद्ध पुस्तक पद्मावत की प्रेम और साहसिक कार्यों वाली कथा तुलनीय है। अफ़ग़ान स्त्रियों के साहस और शौर्य के दो उदा-

पद्मावत और मीरा बाई हिन्दू संस्कृति के अच्छे उदाहरण हैं। ख़ाज़ी दबीर का कथन है कि मुहम्मद तुगलक द्वारा काराजन की पहाड़ियों (कुमायूं) पर आक्रमण किये जाने का एक कारण यह भी था कि वह उस भाग की स्त्रियों को पाना चाहता था, जो अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात थी।[1] सुल्तान रज़िया दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हो सकी; इससे सिद्ध हो सकता है कि कुलीन मुसलमान और मुस्लिम शासक अपनी पुत्रियों को उत्तम शिक्षा और प्रशिक्षण देने से नहीं चूकते थे। मुगलों के समय भारतीय कुलीनवर्ग में एक स्वस्थ परम्परा का समावेश हुआ। हमें गुलबदन बेगम से सूचना मिलती है कि सम्राट् हुमायूँ के हरम की महिलाएं अपने पुरुष-मित्रों और अभ्यागतों से स्वतन्त्रतापूर्वक मिलती थीं। वे कभी-कभी पुरुषवेश में बाहर जाती, पोलो खेलतीं और संगीत का अभ्यास करती थीं। वे गोफन चलाने और अन्य व्यावहारिक कलाओं में निपुण रहती थीं।[2] अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता के कारण मुगल महिलाएं अपने गौरव और सम्मान के प्रति अधिक जागरुक रहतीं और प्रसिद्ध मुगल सम्राटों की माताएं अपने क्षेत्र में उतनी ही महान् रहतीं जितने कि उनके पुत्र अपने क्षेत्र में।[3] जीवन के निम्नतर क्षेत्रों में स्त्रियों के बारे में प्रायः कोई सूचना नहीं मिलती, किन्तु सम्भवतः वे अपने से ऊंची स्थिति की स्त्रियों के स्तर के सन्निकट ही थी। हम इस तथ्य का उल्लेख कर ही चुके हैं कि कुछ रखैलें बहुत चतुर और कुशल होती थी।

हरण देखिये। एक अवसर पर उन्होंने पुरुष वेश में सफलतापूर्वक दिल्ली के किले की रक्षा की और शत्रु की अनवरत बाण-वर्षा का सामना किया। जब तक उनके पति और पुरुष रिश्तेदार मुक्ति-हेतु नहीं आ गये, उन्होंने दृढ़तापूर्वक प्रतिरोध किया। (विस्तृत विवरण के लिए ता० दा०, 9 ब)। जब नियाजी लोग काश्मीर की पहाड़ियों में कुचल दिये गए तब उनकी स्त्रियों ने तीर-कमान, तलवार और भाले धारण किये और उन्होंने अपने शत्रु, कश्मीर के पहाड़ी लोगों से तब तक युद्ध किया जब तक कि वे ऊपर से फेंके गये पत्थरों के नीचे दब नहीं गए। (मु० त०, प्रथम, 388 के अनुसार)।

1. ज० दा०, तृतीय, 877 तुलनीय।
2. गुलबदन का वर्णन देखिये।
3. उदाहरण के लिए अकबर की माँ हमीदा बानो की कथा तुलनीय है। ऐसा कहा जाता है कि जब हुमायू ने उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखा, तो उसने एक शासक के, या वास्तव में, ऐसे किसी भी व्यक्ति के प्रस्ताव पर विचार करने से इंकार कर दिया जो उसकी अपेक्षा बहुत ऊंची सामाजिक स्थिति वाला हो। उसने कहा कि 'मैं उस व्यक्ति के साथ अवश्य विवाह कर सकती हूँ जिसका मैं दामन छू सकूं, बनिस्वत उसके जिसको चौकी तक भी मैं नहीं पहुंच सकती',

3. परदा और स्त्री-पुरुषों में सामाजिक समागम—अब हम हिन्दुस्तान की परदा-प्रथा पर विचार करेंगे और इसके विकास को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। 'परदा' शब्द का तात्पर्य है ओट के लिए कोई वस्त्र; साधारणतः इसका तात्पर्य 'घूंघट' से होता है। स्त्री के लिए इसका प्रयोग किए जाने पर यह स्त्री को एक अलग भवन या पृथक् कक्ष में, या भवन के पृथक् हिस्से में—जिसे 'हरम' कहा जाता है—रखा जाना प्रकट करता है। जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके हैं, 'हरम' शब्द निवासस्थान के लिए प्रयुक्त होने के अतिरिक्त ऐसी स्त्रियों की समष्टि को भी प्रकट करता है जो जनता की दृष्टि से परे कर दी जाती हैं। लड़की, इस पृथकता का पालन तरुणावस्था पर कदम रखने पर या उसके कुछ पूर्व ही, प्रारम्भ कर देती है और वह जीवन-पर्यंत इस रीति का पालन करती है. जब तक कि वह सन्तानोत्पत्ति की आयु पार नहीं कर जाती। जब वह वृद्धावस्था में पहुंच जाती है उसे इस पृथकता का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती; किन्तु उस समय तक इस प्रथा का जीवन-पर्यंत पालन करते रहने के कारण, जन-साधारण में जाने की अपेक्षा, हरम के चिर-परिचित वातावरण में रहना ही उसे अधिक सुविधाजनक प्रतीत होने लगता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे काल में 'हरम' शब्द में स्त्री-दास, हिजड़े और अन्य सेवक भी, जिन्हें स्त्री-निवासों की देखरेख का कार्य सौंपा गया था, सम्मिलित हैं।

परदा के उद्भव के सम्बन्ध में अनेक विरोधपूर्ण सिद्धान्त रखे जाते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि इस प्रथा के उत्थान के लिए मुसलमान उत्तरदायी हैं और इस्लाम के पदार्पण के पूर्व हिन्दुस्तान की स्त्रियां स्वच्छन्द विचरण करती थीं।[1] कुछ का कथन है कि घूँघट की प्रथा अति प्राचीन है और इस सिद्धान्त का समर्थन प्राचीन हिन्दू सामाजिक इतिहास के कई उदाहरण देकर किया गया है।[2] ये मत इतने विरोध-पूर्ण नहीं हैं जितने कि प्रथम दृष्टि में प्रतीत होते हैं, वस्तुतः वे प्रशंसा-परक हैं। प्राचीन भारत में स्त्रियों को थोड़ा-बहुत अलग रखा जाता था और स्त्रियाँ घूंघट का पालन करती थीं, किन्तु परदे का वर्तमान विस्तृत और संस्थागत रूप मुस्लिम शासन के समय से प्रारम्भ होता है। परदे के वर्तमान स्वरूप के विकास को अनेक तत्त्वों ने सम्भव बनाया, जिनमें से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—हिन्दू समाज में स्त्री की स्थिति,

---

जिसका तात्पर्य था कि उसने व्यवहार की समानता पर जोर दिया। (गु० ब०, 53 के अनुसार)। अन्य उदाहरणों के लिए नूरजहाँ, मुमताजमहल इ० से भी हम परिचित हैं।

1. तुलनीय, कुमारी कापर, 102।
2. 'द लीडर', इलाहाबाद, मई, 1938 में परदा के सम्बन्ध में श्री मेहता का मत देखिए।

उसके कार्य और यौन नैतिकता सम्बन्धी विचार ।[1] हमें विदित है कि हिन्दू-भारत में पुरुष-समाज से स्त्रियों का पृथक्त्व एक सामान्य बात थी और घर ही उनका क्षेत्र था। मुस्लिम लोग अपने साथ वर्ग और जातीय पृथकता और कुलीनवर्ग और शाही व्यवहार के अतिरंजित विचार लाये, जिन्होंने यहाँ की अनुकूल भूमि में जड़ जमा ली। इसमें एक व्यावहारिक कारण भी जुड़ गया—असुरक्षा की वृद्धिगत भावना, जो 200 वर्षों से अधिक आक्रमकों, विशेषकर मंगोलों के आक्रमणों के कारण बनी रही।

इस प्रकार मुस्लिम काल में कुछ इस प्रकार की स्थिति थी—कृषक-स्त्रियों का विशाल समुदाय कोई चादर या विशेष रूप से बना परदा नहीं ओढ़ता था और अलग-अलग नहीं रहता था; वे किसी अजनबी के सामने से निकलते समय साड़ी या अन्य शिरोवस्त्र का पहलू चेहरे पर थोड़ा खिसका लेती थी; नहीं तो, वैसे उनके हाथ और चेहरे बिलकुल खुले रहते थे। इस काल का भारतीय किसान अधिक पत्नियाँ रखने का व्यय वहन नहीं कर सकता था और उसकी पत्नी का बहुधा घर में कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहता था। वह शारीरिक रूप से हृष्ट-पुष्ट और नैतिक दृष्टि से दृढ़ रहती थी और वह अपने पति को कभी ईर्ष्या या दुर्व्यवहार का अवसर नहीं देती थी। संक्षेप में, हिन्दुस्तान में किसान ने केवल एक पत्नीगामी, स्वस्थ और मुक्त जीवन व्यतीत करना ही सीखा है।[2] उच्च वर्ग की महिलाएँ वहीं तक पर्दा का पालन करती हैं जहाँ तक उनके साधन उन्हें अनुमति देते हैं, क्योंकि उस वर्ग की स्त्रियाँ घरेलू कामकाज से परे रह सकती हैं। उच्च वर्गों में परदा सम्मान का माप है, अतः जितनी ऊँची स्थिति होगी 'उतनी ही ऊँची खिड़कियाँ रहेंगी और स्त्रियाँ उतनी ही अलग रहेंगी।[3] यह कहना आवश्यक है कि नवीन परिस्थितियों के दवाब के कारण हिन्दुस्तान में स्थिति तेजी से बदल रही है।

इस काल में हमारे पास परदा के अनेक ऐतिहासिक प्रमाण है। हिन्दुओं और

1. अन्य गौण तत्त्वों में हिन्दू स्त्रियों पर पड़ोसी मुसलमानों के धावे देखिए। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जैसे रूपमती बाजबहादुर की प्रेम कथा। टॉड, द्वितीय, 952 भी देखिए। किसी शासक या अधिकारी द्वारा पत्नी बनाने के लिए लड़की की माँग किए जाने का भी भय था, जैसा कि फीरोज़ तुगलक के पिता के सम्बन्ध में हुआ था। टॉड, तृतीय, 966 भी तुलनीय है।
2. एफ० डब्ल्यू० थामस, 72 का मत तुलनीय है। 'स्त्रियों की पृथकता मुसलमानों से ली गई है, किन्तु केवल सम्पन्न वर्ग ने ऐसा किया है। दरिद्र वर्ग इससे परिचित नहीं है'। तुलनीय, अबुल फज्ल। आ० अ०, द्वितीय, 162। 'पति (हिन्दू जनता में) पुनः विवाह नहीं करता, जब तक कि उसकी पत्नी वन्ध्या न हो। इसी प्रकार कोई पुरुष 50 वर्ष से अधिक आयु का हो जाने के पश्चात् पुनः विवाह नहीं करता'।
3. तुलनीय, कूपर, 121।

निम्नवर्गीय मुसलमानों में घूंघट की प्रथा का वर्णन मलिक मुहम्मद जायसी, विद्यापति और अन्यों के द्वारा किया गया है। ये सब सर्वसाधारण के जीवन के सम्बन्ध में लिखते हैं।[1] परदा के विस्तृत नियम वाले अधिक विकसित स्वरूप हिन्दुस्तान में मुस्लिम शासन के प्रायः प्रारम्भ से ही अस्तित्व में आ गये। फखरुद्दीन मुबारक शाह लाहौर के गजनवी शासक बहरामशाह की हिन्दू दास लड़की की मनोरंजक कथा का वर्णन करता है। वह लड़की अस्वस्थ होगई थी और एक चिकित्सक से उसकी चिकित्सा करानी थी। उस चिकित्सक ने उसकी देह का निरीक्षण करने और उसकी नाड़ी देखने पर जोर दिया। शासक को इसकी सूचना दी गई। शासक इस स्थिति को देखकर अत्यधिक अस्त-व्यस्त हो गया और अनेक संतुष्टिकारक तर्कों के पश्चात् उसने इस शर्त पर चिकित्सक द्वारा उस लड़की का मुख और हाथ देखा जाना मान्य किया कि 'वे उसके सम्मुख अधिक न खोले जाएँ'।[2] रजिया का उदाहरण सर्वविदित है और हम शाही हरम में परदा के अस्तित्व को सिद्ध करने हेतु ही उसका उल्लेख करते हैं।[3] फीरोज तुग़लक के पहले परदे को पालन-करने के लिए राज्य की प्रजा पर कभी दबाव नहीं डाला गया। फीरोजशाह पहला शासक था जिसने दिल्ली शहर के बाहर के मकबरों पर मुस्लिम स्त्रियों के जाने पर पाबन्दी लगा दी थी, क्योंकि, उसके अनुसार मुस्लिम कानून (शरियत) में इस प्रकार बाहर घूमने की मनाही है।[4] शहर के भीतर स्त्रियों के आने-जाने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है, सम्भवतः इसके लिए उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। इस समय तक यह प्रथा सुदूर प्रान्तों तक पहुँच गई थी।[5] इसी कारण कोई भी (सम्माननीय महिला बन्द डोली में पुरुष-अनुचरों के साथ जाती थी।[6] दरिद्र और निम्न-वर्गीय स्त्रियाँ सम्भवतः 'सिर को ढांकते हुए एक बड़े कपड़े में स्वयं को लपेटकर' या आजकल की भाषा में 'बुरका' ओढ़कर निकलती थीं।[7] राजागण और ऊंचे अमीर[8] अपनी

1. तुलनीय, प० व०, उनसठ; मैकालिफ, छठवाँ, 347।
2. तुलनीय, अ० ह०, 20।
3. सुल्तान रजिया के सम्बन्ध में तबकात-ए-नासिरी और अमीर खुसरो में सन्दर्भ देखिए। रेवर्टी, 638, 643; दे० रा०, 49। रजिया ने अपनी स्त्री-वेशभूषा को ताक पर रखकर परदे से बाहर निकलकर परम्परा भंग कर दी। अमीर खुसरो उसके अशिष्ट साहस का पूर्णरूपेण सम्मोदन नहीं करता।
4. फीरोजशाह द्वारा अपने सुधारों का आकलन तुलनीय है, फु०, 8-9।
5. बंगाल के इकदला दुर्ग के भीतर 'बुरके वाली' और 'आवरणयुक्त' स्त्रियों द्वारा फीरोज तुग़लक की सेना के सामने दया की भिक्षा माँगने के बारे में तुलनीय है, अ० 118।
6. तुलनीय, ता० फ०, प्रथम 422।
7. गुजराती बनिया वर्ग की स्त्रियों के लिए तुलनीय हैं बरबोसा, प्रथम, 114।
8. तातार खां की दास लड़कियों को बन्द और ताला लगे वाहनों में भेजे जाने के

स्त्रियों के लिए बिल्कुल ढँकी और ताला लगी डोलियों का प्रयोग भी करते थे। हिन्दू अमीर मुस्लिम शासकों के तौर-तरीके अपनाने में पीछे नहीं थे।[1]

इस सम्बन्ध में हिन्दू और मुस्लिम समाज में विवाह के नियमों से परदे का क्या सम्बन्ध था, इसका उल्लेख किया जा सकता है। जबकि ऐसे लोगों के साथ, जिनसे विवाह सम्बन्ध की मनाई है, स्त्रियों के सामाजिक समागम पर केवल सामान्य रूप से प्रतिबन्ध रहता है, अधिक शक्ति का वहां प्रयोग किया जाता है जहाँ स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध इतने बढ़ जाते हैं कि भविष्य में विवाह-सम्बन्ध होने की सम्भावना उपस्थित हो सकती है। हिन्दू और मुस्लिम कानून की मूल आत्मा विवाहेच्छुक दोनों पक्षों के सम्बन्धों के लिए, चुनाव का विस्तृत क्षेत्र और बहुत अंश तक, स्वतन्त्रता प्रदान करती है। एक हिन्दू बहुधा अपनी उप-जाति के बाहर और समग्र जाति के भीतर विवाह करता है। इसलिए यदि समान उप-जाति की लड़कियों के साथ सामाजिक समागम की कोई स्वतन्त्रता नहीं है तो इस सीमा के बाहर अधिक स्वतन्त्रता है। अन्य बृहत् जातियों के साथ अन्तर्विवाह की इतनी कठोरता से निषेध है कि भिन्न जाति और भिन्न लिंग वाले व्यक्तियों के सम्बन्धों पर इसकी अनुकूल प्रतिक्रिया होती है।

इसी प्रकार मुस्लिम विवाह मूलतः विवाह से सम्बन्धित दोनों पक्षों के मध्य एक मात्र अनुबंध के रूप में था। सगोत्रता, रिश्तेदारी, पोषण-सम्बन्ध (फोस्टरेज) जैसे कुछ विशेष निषेधों को छोड़कर कुरान में पति या पत्नी के चुनाव के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई है। उपर्युक्त निषेधात्मक परिधि में आने वाले व्यक्तियों को एक दूसरे के लिये 'महरम' या निषेधपूर्ण कहा जाता है। अन्य सब 'नामहरम' कहे जाते हैं या वे जिनके साथ विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध नहीं हैं। हम 'कफ़ू' या स्थिति के सिद्धान्त का उल्लेख कर चुके हैं, जिसके द्वारा समान सामाजिक स्थिति, यहां तक कि समान धार्मिक विचारधारा के लोगों के बीच ही विवाह-सम्बन्ध होना अनिवार्य कर दिया गया था। ऐसे ही विचार और रीति-रिवाज शीघ्र ही स्वतंत्रता का क्षेत्र सीमित करने लगे।

हम दास के स्वामी के अधिकारों का उल्लेख कर चुके हैं कि वह विवाह में भी दास दे सकता था। किसी संस्थान के प्रमुख के ये अधिकार विभिन्न अंशों में उसके सदस्यों को भी प्राप्त थे। पितृसत्तात्मक सिद्धान्त सारी सामाजिक पद्धति में प्रवेश कर गया था और विवाह-सम्बन्धी नियमों और रिवाजों की मूल आत्मा पर

उदाहरण द्रष्टव्य हैं। अ०, 393-4 के अनुसार; तिमूर द्वारा अपना हरम आवरण-युक्त डोलियों में ले जाए जाने के लिए देखिए म०, 289।

1. हिन्दू अमीरों के सम्बन्ध में पुरी (उड़ीसा) के राजा रुद्रप्रताप की रानियों का चैतन्य के दर्शनार्थ 'आवरण युक्त' डोलियों में आगमन के लिए, देखिए सरकार, 190।

हावी हो गया था। दास का स्वामी अपनी गृहस्थी के सम्बन्ध में सुल्तान का प्रतिरूप था (जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं) और अपनी संतानों के संबंध में एक पिता का। इन परिस्थितियों में विवाह-संबंधी कानूनों को एकदम नवीन अर्थ दिये गये। चुनाव की मूल स्वतंत्रता संबंध वाले वंश के विरुद्ध अनुपात में प्रतिक्रिया करने लगी, जब तक कि स्त्री-पुरुषों का सामाजिक समागम केवल उन तक सीमित नहीं कर दिया गया जो 'महरम' या सगोत्र थे, अर्थात् जो किन्हीं भी परिस्थितियों में विवाह नहीं कर सकते थे।

हम इस विचार-परिवर्तन को स्त्री-पुरुषों के समागम पर लगाए गए बंधनों के ठीक स्वरूप को समझाने में सहायक समझते हैं। 'परदा' प्रथा के पीछे आधारभूत विचार है—'ना-महरमों' (वे जो कानूनी रूप से विवाह कर सकते हैं) को एक दूसरे से अलग रखना। वृद्ध कुलपतियों के मस्तिष्क में सदैव इस बात का भय मंडराता रहता था कि निषेध-नियम के बाहर विरुद्ध लिंगों के व्यक्ति पारस्परिक संबंधों द्वारा गलत मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं और आगे चलकर वे ऐसा विवाह तय कर सकते हैं जो बुजुर्गों की इच्छा के विरुद्ध हो और संभवतः संयुक्त परिवार और ग्राम-समुदाय या कुलीन परिवार के महत्वपूर्ण हितों के लिये हानिकारक सिद्ध हो। हम तत्कालीन जनता के आदर्शों और शिष्टाचारों के संबंध में अलग स्थान पर चर्चा करेंगे, किन्तु यह ध्यान में रखना ठीक होगा कि स्त्री के निष्कलंक चरित्र पर अधिक बल दिया जाता था और उसमें भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि पवित्रता को लेकर लड़की की सार्वजनिक प्रतिष्ठा कैसी है। कालांतर में इस बात ने परदे में हरम के भीतर निवास का रूप धारण कर लिया जिससे 'ना-महरम' से मिलने की कोई संभावना ही न रही। प्रचलित सामाजिक परिस्थितियों में पति अपनी पत्नी को सामाजिक समागम की स्वतन्त्रता प्रदान करने से बहुत दूर था और उसका ऐसी स्त्री से विवाह करना संभव नहीं था जिसने ऐसी स्वतंत्रता का उपभोग किया हो और इस प्रकार अपनी नैतिक प्रतिष्ठा गंवाई हो।[1]

---

1. ना-महरमों को एक दूसरे से परे रखने के उद्देश्य के लिये निम्नलिखित देखिए: 'हरम में प्रवेश करते समय मुहम्मद तुग़लक बड़ा सावधान रहता था कि उसकी दृष्टि किसी 'ना-महरम' पर न पड़ जाय (ब०, 506)। तुलनीय अ०, 393-4 कि सुल्तान फीरोज़ तुग़लक के एक अमीर तातार खान की दास-लड़कियां बंद और ताला लगे वाहनों पर ले जाई गईं, जिससे किसी 'ना-महरम' की आंखें उन पर न पड़ सकें।'

तुलनीय, ख० मु०, 69। किस प्रकार संत हमदानी उन स्थानों से बच जाता है जहां स्त्री-पुरुष आपस में मिल सकते थे। अमीर खुसरो की सलाह के लिये तुलनीय है म० अ०, 195, जो तर्क प्रस्तुत करता है कि यदि कोई महिला लोगों की आलोचना से बची रहना चाहती है तो उसे 'ना-महरम' के साहचर्य से दूर—

इस काल की समाप्ति के पहले 'परदा प्रथा' का सुधार करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किये गए। सुधार के प्रयत्नों को नवीन धार्मिक आन्दोलनों से प्रोत्साहन मिला। गुजरात के तटीय नगर इस बहु-प्रचलित प्रथा से प्रभावित न हुए थे और भीतरी भाग के शहरों के समान तो वे कभी भी प्रभावित न हुए थे। यह स्वस्थ प्रभाव स्पष्टतः अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य के फलस्वरूप विदेशियों के साथ हुए सम्पर्क के कारण था।[1]

4. **घरेलू घटनाएं**—किसी व्यक्ति के जीवन में आयु-विषयक विभिन्न चरण, जैसे—जन्म, किशोरावस्था, यौवनावस्था और मृत्यु तथा इनमें गुँथे विभिन्न रिवाज ही, घरेलू जीवन, विशेषकर ग्राम्य-समुदाय के घरेलू जीवन को, महत्वपूर्ण घटनाएँ थी। ये सारे रिवाज सावधानी से बड़ी सूक्ष्मता से बनाए गए थे। धार्मिक भावनाएँ इनमें श्रेष्ठ रूप में मुखरित हुई। समाज किसी व्यक्ति के सम्मानन की परख इस बात से भी करता था कि इन सामाजिक और धार्मिक क्रियाओं के पालन का वह कितना ध्यान रखता है।

जैसे, परिवार में सन्तानोत्पत्ति की घटना अत्यन्त महत्व की थी। चतुर और प्रबुद्ध लोगों ने चाहे मृत्यु और अगले जीवन के रहस्यों को अधिक महत्व दिया हो, किन्तु अधिक स्वस्थ मस्तिष्क वालों के लिए संसार में नए प्राणी का आगमन ही उत्सव मनाने योग्य था।[2] अनेक छोटे-छोटे पालने नन्हे मेहमान का स्वागत करने के लिए बहुधा पहले से ही तैयार कर लिये

रहना चाहिये। यदि वह किसी भी संदेह या आलोचना से बचना चाहती है तो उसे परदे का पालन करना चाहिये। एक अन्य स्थान पर वह निष्कर्षतः कहता है कि स्त्री का कौमार्य तभी सुरक्षित रह सकता है जब वह बाह्य संसार से पूर्णतः अलग रहे। (इ० ख़ु०, द्वितीय 317 के अनुसार)। मुस्लिम पतियों की ईर्ष्या के सम्बन्ध में बरबोसा के विचार तुलनीय है, जिल्द प्रथम, 121।

1. सन्त पीपा (जन्म 1425 ई०) के दर्शन के लिए तोडा (भारतीय सीमान्त पर) के राजा की पत्नियों के आगमन के समय सन्त द्वारा घूँघट के विरोध के लिए तुलनीय, (मैकालिफ, चतुर्थ, 347 के अनुसार)। गुजरात में सामाजिक समागम के लिए एवं अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता के लिए बरबोसा का वर्णन देखिए। एक स्थान पर वह कहता है कि राण्डेर की स्त्रियाँ दिन में अपने घर के भीतर-बाहर का काम करते समय 'योरोपवासियों के समान अपना चेहरा खोले' रहती थीं। खम्बायत में उसने देखा कि यद्यपि स्त्रियां परदे का पालन करती थी तथापि वे भव्य वाहनों में बैठकर बहुधा अपनी सहेलियों और परिचिताओं के यहाँ जाती थी और उन्हें परदे की सीमा के भीतर सामाजिक समागम की काफी स्वतन्त्रता रहती थी। (बरबोसा, द्वितीय, 148, 141 के अनुसार)।
2. अकबर का अभिमत तुलनीय, मु० तू०, द्वितीय, 305-06।

जाते थे।[1] यदि पुत्र उत्पन्न होता तो हिन्दू घर में बड़ी हलचल रहती। पिता ताजे पानी से स्नान करने और पूर्वजों की आत्माओं तथा कुल-देवताओं की प्रार्थना करने दौड़ पड़ता। तत्पश्चात् वह एक अच्छी अंगूठी निकालता, उसे मक्खन और शहद में डुबाता और फिर उसे शिशु के मुख में रखता था।[2] उसी समय ज्ञानी पण्डित जन्मपत्री बनाने के लिए शिशु-जन्म की घड़ी और अन्य सूचनाएँ लिखने में व्यस्त हो जाता। यदि वह जन्म की ठीक घड़ी लिखना भूल जाता तो वह जन्म का लग्न निकालने हेतु सावधानी से शिशु के शरीर के चिह्नों की जाँच करता।[3] इन प्रारम्भिक क्रियाओं के पश्चात् आनन्दोत्सव प्रारम्भ होते, जिनमें स्त्रियां प्रधानरूप से भाग लेतीं; शिशु के स्वास्थ्य के लिए निछावर (निसार या उतारा) किया जाता और सम्पन्न तथा दरिद्र, अमीर तथा जनसाधारण सबको अच्छे उपहार बाँटे जाते।[4] सूतक की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् मुसलमानों में 'अक़ीक़ा' या बलि की क्रिया सम्पन्न की जाती थी।[5]

तत्पश्चात् शिशु के नामकरण के महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया जाता। शिशु की जन्मपत्री पर और बलिष्ठ नक्षत्रों के प्रथम शब्दों पर यथोचित ध्यान दिया जाता। वे नाम शुभ समझे जाते, जिनमें चार से अधिक अक्षर न हों।[6] मुस्लिमों में मूर्तिपूजकों द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले नाम न रखने की सावधानी बरती जाती थी (जैसा कि प्राचीन फ़ारसियों द्वारा किया जाता था) और 'अहमद' और 'अली' जैसे सादे नाम रखे जाते थे।[7] जादू-टोने या शिशु पर दुष्टात्माओं के प्रभाव को टालने के लिए तिथि और जन्म की घड़ी तथा जन्मपत्री की गणना पर आधारित मूल नाम गुप्त रखे जाते थे। विशेषकर शाही परिवारों में इस पर विशेष ध्यान दिया जाता था।[8] तीसरा माह बीत जाने के पश्चात्, पहले नहीं—शिशु को सूर्य के प्रकाश में लाने दिया जाता था। अभी तक उसे घर से बाहर लाना सुरक्षाप्रद नहीं समझा जाता था। पाँचवें माह में शिशु का दाहिना कान छेदा जाता था। यदि शिशु लड़का होता तो छठवें माह उसके पास मिष्टान्न और फल रख दिए जाते और उनमें से अपने लिए

1. कु० खु०, 756 में अमीर खुसरो का वर्णन तुलनीय है।
2. तुलनीय, आ० अ०, द्वितीय, 188।
3. तुलनीय, मलिक मुहम्मद जायसी का वर्णन प० में 26, 118।
4. विभिन्न वर्णन तुलनीय। कु० खु०, 657-658, तबक़ात-ए-नासिरी (पाण्डुलिपि), 196।
5. आधुनिक रिवाजों के लिए तुलनीय रास, फ़ीस्ट्स, 98।
6. तुलनीय, आ० अ०, द्वितीय, 188, अबुल फ़ज़्ल के पौत्र के लिए, जिसका नामकरण अकबर द्वारा किया गया था, वहीं, 282।
7. प्राचीन फ़ारसियों के लिए तुलनीय है हुअर्ट, 162; तु०, 11 ब।
8. तुलनीय क्रूक, पापुलर रिलीजन, 281 और दृष्टान्त।

चुनने के लिए छोड़ दिया जाता। अवश्य ही, इसका गुप्त अर्थ होता था और ये संसार में उसका भविष्य प्रकट करते थे। कुछ समय पश्चात् पारिवारिक परम्परानुसार निर्धारित समय के अनुसार मुण्डन संस्कार मनाया जाता था।[1] और भी उत्सव होते थे जो जाति, वर्ग के अनुरूप अपनी भिन्नता रखते थे।[2]

शिशु की शिक्षा पर काफी ध्यान दिया जाता था। उसे रंगीन समारोहों के साथ शाला में भेजा जाता था या उसे किसी शिक्षक की देख-रेख में रखा जाता। पांच वर्ष की आयु में हिन्दू शिशु को एक 'गुरु' अथवा पंडित को सौंपा जाता, जो जीवन का दूसरा चरण प्रारम्भ होने तक उसकी देखभाल करता था।[3] मुस्लिमों में *'बिस्मिल्ला खानी' का उद्घाटन या शाला (मक्तब) भेजने का समारोह* 4 वर्ष, 4 माह और 4 दिन की आयु की समाप्ति के दिन किया जाता। ज्योतिषी के परामर्श द्वारा तय किये मुहूर्त में शिशु अपने शिक्षक से पहला पाठ पढ़ता था।[4] साधारणतः सातवें वर्ष मुस्लिम बालक का खतना किया जाता और परिवार के साधनों के अनुरूप बहुत आनन्द और मनोरंजन के साथ यह उत्सव मनाया जाता।[5] 'द्विजों' की *पहली तीन जातियों का होने पर, हिन्दू बालक के जीवन का प्रथम महत्वपूर्ण संस्कार* 'उपनयन' संस्कार था। यह बहुधा नवें वर्ष की समाप्ति के बाद मनाया जाता था, और बाल्यावस्था की समाप्ति का द्योतक था।[6] अब पुत्र और पुत्री दोनों दूसरे चरण,

---

1. तुलनीय आ०, अ०, द्वितीय, 188; सिर पर चोटी छोड़े जाने के सम्बन्ध में मुस्लिमों की असहमति के लिए तुलनीय, तु०, 11 ब; आधुनिक वर्णन के लिए तुलनीय रास, फेस्टिवल्स, 109।

2. *उदाहरण के लिए अबुल फज्ल द्वारा वर्णित मुगलों का एक विशेष उत्सव* देखिए। जब शिशु अपने पैरों पर खड़ा होना प्रारम्भ करता है तो शिशु के पिता या सबसे बड़े पुरुष-पालक से उसे अपनी पगडी से मारने के लिए कहा जाता था, जिससे वह गिर जाय। अ० ना० प्रथम, 194 के अनुसार।

3. *तुलनीय, आ० अ०, द्वितीय, 188।*

4. मुस्लिम-परम्परा के लिये तुलनीय अ० ना०, प्रथम, 270; वर्तमान काल के वर्णन के लिए रास, फीस्ट्स 99।

5. *युसूफ गदा के अभिमत के लिये तुलनीय तु०, 27 ब;* अकबर के खतने और सेवकों के आनन्दोत्सव के लिये तुलनीय अ० ना०, प्रथम, 218; तुलनीय, ब्लाकमैन, प्रथम, 207; किस प्रकार अकबर ने 12 वर्ष की आयु के पहले खतना किये *जाने की मनाही कर दी, यहां तक कि इसे वयप्राप्त बालक की इच्छा पर छोड़ दिया।*

6. तुलनीय आ० अ०, द्वितीय, 188; नानक के व्यय के लिये तुलनीय मेकालिफ, प्रथम, 16-17। उपनयन के लिये तुलनीय रास, फीस्ट्स, 61। 'यज्ञोपवतिम्' में

अर्थात् वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने की तैयारी करते थे। जबकि पुत्र इस भविष्य का बहुधा स्वागत करता था, पुत्री के लिये यह बहुत निराशाजनक होता था, क्योंकि तब उसकी स्वतन्त्रता के गिने-चुने दिन रह जाते थे। अतः वह अपनी सहेलियों के साथ खेलकर और पिता की छत्रच्छाया का आनन्द उठाकर, अपने समय का अच्छे से अच्छा उपयोग करती थी। रेशम की रस्सी पर गांठ लगाकर प्रतिवर्ष लड़के या लड़की की सालगिरह मनाई जाती थी।[1]

(क) विवाह—विवाह के लिये कोई निश्चित आयु नहीं थी। हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही लड़के-लड़कियों का विवाह अल्पायु में कर देने के पक्ष में थे।[2] अकबर इस स्थिति पर हस्तक्षेप करने का इच्छुक था। उसने लड़कों के लिये 16 वर्ष, और लड़कियों के लिए 14 वर्ष विवाह की अल्पतम आयु निश्चित की। यह कहना कठिन है कि कहाँ तक उसके नियमों का पालन किया गया।[3] सन्तानों का विवाह निश्चित करना और विवाह से सम्बन्धित रिवाजों और परम्पराओं का निरीक्षण करना माता-पिता, विशेषकर पिता का विशेषाधिकार था।[4] सन्तान के विवाह

सूत के तीन सूत्र रहते हैं. प्रत्येक सूत्र 3 या 9 धागों से बना रहता है। इसमें प्रयुक्त कपास ब्राह्मण द्वारा एकत्र किया जाकर ब्राह्मण द्वारा ही धुना और बुना जाता था। यह बायें कन्धे से लटककर दाहने पुट्ठे पर गिरता है।'

1. आधुनिक विवरण के लिए तुलनीय रास, वहीं, 111। विवाह के सम्बन्ध में एक लड़की की विशेष भावनाओं के लिये तुलनीय 96; पद्मावत को 'गौना' का समाचार मिलने के लिये वहीं, 171।
2. तुलनीय, मेकालिफ, प्रथम 18-19। नानक का विवाह 14 वर्ष की आयु में हो गया था। हिन्दू लड़की की आयु 8 वर्ष से कम न होनी चाहिये। मुस्लिम सादृश्य के लिये, पन्द्रह वर्ष की आयु में लड़कों का विवाह कर दिये जाने की प्राचीन फ़ारसी परम्परा के लिये तुलनीय हुअर्ट, 161। तुलनीय दे० रा०, 93, किस प्रकार देवलरानी और राजकुमार खिज्रखां का क्रमशः 8 और 10 वर्ष की आयु में विवाह हो गया था। फीरोज़ तुग़लक के समय मुस्लिम परिवारों में अल्पायु विवाहों के लिये अ०, 180 भी तुलनीय है। तुलनीय, फ़ि० फ़ी०, 135, जहां क़ानूनी संहिता में लड़कियों के विवाह की आयु 9 वर्ष निर्धारित की गई है। मध्यकालीन अंग्रेज़ी उदाहरणों के लिये तुलनीय है साल्ज़मेन, 254: 'माता-पिता के लिये शिशुकाल में ही अपनी सन्तानों का विवाह तय कर देना अस्वाभाविक न था; यहां तक कि विवाह-कार्य भी सम्पन्न कर दिया जाता जबकि वर और वधू इतने छोटे होते कि उन्हें गिरजाघर ले जाना पड़ता और वे विवाह क्रिया के सारे शब्द भी न दोहरा पाते।'
3. तुलनीय आ० अ०, प्रथम, 201; ब्लाकमैन, प्रथम, 195।
4. फ़ारस में ऐसी ही प्राचीन परम्परा तुलनीय, हुअर्ट, 163।

के समय अनेक नाजुक और उलझनपूर्ण समस्याएं सामने आती थी, जैसे, परिवार की स्थिति, पूर्वजों से सम्बन्धित क्रियाएं और परम्पराएं और दोनों पक्षों का सामाजिक सम्मान। माता-पिता बहुधा चप्पे-चप्पे पर अपना उत्तरदायित्व बड़ी सावधानी से निबाहते थे। विवाह विवाहित युगल के व्यक्तिगत मामले से कहीं अधिक, एक पारिवारिक प्रश्न था।

वैवाहिक संस्कारों का एक विस्तृत विवरण देना कठिन है क्योंकि अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक विचारों ने इसे घरेलू जीवन की एक अत्यन्त प्रमुख घटना का रूप दे दिया है। विवाह की बातचीत में एक ऐसी स्थिति आ जाती थी जब दोनों पक्ष दोनों बच्चों—भावी वर और वधू—के विवाह के लिये सहमत हो जाते थे। यह समझौता उचित उत्सव द्वारा मनाया जाता था। इसे तिलक या मंगनी कहा जाता था। जिसे सगाई भी कहते है। इस औपचारिक मान्यता के पश्चात् विवाह की तिथि (लग्न) निश्चित की जाती और विस्तृत तैयारियां प्रारम्भ हो जातीं। स्थानीय नाई या विशेष संदेशवाहक द्वारा मित्रों और सम्बन्धियों को निमन्त्रण भेजे जाते थे। वधू के घर में एक मण्डप निर्मित किया जाता।[1] द्वार के सामने पुष्पमालाओं या आम के पत्तों के बंदनवार लगाये जाते। कृपालु पड़ोसी भी अपना आनन्द और अपनी शुभकामनाएँ प्रकट करने के लिये अपने द्वार को भी इन बन्दनवारों से सजाते थे। सध्या अधिक उत्साहपूर्ण हो जाती, क्योंकि ग्राम की (या शहर में घरों या मोहल्लों की) समस्त महिलाएं वधू के घर पर 'सुहाग' गीत में सम्मिलित होना प्रारम्भ कर देती या अपनी इच्छा से ही अपने घरों में ये लोकप्रिय विवाह-गीत गाने लगतीं। नाना प्रकार की गम्भीर और हसोड़ क्रियाओं और अनेक अन्धविश्वासपूर्ण समारोहों से वर और वधू का कार्यक्रम परिपूर्ण रहता। इधर वर भी विवाह, सस्कार के लिये प्रस्थान करने की तैयारी में लगा रहता। ऐसी ही व्यवस्था (मण्डप निर्माण को छोड़कर) वधू के घर पर भी होती है।

जब एक पक्ष के सारे सदस्य एकत्र हो जाते और अन्य आवश्यक तैयारियां पूरी हो जातीं तब वर बाजे-गाजे और आनंदमग्न बारात के साथ वधू के घर के लिये प्रस्थान करता। वे यह यात्रा अपने ताजे रंगे हुए, ढके और सजे वाहनों से करते

1. ग्रामीण क्षेत्रों में 'मण्डप' बहुधा वृक्ष का तना होता है। 'बिहार में वर्तमान स्थिति' के लिये तुलनीय ग्रियर्सन; 'बिहार पीजेन्ट लाइफ', 374-SG; मलिक मुहम्मद जायसी के वर्णन में बहुमूल्य पत्थरों से जड़ा हुआ और हरी टहनियों से आच्छादित वृक्ष के इस तने के आस-पास चन्दन के स्तम्भ लगा दिये जाते हैं और उसके ऊपर एक आच्छादन डाल दिया जाता है जिससे अवकर के लट्टू लटकते रहते और एक लाल रंग का कपड़ा फर्श पर बिछा दिया जाता था। सम्भवतः इस ढांचे के नीचे एक चबूतरा बना दिया जाता था।

और इस समय अपनी उत्तम वेशभूषा में रहते थे। उनके वाहनों और घुड़सवारों की पंक्तियों को, सड़क के किनारे के निवासी रात में उनके सामने चलने वाली मशालों से या दिन में उनके पीछे उठने वाली धूल के बादलों से, पहचान लेते थे। जब वे वधू के ग्राम या शहर की सीमा के भीतर पहुंच जाते तब वधू पक्ष के लोग उनकी आगवानी करते और उन्हें वधू के घर में ले जाते। उन्हें पान और शरबत प्रस्तुत किये जाते और उन्हें क्लान्त यात्रा के पश्चात् शीतल और सुन्दर वातावरण में कीमती गलीचों पर विश्राम करने के लिये जनवासे में ले जाया जाता। इसी समय विवाह की तैयारियों को अंतिम रूप भी दे दिया जाता। द्वार-पूजा और अन्य क्रियाएं संपन्न की जातीं। स्वस्तिक और अन्य आकृतियाँ फर्श पर बनाई जातीं, वर को विवाह-वस्त्र भेजा जाता, वस्त्र, मुद्राएं और अन्य उपहार होने वाले समारोह के लिए तैयार रखे जाते। पूर्व-निश्चित घड़ी में लजीला वर और लजीली वधू उपस्थित होते और मण्डप के नीचे नव-निर्मित चौकियों पर बैठ जाते। यह वैवाहिक क्रियाओं के प्रारम्भ का संकेत था। संभवतः वधू का पिता वर को अपनी पुत्री के औपचारिक समर्पण की क्रिया, जिसे 'कन्यादान' कहते हैं, करता था। एक स्त्री वर और वधू के वस्त्रों के छोरों को गांठ लगाकर बांध देती, जिसका तात्पर्य था दोनों का शाश्वत सुदृढ़ मिलन। इसे 'गांठ' की क्रिया कहते हैं। इनके पश्चात् पवित्र अग्नि के आस-पास 'सप्तपदी' प्रदक्षिणा की अन्तिम क्रिया प्रारम्भ होती। पुरोहित पवित्र मंत्रोच्चार प्रारम्भ कर देते और महिलाएं विवाह-गीत गाना प्रारम्भ कर देतीं, जबकि वर और वधू के निकटतम सम्बन्धी अपनी प्रदक्षिणा पूरी करते होते। अन्तिम पग वर और वधू को मनुष्य और ईश्वर के समक्ष सदा के लिए पति और पत्नी बना देता।

शेष क्रियाएं औपचारिक और गौण होती थीं। विवाहित दम्पति के स्वास्थ्य के लिए निछावर या निसार किया जाता। मुस्लिमों में बादाम और मिश्री का निसार होता और लोग सौभाग्य के इस प्रतीक को घर ले जाते। स्थानों और प्रान्तों के अनुसार क्रियाओं में कुछ भिन्नता रही होगी, किन्तु संक्षेप में ऊपर की रूपरेखा हिन्दुस्तान के किसी भी विवाह-कार्य के लिए लागू होती है।[1]

---

1. प० (हि०), 124-6 में जायसी का वर्णन तुलनीय; आधुनिक सादृश्य के लिए शाह, 120 और ग्रियर्सन देखिए। प्रादेशिक विचित्रताओं के लिए तुलनीय बरबोसा, प्रथम, 116-17, किस प्रकार विवाहित-युगल मंदिर में ले जाये जाते जहां दोनों महावीर (?) की मूर्ति के समक्ष पूरे दिन का उपवास रखते थे। अन्य लोग आतिशबाजी, गीतों और अन्य मनोरंजनों द्वारा उनका मनोरंजन करते रहते। मुस्लिम विवाह के लिए तुलनीय है; दे० रा०, 160, विशेषकर निछावर की क्रिया के लिए फिक-ए-फीरोज़शाही, 203 और ग्रियर्सन—बिहार पीजेंट लाइफ, जहां यह प्रतीत होता है कि लोकप्रिय मुस्लिम

विवाह-संबंधी उत्सव वधू पक्ष के साधनों और उनके आपसी समझौते के अनुसार कितने भी दिनों तक मनाए जाते। वर पक्ष का विश्राम कम से कम 1 दिन और अधिक-से-अधिक 10 दिन तक का रहता था। वर और वधू के प्रस्थान करने के दिन अन्य बहुत सी क्रियाएं भी संपन्न की जातीं, जो भूतकाल की मनोरंजक अवशेष प्रतीत होती हैं। वर और उसके साथियों को वधू पर अधिकार करने के लिए संघर्ष करके रास्ता बनाना पड़ता था। कुछ स्थानों में वर को किसी चुराई हुई वस्तु को वापस लाने के लिए या वधू के साथ द्वार से निकलने के लिए वधू की सहेलियों को रिश्वत देनी पड़ती थी। वधू के साथ प्रचुर दहेज भी जाता था। कहीं-कहीं वर को कुछ सेविकाएं देने की प्रथा थी, जो उसकी सपत्ति हो जाती। कुछ और सुन्दर समारोहों और हास्यपूर्ण तथा आनंदमय गानों के पश्चात् वरपक्ष को वधू के साथ जाने दिया जाता।[1] यदि वधू विवाह की उद्देश्यपूर्ति के लिए अल्पायु होती तो वह कुछ दिन पश्चात् अपने माता-पिता के पास लौट आती और अंतिम 'रुखसत' या 'गौना' बाद की किसी तिथि को होता।[2] इसके बाद भी काफ़ी समय तक विभिन्न क्रियाओं, समारोहों और शिष्टाचारों का पालन किया जाता, किन्तु पारिवारिक महत्व की एक महत्वपूर्ण घटना तब संपन्न हो जाती, जब पुत्री औपचारिक और वैधानिक रूप से दूसरे परिवार में चली गई होती और वह अपने परिवार का अंग, यहां तक कि स्वयं की स्वामिनी भी न रह जाती। वह अपने पति की हो जाती और उसी की इच्छा पर निर्भर रहती। यदि उसका विवाह किसी संपन्न घराने में होता तो वह 'हरम' में

संतों की स्थानापन्नता और 'निकाह' की क्रिया को छोड़कर मुस्लिम विचारों और हिन्दू पद्धति में अंतर नहीं था। इब्नबतूता का वर्णन कि० रा०, द्वितीय, 47-9 भी तुलनीय है, जहां यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि मुसलमानों ने हिन्दुओं से प्रायः सभी उत्सव और रिवाज लिये थे। मुस्लिम विवाहों पर हिन्दू प्रभाव के लिए एफ० डब्ल्यू० थामस, 77 का मूल्यांकन तुलनीय है। 'जबकि शरियत में एक मुस्लिम को चार विवाह करने की अनुमति है और सरल शर्तों से तलाक की सुविधा है, भारत में एक विवाह ही प्रचलित है और तलाक की प्रथा प्रायः नहीं है। हिन्दू प्रभाव का दूसरा परिचय हमें विधवा-विवाह की दुर्लभता में मिलता है।'

1. तुलनीय, इब्नबतूता, द्वितीय, 47-9। उपहार में स्त्रियां दिये जाने के लिए देखिये कु० ख़ु०, 370; राजस्थान में दहेज में 'देवधारी' नामक दासियों के दिये जाने के लिये तुलनीय टॉड, द्वितीय, 370-1; जो बहुधा वर सरदार की रखैलें हो जाती। देखिये ज० डि० लैं०, 1927, 2-3।

2. उदाहरण के लिए तुलनीय है प० (हि०), 231।

रख दी जाती, जहां शेष संसार से उसका समागम शेष जीवन के लिए समाप्त हो जाता।[1]

(ख) **मृत्यु और उसके उपरान्त**—किसी व्यक्ति की मृत्यु इस जीवन का एक मोड़ थी, जब अस्तित्वहीन न होते हुए वह एक जीवन से दूसरे जीवन में प्रवेश करता था। उसकी मृत्यु के समय स्फुट संस्कार होते और बाद में भी कुछ क्रियाएं होतीं। जब कोई हिन्दू मरणोन्मुख होता तो लोग उसकी देह भूमि पर लिटाने में शीघ्रता करते, पुरोहित मंत्रोच्चार प्रारम्भ कर देता और सम्बन्धीगण दरिद्रों और जरूरतमंदों को दान करना प्रारम्भ कर देते, जिससे उसकी आत्मा सुगमता से परलोक जा सके। भूमि गाय के गोबर से लीपी जाती और उस पर कुश बिछा दी जाती, फिर इसके ऊपर मृतदेह को लिटा दिया जाता था। सिर उत्तर की ओर तथा पैर दक्षिण की ओर रहते और चेहरा नीचे की ओर। यदि पवित्र गंगाजल उपलब्ध होता तो मृतदेह के ऊपर उसकी कुछ बूंदें छिड़की जातीं; ब्राह्मण को गोदान किया जाता; मृत व्यक्ति के सीने पर कुछ तुलसीपत्र रखे जाते और उसके कपाल पर तिलक लगा दिया जाता। इन तैयारियों के पश्चात् देह अरथी में रख दी जाती, इस प्रकार उसे भस्म करने की तैयारी पूरी हो जाती। रूढ़िवादी सिद्धान्त के अनुसार ब्राह्मण की देह को पानी में फेंक देना चाहिये, क्षत्रिय की देह जलाना चाहिये और शूद्र की देह को दफनाना चाहिये।[2] किन्तु हमारे काल में हिन्दू-शव को जलाना ही सार्वभौम रूप से लोकप्रिय था। वास्तव में, यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु अपने घर और सम्बन्धियों से दूर होती, तो एक स्मृति-दाहसंस्कार होता जिसमें हिरन की एक हड्डी, एक बांस, कुछ आटा, कुछ पत्ते और नारियल—जो सम्भवतः मृतव्यक्ति के अवशेषों के प्रतीक माने जाते—अग्नि की भेंट किये जाते।[3] मृत व्यक्ति के पुत्र, भाई, मित्र और शिष्य अपने सिर और दाढ़ी मुँड़ाते और शव को, जिसे कभी-कभी मृत व्यक्ति की प्रिय वेशभूषा पहना दी जाती थी, श्मशानभूमि ले जाते, जहां वह यथोचित क्रियाओं के पश्चात् जला दिया जाता। दाह-क्रिया के पश्चात् अस्थियां एक पात्र या मृगछाला में एकत्र कर ली जातीं; और यदि सम्भव हुआ तो गंगा में प्रवाहित की जातीं।

घर से शव को उठा लिये जाने के पहले और बाद में, यह निश्चय करने के लिये कि मृत व्यक्ति की आत्मा नहीं लौटे, अनेक अन्धविश्वासपूर्ण क्रियाएं सम्पन्न की

---

1. ता० दा०, 37 में हरम का वर्णन तुलनीय, जहां यह कहा गया है कि हरम की किसी स्त्री को पहुंचाया जाने वाला समाचार स्त्री के पास पहुंचाये जाने के पहले कम-से-कम तीन मध्यस्थों के पास से होकर गुजरता था।
2. तुलनीय, मेकालिफ, प्रथम, 181; ग्रियर्सन, बिहार पीजेंट लाइफ, 395 भी।
3. आगे उद्धृत किया गया इब्नबतूता का वर्णन तुलनीय है।

जातीं ।[1] लगभग दस दिनों के लिये (दिनों की संख्या जाति-नियमों के अनुसार भिन्न होती) घर को अपवित्र माना जाता । भोजन नहीं पकाया जाता था और सम्बन्धीगण विधुर परिवार की भोजन-व्यवस्था करते । परिवार के लोग पत्तों की शैया पर भूमि पर सोते थे । मृत व्यक्ति की उपेक्षा न की जाती; वास्तव में इस अवधि में देहमुक्त आत्मा को प्रेत-देह प्राप्त करने में सहायता देने के लिए कई क्रियाएं की जातीं । यह प्रेत देह उस आत्मा को आगे ले जाती थी । इसके लिए निकटतम सम्बन्धी, जिसने मृत देह को जलाने के लिये आग लगाई थी, मृत्यु के पश्चात् इन दस और अतिरिक्त दो दिनों तक खिचड़ी खाकर रहता और इस प्रकार मृत की नवीन प्रेत-देह को बल और शक्ति प्रदान करता । इस अवधि के अन्त में तेरहवें दिन आत्मा यात्रा के लिये पर्याप्त शक्ति, सम्पन्न हो जाती थी । साल भर बीच-बीच में किये जाने वाले श्राद्ध उत्सव उसे उस समय तक अवलम्ब देते रहते थे, जब तक कि अन्त में मृत व्यक्ति की आत्मा दूसरी देह धारण नहीं कर लेती और कर्म के अनुसार पुनर्जन्म नहीं ग्रहण कर लेती थी ।[2]

मृत्यु के अवसर का उपयोग सामान्यतः शोकग्रस्त मित्रों और सम्बन्धियों द्वारा दुःख प्रदर्शन के लिये किया जाता था । हम हिन्दुस्तान में माँ की प्रगाढ़ ममता का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं । यदि पिता या परिवार के मुखिया की मृत्यु हो जाती तो उस स्थिति में दुःख अधिक प्रबल और वास्तविक रहता, क्योंकि बहुधा सारा विशाल संयुक्त परिवार जीविका और सहारे के लिये उस पर अवलम्बित रहता था । इस प्रकार अन्त्येष्टि के अवसर पर सारे परिवार की दबी हुई भावनाएं और विशेषकर स्त्रियों का दुःख भयानक चीत्कारों में परिवर्तित हो जाता और विलाप का स्वर भारी कोलाहल उत्पन्न कर देता था । शोक समारोह चार दिनों तक, कभी-कभी एक माह तक और कभी-कभी तो पूरे वर्ष चलते । लोग दुःख प्रदर्शित करने में पीछे नहीं थे ; विशेषकर उस समय जबकि मृत व्यक्ति राज्य का अधिपति होता ।[3] सुल्तान का

---

1. उदाहरण के लिए आत्मा बाहर जा सके इसके लिए दीवार में खिड़की खोलने और आत्मा वापस न आ सके, इसके लिए तत्पश्चात् तुरन्त खिड़की बन्द करने की प्रथा तुलनीय है । क्रूक, पापुलर रिलीजन, 236-7, और अन्य उदाहरण; मेकालिफ, छठवां, 385 भी ।
2. एक विवरण के लिये तुलनीय आ० अ०, द्वितीय, 192; आधुनिक अवशेषों के लिये रास, फीस्ट्स, 53 भी । इसी सम्बन्ध में ग्रियर्सन का दूधी, दियाबाती और तिलंजर देख तुलनीय है । विहार पीजेन्ट लाइफ 393-4 तुलनीय । कैम्पटन 139 मुसलमानों के रिवाजों के अनुसार मृत के यहां भोजन न पकाने की प्रथा के लिए ।
3. तुलनीय दे० रा०, 285, किस प्रकार मृत व्यक्ति की पत्नी ने अपना बुरका उतार फेंका और शोकाकुल होकर अपने बाल बिखेर लिये; शोक प्रकट करने की अवधि की लम्बाई और उसके प्रदर्शन के स्वरूप के लिये दे०, फ्रेम्पटन, 139;

मृत्यु पर राज्य में तीन दिन तक शोक मनाया जाता। उसका उत्तराधिकारी शोक वेश में जो बहुधा नीले रंग का होता था—उपस्थित होता था और शाही छत्र को शाही अर्थी के ऊपर आधा झुकाकर ले जाया जाता था।[1] हम मृत सुल्तान के आध्यात्मिक उत्थान के लिये दान-कार्य और कुरान पढ़ने वालों की नियुक्ति के बारे में पहले ही कह चुके हैं। इस सम्बन्ध में हम यह भी कह सकते हैं कि सुल्तान की कब्र उतना ही भय और आदर की वस्तु थी जितना कि उसके जीवन में उसका सिंहासन। इससे हमें उस काल के धार्मिक विश्वासों का परिचय मिलता है, किन्तु यह बात सत्य है कि राज्य सरकारी तौर पर कुछ ब्रह्मवादी क्रियाओं को मान्यता देता था। उदाहरणार्थ स्वर्गीय सुल्तान के अंगरक्षक, हाथी और अश्व श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये उसके मकबरे पर लाए जाते थे, जैसा कि उसके जीवनकाल में किया जाता था। उसके जूते कब्र के समीप रख दिए जाते और लोग स्वर्गीय शासक के प्रतीकों के रूप में इन जूतों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते थे।[2]

मृत्यूपरान्त अन्य समारोहों में मुसलमान 'सियूम' अर्थात् 'तीसरे दिन' की क्रिया को विशेष महत्व प्रदान करते थे। मित्र और सम्बन्धीगण दिवंगत आत्मा के लाभ के लिए कुरान पढ़ने के लिए विशाल संख्या में एकत्र होते थे। समारोह के अन्त में उपस्थित जनों के ऊपर गुलाबजल छिड़का जाता था और सामान्य भोज के समान पान और शरबत बाँटा जाता था और तदुपरान्त लोग अपने घर लौट जाते थे।[3] यह बहुत व्ययसाध्य क्रिया थी, क्योंकि विशाल संख्या में लोग आमन्त्रित किए जाते थे। इसलिए बहलोल लोदी ने अफ़ग़ानों को (जिन्हें सारे कबीले को आमन्त्रित करना पड़ता था): पान और शरबत या अन्य वस्तुओं के उपहार से मुक्त कर दिया और इसे केवल पुष्पों की भेंट और गुलाब जल के छिड़काव तक सीमित कर दिया।[4] अन्य

कि० रा०, द्वितीय, 26 भी। सुल्तान बलबन की मृत्यु पर सारे खान और मलिक फटे कपड़ों और धूलधूसरित सिरों के साथ अर्थी के पीछे गये थे। फखरुद्दीन नामक उसका कोतवाल छः महीने तक भूमि पर सोया और अन्य अमीरों ने भी चालीस दिनों तक ऐसा ही किया। तुलनीय ब०, 122-3। जब सुल्तान बलबन के सेनाधिकारी इमादुल्मुल्क की मृत्यु हुई, हिन्द राय शोक समारोहों में नंगे सिर सम्मिलित हुए। (कु० ख़ु०, 48 के अनुसार)।

1. शोक मनाने की सरकारी अवधि के लिये ता० मु० शा०, 384 तुलनीय है; उत्तराधिकारी की शोक वेशभूषा के लिये अ०, 47; ब०, 109; झुके छत्र के लिये ता० मु० शा०, 399।
2. इब्नबतूता कि० रा०, द्वितीय, 86, 74 के अवलोकन तुलनीय।
3. तुलनीय, कि० रा०, द्वितीय, 74।
4. तुलनीय, ता० दा० 8 ब।

समारोह, जो बहुधा अब हिन्दुस्तान के मुसलमान मनाते हैं, ऐसा प्रतीत होता है, हमारे काल के अन्त तक प्रमुखता प्राप्त नहीं कर पाए थे।[1]

1. सती—हम इस सिलसिले में विधवा को जलाने की प्रथा का उल्लेख करेंगे जो कुछ काल पहले ही कानून द्वारा बन्द कर दी गई है। पति की मृत्यु के पश्चात् कुछ परिस्थितियों में हिन्दू पत्नी के जलने की क्रिया को सती प्रथा कहा जाता था[2] और जो स्त्री जलती थी उसे 'सती' कहा जाता था। साधारणत. यह प्रथा हिन्दू समाज के उच्च वर्ग तक सीमित थी और राजपूतों की वीर जातियां इसका विशेष समर्थन करती थीं। निम्न वर्गों की स्त्रियाँ तो अपने पति की *अर्थी के साथ श्मशान तक भी न जा सकती थीं।*[3] *आत्म-बलिदान का बन्धन* पारस्परिक नहीं था, क्योंकि पत्नी की मृत्यु सामने होने पर पति के लिए यह लागू नहीं होता था।[4] यह क्रिया सम्भवतः भारतीय कबीलों की आदिम प्रथाओं पर आधारित थी और आर्यों तथा अन्य आक्रामकों द्वारा इसे आत्मसात कर लिया गया।[5]

---

1. अन्य समारोहों के लिए हेवर्लाट के इस्लाम (क्रुक का सस्करण) के वर्णन तुलनीय है।
2. तुलनीय, बरबोसा, प्रथम, 222, किस प्रकार दक्कन में कभी-कभी स्त्री को जीवित दफना दिया जाता था।
3. *तुलनीय, शाह, 130 (शब्द, 73) किस प्रकार सम्भवतः निम्नवर्ग की स्त्री अपने* पति के शव के साथ 'दहलीज तक' ही आती थी, उसके आगे केवल पुरुष सम्बन्धी ही जा सकते थे; मैकालिफ, प्रथम, 381 भी।
4. एक आधुनिक क्षमा-निवेदन देखिए। कुमारस्वामी कहते है कि 'मानवीय चेतना पुरुषों और स्त्रियों से दो अलग-अलग निष्ठाओं की माँग करती हैं। स्त्री से वह पुरुष के प्रति भक्ति की और पुरुष से वह विचारों की निष्ठा की माँग करती है।'
5. निष्कर्ष के लिए कुछ अभिलिखित तथ्य देखिए। तुलनीय सती-8। आत्मा द्वारा वैतरणी नदी पार करने के लिए नाविक को देने के लिए शव के मुह मे एक ताँबे का सिक्का रख दिया जाता था। "स्टाइक्स ऑफ दी हिन्दूज" आत्मा द्वारा नदी पार करने के मार्ग-व्यय के लिए टेम्पल, 222। इसी प्रकार दूसरे लोक के अन्धकार में दिवगत आत्मा के मार्ग को प्रकाशित करने हेतु घर में एक दिया जलता हुआ रखा जाता। मेकालिफ, प्रथम, 319; शरीर-मुक्त आत्मा की शक्ति के लिए चावल और दूध के भोजन का उल्लेख किया जा चुका है। अबुल फज़ल स्पष्ट करता है कि *यह विश्वास बहुप्रचलित था कि परलोक में पति की आत्मा को एक* स्त्री-सेविका की आवश्यकता पड़ती है। आ० अ०, III, 191-2, पेरो तेफूर, 90-1 भी; क्रुक, पापुलर रिलीजन, 153 भी। *सती वैसी ही बहुवादी विचार-*श्रृंखला की एक कड़ी है।

कुछ भी हो, वह प्रथा काफी पुरानी है।[1]

सती पति के शव के साथ और पति के शव के बिना दोनों प्रकार से जलाई जाती थी। यदि मृत पति का शव उपलब्ध होता तो पत्नी उसके साथ जला दी जाती। इसे 'सहमरण' कहा जाता। यदि पति की मृत्यु पत्नी से दूर होती या कुछ कारणों से, जैसे जब पत्नी गर्भवती होती—उस समय वह बाद में किसी ऐसी वस्तु के साथ, जो उसके पति की होती या पति का प्रतीक होती, जलाई जाती। इसे 'अनुमरण' कहा जाता। इन्हें क्रमशः 'सहगमन' और 'अनुगमन' भी कहा जाता।[2] एक से अधिक पत्नियां होने की स्थिति में शव के साथ प्रिय पत्नी को जलाया जाता और अन्य पत्नियाँ अलग-अलग चिताओं पर जलाई जातीं।[3] कुछ ऐसे भी अवसर आते जब सौतें अपने जीवनपर्यन्त के मतभेद और वैमनस्य भुलाकर एक ही चिता में अपने पति के साथ जलने की व्यवस्था कर लेतीं।[4]

पति के शव के साथ जलने वाली पत्नी का वर्णन कुछ नीरस है और उसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। वह अर्थी के साथ-साथ जाती थी और उसके साथ जला दी जाती थी। कभी-कभी यह दृश्य बड़ा हृदय-द्राविक होता और इसके लिए अधिक साहस और धैर्य की आवश्यकता होती। इब्नबतूता ने दोनों प्रकार के दृश्यों का वर्णन किया है। हम उन तीन स्त्रियों से सती होने का उसके द्वारा दिया गया संक्षिप्त वर्णन करेंगे, जिनके पति दूर युद्ध में मारे गए थे। अपने पति की मृत्यु का समाचार सुनकर सती ने स्नान किया और अपने सर्वोत्तम वस्त्र और अलंकार धारण किए। उसे श्मशान भूमि तक पहुँचाने के लिए शीघ्र ही एक जुलूस तैयार हो गया। ब्राह्मण और अन्य सम्बन्धी जुलूस में सम्मिलित हो गए और उन्होंने विधवा के महान् सौभाग्य के लिए शुभकामनाओं की वर्षा की। वह स्त्री अपने दाहिने हाथ में एक नारियल और बाएं हाथ में एक दर्पण लेकर घोड़े पर सवार हो गई। संगीत और बाजों के साथ जुलूस ने छायादार कुंज की ओर प्रस्थान किया। इस कुंज में

1. तुलनीय, थाम्प्सन, 19, किस प्रकार सिकन्दर के सैनिकों ने पंजाब में इसका प्रचलन पाया।
2. तुलनीय, थाम्प्सन, 15।
3. तुलनीय, थाम्प्सन, 127, किस प्रकार अनेक पत्नियों के साथ जलाते समय प्रिय पत्नी को अपनी गर्दन पति की बांह पर रखने दिया जाता।
4. चित्तौड़ के राजा रत्नसेन की दो उप-पत्नियों की कथा तुलनीय है जिसमें वे दोनों बलिदान की अन्तिम क्रिया में जीवन-पर्यन्त की अपनी आपसी कटुता और झगड़े भूल गई। दोनों पति के शव के बगल-बगल बिलकुल सद्भावनापूर्वक बैठीं और शान्ति से दोनों रानियां ज्वालाओं की भेंट हो गईं। तुलनीय प० (हि०), 295।

एक सरोवर था और एक प्रस्तर-मूर्ति थी (सम्भवतः शिवमूर्ति थी, यद्यपि इब्नबतूता मूर्ति का नाम प्रकट नहीं करता)। सरोवर के समीप एक विशाल चिता थी, जिस पर अनवरत रूप से तिल का तेल डाला जा रहा था और जनसाधारण की दृष्टि से बचाने के लिए उसे घेरकर ओट में कर दिया गया था; 'सारा वातावरण नरक के समान लग रहा था, ईश्वर हमें इससे बचाये' छायादार कुंज के समीप पहुँचने पर सती ने पहले इस सरोवर में स्नान किया और तब एक-एक करके वह अपने सुन्दर वस्त्रों और अलंकारों को दान करने लगी। अन्त में उसने एक बिना सिला मोटा वस्त्र माँगा और उसे पहन लिया। फिर प्रशान्त साहस के साथ वह घिरे हुए स्थान की ओर बढ़ी, जो अभी तक उसकी दृष्टि की ओट में था; उसने अग्निदेवता की प्रार्थना करने के लिए हाथ जोड़कर प्रणाम किया; कुछ क्षण तक वह ध्यानमग्न रही, फिर, अचानक दृढ़ निश्चय के साथ उसने स्वयं को लपटों में झोंक दिया। ठीक इसी क्षण, दूसरी ओर में तुरही, ढोलों और अन्य बाजों से कोलाहल किया गया, जो स्पष्टतः दृश्य की वीभत्सता से लोगों का ध्यान बटाने के लिए किया गया था। अन्य लोगों ने, जो सती की क्रियाओं को ध्यान से देख रहे थे, जलती हुई स्त्री के शरीर पर तुरन्त लकड़ी के भारी कुन्दे डाल दिए जिससे वह बच न सके। हमारा सूचनादाता इब्नबतूता यह दृश्य देखकर बेहोश हो गया और उसे वहाँ से परे कर दिया गया। अतः उसका वर्णन हमें आगे की सूचना नहीं देता।[1] यह सती-क्रिया का लगभग पूर्ण और सच्चा वर्णन है।

हमें अन्य स्रोतों से जो सूचना मिलती है जो इब्नबतूता के इस वर्णन से मेल खाती है और यह सूचना धार्मिक तत्व और ब्राह्मण पुरोहित की पटु वाग्मिता पर बल देती है, जो विधवा के इस जीवन की नश्वर और मायावी प्रकृति और बाद के जीवन की सत्यता को स्पष्ट करने के इस असाधारण उपयुक्त अवसर को हाथ से नहीं जाने देता। पुरोहित सती को आश्वासन देता कि जलाए जाने के पश्चात् उसे निश्चितरूप से अनंत काल तक के लिए पति का साहचर्य और अपरिमित सम्पत्ति, वस्त्र, सम्मान और सुख प्राप्त होगा। इस प्रकार विधवा को विश्वास दिलाया जाता कि अग्नि में उसका आत्म-बलिदान उसके विवाहोत्सव से भी अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे उसे अपने पति का अनन्त साहचर्य प्राप्त होगा।[2] यदि उसने विरुद्ध मार्ग अपनाया तो उसे निश्चितरूप से एक चुड़ैल के रूप में कलुषित आत्माओं के संसार में विचरण करना पड़ेगा।[3] उसके सम्मुख कोई दूसरा विकल्प नहीं था। जनसामान्य के

1. इब्नबतूता के वर्णन के लिए तुलनीय है कि० रा०, द्वितीय, 13-14।
2. तुलनीय, निकोलो काण्टी का वर्णन; कॉम्प्टन, 139; पेरो तेफुर, 190।
3. पृथ्वीराज की ओर से लड़ने वाले इन्दल और ऊदल की पत्नियों की भावनाओं और धारणाओं के लिए तुलनीय है, टॉड, द्वितीय, 723।

लिए एक विधवा का स्वेच्छा से अग्निदाह का दृश्य एक मनोरंजन और एक आनन्द की बात थी।[1] अन्य लोग, जो कुछ अधिक दूरदर्शी और व्यावहारिक होते, इसे दूसरे लोक के लिए एक संदेशवाहक के रूप में समझते। वे उसके द्वारा परलोक में रहने वालों को सब प्रकार के संदेश भेजते थे।[2]

आदिम काल और बर्बर अतीत के इस अवशेष को हिन्दू पति और हिन्दू पत्नी के बीच शरीर और आत्मा में 'पूर्ण एकता के अन्तिम साक्ष्य' के रूप में मानने के प्रयत्न किये गए हैं। इस ज्वलंत तथ्य के बावजूद भी कि दाहकार्य पारस्परिक न होकर केवल पत्नी पर आधारित था, अन्य बातें इन पश्चात्कालीन नीति-नियमों का अनैतिहासिक स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। विधवाओं को जलाने का रिवाज—जैसा कि इस अध्याय में उल्लिखित वर्णनों और अन्य आध्यात्मिक प्रथाओं के विस्तृत विवरण से प्रकट होता है, प्राचीनतर और अधिक आदिम काल से, जबकि प्रेत-पूजा और अन्य ब्रह्मवादी सम्प्रदाय हमारे देश में प्रचलित थे—हमारे काल के लोगों को विरासत में मिला। ऐसे और भी सामाजिक तत्व थे जिन्होंने उसकी अनवरतता को सम्भव बना दिया। सती प्रथा को प्रोत्साहन देने वाला एक तत्व था, हिन्दू समाज में विधवाओं की हीन स्थिति। ऐसे तथ्यों के प्रमाण हैं जो प्रकट करते हैं कि इस कठिन परीक्षा के लिए इन्कार कर देने के पश्चात् जो कठोर और लज्जास्पद जीवन विधवाओं को व्यतीत करना पड़ता, उसकी अपेक्षा उसके लिए अग्नि में जल जाना सामान्य रूप से श्रेयस्कर था।[3] इससे मिला-जुला प्रश्न था परिवार के सम्मान का। जनमत और सुविकसित धार्मिक विश्वासों ने जनता के मस्तिष्क में यह विश्वास बिठा दिया था कि सतीत्व नारी की पवित्रता का सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त प्रशंसनीय प्रतीक है। मृत पति के साथ न जल

1. ता० दा० का अवलोकन कीजिए, 57 ब, किस प्रकार जनसाधारण इस दृश्य को तमाशे के रूप में देखते थे; कि० रा०, द्वितीय, 13 भी।
2. तुलनीय, पेरो तेफुर, 90-1।
3. हिन्दू धर्मदर्शन के अनुसार वैधव्य कठोर न्यायानुसार पूर्व जन्म के कर्मों का फल था और इसलिए इसे विधवा को भुगतना चाहिए। उदाहरण के लिए देखिए बरबोसा I, 219-20, कि० रा०, II, 13; किस प्रकार एक स्त्री अपने पति की मृत्यु पर सारा सुख और आनन्द त्याग देती थी; उदाहरणार्थ वह अपनी चूड़ियाँ तोड़ देती थी और सारे अलंकार उतार देती थी। देखिए, पेरो तेफुर, 91 किस प्रकार एक हिन्दू विधवा वेवीलोन भाग गई, क्योंकि स्वेच्छा से जलने से इन्कार करने के पश्चात् उसे सामाजिक अत्याचार का सामना करना पड़ा; अबुल फज्ल के अभिमत के लिए आ० अ०, II, 192 देखिए, जो यह स्पष्ट कर देता है कि यदि विधवाएँ स्वेच्छा से जलने से इन्कार कर देतीं, तो हिन्दू जनता उन्हें इतनी अधिक परेशान करती कि अग्नि द्वारा मृत्यु का आलिंगन करना इससे कहीं श्रेष्ठ प्रतीत होता।

मरना विधवा की निष्ठा-हीनता और असत्यता का निश्चय ही सूचक था।[1] कभी-कभी विवाह तय होते समय स्त्रियों पर आर्थिक दबाव भी डाला जाता था। निकोलो कान्टी हमें ऐसे मामले बताता है जिनमें वधू को सती और अपने दहेज के समर्पण में से एक को चुनने के लिए कहा जाता। यदि वह दहेज का समर्पण करना स्वीकार करती तो दहेज उसके पति के पुरुष-सम्बन्धियों को चला जाता और उसके बच्चों को कुछ न मिलता।[2]

राजपूत सैनिक के लिए सती या स्त्री और बच्चों की हत्या भी सम्मान का प्रश्न था। वह इन निराशाजनक कार्यों को तभी शरण लेता था जबकि उसकी हार निश्चित हो जाती और ऐसे शत्रु के हाथ में परिवार के पड़ने की सम्भावना होती, जो अधिक दयालु न होता। साधारणतः पत्नी और प्रिय रखैलें राजपूत सरदार की मृत्यु पर सती हो जाती, किन्तु युद्ध में हार की स्थिति में अधिक विशाल और दर्शनीय पूर्णाहुति (जौहर) का आयोजन किया जाता था।[3] हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कहते

---

1. तुलनीय—यूले, द्वितीय, 341, किस प्रकार एक विधवा की बहुत प्रशंसा की गई जिसने अग्नि में स्वयं को जलाने की इच्छा प्रकट की; उसके परिवार को बहुत सामाजिक सम्मान और निष्ठा तथा सत्यता के लिए प्रतिष्ठा मिली।
2. तुलनीय, पेरो तेफुर, 91, जो हमें बताता है कि इस अवसर पर विधवा की अनुपस्थिति पर उसका शिरोवस्त्र शव के बाजू में रख दिया जाता और जला दिया जाता था।
3. किसी राजपूत सरदार की मृत्यु पर साधारण विधवादाह के लिए टॉड और थाम्प्सन में अनेक उदाहरण हैं। विधवा-दाह या वध के अन्य महत्वपूर्ण उदाहरणों का अभी 'जौहर' के सिलसिले में उल्लेख किया जाएगा। एक विलक्षण उदाहरण के लिए देखिए आ० अ०, द्वितीय, 4, जो हमें अल्वाना की राजकुमारी द्वारा 'काउन्ट आफ माण्ट क्रिस्टो' में वर्णित दृश्यों में से एक का स्मरण दिला देता है। कुछ शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि जब राजपूत देखते कि वे युद्ध में हार रहे हैं तो वे अपने भवन को तेल और फूस से घेर दिए जाने की आज्ञा दे देते। स्त्रियां भीतर बंद कर दी जातीं और एक व्यक्ति युद्ध का निर्णय देखने के लिए नियुक्त कर दिया जाता था। यदि उसे निश्चय हो जाता कि पराजय और विपत्ति रोकी नहीं जा सकती, वह अपने अधिकार का उपयोग करता और उस घातक ढेर को जला देता। तुलनीय, पु० प०, 13, किस प्रकार हमारे देव की मृत्यु पर उसकी स्त्रियों ने 'सच्ची स्त्रियों के योग्य कार्य' के रूप में सती के लिए इच्छा प्रकट की। गुजरात के मुजफ्फरशाह के अभियान के समय एक राजा की पत्नियों के स्वेच्छापूर्वक आत्मबलिदान के लिए 'तारीख-ए-मुजफ्फरशाही' 35 का वर्णन तुलनीय है।

कि सतीत्व के प्रत्येक अवसर पर हिन्दू पत्नी में भक्ति का एकदम अभाव रहता था। ऐसे मामलों के प्रमाण हैं जो सती के प्रशंसकों के विश्वास को कुछ प्रोत्साहन देते हैं, किन्तु ऐसे उदाहरण इतने कम हैं कि वे हमारी सामान्य व्याख्या को प्रभावित करने में असमर्थ हैं।[1] सामान्यतः हम अबुल फज्ल से सहमत हैं जो सतियों को अनेक वर्गों में बांटता है; जैसे, वे जिन्हें उनके संबंधियों द्वारा अग्निदाह के लिए बाध्य किया जाता; वे, जिन्होंने मृत पति के प्रति भक्ति के कारण स्वेच्छा और उत्साह से इस कठिन परीक्षा को स्वीकार किया; वे जिन्होंने जनमत के प्रति सम्मान के लिए बाध्य हो अपने को अग्नि में होम दिया; अन्य वे, जिन्होंने पारिवारिक परंपराओं और रिवाजों के कारण ऐसा किया; और अंतिम वे, जिन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध आग में झोंका गया।[2]

हम यहां इस सम्मानित हिन्दू प्रथा के प्रति मुस्लिम राज्य के रुख का वर्णन करेंगे। इब्नबतूता हमें बताता है कि दिल्ली के सुल्तानों ने एक कानून बनाया था, जिसके अनुसार राज्य के भीतर किसी विधवा को जलाने के पहले अनुमतिपत्र प्राप्त करना आवश्यक था। संभवतः कानून का निर्माण विधवा के अग्निदाह के लिए बाध्यता या सामाजिक दबाव के प्रयोग को निरुत्साहित करने के लिए किया गया था, किन्तु निषेध के लिए ठोस कारण के अभाव में साधारणतः अनुमतिपत्र दे दिया जाता था।[3] सरकारी अनुमतिपत्र की पद्धति प्रारंभ करने के अतिरिक्त राज्य की ओर से हुमायूं के शासन के पहले कोई कदम नहीं उठाए गए। मुग़ल सम्राट हुमायूं पहला शासक था, जिसने ऐसी विधवाओं के सती होने पर पूरी रोक लगाने का विचार किया जो संतानोत्पत्ति की आयु से अधिक हों, चाहे वह स्वेच्छा से अपने को अग्निदाह के लिए क्यों न प्रस्तुत करें। समाज-सुधार का यह साहसपूर्ण कदम था और इसका हिन्दू पुरोहितों या सर्वसाधारण की ओर से कोई प्रबल विरोध का प्रदर्शन नहीं हुआ। किन्तु शासक को यह विश्वास दिलाया गया कि दूसरे लोगों के धार्मिक विश्वासों पर इस हस्तक्षेप से और एक पवित्र प्रथा के बलात् रोकने से निश्चय ही भगवान का क्रोध बढ़ जाएगा और फलतः उसके वंश का पतन हो जाएगा और

1. उदाहरण के लिए तुलनीय है, अहमद-अली-उमरी द्वारा अभिव्यक्त रूपमती की भावनाएँ। कम्प, 82, या अमीर खुसरो के पृष्ठों में देवलरानी की कथा; या मुत्तकी के पृष्ठों में दिया गया वर्णन, जिसमें एक प्रेमी ने अपनी प्रियतमा (जिससे उसने विवाह नहीं किया था) को सर्प से बचाया और सर्प ने बदले में उसे ही डस लिया, फलतः उसकी तुरन्त मृत्यु हो गई। तदुपरान्त बिना किसी वैधानिक या सामाजिक अनुग्रह के लड़की ने उसके शव के साथ जल मरने का निर्णय किया।
2. तुलनीय, आ० अ०, द्वितीय, 192-3।
3. तुलनीय, कि० रा०, द्वितीय, 13

संभव है कि उसकी मृत्यु भी हो जाय। इन जबर्दस्त विचारों के कारण उस धार्मिक और ईश्वर-भीरु शासक ने अपने आदेश रद्द कर दिये। साधारण नियम तो लागू रहे; क्योंकि ऐसी सूचना मिलती है कि सुल्तान के अधिकारी सदैव ही विधवा-दाह के समय उपस्थित रहते, जिससे अनिच्छुक विधवा पर कोई बलप्रयोग न किया जा सके और उसे बाध्य न किया जा सके।[1] कहा जाता है कि अकबर ने कुछ प्रसिद्ध अवसरों पर व्यक्तिगत रूप से हस्तक्षेप किया और जलने के लिए तत्पर विधवाओं को ऐसा करने से रोक दिया। इन कुछ मामलों से, जिनमें शासक की व्यक्तिगत रुचि थी, यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि कोई सामान्य निषेध की आज्ञा जारी की गई थी।

सती की प्रथा या उसे उत्साहित करने वाले दृष्टिकोण से प्रभावित हुए बिना रहना मुसलमानों के लिए कठिन था, यद्यपि इस मुद्दे पर जोर देने के लिए पर्याप्त अधिक या सामान्य उदाहरण नहीं हैं। साधारणतः ये प्रवृत्तियां उन तक सीमित है जो मूलतः कुलीन हिन्दू थे या हिन्दू वातावरण में रहते थे।[2] इस्लाम ने उत्तर भारत में इस प्रथा के प्रयोग और इसकी गहनता को कम करने में काफी योगदान दिया होगा। अन्य सीधे प्रभावों में हम कृष्ण और राम सम्प्रदायों की पश्चात्कालीन लोकप्रियता का उल्लेख कर सकते हैं जिन्होंने क्रमशः लोगों का धार्मिक दृष्टिकोण ही बदल दिया।[3]

1. जौहर—दाहकर्म और उसके बाद की क्रियाओं का वर्णन जौहर की प्रथा के बिना अधूरा रह जाएगा। परिभाषा करने की अपेक्षा इसका वर्णन अधिक अच्छी तरह से किया जा सकता है। जौहर[4] की प्रथा प्रायः राजपूतों तक ही सीमित थी,

---

1. सीदी अली रायस, वैम्ब्री, 60 का वर्णन तुलनीय है।
2. ऐन-उल-मुल्क की पराजय का वर्णन पढ़िये, जब उसने सुल्तान मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध विद्रोह किया। युद्धभूमि में जब उसकी सेना तितर-बितर हो गई और यह अफवाह फैल गई कि वह मारा गया है, तब उसकी पत्नी ने अपनी जीवन-रक्षा किए जाने से इंकार कर दिया और वह अपने पति के दुर्भाग्य में हाथ बंटाने के लिए, या यदि संभव हो सके तो एक हिन्दू विधवा के समान जलाए जाने के लिए, वहीं ठहरी रही (कि० रा०, द्वितीय, 66 के अनुसार)। हिन्दू-पत्नी के प्रति अमीर खुसरो का अभिमत और उसकी प्रशंसा भी तुलनीय। कि० स०, 31।
3. राजपूतों पर उनके प्रभाव के लिये तुलनीय टॉड, द्वितीय, 620।
4. ग्रियर्सन के लिये तुलनीय टॉड, प्रथम, 310-11 (टिप्पणी)। 'जौहर' शब्द 'जातुगृह' 'लाख या अन्य ज्वलनशील पदार्थों से बने घर' से महाभारत (प्रथम, अध्याय 141-51) की उस कथा से लिया गया है, जिसमें इस प्रकार के भवन में आग लगाकर पाण्डवों को नष्ट करने का प्रयत्न किया गया था।

के योद्धाओं ने प्रथानुसार अपने स्त्री-बच्चों को मार डाला और मृत्युपर्यंत युद्ध करने के लिये नंगी तलवारें लेकर निकल आये। शीघ्र ही उन्हें अनुभव हो गया कि युद्ध करना संभव नहीं है और उन्हें जीवित कैद होने की आशंका हुई। इस अपमानजनक स्थिति से त्राण पाने हेतु उन्होंने आत्महत्या करने का निश्चय किया। एक ऊंचे स्थान पर एक व्यक्ति को नंगी तलवार लेकर खड़ा किया गया। अन्य सब उनके नीचे एक के बाद एक आते गये और क्रमशः उनके सिर भूमि पर गिरते गये जब तक कि अंत में सब समाप्त न हो गये।[1] यह विश्वास करने के लिये कि इन स्वाभिमान योद्धाओं द्वारा अपनाया गया मार्ग एकदम अविवेकपूर्ण या गलत नहीं था, हमारे पास कारण हैं। उस समय के युद्धों में कोमल व्यवहार करने के लिये समझौते या युद्ध-बंदियों और घायलों के प्रति सुव्यवहार करने के लिए कोई पारस्परिक स्वीकृति नहीं रहती थी। सब कुछ विजयी की इच्छा पर निर्भर रहता था। स्वाभिमानी राजपूत ऐसी अपमानजनक स्थिति स्वीकार नहीं कर सकता था; यहां तक कि बहुधा होने वाले अपने अंतर्जातीय युद्धों में भी वह ऐसा करना उचित नहीं समझता था। जब वे मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरुद्ध शस्त्र उठाते थे तो वे अपने शत्रुओं से निकृष्टतम व्यवहार की अपेक्षा करते थे। यह दिखाने के लिए ऐतिहासिक उदाहरण है कि कई अवसरों पर मुस्लिम योद्धाओं की क्रूरता, उस युग की बर्बरता और अमानुषता अपने-आप में बिल्कुल असाधारण थी।[2]

मुस्लिम सैनिकों द्वारा जौहर की प्रथा के कुछ सीमा तक अनुसरण की आशा करना स्वाभाविक है, क्योंकि उनकी युद्ध-परम्परा राजपूतों की यह परंपरा के समान प्रबल थी। कभी-कभी उन्होंने प्रायः वही स्थिति ग्रहण कर ली जो उनके शत्रुओं ने

---

1. बाबरनामा, 312 का वर्णन तुलनीय है।
2. अतिशय क्रूरता और शौर्य तथा सद्भावना की कमी के उदाहरण के लिए चन्देरी के भैया पूरनमल का मामला देखिये। शेरशाह ने राजपूत सरदार और उसके आदमियों को सुरक्षा के अत्यन्त पवित्र वायदों और कुरान की शपथ के आधार पर किले के बाहर आने का आग्रह किया। जब वे बाहर निकल आये तब विश्वासघातपूर्वक शेरशाह के सैनिकों ने उन्हें घेर लिया और उन पर रात्रि के अंधकार में आक्रमण कर दिया। राजपूतों ने अपने स्त्री-बच्चों को मार डाला और सब युद्ध करते हुए मारे गये। भैया पूरनमल का एक पुत्र और एक पुत्री, जो किसी प्रकार मारे जाने से बच गई, दोनों शेरशाह के हाथ में पड़े गये और उनकी बहुत दुर्गति की गई। अफगान शासक ने पुत्र को नपुंसक बनाकर और पुत्री को सड़कों पर नाचने के लिये बाध्य करके अपना पौरुषहीन और क्रूर बदला लिया। कबीलों के आपसी युद्धों में राजपूतों के जौहर के लिये तुलनीय टॉड, द्वितीय, 744।

उनके विरुद्ध की, उदाहरणार्थ, जब तिमूर ने हिंदुस्तान पर आक्रमण किया उस समय, दया की न कामना की गई और न दया प्रदान ही की गई। क्रूरतापूर्ण हत्याकाण्ड की संभावना ने अनेक योद्धाओं को राजपूत जौहर का मार्ग अपनाने के लिये प्रेरित किया।[1] दक्षिण ऐसी वीरोचित परंपराओं की वृद्धि के लिये अधिक उपजाऊ भूमि नहीं प्रतीत होती।[2]

सामाजिक और पारिवारिक सुख-सुविधाएँ

सामान्य विचार, जन-साधारण—पिछले अध्याय में हम विभिन्न सामाजिक वर्गों की आयों में असमानता और उच्चतम तथा निम्नतम वर्गों के बीच, जमीन-आसमान के अन्तर की ओर इंगित कर चुके हैं। वहीं हमने श्री मोरलैन्ड के मत से अपनी सहमति भी प्रकट की है। जन-साधारण, जिनमें से अधिकांश लोग आज के समान ग्रामों में रहते थे, उनकी घरेलू सुविधाओं का चित्रण करके हम उन कथनों के बारे में यहाँ कुछ और शब्द जोड़ेंगे। मुग़ल सम्राट् बाबर भारतीय ग्राम्य-जनता की स्वल्प आवश्यकताओं को देखकर विशेष रूप से चकित हुआ था। उसके अनुसार किसानों के गांव के बसने या उजड़ने में आश्चर्यजनक रूप से कम समय लगता था, क्योंकि देहाती घर बनाने के लिये बहुत कम चीजों की आवश्यकता पड़ती थी। बाबर कहता है कि 'लोग उस स्थान से एक या दो दिन में बिलकुल लुप्त हो जाते हैं, जहाँ वे अनेक वर्षों से रहते आए हैं और पीछे अपने अस्तित्व का कोई चिह्न नहीं छोड़ते। उसी प्रकार जब वे किसी नए स्थान में बस्तियाँ बसाते हैं, वे अपनी आवश्यकताओं के लिए एक कुएँ, या पानी के सरोवर से सन्तुष्ट हो जाते हैं और नहरों और पुलों-जैसे विशाल निर्माणों की उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके निवास स्थानों के निर्माण के लिए उन्हें कुछ लकड़ी के खम्भे और छप्पर के लिए थोड़े पुआल की ही आवश्यकता होती है। विशाल भवन और चहारदीवारी युक्त शहर का उनके सामूहिक जीवन की योजना में स्थान नहीं है। आप यह देखेंगे कि जहां वे एक ग्राम का

1. उदाहरणार्थ, भटनेर के गवर्नर कमालुद्दीन और उसके अनुचरों का उदाहरण तुलनीय है, जिन्होंने अपनी स्त्रियों और सम्पत्ति को भस्मीभूत कर दिया और तब 'रक्तपिपासू दैत्यों' के समान तिमूर से लड़ने के लिये बढ़े। ज० मा०, 452, म० 277 के अनुसार। उस समय हुमायूं की भावनाएँ तुलनीय है जब शाही हरम की एक महिला अक़ीक़ा बीबी कन्नौज की पराजय के बाद शेरशाह के हाथ में पड़ गई मुग़ल सम्राट ने खेद प्रकट किया कि उसने सम्भावित विनाश के पूर्व ही उसे क्यों न मार डाला। गु, 46 के अनुसार।
2. देखिए ख० फु०, 40, किस प्रकार अलाउद्दीन के आक्रमण के समय तैलंगाना के राजा ने जौहर करने में हिचक प्रदर्शित की, यद्यपि उसके कई अधिकारियों ने ऐसा करने की इच्छा प्रकट की।

निर्माण-प्रारम्भ कर रहे हैं और विश्वास न करने योग्य थोड़े समय में आप उसे पूर्ण हुआ पाते हैं वहाँ आपके सामने हिन्दुस्तान का एक सामान्य ग्राम खड़ा हो जाता है।[1] ग्राम का यह एक साधारणतः ठीक प्राक्कलन है।

समीप से देखने पर प्रतीत होता है कि ग्रामीण आबादी के लिए ऊँची भूमि या ऊँची टेकरी, जहाँ तक हो सके पड़ोस में किसी शक्तिशाली व्यक्ति, सुल्तान या अमीर के सुरक्षापूर्ण हाथों के नीचे, चुनी जाती थी।[2] समीप ही पानी की सुविधा और चारों ओर कृषि के लिए भूमि रहती थी। यह ग्राम एक-दूसरे से सटे हुए विभिन्न वर्गों के झोंपड़ों से मिलकर बनता था और अछूतों तथा निम्नवर्गों के झोंपड़े ग्राम की सीमा पर रहते थे। दोआब क्षेत्र की एक औसत झोंपड़ी कुछ ऐसी ही होती थी, यद्यपि समकालीन स्रोतों से हमें कोई निश्चित वर्णन प्राप्त नहीं होता। शीत, वर्षा या उष्ण कटिबंधीय सूर्य से रक्षा के लिए मनुष्य की जितनी न्यूनतम आवश्यकताएँ होती है, उतनी इसमें पूरी हो जाती थीं। चार मिट्टी की दीवारें सम्भवतः थोड़ा-सा स्थान घेर लेती थीं और फूस तथा कुछ लकड़ी के खम्भों की सहायता से बना हुआ एक छप्पर लकड़ी की बल्लियों पर टिका रहता था। सामने की दीवार में एक छोटा-सा खुला स्थान प्रवेश करने के लिए छोड़ दिया जाता था जिसमें दरवाजे लगाये या न भी लगाए जाते थे। प्रकाश आने के लिए बाजू की दीवारों में सम्भवतः कोई खिड़कियाँ नहीं रहती थीं। फर्श कुचली हुई मिट्टी का होता था और कभी-कभी उस पर गोबर भी लीप दिया जाता था।[3] अच्छे वर्ग के कृषकों और गाँव के मुखियों के घर अधिक विस्तीर्ण और सुविधाजनक रहते थे। उनके घरों के बाहर एक चबूतरा, साथ में एक बाहर का कमरा, एक भीतर का कमरा, एक विस्तृत आगन और एक बारामदा और कभी-कभी दूसरी मंजिल भी रहती थी। संयुक्त परिवार के सदस्यों के कमरे भीतर मध्य में स्थित विस्तृत आँगन के आसपास बनाये जाते थे। दीवारें मिट्टी की होती और छप्पर, सदैव की तरह फूस और सम्भवतः कुछ लकड़ी के शहतीरों पर आधारित रहता था।[4] यदि हम सम्पन्न लोगों के घरों से अनुमान लगा सकें तो गंगा की निचली घाटी में घर परस्पर सटे हुए नहीं बनते थे, बल्कि ये निजी फलों या ताड़ के बगीचे में स्थित होते थे। ये घर, आँगन के आसपास, मिट्टी के चबूतरे पर लकड़ी या बाँस के खम्भों को, बाँस की कमचियों की टट्टियों से जोड़ कर बनाए जाते थे। फूस का छप्पर बांस के ढांचे पर ठहरा रहता था।

1. तुलनीय देखिए वा० ना० 250।
2. नानक का दृष्टिकोण तुलनीय, शाह, 187। ग्राम की जलप्रदाय व्यवस्था के लिए इब्नबतूता का वर्णन तुलनीय कि० रा०, द्वितीय, 94।
3. मध्यकालीन गरीब अँग्रेज के लिए साल्जमैन, 88 तुलनीय है।
4. ग्रियर्सन, बिहार पीजेंट लाइफ, 332-3; और इम्पी० गॅजे० इण्डि०, चौबीसवां, 174-5 में गांव के मकानों के कुछ शब्दनाम देखिए।

इन सबको सुरक्षार्थ एक खाई, रोक, किसी झाड़ी या अन्य प्रकार के पौदों से घेर दिया जाता था।[1]

जहाँ तक उनके उपस्कर का प्रश्न है, गरीब कृषकों के सम्बन्ध में हमें अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। फूस और सुगमता से प्राप्य लकड़ी की शहतीरों और लट्ठों के समान उनके दैनिक उपयोग के वर्तन गाँव में ही मिल जाने वाली पकी हुई मिट्टी से बनते थे।[2] अच्छी श्रेणी के किसानों ने, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, कुछ पीतल के और मिश्रित धातु के वर्तन भी खरीद लिए होंगे। पर, बढ़िया वेशभूषा और शृंगार या भोजन पकाने और भोजन करने के उत्तम वर्तन उनकी जीवन-योजना में प्रवेश नहीं कर पाए थे। वे बहुधा खुले फर्श पर सो जाते थे और एक लुंगी और मोटे कपड़े की एक चादर से काम चला देते थे, जो प्रायः पहनने के साथ विछाने के काम भी आती थी। बाजरे की रोटी, चावल और दाल और सम्भव हुआ तो कुछ मट्ठा और प्याज तथा मिर्च की चटनी उनका प्रिय भोजन था।[3] यदि पिछली संध्या का कुछ वासा भोजन नहीं बच जाता था, तो उनका सामान्य नियम दिन में दो बार भोजन करने का था। कभी-कभी वे एक समय के भोजन से ही संतुष्ट हो जाते थे।[4] उनका सामान्य पेय शीतल और ताजा जल था और वे प्रत्येक राही, या यात्री से इस पेय में हाथ बँटाने के लिए, विशेष रूप से ग्रीष्मकाल में, आग्रह करना न भूलते थे। हमारे काल में तम्बाकू का प्रयोग प्रारम्भ नहीं हुआ था और अफ़ीम का प्रयोग कुछ प्रदेशों तक ही सीमित था। पान और सुपारी का उपभोग सब वर्गों के शहरी लोगों द्वारा किया जाता था। विशेष त्यौहारों पर कृषकगण ताड़ी या कोई सस्ती देशी शराब पीते थे।[5] इसी प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शीतकाल में एक ही कमरे में और ग्रीष्मकाल में खुले आंगन में परिवार के सारे सदस्यों का विशेषकर स्त्रियों का सोना साधारण बात थी। घर में कोई अलग रसोईघर या स्नानागार नहीं होते थे। लोग स्नान हेतु कुएँ या नदी पर जाते थे। लोगों के जीवन में थोड़ी ही गोपनीयता और कुछ ही उत्कृष्टता रह पाती थी, यद्यपि उनमें प्रचुर साहचर्य की भावना तथा मानवीयता और सुविदित तथा सुगम रिवाज द्वारा नियंत्रित कठोर और जटिल व्यवहार-नियम रहते ही थे। हम कल्पना कर सकते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में भारतीय जनता का अधिकांश भाग इस प्रकार जीवन-यापन करता था।

1. इम्पी० गेजे० इण्डि०, सातवाँ, 239-40 भी तुलनीय है।
2. फरिश्ता का वर्णन तुलनीय, ता० फ०, द्वितीय, 787।
3. क्रुक का हेर्क्लाट का इस्लाम, 317 तुलनीय है।
4. तुलनीय, इम्पी० गै० इण्डि०, आठवां, 308, 327, वीसवाँ; 293-3; चौबीसवाँ, 174,
5. तुलनीय वहीं, आठवाँ, 308-9।

I. नगर-नियोजन—भवन-निर्माण की भारतीय परम्परा, जिसमें नगर-नियोजन भी सम्मिलित है, अत्यन्त प्राचीन है। भवन-निर्माण-विज्ञान या 'शिल्पशास्त्र' पर पुस्तकें रची जाती थीं और प्राचीन शहरों और भवनों के पुरातात्विक अवशेष प्राचीन हिन्दू मस्तिष्क की पुरातात्विक संपन्नता का प्रमाण प्रस्तुत करते है।[1] एक नमूने के हिन्दू नगर के विशिष्ट तत्व होते थे—जैसे, उसके स्थान का चुनाव और परस्पर समकोण पर काटते हुए शहर के बीच से जाने वाले दो चौड़े मार्ग। हिन्दू भवन अपनी विशालता एवं स्थायित्व के लिये प्रसिद्ध थे।[2] शाही भवनों में सोने की पत्तरों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता था। ये भवन कई मंजिलों के बनाये जाते थे और कभी-कभी ऊपरी दो मंजिलें पचास गज तक ऊंची होती थी। छप्परों के लिये खपरैलों का प्रयोग किया जाता था और किसी किले की दीवार या किसी शहर की चहारदीवारी में बुर्जियां, विशाल प्रवेशद्वार और प्रवेशद्वारों पर हाथियों या मनुष्यों की मूर्तियाँ रहती थीं। जहां पत्थर उपलब्ध होता वहां निर्माण में पत्थर प्रयोग किया जाता। हिन्दू भवनों के अन्य तत्वों में हम कृत्रिम महरे, द्वारों और खिड़कियों में सुन्दर पच्चीकारी और मन्दिरों तथा मूर्तियों के निर्माण मे उत्तम शिल्पकौशल पाते हैं।[3]

---

1. विस्तार के लिये व्ही० व्ही० दत्त का 'टाउन प्लानिंग इन एन्शेंट इण्डिया' तुलनीय।
2. उदाहरणार्थ जयपुर का नगर-नियोजन देखिए "जयपुर नगर की योजना विशेष रूप से मनोरंजक है······क्योंकि यह नगर उनमें से एक है जो बहुत-सी वस्तुओं के क्रमिक विकास द्वारा अनियमित रूप से विकसित हुए है : उसकी नीव हिन्दू नगर-निर्माताओं की परम्पराओं और 'शिल्पशास्त्र' नामक उनके ग्रंथों के निर्देशानुसार वैज्ञानिक योजना के आधार पर रखी गई थी। नगर एक टेकरी पर बना है और नाहरगढ़ किले द्वारा सुरक्षित है। इसके प्रमुख मार्ग शिल्पशास्त्रों के निर्देशानुसार प्रायः पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण को जाते हैं।" हैवेल, इण्डियन आर्किटेक्चर, 217। हिन्दू भवनों के स्थायित्व के लिये तिमूर का वर्णन देखिये, जो इस तथ्य का प्रमाण देता है कि वे पांच से सात सौ वर्षों तक टिकाऊ होते थे। म०, 304-5 के अनुसार। दो गज लम्बे और चौड़े और एक बित्ता मोटी कच्ची ईंटों के सिंध के एक प्राचीन अग्नि मन्दिर के लिये देखिए, इलि० डाउ०, प्रथम, 329, जो इस वर्णन के लेखक के समय अखण्डित था। सिंध में सेहवा की प्राचीन कच्ची ईंटो के लिये टॉड, तृतीय, 1313 (टिप्पणी) भी तुलनीय है।
3. सोने के प्रदर्शन के लिये तुलनीय है प०, 23-4। कई मंजिलों के भवनों के लिये तिमूर का वर्णन देखिए (वही) कि चौदहवीं शती मे काश्मीर के काष्ठभवन चार-पांच मंजिल के थे। सिंहल के सात मंजिल वाले भवनों के लिये जायसी देखिये। बाबर का ग्वालियर वर्णन देखिये (बा० ना०, 317-320)। ग्वालियर

जब मुसलमानों का पदार्पण हुआ उस समय, और बाद में काफ़ी लम्बी अवधि तक उन्होंने अपने भवनों और नगरों में हिन्दू स्थापत्य कौशल का प्रयोग किया। हिन्दू नगरों से उन्होंने अनेक तत्व लिये, यद्यपि उन्होंने कुछ ही देशी अनुपम कौशल निर्माण के सबूत छोड़े हैं। संभवतः मुसलमानों ने हिन्दू शहरों के विशिष्ट तत्व, अर्थात् महलों में सरोवर, मन्दिर, चौड़ा और खुला स्थान और उनकी इमारतों की ऊंचाई और सौष्ठव में कुछ अपने विशिष्ट तत्व जोड़े और इस प्रकार मुगलकालीन नगरों का स्वरूप विकसित हुआ।[1] भारतीय नगर-नियोजन में मुस्लिमों के योगदान के रूप में उनकी सुन्दर और विशाल मस्जिदें, उनके दरवाजे, संभवतः फव्वारों का प्रयोग, गुम्बद, मेह-राब और नगर के चारों ओर एक संशोधित पद्धति की रक्षा-बुर्जियां और अधिक कुशलतापूर्वक सैनिक उपकरणों से सज्जित दीवारें ये सब शामिल हैं। उनके भवनों, मकबरों, छतयुक्त सरोवरों और हमामों और सुन्दर उद्यानों ने भारतीय नगरों को अलंकृत ही किया।

समकालीन हिन्दुस्तान के एक औसत नगर का वर्णन कुछ इस प्रकार किया जा सकता है—वह एक नदी के तट पर अनेक व्यापार मार्गों की पहुंच पर और सुरक्षा और प्रतिरक्षा हेतु बहुधा आस-पास के प्रदेश की अपेक्षा ऊंचाई पर स्थित रहता था।[2] नगर के चारों ओर एक मोटी ऊंची दीवार रहती थी जिसमें बीच-बीच में प्रवेशद्वार रहते थे जिन पर 'कोतवाल' नामक विशेष अधिकारी के प्रत्यक्ष निरीक्षण में दिन-रात कड़ा पहरा रहता था।[3] नगर की चहारदीवारी से प्रवेश करने पर, मुख्य

के शाही भवन ऊंचाई में चार मंजिल के थे और ऊपरी दो मंजिलों की ऊंचाई लगभग 50 गज थी। वे बुर्जों, द्वारों, मूर्तियों और हरे संगमरमर के काम के लिये प्रसिद्ध थे।

1. भारतीय पुरातत्व विभाग के अभिलेखों में दिल्ली, बदायूं, सीकरी, आगरा, अजमेर और अन्य नगरों का वर्णन तुलनीय है। चन्देरी के पत्थर के विस्तृत और सार्वभौम प्रयोग के लिये, देखिए बा० ना०, 312।
2. पटना नगर की नींव रखे जाने के वर्णन के लिए और शेरशाह द्वारा स्थान के चुनाव के कारणों के लिये ता० दा०, 92-3 द्रष्टव्य हैं।
3. कोतवाल के पद के लिये ब०, 279 और अन्य प्रमाण देखिये। इस दीवार के निर्माण के लिये हमारे पास मुहम्मद तुग़लक द्वारा प्रारम्भ की गई दिल्ली की चहारदीवारी 'जहांपनाह' का रोचक वर्णन है। वह ग्यारह हाथ मोटी थी और एक घुड़सवार इस पर नगर का चक्कर लगा सकता था। रात में पहरे के लिये और अन्य रक्षकों के लिये इसके भीतर नियमित कमरे बने थे। अनाज और अन्य सेना-सम्बन्धी शस्त्रों, जैसे घेरा डालने वालों से रक्षार्थ प्रयुक्त किये जाने वाले मंजनीकों और भारी उपकरणों के संग्रह के लिये भी कमरों की व्यवस्था

मस्जिद या मन्दिर अपनी असाधारण ऊँचाई और प्रभावशाली स्थिति से बहुधा दर्शक को आकर्षित करते थे। मुख्य मस्जिद नगर के प्रत्येक भाग से समीप ही रहती थी और इतनी बड़ी होती थी कि शुक्रवार और अन्य सामूहिक प्रार्थनाओं के अवसर पर विशाल जनसमूह उसमें समा सके।[1] नगर में या नगर के अति समीप जलप्रदाय के लिये, विशेषकर घेरे के समय या वर्षा के अभाव के समय जल-व्यवस्था हेतु विशाल जलसंग्राहक रहते थे।[2] ये कृत्रिम जलागार पहाड़ी किलों के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण होते थे।[3] समकोण से जाते हुए दो मार्ग नगर के मध्य में एक दूसरे को काटते थे और बाहरी दीवार के मुख्य द्वारों से जुड़े रहते थे। इन मुख्य मार्गों के दोनों ओर नगर के बाजार की चार शाखाएं रहती थीं, जिनमें दूकानों की पंक्तियां एक दूसरे के सामने थीं। बाज़ार की इन शाखाओं में व्यापारियों के विशेष वर्ग और शिल्पियों के संघ थे।[4] कभी-कभी शासक अपने स्वयं की सुविधा और मनोरंजन के लिये राजमहल के भीतर और बाहर बाज़ार बनवाते थे।[5] कभी-कभी पुल भी शहर के सौंदर्य

थी। इसमें थोड़े-थोड़े अन्तर पर 28 दरवाजे और अनेक बुर्ज थे। देखिये कि० रा०, द्वितीय, 16। तैमूर का साक्ष्य देखिये कि सीरी से पुराने किले तक यह दीवार पत्थर की बनी थी। (म०, 210, ज० ना०, 76 के अनुसार)।

1. तुलनीय अ०, 135। फीरोज़ तुगलक के समय में बनी फीरोज़ाबाद की मस्जिद में 10,000 लोगों के लिये स्थान था। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि दिल्ली की वर्तमान क़ुतुब मीनार मूलतः 'कुव्वतुल इस्लाम' मस्जिद ('इस्लाम की शक्ति') की मीनार के रूप में निर्मित की गई थी। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी जिसने क़ुतब के आकार से पांच गुनी बड़ी मीनार बनाने की योजना बनाई, ऐसा प्रतीत होता है कि मूल योजना भूल गया।
2. दिल्ली के 2 मील लम्बे और आधा मील चौड़े 'हौज-ए-शम्सी' के वर्णन के लिये तुलनीय है कि० रा०, द्वितीय, 17-81।
3. बावली—एक सरोवर जिसमें पानी की सतह तक सीढ़ियां रहती है—के इब्नबतूता के वर्णन के लिये वहीं, 93 देखिए।
4. तारीख-ए-दाउदी, 40 ब का वर्णन तुलनीय है; फीरोज़शाह के नगर फीरोज़ाबाद के वर्णन के लिये सैयद अहमद, अध्याय द्वितीय, 24 भी देखिये। उसका व्यास 5 क्रोह (या लगभग 10 मील) था; वहीं, 52। शाहजहां की दिल्ली में 1500 गज लम्बा और तीस गज चौड़ा फैज़ बाज़ार नामक बाज़ार था जो दिल्ली दरवाजे के सामने था : अ०, 135 भी तुलनीय है।
5. अकबर के मीना-बाज़ारों का उल्लेख बाद में किया जाएगा। माण्डू के हरमबाज़ार का पहले ही उल्लेख कर दिया गया है। यहां यह जानना उपयुक्त होगा कि मुग़लसम्राट् हुमायूं ने एक तैरता हुआ बाज़ार बनवाया था। अनेक विशाल

में वृद्धि करते थे।[1]

नगर विभिन्न सामाजिक वर्गों के लिये अलग-अलग हिस्सों में बंटा था। तत्कालीन सामाजिक विचारधारा के अनुरूप कुछ वर्ग जैसे भंगी, मोची और अत्यंत दरिद्र भिखारी और दीन लोग शेष जनसंख्या से अलग शहर के बाहरी भाग में रखे जाते थे। शेष जनसंख्या भी धार्मिक, जातीय, यहाँ तक कि व्यावसायिक वर्गों में विभाजित थी। उदाहरणार्थ, मुसलमानों और हिन्दुओं के अलग मोहल्ले थे, अमीर और सामान्य जनता शहर के भिन्न भागों में रहती थी; सामान्य जनता में से विभिन्न व्यापारी वर्ग और जातियां अपने-अपने मोहल्लों में रहती थीं। ये सारे मोहल्ले ऐसे बनाये गये थे कि वे यथासंभव पूर्ण और आत्मनिर्भर हों; वास्तव में उनमें से कुछ में एक विशाल शहर के सारे तत्व विकसित हो गये थे और उनमें एक शहर की सारी सामाजिक सुविधाएँ छोटे-पैमाने पर उपलब्ध थीं।[2]

शाही बँगले :—राज्य की राजधानी में इन बँगलों की सूची में एक अपने ही प्रकार का और उन सब से भव्य मोहल्ला भी सम्मिलित था जिसमें सुल्तान के लिये महल और उसके कर्मचारियों के लिये भवन बनाये जाते थे। हम सुल्तान के महलों और कर्मचारियों के सम्बन्ध में पहले ही बहुत कुछ कह चुके हैं। यहां यह ध्यान में रखना चाहिये कि केवल महल और कर्मचारियों के अन्य भवन ही शाही मोहल्ले के, जो स्वयं ही एक भव्य शहर था, महत्वपूर्ण तत्व नहीं थे। गजशालाओं और अश्वशालाओं, सेना के निवास के लिये बने भवनों और क्वायद के मैदान के अतिरिक्त शाही मोहल्ला अपने विशाल उद्यानों, विस्तृत खेल के मैदानों, मस्जिदों, स्नानागारों, महाविद्यालयों और मकबरों के लिए विख्यात था। शाही भवन की नींव भव्यता से बड़ी सज-धज के साथ रखी जाती थी। सदैव के समान ज्योतिषियों से मंत्रणा करके घड़ी निश्चित की जाती थी। सैयद और प्रमुख धार्मिक व्यक्ति शासक के साथ जाते थे और कभी-कभी पत्थर और मसाला और भवन के लिये अन्य आवश्यक सामग्री एकत्र करने

नौकाएं एक साथ बांध दी गई थीं और उन पर दूकानों की पंक्तियां बना दी गई थीं, इसलिये यदि शाही दल मनोरंजनार्थ जमुना पर जाता तो शाही दल और उनके अनुचरों के लिये सब प्रकार की वस्तुएं उपलब्ध रहतीं। तुलनीय, रवांद, 138-9।

1. अफ़ीफ़ में पुलों के निर्माण के संदर्भ देखिए। नगर (श्रीनगर) शहर में झेलम पर तीस पुलों के लिये तिमूर का वर्णन (म०, 304-5) तुलनीय है।
2. मुस्लिम मोहल्लों के लिये गुप्ता, बंगाल इ०, 90-1 में एक उदाहरण तुलनीय है; इब्नबतूता का वर्णन देखिए। दिल्ली के 'तरबाबाद' या संगीतज्ञों के मोहल्ले में उसका स्वयं का बाजार और मस्जिद थी। यहां तक कि उसकी स्वयं की एक नामी मस्जिद भी थी। कि० रा०, द्वितीय, 18 के अनुसार।

में सहायता करते थे। जब उद्घाटन समारोह प्रारम्भ होता, सम्राट स्वयं अपने हाथों से नीव में पहली ईंट रखता था।[1] तत्पश्चात् निर्माण-कार्य प्रारम्भ होता था। यदि भवन स्वयं सुल्तान के निवास का महल होता तो भीतर अनेक गुप्त दरवाजे और गुप्त मार्ग बनाये जाते, जिससे संकट के समय शासक के बचने में वे सहायक हो सकें या अन्य उपयोग में आ सकें।[2]

शाही भवनों की योजना के लिये कोई निश्चित नियम नहीं थे। सब कुछ शासकों की खुशी और सनक पर निर्भर रहता था। उदाहरणार्थ, मुगल सम्राट हुमायूं ने स्वयं एक तैरता हुआ महल—'रहस्यमय घर' और अन्य नई चीजों में एक 'तैरता हुआ बाजार' भी बनवाया।[3] शाही महल की अन्य सामान्य विशेषताओं में, घड़ियाल का प्रयोग और घंटों की घोषणा किया जाना भी आजाते थे।[4] वास्तव में, राज्य के

---

1. ख्वांदमीर 146 का वर्णन तुलनीय। हुमायूं सुघड़ी तय करने में ज्योतिषियों से परामर्श करने के अतिरिक्त कुरान से शकुन विचारने में भी विश्वास रखता था; मेकालिफ, द्वितीय 34 भी।
2. तुलनीय ब०, 403।
3. तैरते हुए महल के लिये तुलनीय, ख्वाद०, 139-40। इसकी रचना तैरते हुए बाजार के आधार पर की गई थी और यह दो विशाल नौकाओं पर खड़ा किया गया था। राजधानी के काष्ठ-शिल्पियों, धातु-शिल्पियों, सजावट करने वालों और उपस्कर बनाने वालों ने इस महल को अत्यन्त सुन्दर रूप देने में अपना सारा चातुर्य और कौशल लगा दिया था। तैरते हुए महल में तीन मंजिलें थीं। 'रहस्यमय घर' के वर्णन के लिये वही देखिए, 144। यह आगरा में जमुना के तट पर बनाया गया था और इसमें फर्श पर साथ में लगे हुए तीन कमरे थे। मध्य का कमरा आकार में अष्टभुजी था और उसमें एक पानी का सरोवर था। इस सरोवर के ऊपर एक मेहराबदार आला बनाया गया था, जहां से एक गुप्त मार्ग संलग्न कमरों को जाता था। यह सावधानी बरती जाती थी कि पूरा भरा होने पर भी सरोवर का पानी इन लगे हुए कमरों में न जा पाये। जब कोई व्यक्ति सरोवर में प्रवेश करने पर मेहराबदार आले में पहुंचता और उसके घुमावदार द्वारों से होते हुए इन कमरों में से एक में आन पहुंचता, तो वह आश्चर्यजनक रूप से स्वयं को जलपान, संगीत और और गायन के मध्य पाता।
4. घड़ियाल के प्रयोग के लिये अध्याय द्वितीय में संदर्भ तुलनीय है, जहां यह उल्लेख किया गया है कि सुल्तान फ़ीरोज़ तुगलक ने इसके लिये एक अलग विभाग रखा था; दे० मेकालिफ, चतुर्थ, 400 भी। यह घड़ियाल या जलघड़ी भारत में अति प्राचीनकाल से प्रयुक्त किया जाने वाला एक प्रकार का क्लेप्साइड्रा था। (तुलनीय, ज० रा० ए० सो०, 1915। फ्लीट 'द एन्शेंट इण्डियन वाटर क्लाक'।

प्रत्येक सरकारी निवास में घोषित किया जाता था। सवेरे के घण्टे विशेषतः तुरही और ढोलों द्वारा और मुस्लिम शहरों में सदैव के समान नमाज के लिये मुअज्जिन की अजान द्वारा घोषित किये जाते थे।[1] रात्रि के समय शाही निवास पर एक विशेष अधिकारी के निरीक्षण में कड़ा पहरा रहता था। सामान्यतः रात्रि के पहले पहर के पश्चात् रात्रि की नियुक्ति वालों या भवन के भीतर ठहरने की विशेष शाही अनुमति-प्राप्त लोगों के अतिरिक्त, किसी को भी राजमहल की सीमा में प्रवेश न करने दिया जाता। एक विशेष अधिकारी रात्रि में होने वाली घटनाओं का लेखा-जोखा रखता था और उन्हें प्रातःकाल शासक के समक्ष प्रस्तुत करता था।[2]

वहीं, 702 बी देखिए जहां श्री पॉजिटर स्पष्ट करते हैं कि सूर्यघड़ी और जल-घड़ी दोनों प्राचीन काल में दिन और रात के घण्टे जानने के लिये प्रयुक्त की जाती थीं। 'आधी-घड़ी' का लम्बा नाप सूर्यघड़ी की कील से और नाडिका, जल-घड़ी से निश्चित किये जाते थे)। एक स्थान पर मलिक मुहम्मद जायसी हमें बताता है कि घण्टे, आधे घण्टे और पाव घण्टे बर्तन के 'भरने' से निश्चित किये जाते थे (प०, 64 के अनुसार)। समय की घोषणा हर 'पहर' मिश्रित धातु के दो अंगुल मोटे घण्टे को बजाकर की जाती थी। (बा० ना० 265 के अनुसार)। भारत के बाहर मुस्लिम लोग घड़ियों और घड़ियालों के अधिक उन्नत स्वरूपों से परिचित थे (तुलनीय सिद्दीकी इ० क०, जिल्द प्रथम 'यूज आफ क्लाक्स इन मुस्लिम लैंड्स')। भारत में उन्होंने प्राचीन हिन्दू पद्धति को अपनाया। बाबर ने समय की घोषणा करने में कुछ सुधार किये। उसने पहर के अतिरिक्त घड़ी की घोषणा भी प्रारम्भ की। (बा० ना०, 1517 के अनुसार)। जलघड़ियों के अतिरिक्त हुमायूं किसी विशेष समय के निर्धारण में नक्षत्रों की ऊंचाई बताने वाले वैध यंत्र का भी प्रयोग करता था। (गु०, 53 के अनुसार)। साधारणतः राज्य में घड़ियाल (हिन्दू क्लेप्साइड्रा) का प्रयोग किया जाता था।

1. इब्नबतूता कि० रा०, द्वितीय, 6 का वर्णन देखिए। ख्वांद०, 156 भी तुलनीय, है, किस प्रकार हुमायूं ने चन्द्रमास की पहली और चौदहवीं तिथि को दिन में कई बार; जैसे—उषाकाल में, सूर्योदय के पश्चात्, सूर्यास्त के समय और रात में ढोल की ध्वनि से समय की घोषणा करने की पद्धति प्रारम्भ की। उसके उत्तराधिकारी अकबर ने पुनः 'घड़ियाल' की प्राचीन पद्धति अपना ली; और जहां भी शासक का तम्बू जाता घण्टा और घड़ियाल उसके साथ चलते थे। ला० ल०, द्वितीय, 9 के अनुसार।
2. रात्रि के पहले और अन्य नियमों के लिये तुलनीय ल०, 406। अभिलेख-अधिकारी के लिये तुलनीय ल०, 127। अफ़ीफ़ कुछ समय तक इस पद पर था; अभिलेख-अधिकारी के अन्य निर्देश के लिये ता० मु० शा०, 376 बी।

तम्बू-जीवन दरिद्रों और सम्पन्नों दोनों में समान रूप से लोकप्रिय था।[1] शासन राजधानी के बाहर क्रीड़ा-यात्रा या सरकारी दौरों के लिए अनेक प्रकार के तम्बुओं का प्रयोग करता था। सल्तनत के प्रारम्भ में सुन्दर और विस्तृत तम्बू और शामियाने अधिक संख्या में नहीं थे। विशालता और उत्कृष्टता क्रमशः आती गई और अन्त में मुग़ल सम्राट् हुमायूं ने अनेक प्रकार के छोटे और बड़े शामियानों और तम्बुओं के आकार निर्धारित कर दिए, जो उसकी कुशलता और सुन्दर रुचि के परिचायक हैं। अन्त में अकबर और उसके उत्तराधिकारी कपड़े के विशाल नगर के साथ चलते थे, फलतः विभिन्न शाही तम्बू और भी बड़े होते गए और उनकी सुविधाओं और सज्जा में भी वृद्धि होती गई।[2] रेशम के गलीचे और गद्दे और बड़े तकिये तथा अन्य आवश्यक सामग्री तम्बू या शामियाने के भीतर के सामान्य उपस्कर थे।[3]

इसके पहले कि हम शाही निवासों का वर्णन समाप्त करें, हम महल के कुछ अन्य तत्वों पर विचार करेंगे। शाही निवास-स्थान, महत्वपूर्ण स्थान पर, या यदि सम्भव हुआ, तो किसी ऊँचे स्थान पर रहता था। वह साधारणतः नदी के किनारे बनाया जाता था जिससे दिन और रात्रि के समय जलप्रवाह में पड़ने वाले प्रतिबिम्ब से

---

1. अमीर ख़ुसरो का रोचक अनुभव तुलनीय, जबकि उसका घर वर्षा-ऋतु में गिर गया और वह एक तम्बू मे रहा। इ० ख़ु०, पंचम, 61। तुलनीय, त० वा०, 125 ब, किस प्रकार शाही छावनी में शासक और अन्य अधिकारियों के लिए तम्बू और सामान्य सैनिकों के लिए फूस के झोंपड़े रहते थे। भारत में वर्षा-ऋतु में बाबर के अनुभवों और तम्बुओं मे उसके जीवन के लिए देखिए बा० ना०, 353।
2. मुईज़ुद्दीन कैक़ुबाद के पहले शाही तम्बुओं (बरगाह) का कि० स०, 40 में एक पूर्वोल्लेख तुलनीय है; उसके सम्मुख बरगाह या शामियाना खड़ा करने के लिए केवल दो खम्भों की आवश्यकता थी। सुल्तान ने उसके आकार और सहारे के लिए प्रयुक्त होने वाले खम्भों की संख्या को दुगुना कर दिया। शाही चंदोवे के लिए तुलनीय गु०, 69। वह आकार मे गोल था। हुमायू के शाही तम्बुओं का वर्णन ख़ांदमीर, 140-41 मे देखिए। मुग़ल सम्राट् ने एक शामियाना इतना बड़ा बनवाया कि उसे सहारा देने के हेतु खम्भों के लिए अनेक ढांचों की आवश्यकता होती थी। उसने लकड़ी के ढाँचे पर एक दूसरा तम्बू बनाने का आदेश दिया, जो (उसके तैरते हुए महल के समान) अलग-अलग किया जा सकता था और उसे एक विश्राम-स्थल से दूसरे विश्राम-स्थल को ले जाने में सुविधा होती थी। अकबर के समय तक (तुलनीय, आ० अ०, प्रथम, 51) उत्कृष्टता में और भी वृद्धि हो गई थी और अबुलफ़ज़्ल शाही उपयोग में आने वाले साधारण 'रावती' और 'दरवेशी', से लेकर 'दो मंजिले' और 'आठ खम्भों वाले शामियानों' तक के अनेक प्रकार के तम्बुओं का उल्लेख करता है।
3. उपस्कर के लिए वही, आ० अ०, प्रथम, 51।

भवन के सौन्दर्य में वृद्धि होती थी।[1] आगरा और दिल्ली या लाहौर और माण्डू के शाही भवनों को देखने से जो अनुभव होता है वह अभिव्यक्त करना कठिन है। सुन्दर उद्यान और अन्य खुले स्थानों से महल घिरा रहता था। हम देख चुके हैं कि चन्देरी जैसे स्थानों में जहां पत्थर उपलब्ध था, पत्थर का प्रयोग किया गया था। लाल पत्थर का बहुलता से प्रयोग किया जाता था। इसे इतना घिसा और चमकाया जाता था कि अमीर खुसरो के शब्दों में दिल्ली के महल की पत्थर की दीवारों में कोई भी अपना प्रतिबिम्ब देख सकता था।[2] बाबर के पहले हमें महलों में फर्श के निर्माण के सम्बन्ध में कम विवरण मिलता है। बाबर को अपने विश्राम-प्रकोष्ठों में और बैठक खाने के लिए सम्भवतः हिन्दुस्तान में पहली बार लाल पत्थरों का प्रयोग करने का श्रेय प्राप्त है, यद्यपि यह शंका से मुक्त नहीं है।[3] संगमर्मर का प्रयोग कहाँ तक किया जाता था, स्पष्ट नहीं है, किन्तु विद्यमान अवशेषों से पता चलता है कि मुग़ल वैभव के अन्तिम दिनों तक उत्कृष्ट संगमर्मर का प्रचुर प्रयोग किया जाता था।

सुल्तान के महल में अनेक प्रकोष्ठ थे, जैसे, जामखाना या बैठकखाना, शृंगार-कक्ष, स्नानागार, संलग्न आंगन में खुलने वाले विश्रामकक्ष और स्त्रियों के कक्ष। महल की दीवारें रेशम के परदों और जरी की झालर और बहुमूल्य पत्थरों से युक्त रंगीन मखमली परदों से सजायी जाती थीं।[4] सोना, आबनूस और धातु की मीनाकारी के काम वाले शस्त्र और हथियार, मोमबत्तियां, मोमबत्तियां बुझाने के उपकरण, गलीचे, सुराहियां, इत्रदान, लिखने की सामग्री, शतरंज के बिसात, पुस्तकें रखने का ढांचा और जिल्द आदि, सजावट की प्रचलित वस्तुएँ थीं। मोमबत्तियां रात्रि में कक्षों को प्रकाशित करने के लिए प्रयुक्त की जाती थीं। मशालों और बत्ती वाले वहनीय प्रदीपों का भी कुछ अवसरों पर प्रयोग किया जाता था।[5] पुराने महलों के सामान्य तत्वों में बाबर ने अनेक संशोधन किए, जिसमें से आगरा में ग्रीष्मगृह (चौखण्डी), फूलों की क्यारियां, संगमर्मर के स्नानागार और बावली तथा फव्वारे अधिक महत्व-पूर्ण हैं।[6]

ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत समय तक ऊँचे अमीरों और राज्य के उच्च पदाधिकारियों के भवन शाही मोहल्ले के भीतर नहीं बनाये जाते थे। यद्यपि वे उससे

1. तुलनीय, कि० स०, 42-3।
2. वहीं।
3. गुलबदन, 14-15 का वर्णन तुलनीय है।
4. कक्षों और उनकी सजावटों के लिए अफ़ीफ़, 100-101, का०, 534; कु० खु० 472।
5. झाड़फ़ानूस इ० के लिए देखिए कि० स०, 123-4, 127; वा० ना०, 409।
6. तुलनीय, गु०, 14-15, जहाँ बुर्जियों में छोटे-छोटे कक्षों का भी उल्लेख है, किन्तु यह संदेहास्पद है, क्योंकि बुर्जियों का उल्लेख मालवा और अन्य स्थानों में है।

अधिक दूर नहीं थे। मुगल राजवंश की स्थापना और समग्र शासक वर्ग में पूर्णतः भारतीय दृटिकोण के विकास के पश्चात् ही अमीर-वर्गों में अपेक्षाकृत बहुत अधिक और सन्निकटतर सामाजिक समागम प्रारम्भ हो पाया। इसीलिये सीकरी में बीरबल और फ़ैजी के भवन दर्शक को शासक और उसके प्रिय अमीरों के मध्य आवागमन और उनकी पारस्परिक निष्ठा का स्मरण दिलाते हैं।

पिछले एक अध्याय में हम देख चुके हैं कि वर्तमान दिल्ली अनेक प्राचीन शहरों में बनी है और यह भी देख चुके है कि यह एकीकरण स्वाभाविक ही था। हम यहाँ केवल यही देखेंगे कि मुहम्मद तुगलक के समय तक चार अलग शाही नगर अस्तित्व में आ गए थे, जैसे, पुराना शहर या मुख्य शहर, सीरी, तुगलकाबाद और जहांपनाह, जिसे मुहम्मद तुगलक ने ही बनवाया था। मुहम्मद तुगलक इन सबको एक विशाल दीवार से घेरना चाहता था, जिसका वर्णन किया जा चुका है, किन्तु अत्यधिक व्यय की सम्भावना के कारण यह योजना त्यागनी पड़ी।[1]

अमीरों का आवास—कुलीनवर्ग की हवेलियों के सम्बन्ध में हमें अपेक्षाकृत कम सूचना है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे शाही भवनों की योजना पर निर्मित किये जाते थे। अमीरों के लिए शासकों की अपेक्षा अधिक सुरक्षा थी, जो अमीरों के आवासों की शान्ति और व्यवस्था से प्रकट होती थी। अमीरों की हवेलियां विस्तीर्ण प्रकोष्ठों वाली और विशाल होती थी। उनमें बैठकखाने, स्नानागार, कभी-कभी एक सरोवर, एक विस्तृत आंगन और पुस्तकालय भी रहते थे। हरम की महिलाओं के उपयोग के लिए अलग कक्ष निश्चित कर दिये गए थे। बैठकखाने कभी-कभी बहुमूल्य और सुन्दर परदों से सजाए जाते थे।[2] सम्पन्न हिन्दू-वर्गों के निवास-स्थानों की दीवारों पर सम्भवतः सफ़ेदी की हुई और वे चित्रित रहती थी और दरवाजे लकड़ी के अलंकृत काम के होते थे।[3] बंगाल और गुजरात के उच्चवर्ग के भवनों के कुछ संदर्भ मिलते है। बंगाल के घर-एक ओर तालाब, दूसरी ओर पुष्पवाटिका, तीसरी ओर बांसों की

---

1. *तुलनीय कि० रा०, द्वितीय, 15-16।*
2. *कोईल (अलीगढ़) में खलीफ़ा नामक अमीर के घर का वर्णन तुलनीय, जहाँ मुगल सम्राट ने गुलबदन का स्वागत किया था। यह घर सुनहरी झालर वाले गुजरात के बहुमूल्य परदों से सजा था। गुलबदन और अन्य स्त्रियों के लिये अलग कक्ष दिये गए थे।* गु०, 18, 22-23 के अनुसार। एक अमीर के घर का अमीर खुसरो द्वारा किया गया वर्णन तुलनीय, इ० खु०, पांचवा, 58, 87-88। मिलवत के एक अफ़गान अमीर गाज़ी खान के घर के पुस्तकालय के वर्णन के लिए तुलनीय बाबरनामा, 231। बाबर वहाँ विशाल संख्या में पाई गई धार्मिक पुस्तकों का साक्ष्य देता है।
3. संदर्भ के लिए तुलनीय मेकालिफ, प्रथम, 275।

झाड़ी और चौथी ओर खुले स्थान के लिए प्रसिद्ध थे।[1] उड़ीसा के घर विस्तीर्ण और ऊँचे रहते थे और उनमें फलों के वृक्षों की वाटिका और कृषि के लिए भूमि रहती थी।[2] गुजरात भी इसी प्रकार गृहनिर्माण में अत्यधिक उन्नत प्रदेश था। कैम्बे 'अत्यन्त श्रेष्ठ नगर' था। खम्बायत के लोगों के पास 'कई वनस्पतियों और फलों के बगीचे थे जिनका उपभोग वे अपने सुख के लिए करते थे।' चम्पानेर और अहमदाबाद ने हमारे काल की समाप्ति के समय महत्व प्राप्त किया। दोनों नगरों में पत्थर के बने विशाल प्रांगणों, मीठे पानी के सरोवर और फूलों वाले सुन्दर मकान थे।[3] तत्कालीन मारवाड़ी व्यापारी नहाने के बहुत शौकीन थे। उन्होंने सामान्य वाटिकाओं और बगीचों के अतिरिक्त अपने घरों में अनेक जल-सरोवर बनवाए।[4]

'तारीख-ए-फ़रिश्ता' के लेखक का कथन है कि हिन्दुस्तान के लोग अपनी सुन्दर नदियों और विस्तृत जलागारों का उपभोग करना नहीं जानते। उसके अनुसार दक्खन के लोग जल-प्रवाहों के समीप अपना मकान बनवाने के शौकीन थे; जबकि उत्तर में यदि कोई व्यक्ति नदी के तट पर तम्बू गाड़ता, तो वह उसे प्रवाह से ओट में कर लेता था।' वे मकान के निर्माण में भी वैसी ही अपरिष्कृत रुचि का परिचय देते थे। फलतः फरिश्ता के कथनानुसार, उनके भवन बन्दीगृह के समान दीखते हैं और शहर तथा नगर समतल मालूम पड़ते थे।[5] हम इन वक्तव्यों की सच्चाई परखने की स्थिति में नहीं हैं, किन्तु ये वक्तव्य किसी भी दशा में शाही भवनों या हिन्दुओं के मकानों पर, जिनमें से अधिकांश नदियों के तट पर बसे हैं, लागू नहीं होते।

II. **उपस्कर**—हम शाही महलों में प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न वस्तुओं का अनेक बार उल्लेख कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है, किन्तु आगे के इस विवरण से कुछ ज्ञान हो सकता है। सामान्य उपस्कर में हम बिस्तरों और कुर्सियों का उल्लेख कर सकते हैं। पलंग आज के समान ही चार पायों पर आधारित चार लकड़ी की पट्टियों से बनते थे और उनमें सूती या रेशमी निवाड़ बुनी जाती थी। अन्य प्रकार के हल्के और सुवहनीय बिस्तर भी प्रयुक्त किये जाते थे, जिससे यात्रा के समय बहुधा लोग अपना पलंग भी अपने साथ ले जाते थे। बिस्तर की चीजों में हम दो गद्दे, तकिये, चादरें, जो अमीरों और सम्पन्न व्यक्तियों के

---

1. बंगाल के घरों में विशाल जल सरोवरों के लिए देखिए ज० डि० लै०, 1927, 116 बरबोसा, द्वितीय, 147 भी।
2. तुलनीय, पृ० 165।
3. खम्बायत के लिए देखिए वरथेमा, 106, बरबोसा, प्रथम, 161। चम्पानेर और अहमदाबाद के लिए देखिए बरबोसा, प्रथम, 125।
4. तुलनीय, वहीं, प्रथम, 113।
5. तुलनीय, ब्रा० फ०, द्वितीय, 787।

लिये रेशम की भी होती थीं, सम्मिलित कर सकते हैं। गद्दों और तकियों के लिए सूत या जूट के गिलाफ प्रयुक्त किये जाते थे और ये समय-समय पर बदल लिए जाते थे। बिस्तर सहित बिछावन की इन सारी वस्तुओं को साधारणतः 'चपरखट' कहा जाता था।[1] कभी-कभी सम्पन्न लोग सोने और चांदी के काम से अलंकृत और रेशमी गद्दों वाले पलंग उपयोग में लाते थे।[2] सम्पन्न हिन्दू कभी-कभी गद्दों के लिए 'सीतल-पाटी' नामक चटाई का प्रयोग करते थे और अपने तकिये राई के दानों से भरते थे। बंगाल के कुछ मलेरियाग्रस्त क्षेत्रों में मच्छरदानियों का भी प्रयोग किया जाता था।[3]

उच्च वर्ग के लोग रेशमी गद्दियों की लम्बी कुर्सियों का उपयोग करते थे। अन्य लोग कटहल की लकड़ी और मूंगे की बनी तथा सूती धागे से बुनी पीढ़ियों का प्रयोग करते थे। सरकण्डों के 'मुण्डा' भी काम में लाए जाते थे।[4] दरिद्र वर्ग के लोग लोहे की बैठकियों से संतोष कर लेते थे और सम्पन्न लोगों के पास दीवान और गद्दियां थीं।[5] सामान्य लोग विभिन्न प्रकार के पंखों का प्रयोग करते थे। सम्पन्न लोग कई प्रकार की चँवर उपयोग में लाते थे।[6]

सुल्तान फिरोज तुगलक की एक निषेधाज्ञा से प्रतीत होता है कि सोने और चांदी की तश्तरियाँ, तलवार के स्वर्णालंकृत कमरबंद, तरकश और प्याले, सुराहियां और कटोरे और अन्य वस्तुएं, जिनका प्रयोग करना इस्लाम शासन के विरुद्ध समझता था, अमीरों में पर्याप्त लोकप्रिय थीं। अन्य विलास की वस्तुओं में, जिनका वैसा ही निषेध था—परदों, तम्बुओं और कुर्सियों पर बनी आकृतियों, भवनों और दृश्यों के चित्रों का उल्लेख मिलता है। यह बिलकुल स्पष्ट किया जा रहा है कि सब सम्पन्न घरों में अनेक बहुमूल्य पलंग बिछावन की सामग्रियाँ और अन्य सब प्रकार के उपस्कर रहते थे।[7]

इस सम्बन्ध में पालतू प्राणियों का भी उल्लेख किया जा सकता है। सारे घरेलू प्राणियों में भारतीय तोता बहुत लोकप्रिय है। कहा जाता है कि इसमें प्राचीन

1. इस शब्द के लिए देखिए ब०, 117। अन्य विस्तृत वर्णन के लिए देखिए कि० रा० द्वितीय, 73।
2. तुलनीय, फ्रेम्पटन, 137; मेजर, 22।
3. तुलनीय, ज० डि० लें०, 1927, 241-2।
4. आबनूस की कुर्सियों के लिए तुलनीय इ० यु०, प्रथम, 216, अन्य वस्तुओं के लिए ब०, 273, ज० डि० लें०, 1927, 243।
5. मु० त०, प्रथम, 125।
6. चवरों के लिए तुलनीय प०, (हि०), 269 ज० डि० लें, 1927, 223-4।
7. उच्चवर्गीय घरों में उपस्कर के लिए देखिए ज०, 100 निषेधों के लिए 'फुतूहात ए-फीरोज़शाही' में सुल्तान का वर्णन तुलनीय है। फु०, 10-11 के अनुसार।

ऋषियों का सारा चातुर्य और भाई तथा मित्र का पूरा स्नेह है। यह चतुरतापूर्वक अनेक मुहावरे और अन्य उचित शब्द दुहरा सकता है। इस प्रकार दरिद्रों और सम्पन्नों, यहाँ तक कि शाही महलों में भी तोता प्रिय प्राणी था।[1] तोते का पिंजड़ा, परिवार के साधनों के अनुरूप, उपस्कर का एक सुन्दर अंग होता था।[2] पालतू प्राणियों में बन्दरों का भी उल्लेख किया जाता है, किन्तु इस प्राणी में अघातक, मधुर और भोला होने के सिवाय और सब गुण थे।[3] विभिन्न प्रकार के कुत्ते लोकप्रिय थे और वे शिकार, घरों की सुरक्षा और पहरे के लिये प्रशिक्षित किये जाते थे।

वाहनों का विषय भी मनोरंजक है क्योंकि लोगों को इसकी व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी। साधारण यात्रा के लिये लोग घोड़े पर जाते या 'गड्डुन' या अनेक प्रकार के चक्केदार गाड़ियों पर यात्रा करते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि खंभायत में अत्यन्त सुन्दर गाड़ियों और रथों का प्रयोग किया जाता था। वे घर के कमरों के समान ढके और बन्द रहते थे; उनकी खिड़कियां सुनहरे चमड़े या रेशमी परदों से सजी रहती थीं; उनके गद्दे रेशम के होते थे।[4] इसी प्रकार उनके लिहाफ़ और गद्दे बहुमूल्य होते थे। स्त्रियां आवरणयुक्त वाहनों में घूमती थीं। कम दूरी के लिये लोग स्त्रियों के लिये डोला किराए पर कर लेते थे। डोला बांसों पर सधा हुआ और पालकी के समान होता था। इसे कहार लोग आठ-आठ की टोलियों में पारी-पारी से उठाकर चलते थे। इसका 'डोली' नामक एक छोटा रूप भी था जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। पालकियां उच्चतर वर्ग के लोगों द्वारा विशेषतः लम्बी दूरी के लिये प्रयुक्त की जातीं थीं। विश्राम करने के पड़ावों में सरायों और दुकानों, आदमियों और पशुओं की टोलियों और अतिरिक्त वाहनों की व्यवस्था रहती थी।[5]

---

1. मलिक मुहम्मद जायसी की कृति में पद्मावत के प्रसिद्ध तोता हीरामन का वर्णन देखिए। नाहर द्वारा एक तोते की भेंट के लिए तिमूर का वर्णन (म०, 209) देखिए। इस तोते को अनेक राजाओं और शासकों का साहचर्य मिला था। मुहम्मद हुसैन आजाद कृत 'आब-ए-हयात' (उर्दू) नामक उर्दू भाषा के इतिहास में हुमायूँ के गुजरात अभियान के समय रूमीखान के विश्वासघात का तोते द्वारा निन्दात्मक वर्णन, देखिए—लाहौर, 1883, पृष्ठ 18-19।
2. बंगाली कवि चण्डीदास द्वारा एक संत तोते का वर्णन देखिए। पक्षी के लिए बैठकी, प्याले और पात्र, पक्षी के पैर में बँधी घुंघरू सब सोने की थी, जिससे पिंजरा 'सूर्यदेवता के रथ' के समान चमकता था।' ज० डि० लै०, 1930, 266-7 के अनुसार।
3. अमीर खुसरो का बन्दरों का वर्णन, देखिए इ० खु०, प्रथम, 179।
4. बरबोसा, प्रथम, 141 का वर्णन तुलनीय है।
5. इब्नबतूता, कि० रा०, द्वितीय, 75 का वर्णन; और अमीर खुसरो, इ० खु०,

हम इस वर्णन से अमीरों और सम्पन्न वर्गों की घरेलू सुविधाओं का कुछ अनुमान लगा सकते हैं कि जब जौनपुर के सुल्तान हुसैन के कुछ अमीर उसके शत्रु सुल्तान सिकन्दर लोदी के हाथ में पड़ गये तब सुल्तान सिकन्दर लोदी ने प्रत्येक अमीर के लिये एक दोहरे तम्बू और चंदोवा, एक साधारण इकहरे तम्बू, एक स्नानागार, दो घोड़े, 10 ऊंट (सम्भवतः आवागमन के लिये), 10 सेवक और एक पलंग और बिछावन की व्यवस्था की।[1] पश्चिमी समुद्री तट के व्यापारियों की रुचि उपस्कर के सम्बन्ध में अति परिष्कृत थी।[2]

III. वेशभूषा और वस्त्र—हिन्दुस्तान के विभिन्न सामाजिक और धार्मिक समूहों की वेशभूषा में कोई सामंजस्य नहीं था। कम-से-कम वस्त्रों के उपयोग में और निम्न वर्ग में सामंजस्य था। हम बादशाह या सुल्तान की शाही वेशभूषा और अन्य उपकरणों का उल्लेख कर चुके हैं। निजी जीवन में सुल्तान और अन्य श्रेष्ठ अमीरों की वेशभूषा में सामग्री की उत्कृष्टता और वस्त्र-परिवर्तन की त्वरता को छोड़कर कोई अन्य अन्तर नहीं था। शिरोवस्त्र के लिये दिल्ली के प्रारम्भिक सुल्तान साधारणतः 'कुलाह' या ऊंची तारतारी टोपी पहिनते थे। कहा जाता है कि जलालुद्दीन पगड़ी पहनते थे। देह पर वे 'काबा' का चुस्त अंगरखा पहनते थे जो ऋतु के अनुसार मलमल या उत्तम ऊन का होता था। बाद में पेशवज़ और अंगा इसी के आधार पर बनाए गए। शीत ऋतु में शासक यदा-कदा अंगरखे के ऊपर 'दगला' नामक लबादा पहनता था, जो धुनी हुई रूई या अन्य वस्तु से भरे हुए चोगे के समान होता था। पश्चिमी देशों से निकटतर सम्पर्क होने पर सुल्तान फरगुल या रोएंदार कोट उपयोग में लाने लगे। मुगल सम्राट हुमायूं ने लबादे के एक नये स्वरूप का आविष्कार किया, जो कमर में कटा होता था और सामने खुला रहता था। हुमायूं इसे ज्योतिष-विज्ञान की अपनी रुचि के अनुसार कई रंगों में काबा से ऊपर पहनता था। यह कोट कई अवसरों पर अमीरों और अन्य लोगों को खिलअत के रूप में प्रदान किया जाता था। साधारण कमीजें, शलवार और हल्के तथा सुन्दर जूते उपयोग में लाए जाते थे।

पांचवां, 93 के संदर्भ भी देखिए। अमीर खुसरो की देवगिरि से दिल्ली तक पालकी द्वारा आठ दिन की यात्रा भी तुलनीय है, जब उस पर मुबारकशाह खिलजी को पदच्युत करने का षड्यंत्र करने का आरोप लगाया गया था (व० 40 के अनुसार)।

1. तारीख़-ए-दाऊदी, पादटिप्पणी, 29 का वर्णन तुलनीय है।
2. बरबोसा (जिल्द 147-8) का वर्णन तुलनीय है, किस प्रकार गुजरात के व्यापारी चीनी के बर्तन उपयोग में लाते थे। राण्डेर के लोगों के पास अनेक प्रकार के चीनी के सुन्दर पात्रों की कई आलमारियां भरी रहती थीं।

रात्रि में भिन्न वस्त्र पहने जाते थे।[1]

सुल्तान के अमीरों की श्रेणी के अमीर सार्वजनिक अवसरों पर खिलअत पहनते थे। इस सरकारी पोशाक में शिरोवस्त्र के लिये कुलाह, जरी और मखमल के काम का एक अंगरखा और श्वेत कमरबन्द सम्मिलित रहते थे। दर्जा-प्राप्त अमीर साधारणतः बहुमूल्य साज वाले उत्तम तारखारी घोड़े की सवारी करता था और कुछ अनुचर उसके आगे-पीछे चलते थे।[2] निजी जीवन में अमीर साधारणतः छोटी हिन्दू पगड़ी (पाग), किसी उत्तम बुनाई का अंगरखा और साधारण कमीज और तंग पायजामा पहनते थे। वनयाइन या वंडी मसलिन अथवा अन्य किसी बढ़िया कपड़े की होती थी। सोने की पोशाकें, जैसा कि हम देख चुके हैं,—उपयोग में लाई जाती थीं और सामान्यत. प्रति सप्ताह बदली जाती थीं।[3] निम्नतर अमीर वर्ग और अन्य वर्ग के लोगों की वेशभूषा का तदनुसार अनुमान लगाया जा सकता है।

विशेष वर्गों की अपनी स्वतन्त्र वेशभूषा होती थी। सैनिक के लिये कोई विशेष वर्दी नहीं थी। उसके शस्त्र ही उसे दूसरे लोगों से भिन्न करते थे।[4] शाही दास कमरबन्द, जेब में रुमाल, लाल जूतों और साधारण कुलाह से जाने जाते थे। सरकारी अधिकारी सामान्यतः अपनी अंगुलियों में चांदी या सोने की मुद्रायुक्त अंगूठी पहने रहते थे।[5]

---

1. काबा के पूर्वोल्लेख के लिये तुलनीय है रेवर्टी, 643, सामग्रियों के लिये आ० अ०, प्रथम, 102, 103; दगला के संदर्भ के लिये देखिए व० 273; हुमायूं लबादे के नये आकार के लिये देखिए ख्वांदमीर, 141-2 साधारण वस्त्रों और रात्रि के वस्त्रों के लिए तुलनीय है अ० ना०, प्रथम, 325। साधारण हल्के जूतों का एक भेद दिल्ली में सलीमशाही जूतों के नाम से अभी भी प्रसिद्ध है।
2. तुलनीय, व० (पाण्डु०) 73। जरी के काम के और मोती जड़े हुए कुलाह के लिए तुलनीय कु० खु०, 774।
3. अमीरों के साधारण वस्त्रों के लिए देखिए वा० मु०, 37। रेशम और मखमल के अंगरखों और श्रेष्ठ तंजेब की कमीजों और भीतर पहने जाने वाले वस्त्रों के लिए दे० रा०, 301 भी तुलनीय है। हिन्दू पगड़ी (पाग) का उल्लेख अमीर खुसरो द्वारा एक प्रसिद्ध कविता 'आब-ए-हयात' में किया गया है। मुहम्मद हुसैन आजाद, पृष्ठ 52 के लाहौर संस्करण (उर्दू) 'आब-ए-हयात' के अनुसार।
4. उदाहरण के लिये तुलनीय वा० मु०, 32-3। तुलनीय मु० त०, प्रथम, 459 किस प्रकार प्रारम्भ में मुग़लों की घुड़सवार सेना का शिरोवस्त्र भारी पगड़ी थी।
5. सरकारी मुद्रायुक्त अंगूठी के लिये तुल०, 12; दास की पोशाक के लिये अ०, 268 तुलनीय है। अन्य वर्गों की पोशाकों के सम्बन्ध में महुअन के वर्णन के लिये

पोशाकों में उतनी आश्चर्यजनक भिन्नता कहीं नहीं है जितनी मुस्लिमों के धार्मिक वर्गों में है। साधारण रूढ़िवादी मुसलमान केवल मलमल जैसी सादी वस्तुओं के कपड़े पहनने का इच्छुक था और वह शरियत के निर्देशानुसार रेशम, मखमल, जरी या रोएदार और रंगीन वस्त्रों से दूर रहना चाहता था। उसकी पगड़ी साधारणतः सात गज लम्बी होती थी और यदि इसके छोर होते तो पीछे लटकते दिखाई पड़ते। यह साधारण कमीज और तंग पायजामा पहनता था। रूढ़िवादी मुसलमान अपनी शारीरिक शुद्धता बनाये रखने के लिये मोजे और जूते पहना और उन्हें धोते समय कुरान की समुचित आयतें (कद्र, अध्याय 96) पढ़ना न भूलता था। वह लोहे की अंगूठी के अतिरिक्त कुछ धारण न करता था।[1] वेशभूषा के मामले में योगी लोग वर्गात्मक न होकर व्यक्ति-वैचित्र्य रखते थे। वे लोग भिन्न वेश धारण करते थे। कुछ अपने सिर पर ऊंची दरवेश टोपी 'कलन्सुवाह' और पैरों पर लकड़ी की पादुकाएं पहनते थे और अपनी देह पर केवल एक बिना सिला वस्त्र लपेट लेते थे।[2] अन्य विद्वानों के समान सूफी ढीला ऊनी चोगा पहनना पसन्द करते थे।[3]

बंगाल और गुजरात यद्यपि शेष देश से अधिक भिन्न नहीं थे, तथापि उनमें कुछ विशिष्टताएं थीं। उदाहरणार्थ, बंगाल का मुस्लिम कुलीन-वर्ग सफेद कपड़े की सामान्य छोटी पगड़ी, गले की पट्टी वाला लम्बा अंगरखा, चमड़े के नोकदार जूते, चौड़ा और रंगीन कमरबन्द और साधारण कमीज और पायजामा पहनता था। अन्य अवसरों पर शिरोवस्त्र के रूप में वह दस पहल वाली टोपी का उपयोग करता था।[4] गुजरात में, जहां मूरों का प्रभाव था, भारी मूरिश पगड़ियां; ढीले जाँघिये, घुटनों तक के चमड़े के लम्बे जूते और अंगूठियां लोकप्रिय थीं। सेवक साधारणतः अपने स्वामी के पीछे कटार या अन्य हथियार लेकर चलते थे।[5]

ज० रा० ए० सो०, 1895, 532। बंगाल का विदूषक (सम्भवतः दिल्ली के भी) अपनी कमर में एक रंगीन रेशमी रूमाल बांधता था। और काले धागे के कसीदे वाला अंगरखा पहनता था। रंगीन पत्थरों और मूंगे के दानों की एकलड़ी उसके कन्धों से लटकती रहती थी और वह गहरे लाल पत्थरों का एक बाजूबंध अपनी कलाई में पहनता था। तुलनीय है अमीर खुसरो का वर्णन कि कैसे एक मिराशी था, पेशेवर, संगीतकार, अपने, विशाल, और ढीले ढाले पायजामे के लिये प्रसिद्ध था। इ० खु०, चतुर्थ, 48 के अनुसार।

1. तुलनीय, त०, 12-13।
2. ब०, 112; आ० सि०, 12 के निर्देश।
3. तुलनीय, कि० रा०, II, 90।
4. तुलनीय, नोटिसेज इ०, 313।
5. तुलनीय, बरबोसा, द्वितीय, 147; प्रथम, 120 भी।

जहाँ तक हिन्दू पोशाकों का प्रश्न है, हम पहले ही कह चुके हैं कि उच्च वर्गीय मुस्लिमों में हिन्दू पगड़ी लोकप्रिय हो रही थी। हिन्दू कुलीन-वर्ग पोशाकों के सम्बन्ध में पूर्णतः उच्चवर्गीय मुस्लिमों का अनुकरण करता था। यदि कोई व्यक्ति उच्चवर्गीय हिन्दुओं के साम्प्रदायिक चिह्न या कुछ विशिष्ट अलंकार (जैसे राजपूतों में कान के कुंडल) हटा देता, तो मुस्लिम अमीर और हिन्दू अमीर में अन्तर करना कठिन हो जाता।[1] अन्य विभिन्न सामाजिक वर्गों में ब्राह्मण और साधु अपने सार्व-जनिक पहनावे और पोशाक के लिए विशिष्ट थे। उत्तरी भाग का ब्राह्मण अपने मस्तक पर तिलक लगाता और यदि सम्भव हुआ तो सुनहरी किनारी की धोती, पहनता था। वह अपने हाथ में एक बैसाखी और पैरों पर पादुकाएँ—सम्भवतः बहु-मूल्य धातु की खूँटी वाली—धारण करता था और शहर में सबको आशीर्वाद देता फिरता था।[2]

पुरुष-स्त्री साधुओं और जोगियों का कोई निर्धारित वेश नहीं था। प्रदर्शन में अधिक रुचि रखने वाले साधु ओढ़ने के लिए मृगछाला रखते थे, किन्तु महात्मा पुरुष ऐसे आडम्बर और दंभ से दूर रहते थे।[3] कुछ साधु अपनी वस्त्र-सम्बन्धी तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक कौपीन (लंगोटा) और एक तून्बी से संतोष कर लेते थे।[4] अन्य साधु जो अपने सम्प्रदाय के नियमों का पालन करते थे, सामान्यतः अपने सर घुटाते, कानों में भारी बालियाँ पहनते, हरिण का एक सींग अपने पास रखते और अपनी देह में राख लपेट लेते थे। अपनी साज-सज्जा में वे कुछ निर्धारित

1. उदाहरणार्थ टॉड, द्वितीय, 759 में राजपूत पोशाक का वर्णन तुलनीय। जैसलमेर राज्य की पोशाक का टाड का वर्णन भी तुलनीय। 'भट्टियों की पोशाक में सफेद कपड़े या छींट का घुटनों तक का 'जामा', कमरबंद जो इतना ऊँचा बांधा जाता था कि कमर का अस्तित्व ही प्रतीत नहीं होता था; अत्यन्त ढीले झोल वाले टखनों के पास चुस्त चुन्नटदार पायजामे, और सामान्यतः गहरे लाल रंग की एक पगड़ी, जो सिर से विधिवत् एक फुट ऊंची नोकदार उठी रहती थी, सम्मिलित थे। कमर में एक कटार खोंसी रहती थी; एक ढाल हरिण के चमड़े के पट्टे से बाँएं कंधे से लटकती रहती थी और तलवार भी उसी प्रकार के पट्टे से कसी रहती थी। द्वितीय, 1253-4 के अनुसार। पोशाकों के कुछ पुराने नामों और आजकल प्रचलित पोशाकों के लिए ग्रियर्सन, बिहार पीजेंट लाइफ, 143-5 तुलनीय।
2. तुलनीय प०, 176।
3. तुलनीय सरकार, 114।
4. तुलनीय वहीं, 54; वस्त्रों के सम्बन्ध में मानवीय निर्लज्जता के प्रति लल्ला की घोर घृणा के लिए देखिये टेम्पल, 173। वह दिगम्बर विचरण करना पसन्द करती। नग्न साधुओं का अन्य संदर्भ भी देखिये। प०, 238।

वस्तुएँ; जैसे, एक गेरुआ चोगा, एक चक्र, एक त्रिशूल, जपने की एक माला, उन्नाव की माला, काष्ठ-पादुकाएँ, एक छतरी, एक मृगछाला और एक भिक्षापात्र भी रखते थे।[1] नानक के अनुयायियों ने साधुओं की इन विशेषताओं की उपेक्षा कर दी और उन्होंने अन्य लोगों के समान साधारण पोशाक पहनना आरम्भ कर दिया।

हिन्दू वेशभूषा की अन्य सामान्य विशेषता यह थी कि लोग साधारणतः नंगे सिर और नंगे पैर रहते थे। कमर के नीचे एक धोती, या पंचा पर्याप्त और सम्माननीय मानी जाती थी।[2] गुजरात में कुछ लोग शिरोवस्त्र के लिए लाल रूमाल का उपयोग करते थे।[3] कुछ गुजराती बनिए रेशमी या सूती लम्बी कमीज और नोकदार जूते और रेशम के छोटे कोट, जो जरी के भी रहते थे, पहनते थे। गुजरात के ब्राह्मण एक धोती पहिनते थे और सामान्यतः कमर के ऊपर खुले बदन ही चलते थे, केवल शरीर पर तिहरा जनेऊ डाल लेते थे।[4]

स्त्रियों के वस्त्रों के सम्बन्ध में वर्णन करने जैसी बात बहुत कम है। उस समय केवल दो ही प्रकार की पोशाकें प्रचलित थी। एक में एक लम्बी चादर या मलमल का उत्कृष्ट कपड़ा (आधुनिक साड़ी के समान) और छोटी बाहों वाला एक चोला, जो पीठ में कमर तक जाता था, साथ ही युवतियों के लिए या विवाहित महिलाओं के लिए गहरे रंग की एक अतिरिक्त अंगिया सम्मिलित थी। इस पोशाक से यह लाभ था कि इससे उनके हाथ स्वतन्त्र हो जाते थे और सिर साड़ी के पल्लू से थोड़ा ढंका रहता था।[5] अन्य पोशाक में, जो दोआब में अधिक लोकप्रिय थी, एक लँहगा, एक चोला और ऊपर एक अंगिया तथा साथ में एक दुपटिया, जो कभी-कभी सिर ढकने के काम में लाई जाती थी, सम्मिलित थी।[6] गुजरात की महिलाएं सोने की किनारी वाले चमड़े के जूते पहनती थी।[7] अन्य प्रान्तों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है, किन्तु सम्भावना ऐसी है कि पुरुषों से अधिक स्त्रियां जूते पहनती थी। उच्च वर्गों की मुस्लिम महिलाएं साधारणतः ढीला गरारा, कमीज, लम्बा दुपट्टा और बुरका पहनती थीं। स्त्रियों की पोशाक के ये अंग हिन्दुस्तान में प्रायः अभी भी विद्यमान हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि नीला रंग शोक-सूचक रंग था और विशेष

1. सरकार, III, पृ०, 273, ज० डि० लै०, 1027, 35; शाह, 164; मैकालिफ, प्रथम, 30-1, 94, 102, 162, में एक वर्णन देखिए।
2. तुलनीय, वरथेमा, 109।
3. तुलनीय, बरबोसा, प्रथम, 113, 116।
4. तुलनीय, बरबोसा, प्रथम, 113-4; पृ० वां, पांचवां।
5. तुलनीय, फ्रेम्प्टन, 136।
6. तुलनीय, पद्मावत, 214; आ० अ०, द्वितीय, 183; । सुदामाचरित्र, 10।
7. तुलनीय, फ्रेम्प्टन, 136।

मामलों को छोड़कर स्त्रियां दैनिक उपयोग में उस रंग की पोशाक नहीं पहनती थीं।[1] अन्य बातों में स्त्रियां भड़कीले रंगों के कपड़े और छपाई तथा चित्रकारी वाले वस्त्रों की शौकीन थीं।[2]

यह बात ध्यान में रखते हुए कि भारतीय पोशाकों की भिन्नता अभी भी ऐसे कुछ लोगों को खटकती है जो सम्पूर्ण भारतवासियों के लिए एक ही पोशाक जारी करने के बहुत इच्छुक रहे हैं, यह कहना ठीक होगा कि गुरु नानक ने इस समस्या की ओर पर्याप्त ध्यान दिया था। सिख परम्परा में उल्लेख मिलता है कि वे स्वयं हिन्दू और मुस्लिम पोशाकों के कई सम्मिश्रण उपयोग में लाते थे, किन्तु वे प्रत्येक के विशिष्ट तत्वों में सामंजस्य स्थापित करने में असफल रहे।[3] अमीर वर्ग ने, जैसा कि हम इंगित कर चुके हैं, अपने लिए क्रमशः एक बीच की पोशाक बना ली और दरिद्र लोग प्रायः निर्वस्त्र ही घूमते थे।

कुछ अभिलेखों से धर्मशास्त्रियों के विशिष्ट अहंकार का पता चलता है कि किस प्रकार उन्होंने अपनी विशेष पोशाक के संरक्षण के प्रयत्न किए। फीरोजशाह तुग़लक के शासनकाल में संकलित वैधानिक संहिता में यह भी सुझाव दिया गया है कि हिन्दुओं को मुस्लिम धर्म-शास्त्रियों की विशेष पोशाक पहनने का निषेध करने के लिए राज्य को क्रियात्मक नियम बनाने चाहिए।[4] 'फिक्-ए-फीरोज़शाही' के इन नियमों को तर्कसंगत सिद्ध करने के लिए हमें हिन्दुओं की ओर से कभी कोई प्रयत्न का उल्लेख नहीं मिलता। यह अत्यन्त संदेहास्पद है कि ऐसा परिवर्तन सुविधाजनक या वांछनीय भी था। यद्यपि हिन्दुस्तान में पोशाकों में संशोधन होते रहे हैं, पुरुषों और स्त्रियों के पुराने वेष बहुत सीमा तक वहीं बने हुए हैं।[5]

---

1. तुलनीय, अ० ना०, प्रथम, 155; आ० अ०, द्वितीय, 171-2।
2. अमीर खुसरो का प्राक्कलन देखिए, इ० खु०, 274। वस्त्र निर्माण के सिलसिले में 'रंगीन कपड़े' का उल्लेख किया जा चुका है।
3. गत शताब्दी में दक्षिण में नानकपंथियों की वेशभूषा का वर्णन द्रष्टव्य है। वे अपने गले के चारों ओर रंगीन धागे (सेली) पहनते थे; मस्तक के मध्य में काजल का एक चिह्न लगाते; अपने चेहरों पर चन्दन का लेप करते; तावीज के रूप में छोटी कुरान लेकर चलते और घोंघों का हार पहनते थे। क्रुक के 'हेर्क्लाट्स इस्लाम', 179 के अनुसार। गुरु नानक द्वारा पहनी जाने वाली पोशाकों के विभिन्न मिश्रणों के लिए मैकालिफ, प्रथम, 58, 135, 174, 163 तुलनीय है।
4. फि० फी०, 418 व० में इस प्रश्न पर चर्चा तुलनीय है, जो इसकी शुद्ध सैद्धान्तिक विशेषता प्रकट करती है।
5. देखिए किस प्रकार फिलहाल ही पंजाब की हिन्दू स्त्रियों द्वारा मुसलमानी तंग पायजामा अपना लिया गया है। इम्पी० गै० इण्डि०, बीसवां, 293 के अनुसार। अन्य पोशाकें प्रायः वे ही हैं, जो पहले थीं—उदाहरणार्थ लहँगा का प्रयोग उच्च

IV. **सौन्दर्य-प्रसाधन, शृंगार और अलंकार**— फुरसती वर्गों में स्त्री-पुरुषों को शारीरक आकर्षण में वृद्धि करने की विशेष सुविधा प्राप्त थी। रूढ़िवादी मुस्लिमों और सूफ़ियों के प्रभाव के कारण शारीरिक शृंगार को और अधिक प्रोत्साहन मिला। धर्मशास्त्री की दाढ़ी और उसके लम्बे और लहराते हुए केशों में, अमीरों और सम्पन्न व्यक्तियों के स्त्रियोचित चेहरों की अपेक्षा जिनके बारे में प्रति पैगम्बर ने असहमति प्रकट की थी—शृंगार की अधिक गुंजाइश थी।[1] दाढ़ी पर कंघी करना और इत्र लगाना तथा बहुमूल्य पोशाकें पहनना सम्मान और कुलीनता के लक्षण समझे जाते थे।[2] यौवन बहुत पीछे छूट जाने पर भी सब पर यही धुन सवार थी कि वे कम आयु के दीखें। सम्माननीय जन इसमें सफलता पाने के लिए कुछ उठा न रखते थे।[3]

स्नान-सम्बन्धी शृंगार के लिए विस्तृत व्यवस्था की जाती थी। हिन्दू साधारणतः सिर पर तिल का तेल लगाते थे और स्नान के पहले सिर को मुल्तानी मिट्टी से धो लेते थे। स्नान साधारणतः बहते हुए जल में किया जाता था। स्नान के पश्चात् हिन्दू अपनी देह पर इत्र मलते और बालों में एक प्रकार का सुगन्धित चूर्ण

वर्ग की राजपूताना की स्त्रियों द्वारा किया जाता है (टॉड, द्वितीय, 758, 9, 1253-4 के अनुसार); साड़ी बंगाल और बम्बई में सार्वभौम रूप से पहनी जाती है (इम्पी० गैजे० इण्डि०, चौबीसवां, 174, बीस, 293)। मरदाने कपड़ों में, धोती और पगड़ी (बड़ी और छोटी, दोनों) सार्वभौम रूप से प्रयुक्त की जाती है। अभी भी प्रचलित पोशाकों के नामों के लिए ग्रियर्सन, बिहार पीजेंट लाइफ, 147-9 तुलनीय है।

1. उदाहरणार्थ गुप्ता, बंगाल, इ०, 91 तुलनीय है; मुसलमानों की विपुल दाढ़ी कभी-कभी सीने तक बढ़ आती थी। दिल्ली के सूफी संत निजामुद्दीन औलिया द्वारा अपने अनुयायियों को कंघी और दातौन का प्रयोग करने के अनुदेश के लिए देखिए ब०, 248।
2. तुलनीय है ब०, 137, जहाँ बरनी जनसाधारण, 'नाशुक्रानियों, को दोषी ठहराता है, क्योंकि वे भी अपनी दाढ़ी में कंघी करते थे, इत्र का उपयोग करते और सुन्दर पोशाक पहनते थे।
3. तुलनीय, अमीर खुसरो द्वारा खिजाब लगाने का उपहास, म० अ०, 173; और रात्रि में सुरमे के प्रयोग का उपहास वही, 166। अधेड़ स्त्रियाँ अपना अनुपम सौन्दर्य बनाए रखने के लिए कठोर यत्न करती थीं। वे अपनी भौहों को रंगती थीं, चेहरे पर चूर्ण (पाउडर) लगातीं और आँखों में सुरमा आँजती थीं, किन्तु सम्भवतः इसका परिणाम अधिक लाभदायक नहीं होता था, क्योंकि अमीर खुसरो ताने के रूप में उसे शारीरिक दिखावे की अपेक्षा पवित्र कार्यों में अपनी सौन्दर्य-वृद्धि करने की सलाह देता है। (वहीं, 186, 194 के अनुसार)।

लगाते थे। साबुन के स्थान पर रीठा, आँवले आदि का प्रयोग किया जाता था। कस्तूरी और चन्दन के लेप का प्रयोग स्त्री-पुरुष दोनों करते थे, यद्यपि स्त्रियां कुमकुम, अगरु और विभिन्न सुगन्धित तेलों में अधिक रुचि रखतीं थीं।[1] गुजरात में सुवासित लेपों से और कभी-कभी केशर तथा इत्र मिले चन्दन के लेप से अपना अभिषेक करती थीं।[2] दक्षिण में स्त्रियां श्वेत चन्दन को लकड़ी, अगरक, कपूर, कस्तूरी और केशर मिश्रित कर को उसमें गुलाबजल मिलाकर बढ़िया लेप तैयार करती थीं।[3] लोभान साधारणतः घरों में सब सार्वजनिक समारोहों में जलाया जाता था।[4] यदि कोई व्यक्ति किसी से मिलने जाता था तो वह अपने मस्तक पर तिलक का चिह्न, केशों में कुछ फूल या अन्य इत्र लगा लेता और पान चबाता था।[5]

सुन्दर दीखने के लिए स्त्रियों को कम बहानों की आवश्यकता होती थी। वे अपना सम्पूर्ण नहीं तो अधिकांश समय शारीरिक सौन्दर्य और उसके प्रदर्शन के लिए लगाती थीं और वे इसमें सफल भी होती थीं।[6] केश-विन्यास सावधानी से किया जाता था, यद्यपि इतने विस्तार से नहीं, जितना वर्मा में किया जाता था।[7] शारीरिक सज्जा की वस्तुओं में हम आंखों के लिये सुरमे, माँग भरने के लिए सिंदूर, स्तनों के लिए कस्तूरी और ओठों के लिए पान, दांतों के लिए मिस्सी, भौंहों के लिए एक प्रकार के काले चूर्ण और हिन्दू युवती के लिए टीके के प्रयोग का उल्लेख कर सकते हैं।[8] मेंहदी का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया था और इसका प्रयोग शीघ्र ही सार्वभौम रूप से लोकप्रिय हो गया।[9] दक्षिण में स्त्रियां इससे भी आगे बढ़ गईं और वे कृत्रिम

---

1. तुलनीय, स्नान-व्यवस्था के लिए कि० रा०, प्रथम, 233; स्नान के लिए तेल की माँग के लिए मुकुन्दराम की परेशानी भी देखिए। गुप्ता, बंगाल, इ० 63; ज० डि० लैं०, 1927, 39 भी।
2. गुजरात के लिए तुलनीय बरबोसा, प्रथम, 141, 113।
3. वहीं, 205।
4. उदाहरणार्थ तुलनीय, इ० ख़ु०, द्वितीय, 314।
5. तुलनीय, बरबोसा, प्रथम, 205।
6. उदाहरण के लिए भौंहों के गहरे रंग, लम्बे लहराते केशों, काली पुतलियों वाली विशाल आंखों और जैतून जैसे रंग के लिए म० अ०, 200 में एक हिन्दू स्त्री का वर्णन तुलनीय है।
7. तुलनीय, कै० हि० इण्डि०, तृतीय, 549 किस प्रकार आवा की रानी की एक सेविका ने आवा राजमहल में प्रयुक्त होने वाली केश-विन्यास की कम-से-कम 55 शैलियों की गणना की थी।
8. देखिए प० व०, एक सौ बत्तीसवां, एक सौ सत्रहवां क्रम्प, 41-43।
9. सीस्तान में मेंहदी के पौधे की खोज के लिए तुलनीय रेवर्टी, 1124; मेंहदी के प्रयोग के लिए अमीर खुसरो और मलिक मुहम्मद जायसी में अनेक संदर्भ हैं।

केशों का प्रयोग करने लगीं। उत्तर में स्त्रियां और पुरुष दोनों स्वाभाविक लम्बे केश रखते थे।[1]

V. आभूषणों का खुले आम प्रयोग—अलंकार स्त्री-पुरुष दोनों के शरीर की सजावट के महत्वपूर्ण अंग थे। कान में छल्ले पहनना अभिजात कुल का द्योतक था। राजपूत योद्धा को उसके ऊपर की ओर ऐंठे हुए गलमुच्छों और उसके कान के छल्लों से पहचाना जा सकता था।[2] गुजराती बनिये अनेक बहुमूल्य पत्थरों वाले *कान के सोने के छल्ले, अंगुलियों में कुछ अंगूठियां और कपड़े के ऊपर एक सुनहली* करधनी पहिनने के शौकीन थे।[3] पुरुषों के शेष अलंकार—यदि उन्हें अलंकार कहा जाय—, तलवारें, कटारें और अन्य हथियार थे। सर से लेकर पैर तक प्रायः प्रत्येक अंग में अलंकार धारण करना हिन्दुस्तान की स्त्री-जाति की विशेष निर्बलता रही है और अभी भी यह कुछ सीमा तक है।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि सजावट के अलंकारों के चुनाव में उत्कृष्टता और सुन्दरता की अपेक्षा परिमाण और बाहुल्य का प्रमुख स्थान था। इन मामलों में स्त्रियां स्वाभाविक सौंदर्य के समर्थकों की बात का अनुकरण करने में अत्यन्त शिथिल रहीं, जो सब या अधिकांश अलंकारों को त्यागने के समर्थक थे।[5]

---

1. दक्षिण के लिए देखिए फेम्प्टन, 138, मेजर 23। कुछ स्त्रियां अपना सिर रंगी हुई पत्तियों से ढक लेतीं थी, कुछ काले रंग के कृत्रिम केश लगाती थी। उत्तर के लिये तुलनीय फेम्प्टन, 138, किस प्रकार स्त्रियां घने, लम्बे और लहराते केश रखतीं, उनकी चोटियां गूंथ लेतीं और उन्हे अपने सिर पर 'नाशपाती के समान' सजाती थीं। इस जूड़े के ऊपर वे सोने का एक कांटा लगा लेती, जिसमें से कुछ सुनहरे तागे लटकते रहते थे। लम्बे केश रखने की परम्परा पुरुषों में भी पर्याप्त लोकप्रिय थी। ज० डि० लैं०, 1927, 9। गुजराती बनिए लम्बे केश रखते थे और पगड़ी के नीचे उनकी चोटियां और जूड़े बनाते थे। बरबोसा, प्रथम, 113 के अनुसार।
2. तुलनीय, प०, 619।
3. तुलनीय, बरबोसा, प्रथम, 113 का वर्णन।
4. तुलनीय, रायल इन्स्टीट्यूट आफ इन्टरनेशनल अफेयर्स को दिए गए श्री जोसेफ किचिन के प्रतिवेदन के सारांश के लिए दे० दि आब्सर्वर, लन्दन, जनवरी 3, 1932; जिसमें भारत ने एक शताब्दी से भी कम समय में 60 करोड़ पौंड कीमत का सोना मुख्यतः जवाहरातों और अलंकारों—'कान के छल्लों, नथुनियों, कंगनों और बिछियों या अन्य चीजों पर जिन्हें एक स्त्री अपनी देह पर धारण कर सकती है,'—के रूप में पचा लेने का आकलन किया है।
5. तुलनीय है अमीर खुसरो, दे० रा०, 223 के विचार कि किस प्रकार स्वाभावतः सुन्दर स्त्री को किसी भी अलंकार या कृत्रिम सजावट की आव-

हिन्दुस्तानी नारी के लिये सुहाग या विवाहित जीवन का तात्पर्य समग्र देह पर अलंकारों का प्रयोग था। केवल वैधव्य की अवस्था में वह अपने अलंकार और जवाहरातों को उतार फेंकती और अपने सर से सिंदूर की लाल रेखा मिटा देती थी।[1] वास्तव में ये सारी सुख सुविधाएं जीवन-उत्सर्ग का एक अंश था।

सिर, हाथों, नाक, कानों, अंगुलियों, कमर, जंघाओं और पैरों पर पहने जाने वाले अलंकारों के प्रकारों की गणना करना कठिन है।[2] अतः हम नारी-शृंगार की उन नीचे लिखी सोलह वस्तुओं का उल्लेख करके अपना वर्णन समाप्त करेंगे जिन्हें अबुलफज्ल एक सम्माननीय महिला के लिये आवश्यक मानता है : स्नान, तेल-मालिश, केश-विन्यास, मस्तक पर कोई अलंकार और चन्दन का लेप, उपयुक्त पोशाक, टीका, आँखों में सुरमा, कानों के लिये कर्णफूल, मोती या सोने की नथुनी, गले के लिये कुछ अलंकार या हार, हाथों के लिये मेंहदी, कमर में जहां तक हो सके घुंघरूदार करधनी, पैरों के लिये कुछ अलंकार, ताम्बूल-चर्वण और अन्त में व्यवहार कुशलता।[3] पुरुष-सज्जा की भी एक ऐसी ही सूची इस प्रकार दी गई है : दाढ़ी, स्वच्छ और यथोचित रूप से स्वच्छ देह, मस्तक पर तिलक-चिह्न, शरीर पर इत्र और सुगन्धित तेल की मालिश, कानों के सोने के छल्ले, एक उपयुक्त अंगरखा (काबा) जिसके बाईं ओर तस्मा हो, पगड़ी के सुनहरे छोर या सामने लगा हुआ मुकुट, म्यान में रखी एक तलवार जिसे हाथ में रखा जाता था, कमर में खोंसी हुई एक कटार, एक अंगूठी, समुचित जूते और अन्त में ताम्बूल चर्वण।[4]

VI. **भोजन**—हम भोजन और भोजनाचार से सम्बन्धित कुछ सामान्य अभ्युक्तियों के पश्चात् यह चर्चा समाप्त करेंगे। कई प्रकार के भोजन तैयार करने में बहुत सावधानी बरती जाती थी।[5] जन-सामान्य अपनी मांस-प्रियता के लिये प्रसिद्ध

यकता नहीं होती। वह गले और कान के लिए कुछ हलके रत्नजटित अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का समर्थन नहीं करता था।

1. तुलनीय प० वा०, एक सौ सत्रहवां।
2. तिमूर, म०, 289 का वर्णन तुलनीय। दिल्ली की लूट में उसने अन्य चीजों के साथ स्वर्णाभूषण विशेषतः जड़ाऊ विशाल मात्रा में एकत्र किये। विभिन्न अलंकारों की गणना के लिए देखिए आ० अ०, द्वितीय, 183-5; ज० डि० लैं०, 1927, 41-6; कि० रा० प्रथम, 236-7। वर्तमान काल के अलंकारों के लिए तुलनीय ग्रियर्सन, विहार पीजेंट लाइफ, 115-6, जहां लगभग समान नाम और शब्दावली मिलती है।
3. देखिये आ० अ०, द्वितीय, 183।
4. वहीं।
5. हमने भोजों, ज्योनारों के वर्णन या उत्तम पकवानों की गणना का उल्लेख नहीं किया है, इन्हें मलिक मुहम्मद जायसी की कृति, इब्नबतूता के वर्णन और

था, किन्तु पुरोहित भी एक साधु के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बातों से सामान्यतः दूर था। ब्राह्मण और मुसलमान धर्मशास्त्री दोनों अपनी भोजन-महत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। सादे जीवन और अल्पभोजन वाले साधु बहुत कम थे।[1] यहां तक कि देवताओं को *समर्पित की गई भेटें भी कभी-कभी भोजन की चुनी हुई चीजें होती थीं; उदाहरणार्थ, पूरियां और गुंजा*।[2] लोग, विशेषकर उच्च वर्ग के लोग, भव्य अतिथि-सत्कार प्रदर्शित करते थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सुल्तान बलबन का सेनाधिकारी इमादुल्मुल्क सारे सचिवालय को प्रतिदिन मध्याह्न में उत्तम पकवानों से भरे पचास थाल भर कर भोजन कराता था।[3] अगले अध्याय में आचार-व्यवहार का वर्णन करते समय हम पुनः अतिथि-सत्कार के विषय पर चर्चा करेंगे। यहां हम देखेंगे कि शाही रसोईघर महल के बहुसंख्यक लोगों को स्थायी-रूप से भोजन प्रदान करता था। भोजन की दो सूचियां रहती थीं—सुल्तान और उसके साथ खाने वालों के लिये 'खास' और धर्मशास्त्रियों तथा अन्य धार्मिक व्यक्तियों के विशाल समुदाय, शाही *परिवार के सदस्यों और पिछले एक अध्याय में उल्लिखित शाही कार्यालयों के कुछ* अन्य अमीरों के लिए 'आम'।[4]

लोगों को मुलायम पकवानों से बहुत रुचि थी और प्रत्येक वस्तु दानेदार, बोटीदार, सिकी हुई या तली हुई रहती थी। मसाले और घी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था। 'पेट की क्रिया को भड़काने के लिए', मानो मसाले पर्याप्त नहीं थे इसलिए कई प्रकार के अचार और चाट-चटनी उपयोग में लाई जाती थीं। भोजनोपरान्त मीठे पकवान और मिठाइयों के रूप में एक प्रकार का हलुवा, मीठे समोसे, शरबत और तले हुए फल लिए जाते थे।[5] बाद के दिनों में ताजा पानी कटोरों में सामान्य

विशेषकर 'किताब-ए-नियामतखाना-ए-नासिरशाही' (इण्डि० आ० पाण्डु०) में देखा जा सकता है।

1. 'भरपेट भोजन' की आशा में 6 दिन की यात्रा के लिए प्रस्थान करने वाले विलक्षण ब्राह्मण के लिए बरवोसा, प्रथम, 217 का वर्णन तुलनीय है। दाल, आटा, घी, जूते, अच्छे वस्त्रों, सात प्रकार के अनाज, दुधारू गाय, भैंसों, एक अच्छी पत्नी,—यहां तक कि एक तुर्किस्तानी घोड़ी के लिए ईश्वर की प्रार्थना करने वाले सन्त के लिए देखिए मेकालिफ, छटवां, III।
2. देखिए मलिक मुहम्मद जायसी, प० (हिन्दी), 429 का वर्णन। पूरियां घी में तली गई अच्छे आटे की कचौड़ियों के समान और गुंजा घी में तले हुए गोश्त के कबाब की तरह होता है।
3. तुलनीय ब०, 116।
4. तुलनीय कि० रा०, द्वितीय, 38-9
5. तुलनीय, भोजनोपरान्त पकवानों के लिए कि० रा०, द्वितीय, 87; मु० 18, त०

रूप से पिया जाता था। बर्फ का पानी तो सुल्तानों के लिए भी दुर्लभ माना जाता था। अकबर इस सम्बन्ध में अधिक भाग्यवान था क्योंकि उसके रसोईघरों में ग्रीष्मकाल में नियमित रूप से बर्फ पहुँचायी जाती थी।[1] भोजन के अन्त में पान और सुपारी खाई जाती थी जो कभी-कभी सुगंधित भी होती थीं।[2] औसत रूप से सम्पन्न वर्ग के लोग तीन आहार—सुबह का कलेऊ, मध्याह्न का भोजन और संध्या का भोजन लेते थे।[3] रात्रि के भोजन का कोई उल्लेख नहीं मिलता। प्रातःकालीन कलेऊ में हिन्दू साधारणतः खिचड़ी या दाल-भात खाते थे। मुस्लिम सिकी रोटी और कबाब खाना पसन्द करते थे।[4] साधारण मुस्लिम भोजन में गेहूँ की रोटी, सिकी रोटी, और मुर्गी सम्मिलित थे।[5] हिन्दू प्रायः शाकाहारी थे।

पुराने कुलीनों के भोज खाद्य-पदार्थों और अन्य वस्तुओं की विशाल मात्रा के लिए प्रसिद्ध थे। औसतन एक मेहमान को बीस से पचास पकवान तक परोसे जाते थे।[6] उनकी तेज भूख और अतृप्त पेटों का ध्यान रखते हुए भी इससे इन्कार नहीं किया सकता जा कि अच्छे भोजन पर भयंकर अपव्यय होता था और इसे इनके सामाजिक प्रतिष्ठा-सम्बन्धी विचारों के प्रकाश में ही समझा जा सकता है। भोज में

दा०, 131 भी। अचारों और सुस्वादु पकवानों के लिए अचार के मौसम में कच्चे आमों की व्यवस्था के लिए इ० खु; प्रथम, 180; आमों में अदरख और मिर्च के प्रयोग के लिए कि० रा०, द्वितीय, 10 देखिए।

1. कहा जाता है कि फीरोज तुग़लक जब सिरमौर पहाड़ियों को गया तब उसने बर्फ के कुछ खण्ड प्राप्त किये। उसने स्वर्गीय सुल्तान मुहम्मद तुग़लक की आत्मा के लिए प्रार्थना करके इस अवसर पर आनन्द मनाया। अकबर के लिए आ० अ०, द्वितीय, 6 में अबुलफ़ज़्ल का वर्णन तुलनीय है। खांदमीर हुमायूं को हिन्दुस्तान में कटोरों का प्रयोग प्रारम्भ करने का श्रेय देता है। खांद०, 156 के अनुसार।
2. देखिए कि० रा०, द्वितीय, 39; ता० से० शा०, 66।
3. देखिए कि० रा० वहीं।
4. देखिए वहीं, प्रथम, 12, ता० दा०, 101।
5. फि० फी०, 158 में एक मनोरंजक चर्चा पढ़िए, जिसमें कहा गया है कि अलग हो जाने पर किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की पत्नी निर्वाह खर्च पाने की अधिकारिणी थी, जिसका अनुमान भोजन अर्थात् सिकी रोटी, साधारण सफ़ेद रोटी और मुर्ग़े के उपरोल्लिखित मूल्यांकन के अनुसार होता था।
6. एक अमीर द्वारा कोइल (अलीगढ़) में गुलबदन बेगम को दिए गए एक भोज का मनोरंजक वर्णन तुलनीय है। एक छोटे भोज के लिए भी केवल मांस की पूर्ति के लिए पचास से कम बकरे नहीं मारे जाते थे। गु० 18 के अनुसार। शाही रसोईघर की भोजन-सामग्री का उल्लेख पहले भी कर दिया गया है।

भोजन की प्रचुरता ही अतिथि-सत्कार का मापदण्ड था और अपव्यय का कोई महत्व नहीं था क्योंकि निम्न कर्मचारियों, घरेलू सेवकों और भिक्षुकों का समूह बचे भोजन में हिस्सा बंटाने के लिए सदा तैयार रहता था। सामाजिक जीवन की एक विशेषता, जो अब अपेक्षाकृत कम प्रचलित है, सार्वजनिक नानबाई की दूकानें थी, जहां प्रायः हर प्रकार का पका भोजन और कच्ची खाद्य सामग्री उचित मूल्य पर खरीदी जा सकती थी।[1] यह पकाने-खाने के मामले में सामान्यतः हिन्दू विचारों के विरुद्ध था।

इस सम्बन्ध में हम खाने और पकाने के तरीकों पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे। मुस्लिम लोग प्रायः भोजन के सम्बन्ध में अपने धर्म के निषेधों को मानते है—जैसे, सुअर का माम और कुछ अन्य मास या बिना हलाल किए पशु का माम खाना उनके लिए वर्जित है। इन मर्यादाओं के बाहर, वे अपनी इच्छानुसार कुछ भी और कहीं भी, पकाने और खाने के लिए स्वतन्त्र थे। उन्हें सम्भवतः निम्नतम व्यक्ति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति के साथ खाने में शायद ही कोई आपत्ति थी।[2] दूसरी ओर हिन्दू अपने चौका-सम्बन्धी जटिल नियमों का कठोरता से पालन करते थे। साधारणतः उनका विश्वास था कि विचारों की पवित्रता तभी प्राप्त की जा सकती है, जब भोजन करते समय उन्हें कोई देख न सके।[3]

भोजन तैयार करने के लिए रसोईघर का पूरा फर्श और दीवारों का कुछ अंश, या यदि खुले में यह कार्य किया जाता, तो पकाने और खाने के लिये उपयोग में आने वाला स्थान, गाय के गोबर और मिट्टी से लीपा जाता था। हिन्दू खाने के पहले धोती या कौपीन को छोड़कर अपने सारे वस्त्र उतार देते थे। यदि हिन्दू अग्निहोत्री या कुछ अन्य ब्राह्मणों की जाति का होता तो वह और उसकी पत्नी स्वयं अपना भोजन पकाते थे और पकाना तथा खाना दोनों कार्य लोगों से छुपाकर किये जाते।[4]

---

1. तुलनीय बरनी, ब०, 318-9 और ता० दा०, 33 का भी वर्णन।
2. कुछ उदाहरण, जो विशेषकर अफ़ग़ान धर्मोत्साहियों के देखने में आए हैं, जो यह प्रकट करते हैं कि उन्होंने हिन्दुओं के सारे शिष्टाचार और विशिष्ट पूर्वग्रह अंगीकार कर लिए थे। इसी प्रकार उल्लेख मिलता है कि सिंध के समर्रा अपनी जाति के लोगों के अतिरिक्त किसी के साथ नहीं खाते-पीते थे।
3. तुलनीय मेकालिफ, प्रथम, 344; छठवा, 98।
4. वर्णन के लिए मेकालिफ, प्रथम, 132; भोजन के हिन्दू शिष्टाचारों के लिये आ० अ०, II 172-3 भी तुलनीय है। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि 'डेली टेलीग्राफ' के संवाददाता ने लंदन की गोलमेज परिषद में सम्मिलित होने हेतु बम्बई से एक प्रसिद्ध ब्राह्मण कांग्रेसी नेता के प्रस्थान के अवसर पर निम्नलिखित समाचार दिया ('डेली टेलीग्राफ़' 4 सितम्बर, 1931 के अनुसार)—
'इसके (यात्रा में उपभोग के लिए 90 सेर शास्त्रोक्त शुद्ध दूध के) अतिरिक्त

राजपूतों में दौना, अर्थात् किसी सरदार द्वारा अपने कृपापात्र को या सम्मान के लिए चुने गये किसी व्यक्ति को, वह पकवान, जिसमें से उसने स्वयं थोड़ा ग्रहण कर लिया है, भेजने की पद्धति का विशेष महत्त्व है। मेवाड़ में दौना पद्धति उस व्यक्ति की वैधता और शाही रक्त का निर्णय करती या उसे वैधता प्रदान करती थी, जिसे दौना प्रदान किया जाता था।[1]

आमोद-प्रमोद और मनोरंजन

कुल मिलाकर इस काल में उल्लास और आनन्द की कमी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति शान्ति और चैन की असाधारण चेतना से युक्त प्रतीत होता था, जब तक कि किसी आक्रामक सेना द्वारा उसके जीवन में विघ्न न डाला जाता। किन्तु यह विघ्न अधिक समय तक नहीं रहता था और न अधिक अप्रिय ही रहता था। लोग तलवारें लेकर ऐसे चलते थे जैसे वह चलने की छड़ी हो, और अवसर पड़ने पर उसका वे कुशलतापूर्वक उपयोग करते थे। वास्तव में सैनिक-व्यायाम जीवन-योजना में लगभग वैसा ही पवित्र स्थान पाने लगे जैसा अन्य समयों में धार्मिक उपासना और प्रार्थनाओं का स्थान था।[2] खुले युद्ध में शत्रु द्वारा जीवित न पकड़ा जाना एक योद्धा

वह शरीर शुद्धि और पीने के लिये पवित्र गंगा नदी से 20 गैलन जल लाया है। सारे असबाब में सर्वाधिक विलक्षण 14 मन गंगा की वह मिट्टी है जिसे पण्डित अपने साथ ला रहा है। कहा जाता है कि सर्वोच्च पुरोहित जाति का यह पण्डित पूजा के लिए मिट्टी के छोटे-छोटे देवता बनाता है।'.........बाद में समाचार के अन्तिम अंश का लन्दन से उनके पुत्र द्वारा खण्डन किया गया था।

1. तुलनीय टॉड, प्रथम, 370 का वर्णन।
2. उदाहरण के लिए 'हिदायतुर्रामी', पादटिप्पणी। 5, देखिए, जहाँ लेखक इस बात पर जोर देता है कि धनुष का प्रयोग शरीर की शास्त्रीय पवित्रता और शरीर-शुद्धि के पश्चात् ही करना चाहिए। 'अदब-उल-हर्ब' भी उसी प्रकार स्पष्ट कहती है कि यह कल्पना करना गलत है कि ईश्वरीय देनें केवल आत्मा, चातुर्य और बुद्धिमत्ता तक सीमित हैं। लकड़ी और लोहे के शस्त्रों के प्रयोग भी उन देनों में सम्मिलित हैं (अ० ह०, 55 के अनुसार)। लेखक अन्य बात के सिलसिले में स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को भय-हीनता, अभिमान, उद्देश्य का स्थायित्व, उत्कटता, आक्रमण में आक्रामकता, औद्योगिकता, लगन, धैर्य, स्वामिभक्ति, और विभिन्न जंगली और पालतू पशुओं से सजगता सीखनी चाहिए। मनोविनोदों और खेलों के विभिन्न रूप एक आदर्श सैनिक में इन्हीं सद्गुणों का विकास करने हेतु ही

के लिए अभिमान की बात थी और यही उसका स्वप्न था। वह या तो विजय का पूरा सम्मान और अनेक आघात प्राप्त करता था या रणभूमि में मृत्यु का आलिंगन करके अधिक गौरवशाली होता था।[1] ये बातें बन्दूकों और बारूद का प्रयोग प्रारम्भ होने से समाप्त हो गईं, क्योंकि इनके कारण पुराने शस्त्र लगभग व्यर्थ हो गए।

हमने इन तथ्यों का उल्लेख इस बात पर जोर देने के लिए किया है कि उस काल के आमोद-प्रमोद और मनोरंजन तत्काल की सैनिक प्रवृत्ति से अत्यधिक प्रभावित थे। सब लेखकों द्वारा सामाजिक जीवन के दो पहलुओं पर जोर दिया जाता था, जो एक-दूसरे के पूरक थे—'रज्म' या युद्ध और 'बज्म' या सामाजिक आनन्द। एक औसत प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ अंशों में एक क्रियाशील सैनिक होता था जिसके लिए बहुत परिश्रम की आवश्यकता होती थी। युद्ध की समाप्ति के बाद वह अपने शारीरिक श्रम की पूर्ति शारीरिक आनन्दों और मनोरंजक खेलों में व्यस्त रहकर करता था।[2] साधारण जनता, जिसका धन्धा उत्साहजनक नहीं होता था, सामयिक त्योहारों और यदा-कदा तीर्थ-स्थानों की यात्रा से अपना मनोरंजन करती थी।

I. सैनिक और शारीरिक खेल

सैनिक खेलों में पोलो, पटेबाजी, मल्लयुद्ध, घुड़दौड़, कुत्ते दौड़ाना, तीरदाजी और अन्य अनेक खेल लोकप्रिय थे। दक्खन में और राजपूतों में अपमानित व्यक्ति अपमान करने वाले को मुकाबले के लिए चुनौती देने से न चूकता था। सुलतान के अधीन प्रदेशों में प्रशासन की एक संगठित पद्धति थी जो क्षतिपूर्ति के कानूनी और सम्मानित स्वरूप के रूप में निजी प्रतिकार को मान्यता नहीं देती थी।[3] दो प्रति-

---

बनाये गए हैं। लेखक जोर देता है कि प्रत्येक भद्रपुरुष को तलवार-बाजी, मल्ल-युद्ध, पोलो, पटेबाजी, गोली का धनुष, यहाँ तक कि हिन्दू चक्र चलाने का भी ज्ञान होना चाहिए। (वहीं, 153-4)। युवक अकबर की सब प्रकार के मनोविनोदों, जैसे, ऊँट की सवारी, घुड़दौड़, कुत्तों की दौड़, पोलो और कबूतरबाजी में लिप्तता और इस पर अबुलफ़ज़्ल के विचार तुलनीय है। अ० ना०, द्वितीय, 317-8।

1. प० (हिन्दी), 289 में उस समय के योद्धा की विलक्षण भावनाएँ देखिए।
2. सादृश्य के लिए मध्यकालीन अंग्रेजी विनोदों के बारे में तुलनीय है, साल्जमेन, 29।
3. राजपूत इतिहास से एक उदाहरण के लिए देखिए टॉड, प्रथम, 413। दक्खन में द्वन्द्वयुद्ध की व्यवस्था के वर्णन के लिए है, तुलनीय है, बरबोसा, प्रथम, 190-1। प्रतिद्वन्द्वी को नियमपूर्वक चुनौती भेजी जाती थी और उसे स्वीकार कर लिए जाने पर द्वन्द्वयुद्ध करने की शाही अनुमति की प्रार्थना की जाती थी, जो साधा-

इन्द्रियों में श्रेष्ठ कौन है इसका निर्णय करने के लिए द्वन्द्वयुद्धों का स्थान साधारणतः शारीरिक शौर्य ने ले लिया। कुश्ती या दंगल विनोद का प्रिय साधन था। वास्तव में प्रत्येक कुलीन और साधारण व्यक्ति इस कला में कुछ प्रशिक्षण अवश्य प्राप्त करता था। शासक और धार्मिक सन्त भी कुश्ती को प्रोत्साहन देते, प्रसिद्ध पहलवानों को रखते, मुकाबला देखते, यहाँ तक कि स्वयं कुश्ती में भाग भी लेते थे।[1]

तीरंदाजी सर्वत्र लोकप्रिय थी। हम अन्य सिलसिले में गोली के धनुषों और तीरों के निर्माण का उल्लेख कर चुके हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि समय-समय पर तीर चलाने के कौतुकपूर्ण कार्यों का आयोजन होता था और कुशल तीरंदाज देश में प्रसिद्धि और नाम पाते थे।[2] तलवारबाजी, चक्र और भाला फेंकना

रणतः दे दी जाती थी। फिर पारस्परिक व्यवस्था द्वारा दिन और घण्टा निश्चित किए जाते थे। प्रतिद्वन्द्वियों के सहयोगी चुने जाते थे जो उस शास्त्र का चुनाव करते थे जिससे द्वन्द्व में प्रतिद्वन्द्वियों को युद्ध करना था। एक का शस्त्र 'दूसरे के शस्त्र से लम्बाई में बराबर होता था।' जब द्वन्द्व होता, राजा और दरबारी भी दृश्य देखते थे। यात्री आगे कहता है कि दक्खन में ऐसे द्वन्द्व प्रायः जीवन के दैनिक अंग थे।

1. कुश्ती में अनुदेशों के लिए तुलनीय है बा० मु०, 35 ब। अ० ना०, प्रथम, 248 में राजकुमार अकबर और उसके चचेरे भाई—मिर्जा कामरान के पुत्र का मनोरंजक वर्णन देखिए। उन दोनों में एक नगाड़े को लेकर झगड़ा हो गया और निर्णय तब हुआ जब दोनों में कुश्ती कराई गई और अकबर ने अपने चचेरे भाई को पराजित कर दिया। मिर्जा कामरान इस दृश्य को अन्त तक देखता रहा। इसी प्रकार बालक अकबर के खतरे के अवसर पर हुमायूँ ने मनोरंजन और भोज का आयोजन किया। फिर उसने कुश्ती के लिए अपने अमीरों से अपना-अपना प्रतिद्वन्द्वी चुनने के लिए कहा और इमामकुली नामक एक व्यक्ति के साथ स्वयं कुश्ती लड़कर उसने भी खेल में भाग लिया। बाबर के प्रिय कुश्तीबाज सादिक के लिए, देखिए बा० ना०, 399, जिसने एक अन्य प्रसिद्ध कुश्तीबाज कलाल को पछाड़ दिया। इस पर मुग़ल सम्राट ने उसे 10,000 टंके, एक उत्तम घोड़ा और 3,000 टंके के मूल्य की अन्य वस्तुएँ पुरस्कार स्वरूप दीं। सिख परम्परा के लिए देखिए मेकालिफ, द्वितीय, 15।
2. सम्राट हुमायूँ के ईद के प्रदर्शन के लिए तुलनीय है खांद०, 149। ईद के मैदान में पहुँचने पर हुमायूँ का स्वागत उसके रक्षकों द्वारा निशानेबाजी के एक प्रदर्शन द्वारा किया गया। वे कुछ ऊँचाई पर खरबूजे के आकार के सोने और चाँदी के लक्ष्य लगा देते थे। फिर सैनिक तरीके से आगे बढ़ते हुए अपने तीर छोड़ते थे। उनकी श्रेष्ठ निशानेबाजी के कारण लक्ष्य उसी क्षण टूक-टूक हो जाता था। हुमायूँ प्रदर्शन के पुरस्कार के लिए घोड़े और खिलअतें बांटता था।

भी वैसे ही लोकप्रिय थे। तैराकी को सामान्यतः प्रोत्साहन दिया जाता था। बाबर के तैराकी के करिश्मे प्रसिद्ध हैं। गौण खेलों में हम काश्मीर में एक प्रकार की हाकी की लोकप्रियता और बंगाल में गेंद फेंकने (गेरू) की लोकप्रियता का उल्लेख कर सकते हैं।[1]

पोलो और घुड़दौड़ इत्यादि—मैदानी खेलों में अति शानदार खेल पोलो और मनोविनोदों में घुड़दौड़ का नाम लिया जा सकता है। पोलो का ठीक-ठीक उद्भव निश्चित करना अभी भी कठिन है। फारस में ससानी वंश के संस्थापक के शासन-काल में भी इस खेल के चिह्न मिलते है।[2] हिन्दुस्तान में मुस्लिमों ने इसे प्रारम्भ किया और शीघ्र ही यहां यह खेल सब वर्गों में लोकप्रिय हो गया। वास्तव में दिल्ली के प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु लाहौर में पोलो खेलते समय एक दुर्घटना में हुई थी।[3] तुर्क लोग इस खेल के बहुत शौकीन थे; दरबार के कार्यालयों के चिह्नों में एक चिह्न सोने की पोलो की लकड़ी और गेंद का भी था। बाद में अफ़गानों के हाथ में शासनाधिकार चले जाने पर भी खेल की लोकप्रियता को कोई हानि पहुंची।[4] पोलो के खेल में राजपूतों का कौशल अत्यन्त उच्च कोटि का था।[5]

सिकर शिरवानी नामक प्रसिद्ध अफ़गान की निशानेबाजी के लिए तारीख-ए-दाऊदी, 9-10 का वर्णन तुलनीय है। वह असाधारण रूप से हृष्ट-पुष्ट युवक था। वह अपने धनुष में 11 मुट्ठी लम्बाई का (अर्थात् 3 फुट से अधिक) तीर लगा सकता था और उसे 800 कदम (लगभग 800 गज) की दूरी तक फेंक सकता था।

1. ज० डि० लैं०, 1925, 52 का वर्णन तुलनीय है। हाकी के लिए तुलनीय है टेम्पल, 208। सर डेनीसन रास के पास मुगल सम्राट् जहांगीर के शासन काल का एक चित्र है, जिसमें पोलो के डण्डे से खेला जाता हुआ हाकी का खेल दिखाया गया है और सम्राट् उसे देख रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि पोलो के खेल का हाकी के विकास पर सीधा प्रभाव पड़ा।
2. तुलनीय साइक्स, प्रथम, 466। हारूँ-अल-रशीद पहला अब्बासिद खलीफा था जिसने पोलो खेला। मुस्तसिम ने कई दृष्टियों से इसमें सुधार किया। मरवन भी इसमें रुचि रखता था। स्प्रेन्जर, 25 के अनुसार। फ़ारस के मंगोल सुल्तान उल्जैतू की पोलो के खेल में कुशलता के लिए देखिए ता० अ०, 455।
3. ता० मु०, 84-5; रैवर्टी, 528 का वर्णन तुलनीय है।
4. अफ़गानों के लिए मु० त०, प्रथम, 321, 323, ता० दा०, 3 तुलनीय है, जबकि एक अफ़गान अमीर अपनी विनोदहीनता की भावना को औचित्य और शिष्टाचार की सीमा के बाहर ले जाता है।
5. राजपूत कौशल के लिए तुलनीय प० (हि०), 285। पोलो खेलने में गुजरातियों (या गुजरात के लोग) की कुशलता के लिए देखिए बरबोसा, प्रथम, 119; उनके लिए पोलो उतना ही लोकप्रिय था जैसे पोर्तगाल में 'रीड का खेल'।

घुड़दौड़ भी उतनी ही लोकप्रिय थी। इसे पैगम्बर के आशीर्वाद का अतिरिक्त लाभ प्राप्त था। उन्होंने अन्य मनोविनोदों और जुए का तो निश्चय ही निषेध कर दिया था, किन्तु घुड़दौड़ में बाजी लगाने के प्रति वे उदार थे। घोड़ों के अध्ययन पर एक नियमित साहित्य शीघ्र ही रचा जाने लगा जो उस काल की वैज्ञानिक पद्धतियों का परिचायक है।[1] इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलना पूर्ण न्यायसंगत होगा कि सुल्तानों और अमीरों के घुड़सालों में श्रेष्ठ नस्लों के घोड़ों की संख्या पर्याप्त विशाल थी। दौड़ के लिए यमन, ओमन और और फ़ारस से विशेष अरबी घोड़े आयात किए जाते थे। प्रत्येक का मूल्य एक हज़ार से चार हज़ार टंकों तक बताया जाता है।[2]

पोलो का खेल वस्तुतः आज के समान ही खेला जाता था।[3] घुड़दौड़ में राजपूतों और गुजरातियों का कौशल प्रशंसनीय था।[4] यह निष्कर्ष निकालना गलत

1. घोड़े उत्पन्न करने से सम्बन्धित अध्यायों के लिए उदाहरण के रूप में देखिए 'अदश-उल-हर्ब'। कुत्ते दौड़ाने के धार्मिक निषेध के लिए तुलनीय त०, 20, जिसके अनुसार कुत्ते दौड़ाना निश्चित रूप से मनुष्य के सारे पुण्य को नष्ट कर देता था।
2. तुलनीय कि० रा०, प्रथम, 200।
3. आधुनिक खेल के लिए तुलनीय एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (1929 संस्करण) अठारहवां, 175। 'पोलो प्रत्येक पक्ष में चार-चार खिलाड़ियों से ठीक हाकी या फुटबाल के सिद्धान्तों पर ही खेला जाता है। एक मुकाबला लगभग 1 घण्टे तक चलता है और यह समय खेल की कालावधियों में विभाजित रहता है। मध्यान्तरों में घोड़े बदले जाते हैं।' अतः इसमें दो खिलाड़ी आगे खेलने वाले और दो पीछे खेलने वाले होते हैं। किन्तु खेल के दौरान में जैसे-जैसे खिलाड़ी एक-दूसरे की ओर गेंद फेंकते हैं, वे आपस में स्थान बदलते रहते हैं। आधुनिक खेल अत्यन्त लचीला होता है, किन्तु प्रत्येक स्थान पर एक खिलाड़ी होना ही चाहिए। (अर्थात् क्र० 1, क्र० 2, क्र० 3 या आधा पीछे और क्र० 4 या पीछे)। कुल्लियत, वहीं, 777-8 में अमीर ख़ुसरो का वर्णन तुलनीय है, जहां वह चार खिलाड़ियों के प्रतिद्वन्द्वी दलों, खेल के मध्यान्तरों और खेल का निर्णय करने वाले गेंद से प्राप्त अंकों का वर्णन करता है। वह सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के दल (सुल्तान को मिलाकर) की गति का वर्णन 'चांद पर बैठे हुए' व्यक्ति के रूप में करता है। संयोगवश यह कहना अनुचित न होगा कि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में भारत में पोलो के प्रारम्भ और उसके ऐतिहासिक विकास का वर्णन त्रुटिपूर्ण है।
4. घुड़सवारी में राजपूत कौशल के लिये तुलनीय है प० (हि०), 235; गुजरातियों के लिए बरबोसा, प्रथम, 119 भी।

न होगा कि तुर्क, अफ़ग़ान और वास्तव में हिन्दुस्तान के सब शासक-वर्गों ने घुड़-सवारी में उच्च कोटि की कुशलता प्राप्त कर ली थी।

शाही गजशालाओं के हाथी शासक का ससम्मान अभिवादन करने के लिए प्रशिक्षित किए जाते थे। अपने महावत से निश्चित संकेत पाने पर हाथी अपना मस्तक भूमि पर टेक देते थे और फिर अपनी सूंड उठाते थे। भूमि से कोई वस्तु उठाने, उसे अपने मुंह में रखने या आदेशानुसार महावत को सौंपने में भी वे प्रशिक्षित किये जाते थे। इन सैनिक-महत्त्व के मूल्यवान पशुओं का शान्तिकाल में शायद ही कोई अन्य उपयोग हो सकता था। कभी-कभी उनसे सवारी का कार्य या भारी बोझ उठवाने का कार्य भी लिया जाता था।[1]

शिकार—शिकार के सम्मुख सारे खेल उत्तेजना और उद्दीपन में निम्न कोटि के थे। हिन्दुस्तान में मुस्लिम शासन की स्थापना के पूर्व अरबों ने शिकारी पशु-पक्षियों के अध्ययन और उनकी पैदावार के सम्बन्ध में विशाल साहित्य संकलित किया था।[2] मुसलमान अपने समय के प्रसिद्ध शिकारी ससानी शासकों की स्मृति के साथ, शिकार की ये सब उन्नत परम्पराएं भी भारत में लाए। एशिया के अन्य भागों में शिकार के प्रति प्रबल मोह और उसके लिए प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरणों का प्रयोग और भी बढ़ गया।[3] दास वंश के संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर अकबर के शासनकाल तक प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शासक शिकार का प्रेमी था और वह इसमें अधिक-से-अधिक समय बिताता, जितना कि वह शाही कार्यों और आमन्दोपभोगों से बचा पाता। यदि सुल्तान शिकार के शौकीन न भी होते तो भी वे शिकार के लिए अनेक कर्मचारी रखते थे।[4] राजपूत

---

1. तिमूर, म०, 288 का वर्णन तुलनीय है; खुसरो के संदर्भ के लिए तुलनीय है मिर्जा, 147। हाथियों के पैरों का खुरदरापन दूर करने के लिए उनके पैरों के नीचे तेल-पात्र रखे जाते थे।
2. ज० रा० ए० सो० बं०, 1907 तुलनीय है। 'किताब-उल-बायजराह' के सम्बन्ध में फिलाट्स ; इ० खु०, द्वितीय, 60 में शिकारी पशु-पक्षियों की पैदावार के संदर्भ भी देखिए
3. फ़ारसी परम्परा के लिए देखिए हुअर्ट, 146 कुबलाई खान के शिकार और उसकी व्यक्तिगत छाप के लिए मार्कोपोलो का वर्णन तुलनीय है। यूले, प्रथम, 397-403। उदाहरण के रूप में महान खान को शिकारी पशुओं के उपहार रूप, देखिए मेजर, 4।
4. दिल्ली के सुल्तानों के शिकार के वर्णन के लिए देखिए : कुतुबुद्दीन ऐबक के शिकार के वर्णन के लिए ता० मा०, प्रथम, 6; कु० खु०, 740-1 भी, जहाँ अमीर खुसरो उसके कार्यों के बारे में कहता है : 'वह हवा में पक्षियों और भूमि

भी उसी प्रकार शिकार के शौकीन होते थे। वास्तव में 'अहेरिया' नामक प्रसिद्ध वसंतकालीन आखेट गौरी के लिए पवित्र माना जाता था और फाल्गुन के महीने में इस ऐतिहासिक अवसर पर सुअर मारने के लिए कुछ भी उठा न रखा जाता था। धावा मारने की घड़ी ज्योतिषी द्वारा पूरी गम्भीरता से निश्चित की जाती थी और इस अवसर की सफलता या असफलता वर्ष भर के भाग्य का निश्चय करती थी।[1] मुस्लिम धर्मशास्त्री अधिकांशतः शिकार के प्रति सहनशील हो चले थे।[2]

पर पशुओं—दोनों का शिकार करता था।' सुल्तान बलबन के लिए ब०, 54-5 तुलनीय है। उसकी प्रिय ऋतु शीतकाल थी, जिसमें वह भोर होते ही रेवाड़ी की ओर प्रस्थान कर देता और दूसरे दिन मध्य-रात्रि में लौटता। उसके साथ, एक हजार घुड़सवार, जिनमें से वह एक-एक को जानता था, और एक हजार प्यादे, जिन्हें शाही रसोईघर से भोजन मिलता था, चलते थे। राजधानी में उसकी वापसी की घोषणा नगाड़ों की ध्वनि से की जाती थी। अलाउद्दीन खिलजी के शिकार के वर्णन के लिए तुलनीय ब०, 272-3; मु० त०, प्रथम, 148 भी। उसकी प्रिय पद्धति थी 'नरगा' या हांके वालों के एक वृत्त का निर्माण (जो मुगल 'कमरधा' का पूर्वज है), जो सूर्योदय के लगभग एकत्र होते थे, जबकि सुल्तान उनसे आ मिलता था। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के शिकार के उपकरण के वर्णन के लिए देखिए इलि० डाउ०, तृतीय 579-80। उसने 10,000 बाज रखने वाले—जो शिकार के लिए घोड़ों पर चलते थे, 3,000 हांके वाले, 3,000 भोजन सामग्री के व्यापारी और अन्य लोग नियुक्त किये। उसके साथ मोड़े या लपेटे जा सकने वाले दो-दो मंजिल के मकान तम्बू, चंदोवे और कई प्रकार के मण्डपों के साज 200 ऊंटों पर लादकर ले जाए जाते थे। सुल्तान फीरोज तुग़लक को भवन बनवाना और शिकार पर जाना बहुत प्रिय था और इनमें ही वह पूरा आनन्द लूट पाता था, तुलनीय अ०, 178-9। 'वह एक को तीर से मारकर, दूसरे का शिकार घोड़े की पीठ पर से करके और तीसरे के लिये अपना बाज छोड़कर पशु-जगत में विनाश का ताण्डव उपस्थित कर देता था।' इसी के समर्थन में बरनी का वर्णन तुलनीय है। (ब०, 599-600 के अनुसार)। सिकन्दर लोदी अपना अधिकांश समय शिकार और पोलो के खेल में व्यतीत करता था। त० अ०, प्रथम, 322 के अनुसार। बाबर और उसके साथी लाहौर की ओर प्रयाण के समय भी शिकार के आनन्द को नहीं भूले। ता० फ०, प्रथम, 378 के अनुसार। शिकार अकबर का प्रिय खेल था।

1. तुलनीय टॉड, द्वितीय, 660।
2. कुत्तों, शिकारी कुत्तों और तेन्दुओं का प्रयोग, शिकार की धार्मिक वैधता के सम्बन्ध में और एक मुस्लिम द्वारा उनके खाये जाने की उपयुक्तता के सम्बन्ध में

हम यहां शिकार के लिए नियुक्त शाही कर्मचारियों के सम्बन्ध में भी कुछ कहेंगे। प्रत्येक सुल्तान के पास कर्मचारियों की अत्यन्त विशाल संख्या रहती थी, जिसमें शिकार के लिए विशेषतः प्रशिक्षित पशुओं की भी विशाल संख्या सम्मिलित थी। शाही शिकार के लिए वृहत् क्षेत्र सुरक्षित रखे जाते थे। फीरोज तुगलक के काल में शिकार-विभाग 'राज्य-स्तम्भों' में से एक स्तम्भ समझा जाता था।[1] शिकार-विभाग एक 'अमीर-ए-शिकार' के अधीन संगठित किया जाता था, जो सामान्यतः दर्जाप्राप्त अमीर होता था। साथ में उसी स्थिति वाले अन्य अधिकारी भी होते थे। इन वरिष्ठ अधिकारियों के अधीन शाही बाजों और अन्य शिकारी पशुओं और पक्षियों की देख-रेख और सुरक्षा के लिए क्रमशः 'आरिजां-ए-शिकार', 'खस्मा-दारान' और 'मिहत-रान' नामक गौण अधिकारी होते थे। उनके अधीन 'शिकरादारों' का समूह होता था जो शिकार के दिन पशु और पक्षी ले जाते थे। व्यावहारिक रूप से राज्य के सब कुशल शिकारियों और परिचारकों की सेवाएं इस विभाग द्वारा प्राप्त की जाती थीं। सब प्रकार के शिकारी पशु-पक्षी—हाथी, कुत्ते, प्रशिक्षित 'चीते', बिलाव, बाज-बड़ी संख्या में एकत्र किए जाते थे।[2] जंगली और पालतू जीवों के लिए शाही आर-क्षित क्षेत्रों के रूप में चहारदीवारी से घिरा विस्तृत क्षेत्र बनाने की प्राचीन फ़ारसी परम्परा थी।[3] राजकीय आरक्षित क्षेत्र के लिए लगभग 12 कोह (लगभग 24 मील) लम्बी भूमि दिल्ली के समीप थी।[4] इस सिलसिले में यह स्मरण रखना चाहिए कि

अनेक जटिल और उलझी हुई समस्याएं उपस्थित करता है। उलमा साधारणतः बाजों के, यहां तक कि कुत्तों के प्रयोग के लिए उन्हें अनुमति दे देता था, 'बशर्ते कि वे शिकार हेतु प्रशिक्षित किये जाएं और मांस को अधिक चीथ न डालें।' तु०, 20 के अनुसार।

1. तुलनीय अ०, 316। पुष्टि के लिए देखिए कि 'मलिक' के दर्जे के दो प्रतिष्ठित अमीर सुल्तान फ़ीरोज़ तुगलक के शिकार विभाग का निरीक्षण करते थे।

2. तुलनीय, ब०, 600; ता० फ०, प्रथम, 236। विस्तार के लिए अफीफ का वर्णन तुलनीय है। अ०, 317-19।

3. फ़ारसी परम्परा के लिए तुलनीय हुअर्ट, 146। "(आखेट) चहारदीवारी युक्त बड़े उद्यानों में, जिन्हें पहले 'स्वर्ग' कहा जाता था, किया जाता था। इनमें सिंह सुअर और रीछ आरक्षित किये जाते थे। थियोफन हमें बताता है कि रोमन सम्राट हैराक्लियस के सैनिकों ने कोसरोज द्वितीय के उपेक्षित उद्यानों में शुतु-र्मुर्ग, सुन्दर छोटे बारहसिंघे, जंगली गधे, मोर, तीतर और सिंह तथा शेर भी पाए।"

4. य०, 54 में दिल्ली के शाही आरक्षित क्षेत्र का वर्णन द्रष्टव्य है।

शिकार के नियम अत्यन्त कठोर थे और उनके थोड़े भी उल्लंघन पर कठोरता बरती जाती थी।[1]

हरिण, नीलगाय और साधारण पक्षियों का शिकार लोकप्रिय था; गैंडे और भेड़िये पंजाब की पहाड़ियों में पाए जाते थे।[2] जब कभी अवसर आता तो सिंह का शिकार करना बादशाह का विशेषाधिकार था।[3] कुछ शासकों को मछली मारना प्रिय था।[4] अन्य शासक शिकार की तुलना में सम्भवतः इसे बहुत अनुत्तेजक पाते थे।

हम शाही आखेट पर कुछ अधिक चर्चा करके शिकार का यह वर्णन समाप्त करेंगे। चाहे फ़ीरोज तुग़लक के शासनकाल के तथ्यों और उसके पूर्ववर्ती शासकों और उत्तराधिकारियों के शासनकाल के तथ्यों में अधिक समानता न हो, किन्तु उनसे हमें शिकार के शाही उपकरणों का समुचित ज्ञान प्राप्त होता है। उसका वृत्तान्तकार अफ़ीफ़ लिखता है कि जब फीरोज तुग़लक शिकार के लिए बाहर जाता था तो एक बड़ा जूलूस बन जाता था। चालीस से लेकर पचास विशेष ध्वज और मोरपंख से सजे दो विशेष राजचिह्न उसके साथ चलते थे। राजचिह्न सुल्तान के सामने दोनों ओर चलते थे। उनके बिलकुल पीछे चार जंगली पशु और शिकार के पक्षी शासक के क्रमशः दाएँ और बाएँ चलते थे। विशाल संख्या में अन्य पशु, जैसे—चीता, तेंदुआ, बिलाव, कुत्ते, गिद्ध और बाज अपने घुड़सवार रक्षकों के साथ सुल्तान के पीछे चलते थे। इब्नबतूता हमें बताता है कि अनेक अमीर अपने तम्बुओं और चंदोवों और भारवाहकों तथा सेवकों के विशाल समूह सहित सुल्तान के साथ शिकार में जाते

1. इस सम्बन्ध में अबुलफ़ज्ल का वर्णन तुलनीय है। अपनी युवावस्था में अकबर शिकार का इतना शौकीन था कि जब एक बार कुत्तों के रक्षकों ने अपने कर्त्तव्यों के प्रति कुछ असावधानी बताई तो शासक ने उन्हें साधारण कुत्तों के समान पगहा लगा दिया और इसी स्थिति में उन्हें छावनी के चारों ओर घुमाये जाने का आदेश दिया। जब सम्राट हुमायूं को इसका समाचार मिला तो वह राजकुमार के चातुर्य और अधिकार-प्रदर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अ० ना०, प्रथम, 318 के अनुसार।
2. उदाहरणार्थ, देखिए ता० फ०, प्रथम, 378, ता० मु० शा०, 410 भी; बा० ना०, 229; अ०, 243। पाठ में 'करकदान' का नाम आता है जो, अबुलफ़ज्ल अपने वर्णन में (आ० अ०, द्वितीय, 58) स्पष्ट कर देता है, गैंडे के लिए लागू होता है।
3. देखिए अ०, 324।
4. उदाहरणार्थ, फ़ीरोज तुग़लक के लिए अफ़ीफ़ का वर्णन तुलनीय है; अ०, 328। बाबर द्वारा घरन्धर में मोमबत्ती के प्रकाश में मछली मारने के वर्णन के लिए, देखिए बा० ना०, 355।

थे। सुल्तान फ़ीरोज तुग़लक का शिकार एक बार में सत्रह से अठारह दिन तक चलता था।[1]

II. भीतरी आमोद-प्रमोद

जश्न या सामाजिक समारोह—सामाजिक समारोहों और मनोरंजनों के लिए लोकप्रिय शब्द 'जश्न' था। जब जश्न के आयोजन के बारे में कहा जाता तो सुनने वाले के मस्तिष्क में साधारणतः कण्ठसंगीत और वाद्यसंगीत, बढ़िया मदिरा, मेवे और घरेलू खेल जैसे—शतरंज, चौपड़ आदि मनोरंजनों के कार्यक्रम की धारणा उपस्थित होती थी। जिस कक्ष में अतिथि एकत्र होते थे उसे साधारणतः बहुमूल्य गलीचों से सजाया जाता था। अगरु और सुगन्ध वहाँ लगातार जलते रहते थे। अतिथियों पर ताजगी और शीतलता के लिए गुलाबजल छिड़का जाता था। सोने और चाँदी के थालों में स्वच्छतापूर्वक फल प्रस्तुत किए जाते थे। किन्तु सर्वाधिक मनोरंजक वस्तु मदिरा थी, जो अत्यन्त सुन्दर साकियों द्वारा कुछ मसालों और मौसमी पकवानों (जैसे कबाब) के साथ प्रस्तुत की जाती थी। फलतः *'मदिरा के प्यालों के ढक्कन', (अमीर खुसरो की आलंकारिक भाषा में) 'प्रार्थना के गलीचे' से भी अधिक पवित्र दीखते हैं।*[2]

मौजी कार्यवाही सूर्यास्त के पश्चात् प्रारम्भ होती, जब संगीतकार और नर्तकियाँ अपना प्रदर्शन प्रारम्भ कर देते और मदिरा के दौर चला करते। जब ये प्रदर्शन करने वाले कलाकार श्रोताओं की भावनाओं को उद्वेलित कर देते तब बीच-बीच में उन पर सोने और चाँदी की बौछार होती थी। प्रातःकाल होते-होते सारा दृश्य क्लान्त नेत्रों के सामने धुँधला प्रतीत होने लगता और लोग थककर निद्रा-मग्न हो जाते।[3] ऐसे मनोरंजन सरकारी समारोहों के साधारण अंग थे। कुछ त्यौहार सार्वजनिक 'जश्नों' के लिए निश्चित थे। जब राजदूत या कोई प्रतिष्ठित अतिथि का आगमन होता तो ऐसे ही समारोह आयोजित किए जाते थे। मुग़ल सम्राट् अकबर ने विद्यमान सरकारी समारोहों में फ़ारसी दिनदर्शिका से एक दर्जन समारोह और सम्मिलित कर दिए।[4]

---

1. अफ़ीफ का वर्णन तुलनीय है। अ०, 317-19, कि० रा०, द्वितीय, 82 भी।
2. सामाजिक सम्मेलनों और मनोरंजन के कार्यक्रमों के वर्णनों के लिए तुलनीय है, इ० खु०, द्वितीय, 241-2, 271; कि० स०, 129-30। शाही सम्मेलनों का, जिनका वर्णन मजलिस-ए-जश्न, जश्न-दरबार के रूप में किया गया है, सन्दर्भ पहले दे दिया गया है।
3. तुलनीय, *वा० ना०, 330 ब।*
4. सुल्तान फ़ीरोजशाह तुग़लक के काल में सरकारी समारोहों के दिनों के लिए

हमारे पास इन शाही 'जश्नों' से सम्बन्धित अनेक भोजों और उत्सवों से सम्बद्ध अभिलेख हैं। हमें चिरपरिचित वर्णनों की उभाड़ने वाली पुनरुक्ति मिलती है, जैसे, 'परी के समान सुन्दर नर्तकियाँ,' 'कस्तूरी की सुगंध वाली मदिरा', मदिरा के संगमर्मरी प्याले, पुष्पांकित गलीचे और अन्य बहुमूल्य-सज्जा तथा सब वस्तुओं की प्रचुरता आदि। कभी-कभी शाही कवि अपनी प्रशस्तियों द्वारा ऐसे अवसरों पर आनन्द-वृद्धि कर देते थे; तो दूसरे अवसरों पर दरबारी-गण अपने चुटकलों और विनोदों से प्रफुल्लता और उत्साह में भी वृद्धि करते थे।[1] कुछ बातों में ये आनन्द-समारोह अन्य

देखिए अ०, 278। जश्न-सम्मेलन दो ईदों, नौरोज, प्रतिष्ठित शाही अतिथियों के मनोरंजन के लिए और राजदूतों के स्वागत तथा अन्य शाही कार्यक्रमों के सम्बन्ध में आयोजित किए जाते थे। अकबर के समय सरकारी जश्नों के लिए देखिए आ० अ०, प्रथम 200।

1. विभिन्न वृत्तांतों में जश्नों का वर्णन द्रष्टव्य है। हसन निजामी, कुतुबुद्दीन ऐबक और इल्तुतमिश के समारोहों का वर्णन करता है। एक स्थान पर लेखक, जो कदापि धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण का व्यक्ति नहीं कहा जा सकता, 'सुख-स्रोत और उत्साह की भाण्डार' पत्नियों का वर्णन करने में इतना उत्साहित हो जाता है कि वह अपने कट्टरपन्थी विचारों से फिसल जाता है और स्पष्टतः स्वीकार करता है कि मदिरापान प्रत्येक समझदार व्यक्ति के लिए बिलकुल वैध और मान्य (हलाल) है तथा केवल उन मूर्खों के लिए निषिद्ध है जिन पर 'शरियत' का भूत सवार रहता है। इल्तुतमिश इन जश्न समारोहों के पश्चात् शिकार और पोलो खेलने के लिए बाहर निकल जाता था। ता० मा० (द्वितीय), 63-5 के अनुसार। कट्टर सुल्तान बलबन के जश्नों के लिए बरनी का वर्णन द्रष्टव्य है। सुल्तान संजर और खारज्म शाह के समान सुल्तान बलबन के समारोह विशाल पैमाने पर आयोजित किये जाते थे। कमरे को सजाने के लिए पुष्पावली-युक्त गलीचे और जरी के परदे उपयोग में लाए जाते थे; वस्तुएं सोने और चांदी के पात्रों में प्रस्तुत की जाती थीं। वस्तुओं में सब प्रकार के फलों, मिष्टान्नों, पेयों और पान की प्रचुरता रहती थी। अतिथि तड़क-भड़क वाली वेश-भूषा में उपस्थित होते थे। दरबारी कवि अपनी कविताओं का पाठ करते थे। व०, 32 के अनुसार। मुबारकशाह खिलजी अत्यन्त प्रसन्नवदन शासक था। अपने ज्येष्ठ पुत्र का जन्मोत्सव मनाने के लिए उसने एक जश्न का आयोजन किया जिसकी सजावट का कुछ उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। नगर में मेहराबदार मण्डप बनाए जाते थे और उन्हें रेशमी अस्तर के मखमली और जरी के परदों से सजाया जाता था। मेहराब के शिखर पर एक छोटे से प्रकोष्ठ में शाही वाद्य बजता था। स्थान के चारों ओर फ़ारसी और भारतीय संगीतज्ञ और नर्तक अपनी

स्थान पर वर्णित सरकारी आम-दरबारों से अत्यन्त भिन्न होते थे। दरबार में शासक के गौरव और गांभीर्य के विपरीत, निजी सम्मेलनों में शासक अपने लौकिक और औपचारिक रूप में नहीं रहता था। यदि सम्मेलन में कुछ चुने हुए व्यक्ति ही रहते तो वह 'राजत्व का अहंकार त्याग देता' था। दरबारियों और अतिथियों को अपने भारी लबादे उतार देने और आराम से बैठने की अनुमति दे दी जाती थी। वार्तालाप में कोई दुराव-छुपाव नहीं किया जाता था और राजकीय नीतियों के मामलों और साधारण मामलों के सम्बन्ध में भी पूरे आनन्द और पर्याप्त नि.संकोच से चर्चा की जाती थी।[1]

ऐसे ही जश्न अत्यन्त विशाल पैमाने पर सुल्तानों द्वारा कुछ सरकारी समारोहों के समय आयोजित किये जाते थे। हम शाही अभिषेकों के सिलसिले में उत्सवों और उदार उपहारों का उल्लेख कर चुके हैं। सरकारी उत्सवों के पश्चात् विशाल अनौपचारिक सम्मेलन होते थे और उनमें अनेक कर्मचारी और सम्माननीय व्यक्ति आमंत्रित किये जाते थे। इसी प्रकार सुल्तान के आनन्द में हिस्सा लेने के लिए अन्य

कला का प्रदर्शन किया करते थे। सुल्तान इस अवसर पर एक दरबार का आयोजन करता और इस अवसर के सम्मान में उदारता से उपहार वितरित करता था। कु० खु०, 768-72 के अनुसार।

बिहार अभियान से हुमायू की वापिसी पर उसकी मां ने उसके सम्मान में एक भव्य भोज का आयोजन किया। सैनिकों और बाजार के लोगों को अपने घर और दूकानें सजाने का विशेष आदेश दिया गया था, जिससे नगर के मुख्य रास्तों की सुन्दरता बढ़ गई। सम्राट का स्वागत करने के लिए भोजनशाला में एक विशेष सिंहासन निर्मित किया गया था। उसमें जरी के गद्दे और तकिये लगाए गए थे। इस अवसर पर प्रयुक्त किये जाने वाले चंदोवे पर अंग्रेजी जरी और पुर्तगाली मखमल का अस्तर लगा था और वह सुनहरे मुलम्मे वाले स्तम्भों पर टिका था। इस अवसर के सम्मान में उपस्कर की अन्य वस्तुएं, जैसे, दीवट, सुराहियां, हाथ धोने के पात्र, प्याले गुलाबदानी, इत्यादि सब में सोने और मीनाकारी का काम था। 7000 खिलअतें और खच्चरों तथा ऊंटों की बारह पंक्तियां, 100 घोड़े और 70 उत्तम घोड़े वितरित किए गए थे। गु०, 28-9 के अनुसार। अकबर के समय भी ऐसे ही मनोरंजन कभी-कभी अठारह दिनों तक चलते थे। उस समय हजारों गायक और गायिकाएं और नर्तक अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए बुलाये जाते थे। आ० अ०, द्वितीय 309 के अनुसार।

1. जलालुद्दीन खिलजी के समारोहों के वर्णन के लिए तुलनीय है ब० (पाण्डु०,) 107; हुमायू और तुर्की जलसेनानायक सीदी अली रायस के बीच वार्तालाप के लिए देखिए वेम्बी, 55।

अवसरों पर, विशाल संख्या में कर्मचारी, यहां तक कि सर्वसाधारण भी, आमन्त्रित किये जाते थे।

इस सिलसिले में हम मुग़ल सम्राटों द्वारा शाही जश्न के विद्यमान स्वरूप में जोड़े गए नवीन विषयों का वर्णन करेंगे। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि हुमायूं ने जमुना में जल-विहार की पद्धति प्रारम्भ की; उसने इस हेतु चार विशालकाय नावों पर लकड़ी का दोमंज़िला भवन बनवाया, जिसमें आनन्द-समारोहों के लिए सारी व्यवस्था रहती थी। सम्राट संगीत और नृत्य का आनन्द लूटने के लिए कुछ चुने हुए अमीरों और महिलाओं के साथ जमुना पर जाता था। 'रहस्यगृह', जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, कभी-कभी सामाजिक समारोह के उपयोग में भी लाया जाता था। ऐसे अवसर पर अष्टभुजी सरोवर का जल निकाल दिया जाता था और फ़र्श पर बहुमूल्य फ़ारसी गलीचे बिछा दिये जाते थे। बादशाह के लिए एक ऊंचा मंच बना दिया जाता और अभ्यागत और संगीतज्ञ फ़र्श पर बैठते थे। सारा भवन ज़री और कसीदे वाले कपड़ों से सुन्दरता पूर्वक सजाया जाता था। नीचे की मंज़िल में बाज के दो कक्षों में बादशाह के निवास के लिये आवश्यक संख्या में चारपाईयां, पानदान, प्याले, सुराहियां और अन्य उपस्कर रख दिये जाते थे। ऊपर की मंज़िल को शस्त्रों, प्रार्थना के गलीचों, पुस्तकों, दावात रखने के पात्रों और लेखनकला तथा चित्रकला के नमूनों से शाही-दल के विश्रामकक्ष के रूप में उपयोगार्थ सजाया जाता था। भवन में फल, पेय और सारी आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था की जाती थी। कभी-कभी जलकुण्ड स्नान के लिये उपयोग में लाया जाता और शीतनिरोधक औषधियां लेने के पश्चात्, लोग सारा दिन आनन्द लूटने के लिये उसमें पड़े रहते थे।[1]

हुमायूं ने इसी प्रकार एक प्रथा प्रचलित की जो उसके पुत्र और उत्तराधिकारियों के अन्तर्गत 'मीना-बाज़ार' के नाम से प्रसिद्ध हुई। ये अलग और विस्तृत बाज़ार नहीं थे; नावों पर निर्मित उपरोल्लिखित दो मंज़िले भवन में केवल छः दूकानें बनाई जाती थीं। सारे स्थान को अति सुन्दर रूप देने के लिए नाव पर एक लघु वाटिका बनाई जाती थी और उसमें गमले रखे जाते थे। दूकानों की व्यवस्था प्रतिष्ठित महिलाओं द्वारा की जाती थी। ये ही महिलाएं दूकानदारिनों का कार्य करतीं और बादशाह भाव तय करता और क्रय करता हुआ वहां घूमा करता था।[2] अकबर के समय मीना-बाज़ारों की यह पद्धति बहुत विकसित और बड़े पैमाने पर हो गई। साधारण दूकानों के स्थान पर अब बाज़ार भरने लगा, जहां महिलाएं और सम्राट बारी-बारी से ग्राहक और दूकानदार का कार्य करते थे। यह नियमित बाज़ार था और यहां सब प्रकार की सामग्री बेची जाती थी। वास्तव में शाही क्रियाकलाप की इस शाखा की देखरेख करने के

1. विस्तृत वर्णन के लिये देखिए खांद०, 135-7।
2. विस्तृत वर्णन के लिये गुलबदन पृ० 31 का वर्णन तुलनीय है।

लिए एक नियमित खजांची और लेखा-निरीक्षक नियुक्त किये जाते थे। अबुलफज्ल हमें जितना बताना पसन्द करता है उससे अधिक हमे इन प्रपंचों के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। उसके अनुसार सम्राट द्वारा की जाने वाली खरीदें स्त्री-विक्रेताओं द्वारा 'सब प्रकार की सूचनाओं से परिचित होने के लिये एक बहानामात्र' ही थीं। इन मीनाबाजारों में बहुत अंश तक स्वतन्त्रता और सम्राट के पास पहुंचने की गुंजाइश थी। उदाहरणार्थ जब सम्राट दूकानदार का काम करता, उस समय महिलाएं और अन्य व्यक्ति शाही अंगरक्षकों और परिचयकर्त्ताओं के हस्तक्षेप के बिना उसकी दूकान में पहुंच जाते थे। जिससे किसी वस्तु का मूल्य तय करने के अतिरिक्त लोग अवसर से लाभ उठाकर उसे अपने सारे दुःख और शिकायतें भी सुना देते थे।[1]

भीतरी खेल—हल्के मनोविनोदों के लिए बाजी लगाकर और बिना बाजी लगाए भी विभिन्न भीतरी खेल खेले जाते थे। शतरंज, चौपड़, नर्द (फ़ारसी चौपड़ का ढंग) और ताश सब वर्गों में लोकप्रिय थे। इन मनोविनोदों की धार्मिक वैधता के सम्बन्ध में कट्टर-पंथी क्षेत्रों में भयानक मतविभिन्नता थी। कट्टर-पंथी मत एक स्वर से सब प्रकार के जुओं के विरुद्ध था। कुछ चतुर धर्मशास्त्रियों ने तो पैगम्बर की इस आशय की एक परम्परा खोज निकाली कि नर्द खेलना पाप है। इसी बात की एक वजनदार व्याख्या बुद्धिमान अली के नाम के साथ संलग्न की गई और कहा जाने लगा कि अली के अनुसार शतरंज समुचित मानसिक विकास के लिए हानिकारक है। विरोधी लोगों की बात साधारण ही थी और वह सामान्य बुद्धि और व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित थी। वे शतरंज और नर्द को दो प्रकार के श्रेष्ठ उच्चवर्गीय मनोरंजन समझते थे, जो बिलकुल दोषहीन और उत्कृष्ट माने जाते थे। उन्होंने इन खेलों की व्यापक लोकप्रियता का उत्साह से समर्थन किया।[2] पवित्र आदेशों की शक्ति उनके मनोविनोदों के इस व्यावहारिक दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में शायद ही प्रभावकारी हो पाती थी।

(क) शतरंज—सब विवरण इस बात पर एकमत हैं कि शतरंज सारे भीतरी खेलों में शानदार समझा जाता था। बुद्धिमान हारून-अल-रशीद के कथनानुसार 'बिना कुछ मनोरंजन के जीवन असम्भव है और एक शासक के लिए मैं शतरंज से श्रेष्ठ और कोई मनोरंजन नहीं सुझा सकता।'[3] इस खेल ने भारत में ऐसी स्थिति बहुत पहले से प्राप्त कर ली थी। हमारा काल इस खेल की प्रगति में विशेष उल्लेखनीय है और अबुल फतह् हिन्दी नामक प्रसिद्ध भारतीय शतरंज के खिलाड़ी ने खेल में अपने कौशल के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और ख्याति प्राप्त कर ली थी।[4] हसन

1. तुलनीय, आ० अ०, प्रथम, 200-1।
2. ता० अ०, 171 में मतभेदों का विस्तृत वर्णन देखिए।
3. तुलनीय, वहीं, 163।
4. तुलनीय, ब्लाण्ड 17।

निजामी, अमीर खुसरो और मलिक मुहम्मद जायसी शतरंज के खेल के अनेक संदर्भ देते हैं जिनसे प्रकट होता है कि यह सब वर्गों में लोकप्रिय था। जायसी विशेष रूप से एक वास्तविक दृश्य का वर्णन करता है जिसमें सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी और राजा रतनसेन चित्तौड़ के राजपूती किले के भीतर शतरंज खेलते हैं।[1] शतरंज के भारतीय उद्भव का कभी-कभी अपर्याप्त आधारों पर विरोध किया गया है। यह मसला अमीर खुसरोके समय, जो स्वयं शतरंज के भारतीय उद्भव का उत्साही समर्थक था, इतना विवादपूर्ण नहीं था। यह सिद्ध करने के लिए कि भारत का दावा विवादहीन है, ऐतिहासिक साक्ष्य कम नहीं हैं।[2] शतरंज के वर्तमान खेल के अतिरिक्त इस समय शतरंज-ए-कामिल या 'चतुराजी शतरंज' नामक अन्य प्रकार का एक खेल भी खेला जाता था।[3]

---

1. शतरंज के खेल से लिये गए रूपकों में हसन निज़ामी के वर्णन के लिए तुलनीय है ता० मा०, 12। इजाज-ए-खुसरवी और अन्य कृतियों में अमीर खुसरो के ऐसे ही वर्णन दे० । प० (हि०), 257 में मलिक मुहम्मद जायसी का वर्णन तुलनीय है।
2. अमीर खुसरो, कु० खु०, पादटिप्पणी, 709 का अभिमत देखिए। श्री ब्लाण्ड फ़ारसी मूल के समर्थक हैं। इरविन, अपनी शतरंज-सम्बन्धी पुस्तक में शतरंज का उद्भव अनेक आविष्कारों के घर चीन में सफलतापूर्वक खोज निकालने का दावा करते हैं। वे अपना अभिमत कुछ अति प्राचीन चीनी पाण्डुलिपियों (जिनका उन्होंने स्वयं निरीक्षण नहीं किया) पर आधारित करते हैं और इसकी खोज का श्रेय एक ऐसे चीनी सेनानायक के चातुर्य को देते हैं, जो अपने सैनिकों को राजनीति से परे रखने के लिए खेल में व्यस्त रखना चाहता था। ज० रा० ए० सो०, 1898, 'ओरिजिन एण्ड अर्ली हिस्ट्री आफ चैस' में मैक्डानेल ने स्पष्ट कर दिया है कि छठवीं शती के अन्त में कोसरो अनुशर्वन के यहां एक भारतीय दूतमण्डल के भ्रमण का और लगभग उसी समय इस दूतावास के द्वारा फ़ारस में शतरंज के प्रारम्भ किये जाने का निश्चित प्रमाण है। फ़ारस जाने वाले भारतीय दूतमण्डल की कथा इस विषय के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मुस्लिम इतिहास में मिलती है। ऐसा दावा किया जाता है कि फ़ारस से इस राज-दूतावास के वापस लौटने पर हिन्दुस्तान में 'नर्द' प्रारम्भ हुआ।
3. मेकडानल के अनुसार 15वीं शती और प्रारम्भिक सोलहवीं शती में एक संस्कृत लेखक द्वारा 'चतुराजी' (चार राजाओं का खेल) का उल्लेख किया गया है, यद्यपि यह खेल पहले भी विद्यमान था। यह खेल चार व्यक्तियों और दो पांसों से खेला जाता था और प्रत्येक गोट पांसों के फेंकने के अंकों के अनुसार चलती थी। इस खेल के लिए 64 वर्गों की बिसात का प्रयोग किया जाता था और 32 आकृतियां 8-8 के चार समूहों में विभाजित रहती थीं। प्रत्येक समूह

(ख) **चौपड़, ताश इत्यादि**—चौपड़ के भारतीय उद्भव के प्रश्न का कभी विरोध नहीं किया गया है। यह एक प्राचीन खेल है जो अभी भी तीन भिन्न नामों से खेला जाता है—पचीसी, चौसर और चौपड़। अन्तर खेल के नियमों का खेल की पद्धति में नहीं, बल्कि गौण और उपेक्षणीय बातों में है।[1] चौपड़ का खेल, आज के ही समान, भिन्न रंग वाले चार समूहों में विभाजित सोलह गोटों से खेला जाता था। खेल साधारणतः दो-दो के समूह में कुल चार खिलाड़ियों द्वारा खेला जाता है। प्रत्येक खिलाड़ी के पास चार गोटें रहती है, जिन्हें वह चौपड़ के नक्शे में पासों के (या आजकल कौड़ियों के) अकों के अनुसार चलता था। चौपड़ के नक्शे का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—दो-दो रेखाओं के दो समूह लें जो मध्य में एक-दूसरे को समकोण पर काटें। चार रेखाओं के इस विभाजन से मध्य में एक वर्ग और इस वर्ग की चार भुजाओं से लगे चार आयत निर्मित हो जाते हैं। मध्य के वर्ग को जैसा का तैसा छोड़कर चार आयतों में से प्रत्येक 8-8 की 3 पंक्तियों में, अर्थात् 24 वर्गों में, विभाजित कर दिया जाता है।[2] चौपड़ का खेल हिन्दुओं, विशेषकर राजपूतों में विशेष रूप से प्रिय था। मुगल सम्राट् अकबर ने बाद में गोटों के स्थान पर मनुष्यों को ही रखना प्रारम्भ किया और इसे 'चण्डल-मण्डल' के मनोरंजक खेल में

में पहली पंक्ति में एक राजा, हाथी, घोड़ा और रथ तथा दूसरी पंक्ति में उनके सामने चार प्यादे सैनिक रहते थे। इन्हें इस प्रकार रखा जाता था कि रथ सदैव ही खिलाड़ी के बायें कोने में रहता था। इस प्रकार चार राजा रहते थे और प्रत्येक के साथ सेना के चार अंगों का प्रतिनिधित्व करने वाली आकृतियां रहतीं थीं, जबकि मंत्री नहीं रहता था। इस खेल के उद्गम और विकास पर प्रकाश डालना कठिन है, किन्तु ब्लाण्ड फारसी दावे का समर्थन करते हैं। तिमूर 'चतुराजी' शतरंज खेलता था और यह खेल साधारण शतरंज की जननी माना जाता है, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार साधारण शतरंज इसका संक्षिप्त रूप है। देखिये ब्लाण्ड, 5-6।

1. आधुनिक चौपड़ के लिए तुलनीय क्रुक का हेवर्लांट इ०, 333-5।
2. चौपड़ के नक्शे के लिये आ० अ०, प्रथम, 218-9; चालू खेल के लिए प० 22 भी तुलनीय है। ध्यान रखा जाना चाहिए कि क्षत्रियों ने अभी भी 'उदारता के सद्गुण, तलवारबाजी में अतुलनीयता' और जुए में चौपड़ के पासे फेंकने में अपनी प्रतिष्ठा कायम रखी थी। प्राचीन 'चतुरंग' के साथ चौपड़ के सम्बन्ध के बारे में मेकडानल के रोचक विचार देखिए, ज० रा० ए० सो०, 1898, 140। हिन्दू सन्तों में चौपड़ की लोकप्रियता के लिए देखिए—मीराबाई अपने प्रिय गिरधर के साथ चौपड़ खेलती है (मेकालिफ, 348 के अनुसार)। चौपड़ से लिए गए रूपकों में मलिक मुहम्मद जायसी के एक सम्पूर्ण वर्णन के लिए प० (हिन्दी), 141 तुलनीय है।

परिवर्तित कर दिया ।[1]

इस सिलसिले में 'नर्द' या फ़ारसी चौपड़ के खेल का उल्लेख किया जा सकता है, जो हिन्दुस्तान में मुस्लिम काल के प्रारम्भ में ही शुरू हो गया था । इसकी बिसात और गोटें बनाने में हर प्रकार उत्कृष्टता का प्रयोग किया जाता था ।[2] 'नर्द' समान आकार वाले चौबीस वर्गों में विभाजित लकड़ी की वर्गाकार तख्ती पर खेला जाता था । वह 15-15 के दो भिन्न रंगों वाले समूहों में विभाजित तीस गोटों से खेला जाता था ।[3] नर्द के ही नमूने पर हुमायूं ने एक खेल प्रारम्भ किया जिसमें मानवी मोहरे होते थे ।[4] परम्परा में इस लोकप्रिय तथ्य का उल्लेख है कि भारत में नर्द फ़ारस से, शतरंज के एवज में, जो कि वहाँ इस देश से गया था, लाया गया था ।

ताश का खेल (गंजीफ़ा) हिन्दुस्तान में मुग़ल सम्राट् बाबर द्वारा प्रचलित किया गया प्रतीत होता है ।[5] अकबर ने सम्भवतः इस खेल में कुछ संशोधन किए । यह खेल उसके शासनकाल में बहुत लोकप्रिय हो गया था । पुरानी मुग़ल ताशों में बारह पत्ते प्रति समूह के हिसाब से आठ समूह थे और वर्तमान रानी और गुलाम के स्थान पर एक वज़ीर रहता था । प्राचीन मुग़ल ताश अभी भी उपयोग में आती है ।[6]

सब भीतरी खेलों में दांव लगाकर खेलने का किंचित् लोभ होता है । जूए की भारतीय परम्परा अत्यन्त प्राचीन और पूज्य थी । चौपड़ के साधारण खेल में, जैसा कि पहले उल्लेख कर दिया गया है, पासे प्रयुक्त किए जाते थे । यह सामान्यतः हाथीदांत का बना चौपहला होता था और इसके पहलुओं पर क्रमशः एक, दो, पांच और छः बिन्दु अंकित रहते थे । दांव लगाकर खेलने के लिए ऐसे तीन पांसे प्रयुक्त किए जाते थे ।[7] जूआ केवल निम्न वर्गों तक ही सीमित नहीं था । गुलबदन कहती है कि जब शाही परिवार काबुल में था तब हुमायूं दांव लगाकर खेल खेलता था, वह खिलाड़ियों—पुरुषों और महिलाओं, दोनों में से प्रत्येक को बीस-बीस-स्वर्णखण्ड बांट

---

1. 'चण्डल-मण्डल' के वर्णन के लिए तुलनीय आ० अ०, 219 ।
2. मलिक काफ़ूर द्वारा खेले जाने वाले 'नर्द' के एक भेद 'तुरी' के लिए देखिए तु० त०, प्रथम, 174 । 'इजाज़-ए-खुसरवी' में नर्द के अनेक सन्दर्भ हैं ।
3. तुलनीय, ना० अ० (द्वितीय), 164 ।
4. खांदमीर, 155-6 में इस खेल का वर्णन तुलनीय है ।
5. बाबरनामा, 307 का वर्णन तुलनीय है ।
6. तुलनीय, आ० अ०, प्रथम 220; क्रुक का हेक्लोट्स इस्लाम इ०, 335 ।
7. हिन्दुस्तान में जूए के प्रचलन के लिए आइन-ए-अकबरी, द्वितीय, 190 का वर्णन देखिए; पांसे के प्रयोग के लिए पु० प०, 148 ।

देता था जो कि दाँव की निधि के काम आते थे।[1]

अन्य गौण मनोविनोदों में हम कबूतरबाजी और मुर्गे लड़ाने का उल्लेख कर सकते हैं। कट्टरपन्थी मुस्लिम कबूतरबाजी पर उतनी आपत्ति नहीं करते थे जितनी कि निन्दित मुर्गे लड़ाने पर। सर्वसाधारण किसी भी मनोविनोद में उनकी सलाह लेने के इच्छुक नहीं थे।[2] सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने एक नियमित कबूतरखाना स्थापित कर रखा था, जो सम्भवतः उसे उसके पूर्ववर्ती शासकों से प्राप्त हुआ था। अकबर को तरुणावस्था में कबूतर उड़ाने का बहुत शौक था। तरुण अकबर स्वयं अपने पक्षियों को चुगाता था और इस मनोविनोद को 'इश्कबाजी' (प्रेमाचार) कह-कर सम्बोधित करता था।[3]

III. लोकप्रिय आमोद-प्रमोद

लोकप्रिय आमोद-प्रमोदों के अनेक भेद थे; एक तो था धार्मिक त्यौहार और पवित्र-समाधियों की सामयिक तीर्थयात्रा तथा दूसरा था सार्वजनिक स्वागत और सरकारी उत्सव। लोकनृत्य, गायन, बाजीगर के करतब सामान्य जनता के दैनन्दिन मनोरंजन थे और समय-समय पर इन सरल मनोरंजनों में वे अपना कठोर जीवन तथा उनका कठिन परिश्रम भुला देते थे।[4]

हिन्दू त्यौहार—मुस्लिम त्यौहारों की तुलना में हिन्दुओं के धार्मिक और सामाजिक त्यौहार मनाए जाने की शैली या ढंग उस निश्चित ऋतु के लिए उल्लेखनीय है, जिसमें वे मनाए जाते है। वे साधारणतः कृषकों के लिए अपेक्षाकृत विश्राम की ऋतु से मेल खाते है और उन्हें नृत्य और लोकधुनों के साथ मनाया जाता है। शासक वंश आए और गए, संकट आए, विनाश हुए और भुला भी दिये गए, लोग उत्पीडित हुए और कराहे भी, किन्तु स्थानीय और सामान्य त्यौहार पूर्ववत् बने रहे तथा वे सदैव

---

1. तुलनीय गु०, 77।
2. त०, 20 में; इ० खु० प्रथम, 179 में भी कबूतरबाजी और मुर्गे लड़ाने के प्रति मुस्लिम रूढ़ियादिता का रुख तुलनीय है।
3. अलाउद्दीन के कबूतरखाने के लिए ब०, 318 में एक परोक्ष सन्दर्भ; अकबर के लिए अ० ना०, द्वितीय, 317-8।
4. थट्टा (सिंध) के लोगों के सम्बन्ध में 'तारीख-ए-ताहिरी' का प्राक्कलन तुलनीय है। अन्य देशों के पास अधिक धन और अधिक कुशलता है, किन्तु केवल एक दिन परिश्रम करना और शेष सप्ताह भर शान्ति में बैठना, केवल साधारण इच्छाएँ रखना और अपरिमित विश्राम का आनन्द लूटना—ऐसी निश्चितता और सन्तोष केवल थट्टा के लोगों के लिए सुरक्षित है।' इलि० डाउ० प्रथम 274 के अनुसार।

उत्साह और आनन्द से मनाए जाते रहे। नवीन सम्प्रदायों और धार्मिक विश्वासों के आने पर भी इन लोकप्रिय त्यौहारों का स्वरूप बदला नहीं। बल्कि, नवागत विदेशियों ने उनकी भव्यता और प्रकारों में योग ही दिया है। यद्यपि ये त्यौहार केवल कुछ लोगों की धार्मिक भावनाओं को ही प्रश्रय देते थे, पर अधिकांश में जनता उनके धार्मिक महत्त्व से नितान्त उदासीन थी। उनके लिए ये त्यौहार सार्वभौमिक सामाजिक आनन्दोपभोग और समागम के लोकप्रिय अवसर हैं।

सब स्थानीय और सामान्य त्यौहारों का वर्णन करना कठिन है। इनमें से कुछ-एक ने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली जो आज भी कायम है।[1] सर्वाधिक लोकप्रिय त्यौहार हैं—वसन्त पचमी, होली, दीपावली (या दीवाली), शिवरात्रि और कृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओं से सम्बन्धित अन्य त्यौहार। वसन्त पंचमी का त्यौहार वसन्त का अग्रदूत था और माघ माह में मनाया जाता था। यह गायन, लोकनृत्य तथा गुलाल बिखेरे जाने के लिए प्रसिद्ध था। कुछ मानों में होली, शूद्रों या निम्न-वर्गीय हिन्दुओं के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण त्यौहार था। यह त्यौहार विशाल परिमाण में अग्नि जलाकर, लोकप्रिय गाने गाकर और गुलाल बिखेर कर मनाया जाता था। होली फाल्गुन माह में मनाई जाती थी। माघ की 29वीं तिथि की रात्रि को शिवरात्रि का त्यौहार आता था। धार्मिक मनोवृत्ति वाले लोग रात्रि-जागरण और प्रार्थनाएँ करके इसे मनाते थे। कार्तिक की 25वीं तिथि को दीपावली या दीवाली का त्यौहार मनाया जाता था।[2]

सब त्यौहार अपने अलग तरीकों से मनाए जाते थे। उदाहरणार्थ, वसन्त पंचमी त्यौहार में महादेव की पूजा का स्थान प्रमुख है। सिंदूर और गुलाल इतनी मात्रा में बिखेरा जाता था कि मलिक मुहम्मद जायसी के शब्दों में 'पृथ्वी से लेकर आकाश तक प्रत्येक वस्तु लाल हो जाती थी।' युवतियां शिव-मन्दिरों में फल-फूलों की भेंट ले जाना नहीं भूलतीं थीं और वहाँ वे शिवलिंग को चन्दन और अगरु के लेप से अभिषिक्त करके और सिंदूर से रंगकर अपनी मनोकामना की पूर्ति की प्रार्थना करतीं थीं, जिसमें निश्चय ही प्रिय जीवन-साथी की आकांक्षा भी सम्मिलित रहती थी। तब सम्भवतः इच्छा पूरी होने पर देवता को दूसरी भेंट चढ़ाने का वादा करके वे घर लौट जाती थीं।[3] इसी प्रकार होली के अवसर पर तीन दिनों तक सब जातियों और वर्गों के हिन्दू केसरिया और रंगीन जल से राहियों को भी भिगो देते थे। तीसरे दिन शाम को शायद पूरी जनता एक विशाल अग्नि के चारों ओर एकत्र हो जाती

1. हिन्दू-त्यौहारों के वर्णन के लिए देखिए रॉस, फीस्ट्स, इ०, पृष्ठ 17-18, 75-6, 77।
2. हिन्दू-त्यौहारों के वर्णन के लिए देखिए आ० अ०, द्वितीय, 188-91।
3. पद्मावत, 417-27 में वसंत पंचमी के एक विशिष्ट उत्सव का वर्णन द्रष्टव्य है।

थी और आगामी फसल के लिए शकुन विचारती थी।[1] शिवरात्रि साधारण लोगों द्वारा आतिशबाजी जलाकर मनाई जाती थी जबकि अधिक गम्भीर और धार्मिक मनोवृत्ति वाले लोग रात्रि-जागरण करते थे। लक्ष्मी देवी की सामूहिक पूजा के पश्चात् लोग मशालें, जलती हुई लकड़ियाँ और शलाकाएँ घुमाते थे।[2]

दीवाली कुछ अर्थों में अत्यन्त खुशनुमा और आनन्दमय त्योहार होता था। इसे 'प्रकाश का त्योहार' ठीक ही कहा गया है। वर्ष में एक बार पुण्यात्मा मृतकों को इस पृथ्वी के निवासियों से स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपने इहलौकिक घरों और परिचित वातावरण में आने की अनुमति दी जाती थी। स्वभावतः सम्बन्धीगण अपने पूर्वजों की आत्माओं का उत्साह से स्वागत करने में प्रसन्नता का अनुभव करते थे। घरों के भीतर और बाहर और मन्दिरों तथा सार्वजनिक भवनों में सर्वत्र विशाल संख्या में दीप जलाए जाते थे। सम्पूर्ण स्थान प्रकाश के समुद्र के समान प्रतीत होता था।[3] यह वैश्यों या साहूकारों और अन्य व्यवसायी वर्गों का अत्यन्त लोकप्रिय त्योहार था। प्रत्येक व्यक्ति आगामी वर्ष के लिए अपने भाग्य का शकुन विचारने के लिए उत्सुक रहता था। इसलिए भाग्य आजमाने के जादुई साधन के रूप में सब लोग जुए का प्रश्रय लेते थे।[4]

'दशहरा' क्षत्रियों और कृषक-वर्गों में बहुत लोकप्रिय था। यह त्योहार आश्विन की दसवीं तिथि (जिसे अब 'विजयदशमी' भी कहा जाता है) को पड़ता था और उपरोल्लिखित वर्गों द्वारा शैवमार्गी देवी दुर्गा की पूजा की जाती थी। अपने-अपने व्यापार, व्यवसाय या धन्धे के उपकरणों की पूजा करना भी इसकी एक विशेषता थी। राजपूत अपने घोड़े के मस्तक को जौ की कोंपलों से सजाकर लाते थे; किसान और शिल्पीगण अपने औज़ार लाते और उनकी पूजा करते थे।[5] 'पूर्णमासी' श्रावण

---

1. होली का त्योहार मनाने के लिए तुलनीय है क्रुक, 'पापुलर रिलीजन,' 343; निकोलो काण्टी के वर्णन के लिए फ्रेम्प्टन, 42 भी देखिए, जो सम्भवतः इसी त्योहार के लिए लागू होता है।
2. राजा लक्ष्मण के सैनिकों द्वारा शिवरात्रि मनाए जाने के लिए तुलनीय है पृ० प०, 137; *शलाकाओं के वर्णन के लिए* कारपेण्टर, 306 भी देखिए। *यह बालकों का पुराना और परिचित खेल था, जो हवा में तेजी से जलती हुई लकड़ी घुमाकर, अग्नि के वृत्त का आभास उत्पन्न करके खेला जाता था।*
3. दीवाली के विश्लेषण के लिए तुलनीय क्रुक, 'पापुलर रिलीजन,' द्वि०, 316। जगमगाहट के वर्णन के लिए देखिए फ्रेम्प्टन, 42।
4. दीवाली त्योहार के अवसर पर जूआ खेलने के लिए देखिए आ० अ०, द्वितीय, 188-91।
5. वही।

के पूर्णचन्द्र के दिन पड़ती थी और यह ब्राह्मणों का प्रिय त्यौहार था। युवतियां सौभाग्य और स्नेह के प्रतीकस्वरूप युवकों के हाथों में बाजूबंद के रूप में राखी (या रेशम के रेशों और गोटों से बना धागा) बांधती थीं।

सामाजिक महत्व के त्यौहारों में वे ही त्यौहार प्रमुख हैं जो राम, कृष्ण, परशुराम और नृसिंह के जन्म से सम्बन्धित हैं। हमारे काल में सर्वाधिक लोकप्रिय देवता कृष्ण थे और उनके सम्प्रदाय का तेजी से प्रसार हो रहा था। पुरी में भगवान जगन्नाथ वर्ष में अनेक बार अपने रथ में बड़ी सज-धज के साथ निकाले जाते थे। लोग कृष्ण की इस मूर्ति के साथ ऐसा व्यवहार करते थे जैसे वह कोई शरीरधारी देवता हो। कृष्ण जनसामान्य के मस्तिष्क की सारी पवित्रतम और सर्वोत्तम भावनाओं का मूर्तरूप था। वृजभूमि (उत्तर प्रदेश में मथुरा के आस-पास) में, जहां भगवान पैदा हुए थे और जहाँ अपने साथियों तथा गोपियों के साथ उन्होंने क्रीड़ा की थी, उनके जीवन की प्रत्येक घटना को अगाध भक्ति के साथ मनाया जाता है। हम बाद में कृष्णलीलाओं का वर्णन करेंगे।[1]

तीर्थयात्राओं में अनेक यात्राएं लोकप्रिय हो गई थीं। कुछ यात्राएं लोकप्रिय सन्तों की समाधियों या अवशेषों के लिए और कुछ पवित्र नगरों के लिए आज के समान पूर्ण या सम्पन्न की जाती थीं। इस काल में नदी-तीर्थ की यात्रा गंगा तक ही सीमित थी और यह यात्रा विशेषकर पहले चान्द्रमासों में की जाती थी। तीर्थ-यात्रियों के विशाल समूह सुविधा और सुरक्षा के लिए साथ मिलकर यात्राएं करते थे और लम्बी यात्रा के व्यय के लिए पर्याप्त भोजन-सामग्री लेकर चलते थे। साधारणतः ये तीर्थ-यात्राएं दुस्साध्य यात्राओं और संकटापन्न मार्गों वाले इस काल के लिए, सुखद और साहसपूर्ण रही होंगी।[2]

मुस्लिम त्यौहार—कट्टरपन्थी दृष्टिकोण के अनुसार मुस्लिम जीवन में साधारणतः किसी भी प्रकार के सामाजिक त्यौहारों का कम ही स्थान है। बहुसंख्यक लोग मक्का की यात्रा करते हैं और अन्य लोग ईद की प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं। किन्तु इनमें वातावरण इतना शुष्क और उदासीन रहता है कि इन्हें सामाजिक उत्सव कहना कठिन है। फिर भी मुस्लिम कर्मकाण्डों की इस शुष्कता पर कालांतर में भारतीय वातावरण और परम्पराओं का प्रभाव पड़ना आवश्यक ही था। फलतः, यद्यपि कट्टरपन्थी धार्मिक उपासना का स्वरूप वही रहा, किन्तु उनकी प्रकृति और उनके उद्देश्य में हिन्दुस्तान के वातावरण के कारण बहुत सीमा तक संशोधन हो गया। कुछ

---

1. चैतन्य की जीवनी, सरकार, 164 का वर्णन और चैतन्य का वृन्दावन भ्रमण तुलनीय है।
2. हिन्दू तीर्थ यात्राओं के लिए इलि० डाउ०, प्रथम, 273; रास, फीस्ट्स भी तुलनीय हैं।

नए त्यौहार भी मुस्लिम पंचांग में थोप दिये गए, जो मुख्यतः सामाजिक और देशी थे।

चूंकि हमने वर्तमान पर्यवेक्षण से मुस्लिम कर्मकाण्डों और प्रार्थनाओं में हुए संशोधन का अध्ययन नहीं किया है, अतः हम अब अपने को केवल उन मुस्लिम त्यौहारों की संगणना तक रही सीमित रखेंगे, जो कट्टरपन्थी मुस्लिम पचांग में सम्मिलित कर दिये गए थे। राज्य द्वारा मान्य त्यौहारों में नौरोज का लोकप्रिय फ़ारसी त्यौहार प्रमुख था, जिसका हमें पहले भी संदर्भ देने का अवसर मिला था। नौरोज़ एक वसन्त-कालीन त्यौहार था। इसे सामान्यतः विशाल बागों और नदी-तट पर स्थित उद्यानों में संगीत और पुष्पों से मनाया जाता था।[1] साधारणतः यह उच्चवर्गीय मुस्लिमों तक ही सीमित था, जो सुल्तान से निकट सम्पर्क रखते थे। अब यह हिन्दुस्तान से लगभग समाप्त हो गया है।[2] मुगल सम्राट हुमायूं पहला शासक था जिसने वस्तुतः धार्मिक प्रभाव के कारण इसे मनाये जाने की मनाही कर दी। किन्तु नौरोज के दिन सरकारी भोज को प्रचलित रखा गया।[3]

अन्य महत्त्वपूर्ण त्यौहार था शबे-बरात ('स्मृति-रात्रि') जो शबान की 14वीं तिथि को पड़ता था।[4] इसे ठीक ही 'इस्लाम का गाई-फॉक्स दिवस' कहकर वर्णित किया गया है, यद्यपि इससे सबद्ध बातें इस अंग्रेजी त्यौहार से बिलकुल भिन्न हैं। यह इस्लाम की एक गाथा का स्मृति-दिवस कहा जाता है, किन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है। कोई निश्चित निर्णय करना कठिन है किन्तु 'शबे-बरात' त्यौहार शिवरात्रि के हिन्दू त्यौहार की नकल पर मनाया जाता है।[5] कुछ धर्मोत्साही व्यक्ति शबे-बरात की पूरी रात्रि को विशेष प्रार्थनाएं करते हुए और पवित्र ग्रंथ तथा अन्य मन्त्रों का पाठ

---

1. वर्णन के लिए इ० कु०, चतुर्थ, 330 देखिए; इस अवसर पर कविताओं के लिए कु० खु० भी देखिए।
2. मुर्शिदाबाद (बंगाल) में नौरोज के त्यौहार के अस्तित्व के लिए तुलनीय है रास, फीस्ट्स, 110।
3. खांद, 150।
4. ध्यान रखने योग्य है कि शबे-बरात का त्यौहार एक अन्य धार्मिक विधि 'लैला-तुल कद्र' ('शक्ति की रात्रि') से बहुत भिन्न है। इसकी ठीक-ठीक तिथि विदित नहीं है, किन्तु साधारण मान्यता यह है कि यह रमजान महीने की 27वीं तिथि को पड़ता है। शबे-बरात के आधुनिक रूप के लिए तुलनीय है रास, फीस्ट्स, इ०, 111-2। अधिक विस्तार के लिए मीर हसन अली की पुस्तक देखिए।
5. रात्रि-जागरण और आतिशबाजी दोनों त्यौहारों में समानरूप से रहते हैं। मेजर के अनुसार आतिशबाजी का प्रयोग दक्षिण के हिन्दू त्यौहार महानंदी में भी किया जाता था।

करते हुए बिताते हैं।[1] साधारण जनता इस त्यौहार में आनन्द व उल्लास में समय बिताती थी। आतिशबाजियों का बहुलता से प्रयोग किया जाता था और घरों तथा मस्जिदों को इस लोकप्रिय उत्सव के समय प्रकाशित किया जाता था।[2]

जब यह त्यौहार सामान्य रूप से प्रचलित हो गया तो सुल्तान उत्सवों में भाग लेने से पीछे नहीं रहे। ऐसा कहा जाता है कि सुल्तान फीरोज तुगलक इस त्यौहार को चार दिन तक मनाता था। 'शबे-बरात' निकट आने पर वह ढेरों आतिशबाजी एकत्र कर लेता था। इस सामग्री के चार बृहत् ढेर सुल्तान के लिए सुरक्षित रहते थे; एक उसके भाई वरबक को सौंपा जाता, एक मलिक अली को और दूसरा मलिक याकूब को दिया जाता था। इस तथ्य से इन आतिशबाजियों का अनुमान लगाया जा सकता है कि केवल पटाखे गधों के तीस भार के बराबर एकत्र किये जाते थे। बाद में 13वीं, 14वीं और 15वीं शबान की रात्रि को आतिशबाजी जलाई जाती थी। जैसा कि वृत्तांतकार इसका वर्णन करता है, जगमगाहट के कारण रात्रि दिन जैसी हो जाती थी। इन आतिशबाजियों के चार बड़े-बड़े थाल वाद्यवादक-वृन्द के साथ फीरोजाबाद में एकत्र दर्शनार्थियों के समूह को बांटे जाते थे। 15वीं शबान की रात्रि को विभिन्न परोपकारी संस्थाओं को उपहार भेजे जाते थे।[3]

मुहर्रम आडम्बरहीन तरीके से मनाया जाता था। ताजियों (या करबला के शहीदों के प्रतिरूप मकबरे) के प्रारम्भ का श्रेय तिमूर को देने में, चाहे सत्य कुछ भी हो, हिन्दुस्तान में इस दिशा में उसके प्रभाव का अनुभव नहीं किया गया।[4] फिर भी हिन्दुस्तान जैसे देश में बाद में होने वाली मुहर्रम की विस्तृत तैयारियों के प्रचलन का अनुमान लगाना कठिन नहीं है।[5] कट्टरपंथी और धार्मिक मनोवृत्ति वाले

---

1. ता० फी०, 104-5 में एक उदाहरण देखिए।
2. अमीर खुसरो का वर्णन द्रष्टव्य है। जो दिल्ली के शैतान बच्चों को आतिशबाजी चलाते हुए वस्तुतः 'नगर को अग्नदाहन की कथा का ज्वालामय नरक' बनाते हुए पाता है। वह आगे कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्थानीय मस्जिद को प्रकाशित करने के लिए कुछ दीप भेजता था। इ० ख०, चतुर्थ, 324 के अनुसार। 'दीवान-ए-हसन-ए-देहलवी' 32 में अमीर हसन का प्रामाणिक वर्णन देखिए।
3. विस्तृत वर्णन के लिए अ०, 365-7 देखिए।
4. श्रीमती मीर हसन अली की पुस्तक में मुहर्रम के उत्सवों का विस्तृत वर्णन द्रष्टव्य है; चीनी यात्री फाहियान द्वारा हिन्दुस्तान में बुद्ध की मूर्तियों के जुलूस के उल्लेख के लिए क्रूक का हेक्लाट्स इस्लाम इ०, 164, और हैवेल का हिस्ट्री आफ आर्यन रूल, 168 भी देखिए।
5. वर्तमान मुहर्रम 'पैशन प्ले' (ईसा मसीह के कष्टों और मृत्यु से सम्बन्धित नाटक) के विभिन्न तत्त्व, जैसे करबला के शहीदों के मकबरों के छोटे नमूने,

मुसलमान मुहर्रम के पहले दस दिन करबला के वीरों के शहीद होने का वर्णन करने में और उनके आत्मिक कल्याण के लिए प्रार्थना करने में बिताते थे।[1] दिल्ली के सुल्तानों के समय में वे इन मर्यादाओं के बाहर नहीं जाते थे।

लोकप्रिय मुस्लिम-तीर्थयात्राएं प्रतिष्ठित सन्तों की दरगाहों तक सीमित रहती थीं। उनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सन्त बहराइच (उत्तर प्रदेश) के मसूद सालार गाजी की थी।[2] प्रतिष्ठित सन्तों के उर्स या वार्षिकोत्सवों की प्रसिद्धि अभी जनता में प्रारम्भ हो ही रही थी। कुछ सूफी या प्रसिद्ध सन्तों के अनुयायी सन्तों की कब्रों पर साल में एक बार एकत्र हुआ करते थे, किन्तु यह कार्य केवल कुछ ही लोगों तक सीमित था। सन्तों के मकबरों में जाना अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर रहा था। हम सुल्तान फीरोज तुगलक के निषेध का उल्लेख कर ही चुके है कि उसने दिल्ली नगर के बाहर स्थित मकबरों में स्त्रियों के जाने की मनाही कर दी थी। सिंध में नर-नारियों के विशाल समूह प्रत्येक चान्द्र मास के पहले शुक्रवार को किसी प्रतिष्ठित सन्त की कब्र के दर्शनार्थ 'मकली' पर्वत पर जाया करते थे। सिंध में, जहां लगभग एक दर्जन ऐसे स्थान थे, हर माह के पहले सोमवार को अन्य समाधियों पर पहुंचने के लिए ऐसे ही भ्रमणों का उल्लेख मिलता है। ऐसे अवसरों पर इतनी भीड़ इकट्ठी हो जाती थी कि खड़ा होने के लिए भी स्थान मुश्किल से मिल पाता था। भ्रमणार्थी मनोविनोद और आनन्दोत्सवों में दिन बिताते थे और शाम तक कुछ देरी से लौटकर आते थे।

कट्टरपंथी लोग और विशेष रूप से धर्मशास्त्री स्वभावतः स्त्री-पुरुषों के बीच सामाजिक समागम की स्वतन्त्रता और इन सम्मेलनों के आनन्द तथा प्रसन्नता के वातावरण से रुष्ट थे। किन्तु जनमत इन वृद्धों की बातों पर ध्यान नहीं देता

वीरों के अवशेष और अनेक प्रकार के विलाप तथा प्रदर्शन हिन्दुस्तान में होते थे। मुसलमानों में अवशेषों की पूजा प्रचलित थी। वे आदम और मुहम्मद के काल्पनिक पदचिह्नों को उतने ही उत्साह से पूजते थे, जैसे कि हिन्दू अपने अवशेषों को। जगन्नाथ रथ और कृष्णलीलाएं तथा उनके जुलूस लगभग मुहर्रम के जुलूसों के समान ही थे।

1. कुछ सन्दर्भों के लिए तुलनीय है इ० खु०, चतुर्थ, 328; बढ़ते हुए शिक्षा प्रभाव और विचारों का चित्रण सैयद जहांगीर अशरफ (ब० संग्रहालय पाण्डु) के 'मक्तूबात' में अच्छा किया गया है।
2. इस सिलसिले में यह स्मरण रखना चाहिए कि अन्य इस्लामी देशों (स्टीन का तुर्किस्तान का वर्णन देखिए) के समान भारत में भी अनेक वर्तमान मुस्लिम समाधियां विधर्मी-बौद्धों और हिन्दुओं—के अवशेषों के पुराने स्थान पर ही अवस्थित हैं। सैयद सालार का मकबरा सम्भवतः एक सूर्य-मन्दिर पर बना है। (जिले में बौद्ध अवशेषों के लिए देखिए इम्पी० गैजे० इण्डि०; 'बहराइच')।

था और जैसा कि तारीख-ए-ताहिरी का लेखक कहता है, 'यह रिवाज लोगों में बहुत लम्बे काल तक विद्यमान रहा है और समय ने जो कुछ सम्मोदित कर दिया है वे उसे कभी नहीं त्यागते'।[1] इस प्रकार के व्यवहार की पवित्रता अन्य निषेधाज्ञाओं पर लागू हो गई।

सरकारी स्वागत-समारोह और राजकीय उत्सव—इस सिलसिले में कुछ सरकारी उत्सवों का उल्लेख किया जा सकता है, जिनमें बिना किसी वर्ग-भेद या सामाजिक-भेद के प्रत्येक व्यक्ति को भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता था। ऐसे अवसर अनेक आते थे। उदाहरणार्थ, किसी स्मरणीय घटना के पश्चात् राजधानी में सुल्तान की वापसी पर उसका स्वागत, किसी विजयोत्सव, राजकुमार या राजकुमारी का विवाह, सुल्तान के पहले पुत्र का जन्म आदि। ये उत्सव प्रायः एक ही तरीके से हिन्दू और मुस्लिम दोनों समकालीन शासकों द्वारा मनाए जाते थे। एक विस्तीर्ण खुले मैदान में बहुमूल्य कपड़ों और कसीदाकारी वाले परदों से सजे हुए मेहराबदार शामियाने बनाये जाते थे। फर्श पर गलीचे बिछाए जाते थे। कभी-कभी इन मेहराबों के शिखर पर वाद्य बजता रहता था और उसके नीचे प्रकाश और सजावट के लिए झाड़-फानूस लटकते रहते थे। नर्तकियां और संगीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करते और मुक्त हस्त से शरबत तथा पान अभ्यागतों को बाँटे जाते थे।[2]

---

1. तुलनीय इलि० डाउ०, प्रथम. 273-4।
2. ता० मु० (तृतीय), 87-8 में इन मेहराबदार शामियानों का वर्णन देखिए। याल्दोज की पुत्री से विवाह करने के पश्चात् गजनी से वापिस लौटने पर कुतुबुद्दीन ऐबक का स्वागत करने के लिए मेहराबों को सैनिक-शस्त्रों से सजाया गया था। सिरमौर पहाड़ियों के राणा के दमन के पश्चात् उलुगखां बलबन के सार्वजनिक स्वागत का वर्णन तुलनीय है। सुल्तान नासिरुद्दीन और अन्य लोग हौज-ए-रानी में एकत्र हुए। वृत्तान्तकार के अनुसार बहुमूल्य पोशाकों और साजसज्जा के कारण मैदान 'रंग-बिरंगी पुष्पवाटिका' के समान दीख रहा था। (विस्तृत वर्णन के लिए रेवर्टी, 834-5 के अनुसार)। बंगाल के विद्रोह के दमन के पश्चात् दिल्ली लौटने पर सुल्तान बलबन के स्वागत के लिए देखिए ब०, 106। जब मुईजुद्दीन कैकुबाद अपने पिता बुग़रा खां से भेंट करके दिल्ली लौटा तब विशाल पात्रों में मदिरा एकत्र की गई और जनसमूह में मुफ्त बाँटी गई। (ब०, 164 के अनुसार) मुबारकशाह खिलजी द्वारा दिल्ली में खुसरो खां के सार्वजनिक स्वागत के लिए 'कुल्लियत' 700 में अमीर खुसरो का वर्णन द्रष्टव्य है। इब्नबतूता सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के समय में सार्वजनिक स्वागतों के दो अलग-अलग वर्णन करता है। एक जबकि खलीफ़ा का दूत अब्बासिद खलीफ़ा की खिलअतों और मान्यतापत्र के साथ दिल्ली में प्रविष्ट हुआ

हिन्दू राजे कभी-कभी इन मेहरावों की सजावट में झालर और कलश या आम की कोंपलों के वंदनवार लगा देते थे और तुरहियों की ध्वनि से सम्माननीय अतिथि के आगमन की घोषणा करते थे।[1] विज्ञापन और प्रदर्शन का यह अवसर कभी-कभी साहसी खिलाड़ियों, बाजीगरों और अन्य खेल दिखाने वालों के समूह को आकर्षित कर लेता था, जो अपने कौशल-प्रदर्शन से लोगों का मनोविनोद करके बदले

उसके स्वागतार्थ एक विशाल जुलूस निकाला गया। उत्सव मनाने के लिये दिल्ली में ग्यारह चौमंजिले ठोस मेहराव बनाये गए थे। सब मेहराब कसीदेकारी वाले रेशम से सजाए गए थे और जनसाधारण के मनोरंजन के लिए वहां स्त्री और पुरुष नर्तकों तथा संगीतकारों की व्यवस्था भी थी। शरवत के विशाल पात्र रख दिये गए थे। उत्सवों में भाग लेने वालों को पान और शरबत मुफ्त वितरित किया गया। (विस्तृत विवरण के लिए कि० रा०, प्रथम, 92 के अनुसार)। अन्य विवरण, अनेक सफल अभियानों से लौटने के पश्चात् स्वयं सुल्तान के स्वागतार्थ रचे गए उत्सव के बारे में है। इसमें स्वर्णमण्डित झूलों और शाही ध्वजों से सुसज्जित सोलह हाथी शाही जुलूस के लिये निकाले गये थे और दिल्ली नगर के भीतर से जाने वाला राजमार्ग रेशम से सजाया गया था और दीवालें बहुमूल्य परदों से सज्जित की गई थीं। (कि० रा०, द्वितीय, 38)।

1. मुगलों के समय में दिल्ली नगर को सरकारी निरीक्षण में सजाने का आदेश दिया गया (गु०, 28 के अनुसार), किन्तु अन्य बातों में उनके उत्सव अधिक भिन्न नहीं थे। उदाहरणार्थ, अकबर के समय जब सार्वजनिक मनोरंजन आयोजित किए जाते थे, उस समय लोगों के मनोरंजनार्थ हजारों स्त्री और पुरुष संगीतकार नियुक्त किए जाते थे। राजकीय स्वागतकक्ष (दीवान-ए-आम और दीवान-ए-खास) मुख्यतः योरोप के बने और सर्वोत्तम चित्रकारी वाले मूल्यवान उपस्करों से सजाया जाता था। सरकारी दरबार के लिए भव्य छत्रियां और चंदोवे लगाए जाते थे। (विस्तार के लिए आ० अ०, द्वितीय, 309 देखिए)। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि मेहराबदार शामियाने कभी-कभी शाही सेनाओं के विजय-समाचार की घोषणा करने के लिए भी निर्मित किए जाते थे। इस प्रकार ये घोषणाएं मुख्य मस्जिद के मिम्बर से और इन मेहरावों से एक साथ की जाती थी (ब०, 249 के अनुसार)। स्वागतों के स्वतन्त्र और परोक्ष वर्णन के लिए ता० अ०, 367 देखिए।

1. देखिए प० वां०, एक सौ सत्ताईसवां दिल्ली के सुल्तानों में राजकीय अतिथि का दिल्ली से स्वागत करने की सामान्य पद्धति थी कुछ मील आगे जाना और तब उसे जुलूसके साथ विशाल मेहरावों से होकर ले आना। उदाहरण के लिए तुलनीय है, ब०, 60।

में कुछ धन प्राप्त कर लेते थे।[1] मनोरंजन के लगभग ऐसे ही तत्त्वों के साथ ये उत्सव मुग़ल सम्राटों के समय भी मनाए जाते रहे।

नृत्य और गायन—अन्य आमोद-प्रमोदों और मनोरंजनों में जनसाधारण में नृत्य, और गायन पर्याप्त लोकप्रिय थे। कोई भी अभ्यागत हिन्दुस्तान के किसी भारतीय ग्राम में आज भी होलिकोत्सव के अवसर पर लोकगीत गाने और नृत्य करने के लिए चौपाल पर कृषकों और अन्य लोगों को एकत्र होते देख सकते हैं। कुछ स्थानों पर, विशेषकर दोआब में, आल्हा खण्ड की लोकप्रिय गाथा और नल-दमयन्ती की कथा आज भी संध्या समय गाई जाती है। हम कल्पना कर सकते हैं कि दिल्ली के शाही कारागार से राजा रतनसेन के बचकर भागने और हमीर देव के संग्राम की दिल हिलाने वाली घटनाओं ने गांव के भाटों और कवियों को उनके गायन के लिए प्रेरित किया होगा। सावन (श्रावण) गीत (जिसके लिए हमारे काल में 'हिंडोला' और 'सावनी' की विशेष धुनें संकलित की जाती थीं) सार्वजनिक रूप से लोकप्रिय थे और वे सामूहिक रूप से एवं झूले पर भी आज के समान ही गाए जाते थे।[2]

नृत्य आज से कहीं अधिक लोकप्रिय था। कृष्ण सम्प्रदाय ने इसे बहुत प्रोत्साहित किया था और स्त्री-पुरुष साथ मिलकर और कभी-कभी अपने पैरों में घुंघरू बांधकर नाचते थे।[3] लोकप्रिय गुजराती नृत्य (जिसे आजकल 'गरबा' कहा जाता है) पश्चिमी समुद्रतट पर प्रचलित था और पश्चिमी भ्रमणार्थियों को विशेष रूप से रमणीय लगता था।[4] हिन्दुस्तान के अफ़ग़ान अभी लोक-नृत्य भूले नहीं थे और कभी-कभी राष्ट्रीय महत्त्व की घटनाओं को वे बड़े उत्साह और आवेग के साथ, और कभी-कभी कई दिनों तक अपने रिवाजी नृत्य करके मनाते थे।[5]

लोकप्रिय नाट्यकला, हंसोड़ों की नकलों और भाड़ों तथा पेशेवर विदूषकों के गंदे खेलों में बदलकर पतन की ओर जा रही थी। इस समय कृष्ण सम्प्रदाय की नवीन

---

1. दे० रा०, 153-5 में सार्वजनिक स्वागत का मनोरंजक वर्णन तुलनीय है।
2. नई धुनों के लिए तुलनीय शाह, 182, 183।
3. उदाहरण के लिए तुलनीय प० वां०, बयासीवां।
4. फ्रेम्प्टन, 142 में निकोलो काण्टी का वर्णन देखिए, मेजर 29। यात्री इस नृत्य से विशेष मोहित हुआ था, और वह इसकी तुलना एक समकालीन योरोपीय नृत्य से करता है। लोग 'एक के पीछे एक, गोल-घूमकर नाचते हैं और उनमें से दो के हाथ में रंगीन डण्डे रहते हैं और जैसे ही वे आपस में मिलते हैं, एक-दूसरे के डण्डे बदल लेते हैं'। यह नृत्य सारे गुजरात में लोकप्रिय है और आज इसे पुनर्जीवित किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में एक ऐसा ही नृत्य प्रचलित है जो होली जैसे कुछ त्यौहारों पर गांवों में किया जाता है।
5. शेरशाह द्वारा सत्ता प्राप्त किये जाने पर अफ़ग़ान नृत्यों के प्रदर्शन के लिए तुलनीय है ता० शे० शा०, 48 व।

उन्मेषशीलता से कुछ सीमा तक इसकी रक्षा हो पाई। नाट्यकला के लिए कृष्ण-मार्गी स्वरूप अधिक उपयुक्त थे, क्योंकि वे राममार्गी से अधिक प्रेममय थे। कृष्ण-लीलाएं, जैसा कि इन प्रदर्शनों को कहा जाता था, देश के कुछ हिस्सों में रंगमंच पर खेली जातीं थीं। इनमें कृष्ण के जीवन की परिचित और लोकप्रिय घटनाएं और उनकी विभिन्न लीलाएं, जैसे गोपियों के साथ उनकी प्रेमलीलाएं और क्रीडाएं, राधा का विरह और शोक, कंस-वध इत्यादि अभिनीत किये जाते थे।[1] पश्चात्कालीन राम-लीलाएं, जो राममार्गी सम्प्रदाय और तुलसीदास के महाकाव्य के प्रचार से आरम्भ हुई और अभी भी मनाई जाती है, कृष्णलीलाओं के आधार पर ही विकसित की गई थीं। यह उन्मेष प्राचीन हिन्दू रंगमंच को पुनर्जीवित करने के लिए पर्याप्त नहीं था। नृत्यकला और संगीत का भी पतन हो रहा, था क्योंकि उनकी एक अलग जाति निर्मित कर दी गई थी, जिसका कार्य उच्च वर्गों के मनोविनोद और धर्म की सेवा तक सीमित कर दिया गया था।

नट, बाजीगर, भांड़ इत्यादि—नटों और बाजीगरों के कई प्रकार थे। ये पशुओं के बिना और उनकी सहायता से भी खेल दिखाते थे। हिन्दुस्तान में नटों की अति प्राचीन परम्परा थी और प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी कला में अत्यधिक दक्षता प्राप्त कर ली थी। प्रत्येक शासक अपने और अपने अतिथियों के मनोविनोद के लिए कुछ नट रखता था।[2] साधारण और निम्न वर्ग के नट बाजारों में मेढा नचा-कर या अपने बन्दरों को कई प्रकार से नचवाकर सामान्य जीविका कमा लेते थे।[3] रस्सी पर चलने वाले और कठपुतली का नाच दिखाने वाले लोग मेलों और अन्य जन-समारोहों से परिचित थे।[4] सपेरा भी आज के ही समान लोकप्रिय था।[5] बंगाल में कभी-कभी कोई व्यक्ति शेर के गले में पट्टा बाधकर मार्गों में घूमता था। जब वह अपना खेल प्रारम्भ करता था उस समय वह शेर को बन्धनमुक्त करके उसे खींचता और गिराकर ठोकरें मारता जाता था, जब तक कि वह स्पष्टतः

1. देखिए मेकालिफ़, प्रथम, 58। कुछ हिन्दू त्योहार: देखिए रास भी 30-7, 41, चार माह की लम्बी निन्द्रा के पश्चात् कार्तिक के पूर्वार्द्ध में 11वें या 12वें दिन हरि या विष्णु के जागरण का उत्सव, कृष्ण का जन्म या जन्माष्टमी और डोलयात्रा, जब भगवान को भूला भुलाया जाता है।
2. उदाहरण के लिए प० (हि०), 253 देखिए।
3. मेढ़ा-नाच के उदाहरण के लिए प०, 151 देखिए; बंदरों के नाच के लिए शाह, 176, 193।
4. रस्सी पर चलने वाले के लिए देखिए शाह 22; प०, 59 में कठपुतलियों के नाच का उदाहरण भी द्रष्टव्य है।
5. इ० खु०: चतुर्थ; 270।

भयानक क्रोध में आकर उस पर आक्रमण न कर देता था। तब वह मनुष्य और उसका शेर एक मिनट के लिए गुत्मगुत्था हो जाते और खेल के दिखाने वाला बड़े शान से अपनी नंगी भुजा पशु के गले में ठूंस देता और पशु उसे काट खाने का साहस न कर सकता।[1] तब वह मुग्ध दर्शकों की भीड़ से उपहार रूप में पैसे एकत्रित करता और अपना तथा जानवर का पेट पालता था। कभी-कभी दक्षिण में हाथी को संगीत पर नचाया जाता था और वह ताल मिलाने के लिए अपना कदम और अपनी सूंड ऊपर उठाता था।[2]

नटों और बाजीगरों के प्रसिद्ध खेलों में 'मोरचाल' (मोर की चाल)—एक-दूसरे पर आधारित दो नटों का खेल और 'रस्सी का खेल' प्रसिद्ध थे। मुग़ल सम्राट बाबर 'मोरचाल' का कुछ इस प्रकार वर्णन करता है : नट ने एक चक्र मस्तक पर, दो घुटनों पर, शेष में से दो अंगुलियों पर और अन्तिम दो अपने पंजों के अगले भाग पर, इस प्रकार सात चक्र जमा लिये और सब चक्रों को एक साथ तेजी से घुमाने लगा। कभी-कभी दो नट तीन चार बार पलटी खाते। एक नट अपने घुटने या जंघा पर एक बांस सीधा खड़ा कर लेता जबकि दूसरा उस बांस पर चढ़ जाता और ऊपर से कलाबाज़ी दिखाता। एक अन्य खेल में एक बौना-सा नट बड़े नट के सिर पर चढ़ कर सीधा खड़ा हो गया। जबकि बड़ा नट अपना खेल दिखाते हुए तेजी से एक ओर से दूसरी ओर घूमता था, छोटा नट भी बड़े नट की गतिविधि से थोड़ा भी विचलित हुए बिना, उसके सिर पर अपने खेल दिखाता था।[3]

सर्वाधिक प्रशंसनीय प्रदर्शन था 'रस्सी का खेल' (रोप-ट्रिक) जिसने अभी तक लोगों के मस्तिष्क को चक्कर में डाल रखा है। हमारे पास इसके प्रदर्शन की सत्यता और इसके द्वारा उत्पन्न चमत्कार और पहेली का विश्वस्त सूत्रों से बहुत अच्छा प्रमाण है।[4] यह खेल खुले मैदान में इस प्रकार दिखलाया जाता था—एक नट दर्शकों के समक्ष एक स्त्री के साथ, जिसे वह अपनी पत्नी कहकर सम्बोधित करता था, उपस्थित हुआ। उसने दर्शकों के अच्छे बुरे कार्यों का लेखा-जोखा देखने के हेतु हँसी में अपनी स्वर्गयात्रा का सुझाव रखा। प्रस्ताव से किसी को असहमत न होते देख नट ने अपनी जेब से एक गांठों वाली रस्सी निकाली और एक सिरा अपने हाथ

1. विस्तार के लिए देखिए ज० रा० ए० सो०, 1895, 533।
2. तुलनीय मेजर, 38।
3. तुलनीय बा० ना०, 330।
4. उदाहरण के लिए दे० रा०, 155 में अमीर खुसरो के विचार देखिए। अबुल-फज़्ल स्पष्ट स्वीकार करता है कि यदि ये बाजीगर सर्वसाधारण के समक्ष अपने खेल बताते तो लोग उन्हें पैगम्बरों के चमत्कार समझते। फिलहाल ही जादू-मण्डल, लन्दन की गुप्त समिति के अध्यक्ष ले० कर्नल आर० एच० इलियट ने रस्सी के इस खेल का प्रदर्शन किसी के भी द्वारा किये जाने की चुनौती देकर रस्सी के खेल के प्रति लोगों की रुचि पुनर्जीवित कर दी है।

में पकड़कर दूसरे सिरे को उसने हवा में उछाल दिया जो कि ऊपर चढ़ता गया और ऊपर जाकर लोप हो गया। नट इस रस्सी पर ऐसे चढ़ गया जैसे कोई सीढ़ी पर चढ़ता है और शीघ्र ही ऊपर दृष्टि से ओझल हो गया। कुछ समय पश्चात् उसकी देह के विभिन्न अंग एक के पश्चात् एक टपकने लगे। उसकी स्त्री ने उन्हें एक जगह एकत्र किया और सती के समान उनके साथ स्वयं जलकर हिन्दू-पद्धति से उनका अन्तिम संस्कार किया। इसके कुछ समय पश्चात् नट अकस्मात् उपस्थित हुआ और उसने अपनी पत्नी की मांग की। सारी कथा उसे सुनाई गई, किन्तु उसने उस कथा पर विश्वास न करने का दिखावा किया। उसने अपने मेजबान या प्रतिष्ठित व्यक्ति को, जिसके संरक्षण में उसने खेल दिखाया था, दोषी ठहराया कि उसने अपने घर में गलत तरीके से उसकी पत्नी कैद कर ली है और वह उसके अन्त:पुर से अपनी पत्नी लाने चला और फिर लोगों ने देखा कि वहां से उसकी पत्नी उसके साथ ओठों में मुस्कान लिये आ उपस्थित हुई।[1]

नट एक अन्य चमत्कारपूर्ण खेल दिखाया करते थे। वे दर्शकों के समक्ष एक व्यक्ति की हत्या करके उसे चालीस टुकड़ों में काट देते थे और उन्हें एक चादर के नीचे ढंक देते थे। फिर मृत व्यक्ति उनके बुलाने पर जीवित निकल आता था। अन्य खेलों में 'आम के खेल' का उल्लेख किया जा सकता है। आम का एक बीज मिट्टी और अन्य चीजों के साथ एक पात्र में रख दिया जाता था और कुछ ही घण्टों में वह अंकुरित होने, फूलने और फलने की सारी प्रक्रियाओं से गुजर जाता और दर्शक स्वत: उसके फल चखकर देखते थे।[2] अन्य प्रदर्शनों में बेमौसम के फल पैदा करना, तलवार निगलना और अन्य ऐसे प्रदर्शन सम्मिलित थे, जो साधारण परिस्थितियों में लोगों को अद्भुत प्रतीत होते थे।[3]

आमोद-प्रमोदों और मनोरंजनों की चर्चा समाप्त करते समय भांड़ों और पेशेवर विदूषकों का उल्लेख किया जा सकता है। वे हंसाने के लिए और अपने दर्शकों का मनोरंजन करने के लिए विलक्षणताओं, विनोदों और व्यंगोक्तियों का प्रयोग करते थे। इनमें से कुछ विदूषक अत्यन्त हास्यास्पद मुखौटा पहन लेते थे और लोगों का मनोरंजन करते थे। कभी-कभी वे लोकप्रिय दरबारियों और अन्य अनुचरों की हँसी उड़ाते थे और अपना प्रदर्शन प्रभावशाली बनाने के लिए अपमान और मार या झिड़की

---

1. तुलनीय, विवरण के लिए अ०, प्र०, 11-57।
2. वही 58।
3. विस्तार के लिए तुलनीय वहीं। पूर्वानुसार दे० रा० भी देखिये। 'आम के खेल' और अन्य विलक्षण खेलों का अपेक्षाकृत आधुनिक वर्णन फ्रांसीसी लेखक जेकोलियत, जिसने उन्हें स्वयं देखा, द्वारा लिखित 'आकल्ट साइन्स इन इण्डिया' में मिलता है।

भयानक क्रोध में आकर उस पर आक्रमण न कर देता था। तब वह मनुष्य और उसका शेर एक मिनट के लिए गुत्मगुत्था हो जाते और खेल के दिखाने वाला बड़े शान से अपनी नंगी भुजा पशु के गले में ठूंस देता और पशु उसे काट खाने का साहस न कर सकता।[1] तब वह मुग्ध दर्शकों की भीड़ से उपहार रूप में पैसे एकत्रित करता और अपना तथा जानवर का पेट पालता था। कभी-कभी दक्षिण में हाथी को संगीत पर नचाया जाता था और वह ताल मिलाने के लिए अपना कदम और अपनी सूंड ऊपर उठाता था।[2]

नटों और बाजीगरों के प्रसिद्ध खेलों में 'मोरचाल' (मोर की चाल)—एक-दूसरे पर आधारित दो नटों का खेल और 'रस्सी का खेल' प्रसिद्ध थे। मुग़ल सम्राट बाबर 'मोरचाल' का कुछ इस प्रकार वर्णन करता है: नट ने एक चक्र मस्तक पर, दो घुटनों पर, शेष में से दो अंगुलियों पर और अन्तिम दो अपने पंजों के अगले भाग पर, इस प्रकार सात चक्र जमा लिये और सब चक्रों को एक साथ तेजी से घुमाने लगा। कभी-कभी दो नट तीन चार बार पलटी खाते। एक नट अपने घुटने या जंघा पर एक बांस सीधा खड़ा कर लेता जबकि दूसरा उस बांस पर चढ़ जाता और ऊपर से कलाबाजी दिखाता। एक अन्य खेल में एक बौना-सा नट बड़े नट के सिर पर चढ़ कर सीधा खड़ा हो गया। जबकि बड़ा नट अपना खेल दिखाते हुए तेजी से एक ओर से दूसरी ओर घूमता था, छोटा नट भी बड़े नट की गतिविधि से थोड़ा भी विचलित हुए बिना, उसके सिर पर अपने खेल दिखाता था।[3]

सर्वाधिक प्रशंसनीय प्रदर्शन था 'रस्सी का खेल' (रोप-ट्रिक) जिसने अभी तक लोगों के मस्तिष्क को चक्कर में डाल रखा है। हमारे पास इसके प्रदर्शन की सत्यता और इसके द्वारा उत्पन्न चमत्कार और पहेली का विश्वस्त सूत्रों से बहुत अच्छा प्रमाण है।[4] यह खेल खुले मैदान में इस प्रकार दिखलाया जाता था—एक नट दर्शकों के समक्ष एक स्त्री के साथ, जिसे वह अपनी पत्नी कहकर सम्बोधित करता था, उपस्थित हुआ। उसने दर्शकों के अच्छे बुरे कार्यों का लेखा-जोखा देखने के हेतु हँसी में अपनी स्वर्गयात्रा का सुझाव रखा। प्रस्ताव से किसी को असहमत न होते देख नट ने अपनी जेब से एक गांठों वाली रस्सी निकाली और एक सिरा अपने हाथ

---

1. विस्तार के लिए देखिए ज० रा० ए० सो०, 1895, 533।
2. तुलनीय मेजर, 38।
3. तुलनीय बा० ना०, 330।
4. उदाहरण के लिए दे० रा०, 155 में अमीर खुसरो के विचार देखिए। अबुल-फज़ल स्पष्ट स्वीकार करता है कि यदि ये बाजीगर सर्वसाधारण के समक्ष अपने खेल बताते तो लोग उन्हें पैगम्बरों के चमत्कार समझते। फिलहाल ही जादू-मण्डल, लन्दन की गुप्त समिति के अध्यक्ष ले० कर्नल आर० एच० इलियट ने रस्सी के इस खेल का प्रदर्शन किसी के भी द्वारा किये जाने की चुनौती देकर रस्सी के खेल के प्रति लोगों की रुचि पुनर्जीवित कर दी है।

में पकड़कर दूसरे सिरे को उसने हवा में उछाल दिया जो कि ऊपर चढ़ता गया और ऊपर जाकर लोप हो गया। नट इस रस्सी पर ऐसे चढ़ गया जैसे कोई सीढ़ी पर चढ़ता है और शीघ्र ही ऊपर दृष्टि से ओझल हो गया। कुछ समय पश्चात् उसकी देह के विभिन्न अंग एक के पश्चात् एक टपकने लगे। उसकी स्त्री ने उन्हें एक जगह एकत्र किया और सती के समान उनके साथ स्वय जलकर हिन्दू-पद्धति से उनका अन्तिम सस्कार किया। इसके कुछ समय पश्चात् नट अकस्मात् उपस्थित हुआ और उसने अपनी पत्नी की मांग की। सारी कथा उसे सुनाई गई, किन्तु उसने उस कथा पर विश्वास न करने का दिखावा किया। उसने अपने मेजबान या प्रतिष्ठित व्यक्ति को, जिसके संरक्षण में उसने खेल दिखाया था, दोषी ठहराया कि उसने अपने घर में गलत तरीके से उसकी पत्नी कैद कर ली है और वह उसके अन्तःपुर से अपनी पत्नी लाने चला और फिर लोगों ने देखा कि वहां से उसकी पत्नी उसके साथ ओठों में मुस्कान लिये आ उपस्थित हुई।[1]

नट एक अन्य चमत्कारपूर्ण खेल दिखाया करते थे। वे दर्शकों के समक्ष एक व्यक्ति की हत्या करके उसे चालीस टुकड़ों में काट देते थे और उन्हें एक चादर के नीचे ढक देते थे। फिर मृत व्यक्ति उनके बुलाने पर जीवित निकल आता था। अन्य खेलों में 'आम के खेल' का उल्लेख किया जा सकता है। आम का एक बीज मिट्टी और अन्य चीजों के साथ एक पात्र में रख दिया जाता था और कुछ ही घण्टों में वह अंकुरित होने, फूलने और फलने की सारी प्रक्रियाओं से गुजर जाता और दर्शक स्वतः उसके फल चखकर देखते थे।[2] अन्य प्रदर्शनों में वेमौसम के फल पैदा करना, तलवार निगलना और अन्य ऐसे प्रदर्शन सम्मिलित थे, जो साधारण परिस्थितियों में लोगों को अद्भुत प्रतीत होते थे।[3]

आमोद-प्रमोदों और मनोरंजनों की चर्चा समाप्त करते समय भांड़ों और पेशेवर विदूषकों का उल्लेख किया जा सकता है। वे हंसाने के लिए और अपने दर्शकों का मनोरंजन करने के लिए विलक्षणताओं, विनोदों और व्यंगोक्तियों का प्रयोग करते थे। इनमें से कुछ विदूषक अत्यन्त हास्यास्पद मुखौटा पहन लेते थे और लोगों का मनोरजन करते थे। कभी-कभी वे लोकप्रिय दरबारियों और अन्य अनुचरों की हँसी उड़ाते थे और अपना प्रदर्शन प्रभावशाली बनाने के लिए अपमान और मार या झिड़की

1. तुलनीय, विवरण के लिए अ०, प्र०, 11-57।
2. वही 58।
3. विस्तार के लिए तुलनीय वहीं। पूर्वानुसार दे० रा० भी देखिये। 'आम के खेल' और अन्य विलक्षण खेलों का अपेक्षाकृत आधुनिक वर्णन फ्रांसीसी लेखक जेकोलियत, जिसने उन्हें स्वयं देखा, द्वारा लिखित 'आकल्ट साइन्स इन इण्डिया' में मिलता है।

भी सहते थे।[1] साधारणतः इन विदूषकों और भाँड़ों द्वारा प्रस्तुत मजाक का स्तर अधिक ऊंचा नहीं होता था और उनका व्यवहार सूक्ष्मदर्शी धर्मशास्त्रियों की आँखों में अत्यन्त निन्दात्मक होता था।[2] विदूषक और भाँड़ रखने वाले सुल्तान और हिन्दू शासकों के समान हिन्दू और मुस्लिम अमीर भी अपने लिए विदूषक और भाँड़ रखते थे।[3]

शिष्टाचार

किसी जाति विशेष या किसी युग के शिष्टाचारों की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन कार्य है। राष्ट्रीय विशिष्टताओं से सम्बन्धित अनुमानों से अधिक भ्रांतिकारक अनुमान शायद ही कोई होंगे। इसका स्पष्ट कारण यह है कि ऐसे अनुमानों में सामाजिक और वैयक्तिक विभिन्नताओं का विचार नहीं रखा जाता। भारतीय समाज में, जैसा कि हम अनेक वार संकेत कर चुके हैं, एक वर्ग से दूसरे वर्ग, यहां तक कि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के बीच बहुत विभिन्नताएँ रही हैं। समाज और सामाजिक शिष्टाचारों की आधुनिक अहम्मन्यता की तुलना में वह युग जिसका कि हम अध्ययन कर रहे हैं, अपेक्षाकृत सादा, अधिक संगठित, अधिक ठोस और समन्वयवादी था। धर्म, अत्यन्त विस्तीर्ण और बोधगम्य अर्थ वाले एक हिन्दू शब्द—जिसका अनुवाद अंग्रेजी में करना अति कठिन है—का तात्पर्य है, विभिन्न वर्गों और जातियों का एक दूसरे के प्रति अपना-अपना कर्त्तव्य निभाना। यदि इस शब्द को हम इसकी आध्यात्मिक विशेषता से रहित कर दें तो यह शब्द एक सामाजिक समूह का नैतिक दृष्टिकोण निश्चित करने का एक प्रयत्न है। इसी प्रकार इसका अस्तित्व सामूहिक-व्यवहार और नैतिक मनोवृत्तियों का अत्यन्त विकसित रूप प्रदर्शित करता है।

इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि लोग साधारणतः अत्यन्त नीरस जीवन व्यतीत करते थे और वे कुछ-एक दैहिक और नैतिक क्षमताओं और मानवीय सम्बन्धों के अत्यन्त सीमित स्वरूपों का विकास करने में ही सफल हो पाए थे। इस प्रकार उस युग के सद्‌गुण और दुर्गुण साधारणतः अत्यल्प थे। किन्तु दूसरी ओर ये विशिष्टताएं सुविकसित और गहरी जड़ वालीं थीं। रिवाज और धर्म, जो इन शिष्टाचारों का कई अर्थों में पोषण करते थे, वर्तमान युग की बौद्धिक और नैतिक धारणाओं से कहीं अधिक प्रबल थे। सब मिलाकर वे सामाजिक सौष्ठव और सामाजिक कल्याण का मार्ग बताते थे। जब इस बात का अनुभव हो जाता कि पूर्वजों ने किसी विशेष स्थिति में एक विशेष तरीके से व्यवहार किया था तो विद्यमान संतान के लिये दिशा स्पष्ट हो जाती थी और इस सम्मोदन की सत्ता ही सर्वोच्च मान ली जाती थी।

---

1. इ० ख़ु०, पंचम, 60, 132, 165 में मुखौटों के मनोरंजक वर्णन देखिए। बहुरुपिये अभी भी इन प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण करते हैं।
2. उदाहरण के लिए ज० मु०, 147 का पर्यवेक्षण तुलनीय है।
3. प०, 59 में दिया उदाहरण तुलनीय है।

1. **सद्गुण**– आइए, हम सर्वप्रथम इस युग के सद्गुणों का निरीक्षण करें। प्रारम्भ में ही हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि कुछ मात्रा में नवीनता और उत्साह के अतिरिक्त मुसलमान एक वर्ग के रूप में अपने हिन्दू ग्रामीणों से अधिक भिन्न नहीं थे। मुसलमान कहीं-कहीं कुछ बातों पर जोर देते थे जो हिन्दुओं से भिन्न थीं। किन्तु, जैसा कि चर्चा से प्रतीत होगा, दोनों सम्प्रदायों का मूल दृष्टिकोण समान था।

यदि हम इसे संक्षेप में कहें तो हम हिन्दू-चरित्र के प्रबल तत्त्वों—निष्ठा और उदारता का वर्णन उनके विस्तृत अर्थ में कर सकते हैं। अबुल फज्ल ने हमारे मार्ग-दर्शन के लिए हिन्दू सद्गुणों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है, जिनका हम इन दो वर्गों में विभाजन कर सकते है।[1] परम्परावादी मुस्लिम सद्गुणों की एक पूर्ववर्ती सूची अनेक पवित्र सद्गुणों के अनुशीलन की सिफारिश करती है, जो इस मूल्यांकन से अधिक भिन्न नहीं हैं।[2] मुसलमान लोग राज्य के प्रति निष्ठा को प्रधान सद्गुणों में से एक मानकर इस पर अतिशय बल देते है, किन्तु इसके कारण बिलकुल स्पष्ट हैं। इस प्रकार बल देने पर भी, जिस गुण के लिए जोर डाला जाता है उसका स्वरूप नहीं बदलता।[3] इस प्रकार निष्ठा और उदारता को हमारे काल के भारतीयों का विशिष्ट राष्ट्रीय गुण माना जा सकता है। हम सर्वप्रथम निष्ठा की चर्चा करेंगे, क्योंकि यह अति प्राचीनकाल से हिन्दुस्तान का नैतिक धर्म प्रतीत होता है। जिन उद्देश्यों के लिए इसका उद्भव हुआ था उन उद्देश्यों के सम्बन्ध में, सुविधा की दृष्टि से, हम इन तीन भिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे; जैसे—स्वामी या अपने से श्रेष्ठ के प्रति निष्ठा, मित्र या अपने समकक्ष के प्रति निष्ठा और व्यवहार-विशेष (वीरता)

---

1. अबुल फज्ल के विश्लेषण के लिए तुलनीय आ० अ०, द्वितीय, 4-5।
2. मुस्लिम सद्गुणों के लिए तुलनीय है ज० हि०, 490। लेखक प्रत्येक अच्छे मुस्लिम से निम्नलिखित का अनुपालन किए जाने की आशा करता है: ईश्वर के प्रति भक्ति, साथियों के साथ दयालुता, मित्रों के प्रति निष्ठा, बुद्धिमान के लिए आदर और मूर्खों के लिए सहनशीलता, श्रेष्ठों के प्रति आदर और सेवा, छोटों के लिए स्नेह और सम्मान, सुल्तान के प्रति आज्ञाकारिता और अन्त में राज्य के प्रति किये गए किन्हीं भी प्रतिरोधों का विरोध।
3. अमीर खुसरो के विचार देखिए किरान-उस्-सादैन, 79 में वह इस बात पर जोर देता है कि दास (अर्थात् सुल्तान की प्रजा) यदि कभी भी सुल्तान का बुरा सोचता है, तो महान् पाप करता है। एक अन्य स्थान पर वह अपने पुत्र को सुल्तान के प्रति कृतज्ञ रहने की बात कहता है, क्योंकि, जैसा कि खुसरो कहता है, मनुष्यमात्र को तो छोड़िये, कुत्ता भी जानता है कि अपने स्वामी की सम्पत्ति की रक्षा कैसे करनी चाहिए; और यह बड़ी लज्जा की बात होगी यदि इस सम्बन्ध में मनुष्य अपने को पशुओं से भी नीचे गिरा ले। कु० खु०, 678 के अनुसार; 123 भी।

के प्रति निष्ठा। निम्न स्थिति वाले व्यक्ति के साथ सम्बन्धों की चर्चा 'उदारता' के अन्तर्गत करना ही उचित होगा।

(क) स्वामी या अपने से श्रेष्ठ के प्रति निष्ठा—आध्यात्मिक मुक्ति के लिए हिन्दू धर्म-दर्शन और नीति द्वारा अनुशासित एक मार्ग था—भक्तिमार्ग। यहां हमारा सम्बन्ध इससे नहीं है कि हमारे काल में उत्तर भारत में हुए सुदूरगामी धार्मिक आन्दोलनों से इस सिद्धान्त का क्या सम्बन्ध रहा। हम तो केवल इस बात पर बल देना चाहते हैं कि प्राचीनकाल की इस आध्यात्मिक शब्दावली का प्रयोग शासक और शासितों के मध्य राजनैतिक सम्बन्धों को हिन्दू समाज में एक आध्यात्मिक आधार देने के लिए क्या किया गया, जबकि एक लौकिक और स्वेच्छाचारी शासक की स्थिति आध्यात्मिक गुरु के समकक्ष उठा दी गई थी।[1] यह सार्वभौम रूप से विश्वास किया जाता था कि स्वामी की सेवा, सेवक के व्यक्तिगत और उसकी इच्छा का, हर स्थिति में समर्पण चाहती थी। स्वामी की योग्यताओं और उसके सिद्धान्तों की पड़ताल करना इस आध्यात्मिक जीवन-दर्शन के विरुद्ध था।[2]

निष्ठा की इस भावना के लिए मुस्लिम शब्द है 'नमक हलाली' या 'नमक' के बदले सेवा और भक्तिपूर्ण समर्पण।[3] जीवन का यह दृष्टिकोण आध्यात्मिक की अपेक्षा वास्तविक अधिक है, क्योंकि यह सम्बन्ध के सांसारिक पहलू, अर्थात् सौदे में भौतिक लाभ पर जोर देता है। फिर भी, जिस भावना का इस सम्बन्ध ने पोषण किया, वह आवश्यक रूप से भारतीय और गहन आध्यात्मिक विशेषता वाली थी। स्वामी की सेवा में सर्वोच्च बलिदानों के उदाहरण हमारे काल में कम नहीं हैं।[4] यह

1. व्याख्या और उदाहरण के लिए तुलनीय पु० प०, 120।
2. देखिए प० (हिन्दी) 236, किस प्रकार अपने स्वामी की सेवा में मरने वाला व्यक्ति सीधा स्वर्ग जाता है। दक्षिण से लिये गए एक मनोरंजक उदाहरण के लिए तुलनीय है, यूले, द्वितीय, 339। मार्कोपोलो हमें बताता है कि दक्खन के एक राजा के पास कुछ अमीर थे, जो उसके प्रतिज्ञाबद्ध साथी थे और उन्हें राज्य में अनेक रियायतें और सुविधाएँ प्राप्त थीं। यदि राजा की मृत्यु उनके पहले हो जाती, तो ये अमीर उसके साथ जीवित जल जाते थे। अमीर अपने व्यवहार से बिलकुल संतुष्ट थे क्योंकि वे इस लोक के समान परलोक में भी अपने स्वामी का साथ देना उचित समझते थे। पद्मावत की कथा में राजा रतनसेन के दो निष्ठावान अनुचरों—गोरा और बादल की अनेक उक्तियां द्रष्टव्य हैं।
3. 'नमक-हलाली' के सद्गुणों के सम्बन्ध में तुलनीय है म० अ०, तृतीय।
4. इस 'नमक-हलाली' के कुछ उदाहरण देखिए। बरनी हमें बताता है कि जब मलिक छज्जू और उसके साथियों ने जलालुद्दीन खिलजी के विरुद्ध विद्रोह किया और वे कैद कर लिये गए तब शासक ने उन्हें क्षमा कर दिया, यहाँ तक कि

प्राचीन हिन्दू परम्परा के प्रति श्रद्धा का ही परिणाम था कि मुगल सम्राट् हुमायूं ने निष्कासन और गरीबी को, दुर्दिनों में भी अपने रिश्तेदारों की अपेक्षा उन चालीस

उसने 'नमक के सच्चे' होने के लिए उनकी प्रशंसा भी की। चूंकि उन्होंने सत्ताच्युत बलबन के वंश के लिए तलवारें खींची थीं, उन्हें क्षमा कर दिया गया। ब०, 184 के अनुसार। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का अपने 'परिवर्तित' समर्थकों और शत्रुओं—जलालुद्दीन के स्वामिभक्त अनुचरों के प्रति व्यवहार देखिए। जब वह सिंहासन पर जम गया तब उसने अपने उन समर्थकों को दण्ड दिया जिन्होंने अपने पुराने स्वामी का साथ छोड़ दिया था, और अपने शत्रुओं को उसने जीवनदान दे दिया। (विवरण के लिए ब०, 250-1 देखिए)। एक अवसर पर सुल्तान और भी आगे बढ़ गया। हाजी दबीर के वर्णन के अनुसार उसने भूतपूर्व विद्रोही सेनानायक मुहम्मदशाह को शानदार तरीके से दफनाया क्योंकि वह अपने हिन्दू स्वामी हमीरदेव के प्रति मरते दम तक निष्ठावान रहा था। इस कथा का विस्तृत वर्णन सर्वविदित है। उसकी मृत्यु पर सुल्तान ने उसे सम्मानपूर्वक दफ़नाया और स्पष्ट किया कि 'निष्ठा की प्रशंसा की जानी चाहिए, चाहे वह शत्रु में भी क्यों न हो।' (विवरण के लिए ज० व०, द्वितीय 810 के अनुसार)। सुल्तान मुहम्मद तुगलक अपने संस्मरणों (ब्रि० म्यू० पाण्डु०, 316 ब) में दावा करता है कि बलापहारी खुसरो खा के विरुद्ध होने में उसका मुख्य उद्देश्य उन अपमानों और तिरस्कारों का बदला लेना था जो बलापहारी ने उनके स्वामी सुल्तान मुबारकशाह खिलजी के परिवार के प्रति किए थे। उसी प्रकार, फीरोज तुग़लक ने मलिक काफूर के मकबरे की मरम्मत कराना इसलिए एक पवित्र कार्य समझा क्योंकि मलिक काफूर अपने स्वामी के नमक के प्रति सच्चा था और उसे गद्दी के प्रति निष्ठावान् समझा जाता था। (देखिए फु०, 13)। फीरोज तुगलक के अमीर के लिए बरनी की प्रशंसा तुलनीय, जो सिंहासन के प्रति सदैव निष्ठावान् रहा। ब०, 584 के अनुसार।

इसे समझाने के लिए दो कथाएँ विस्तार से उल्लेख करने योग्य है। ऐसा कहा जाता है कि एक बार रात में शेरखां (बाद मे शेरशाह) कुछ साथियों सहित मुग़ल सेना द्वारा घेर लिया गया था। एक अधिकारी सैफखान ने शेरखां के बच निकलने के लिए हुमायू की प्रगति रोकने का प्रस्ताव रखा। उसने दिन निकलते ही अपने भाइयों को एकत्र किया और उन्हें आत्म-बलिदान की महत्ता समझाने लगा। योद्धा ने कहा 'अपना जीवन उत्सर्ग करने में मत हिचको, क्योंकि किसी भी प्रकार मृत्यु तो निश्चित है ही और कोई भी इससे बच नहीं सकता। तुम्हारा स्वामी, जो शान्ति के समय तुम्हारा पोषण करता है और तुम्हें अनेक प्रकार की रियायतें देता है, बदले में तुमसे अवसर पड़ने पर

हिन्दू रक्षकों के हाथ में अपना जीवन अधिक सुरक्षित समझा, जिन्होंने उसके संकट-काल में उसका साथ दिया।[1]

(ख) अपने समकक्ष या मित्र के प्रति निष्ठा—पद, स्थिति या 'नमक' के अनुग्रह के विचार के बिना, समकक्ष के प्रति निष्ठा—या दूसरे शब्दों में मित्रता और साथीपन का निर्वाह स्पष्ट ही अधिक आकर्षक है। यह आवश्यक नहीं कि इसमें वे मैत्री-सम्बन्ध छोड़ दिये जाएं जो बिलकुल भिन्न सामाजिक स्थिति के लोगों के मध्य हों या राजा और उसकी प्रजा के मध्य या सेनानायक और उसके अधीन सेना के मध्य हों।[2] मित्रता और साहचर्य की भावना को साधारणतः 'यारी' (साहचर्य या दोस्ती) कहा जाता था और इसमें सम्बन्धों की कुछ रोमांचक अवधारणा निहित थी। उदाहरणार्थ सच्ची मित्रता अमर और शाश्वत मानी जाती थी। इसका तात्पर्य मित्र के प्रति

जीवनोत्सर्ग की आशा करता है। इसलिए, यदि तुम सच्चे सैनिक हो तो झिझको मत; श्रेयस्कर होगा कि तत्क्षण अपना जीवन समर्पण करके दोनों लोकों का यश प्राप्त करने में शीघ्रता करो।' यह उद्‌बोधन प्राप्त करने से पहले ही सैफीखान को उसके भाइयों ने स्मरण दिलाया कि करने-मरनेवाले व्यर्थ के शब्दों में अपना श्वास नहीं गंवाते। वे शत्रु से मुकाबला करने के लिए बढ़ गए और एक-एक करके निछावर हो गए। (ता० शे० शा०, 41 व के अनुसार)।

दूसरी कथा हुमायूं के भक्त अधिकारियों और अनुचरों के बारे में है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक बार जब हुमायूं और उसके साथी शहर से बाहर थे, अकस्मात् कामरान ने काबुल के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। जब लौटने पर उन्होंने दुर्ग पर घेरा डाला तो कामरान ने घेरा डालने वालों के परिवारों को—जिन्हें उसने अधिकृत कर रखा था—मार डालने की धमकी दी। हुमायूं का एक अधिकारी कराचा खान किले की दीवार के समीप गया और कामरान को सुनाते हुए चिल्लाया, 'तुम्हें यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि हम केवल अपने स्वामी की सेवा करने के लिए जीवित रहते हैं और हमारे परिवारों की मृत्यु या विनाश हमारे लिए कोई महत्त्व की बात नहीं है। हम हुमायूं की सेवा में ही रहेंगे और मर मिटेंगे। और जब हम स्वयं अपने जीवन का उत्सर्ग करने के लिए तत्पर हैं तो हमारे स्त्री-बच्चों का अधिक महत्त्व ही क्या है।' किन्तु इस घटना ने कामरान को अपनी दुष्टता से या हुमायूं के अनुचरों की अडिग भक्ति से विचलित नहीं किया। (विवरण के लिए अ० ना०, प्रथम, 264-5 के अनुसार)।

1. तुलनीय त० वा०, 64 के अनुसार।
2. एक उदाहरण के लिए अ० ना०, प्रथम, 186 देखिए, जिसमें मुग़ल सम्राट् हुमायूं अपने सिपाहियों के साथ बराबर की शर्तों पर पूर्ण निष्ठा की शपथ लेता है।

जीवनपर्यन्त निष्ठा और सेवा के लिए किसी व्यक्ति का उत्सर्ग था। ऐसा प्रतीत होता है कि लोग अपने मित्रों या साथियों का चुनाव उनकी दृढ़ और पौरुषेय विशेषताओं के आधार पर करते थे। निर्बलमति और मेरुदण्ड विहीन के प्रति चाहे वे मधुर और प्रिय क्यों न हों, उन्हें कोई आकर्षण नहीं था और न ही लोगों की भावना में उन्हें कोई स्थान था। उस युग की विलक्षण परिस्थितियों में मित्रता संकटों और दुर्भाग्यों के विरुद्ध एक प्रकार का सामाजिक बीमा था। अमीर खुसरो के अनुसार एक सच्चा मित्र वह है जो आक्रमण के समय उत्तम इस्पात की तलवार का काम देता है और प्रतिरक्षा के समय जिरह-बख्तर का।[1] इसी प्रकार गुरु नानक छोटे-मोटे दूकानदारों में से, जो स्वार्थ और नीचता के लिए प्रसिद्ध हैं, अपने मित्र चुनने के विरुद्ध प्रत्येक को चेतावनी देते हैं। सिख गुरु यह कहकर अपना तात्पर्य स्पष्ट करते है कि ऐसी मित्रता की नीव कच्ची रहती है।[2]

मित्रता के अनगिनत उदाहरण हिन्दू और मुलिस्म सामाजिक इतिहास से दिये जा सकते हैं। हम उनमें से केवल दो का ही उल्लेख करेंगे। मुग़ल इतिहास के विद्यार्थी कामरान और उसके भाई मुग़ल सम्राट हुमायू के विरुद्ध उसके बारम्बार विद्रोहों से परिचित होंगे। केवल बहुत कम लोग जानते होंगे कि अपने रूखे और क्रूर बाहरी आकृति के अन्तस्तल में राजकुमार कामरान के पास अत्यन्त स्नेही हृदय और मित्र बनाने तथा मित्रता निभाने की असाधारण सामर्थ्य थी। जब कामरान को अन्ततः कैद करके अन्धा कर दिया गया, हुमायूँ ने उसे मक्का में निर्वासित कर दिया। ऐसा उल्लेख मिलता है कि जब अन्धा राजकुमार निष्कासन के लिए प्रस्थान कर रहा था, सम्राट ने उसके एक साधारण मित्र कोका से पूछा कि वह निष्कासित राजकुमार की दयनीय एकाकिता में राजकुमार का साथ देगा या उसके (सम्राट) साथ सामान्य सुविधाओं मे रहना और उसकी कृपा प्राप्त करना पसन्द करेगा। बिना किसी हिचक के कोका ने अन्धे राजकुमार का साथ देना पसन्द किया और सम्राट को उसने स्पष्ट बता दिया कि यदि कभी मित्रता और व्यक्तिगत निष्ठा की परीक्षा का अवसर आये तो एक मित्र की सेवा करने का इससे बढ़कर सुयोग नहीं हो सकता। तदनुसार, कोका अपनी इच्छा से निष्कासन में चला गया।[3]

साहचर्य का अन्य प्रसिद्ध उदाहरण है दो मुगल अमीरों—विख्यात बैरम खां और अबुल कासिम के बीच की मित्रता। ऐसा उल्लेख मिलता है कि शेरशाह के हाथों मुगलों की पराजय के पश्चात् मुग़ल अमीर इधर-उधर बिखर गये और वे अपनी सामर्थ्य के बल पर अपने जीवन की रक्षा के लिए प्रयत्न कर रहे थे। अफगान लोग मुग़ल

1. म० अ० 107-8 तुलनीय है।
2. मेकालिफ, प्रथम, 122 देखिए।
3. *अ० ना०, प्रथम, 331 द्रष्टव्य है।*

सेनाओं के प्रमुख संगठक और हुमायूं के विश्वासपात्र बैरम खां की खोज में थे और इसके लिए उन्होंने विस्तृत तैयारियां कर ली थीं। बैरमखां और उसका मित्र अबुल कासिम अपनी जान बचाने के लिए भाग रहे थे और गुजरात के सुदूर और स्वतन्त्र प्रदेश में बच निकलने को ही थे कि संयोगवश वे एक अफ़गान राजदूत के हाथ पड़ गये जो वहाँ से लौट रहा था। अफ़गान दूत को सन्देह हो गया कि उनमें से एक कैदी बैरमखां है। पर यह नहीं जानता था कि इसमें कौन बैरमखां है। प्रशान्त गरिमा और साहस के साथ बैरमखां ने बता दिया कि यही वह व्यक्ति है जिसकी उन्हें खोज थी। इसके पहले कि वह अपना कथन समाप्त करे और राजदूत कुछ निश्चय करे, अबुल कासिम, जो दोनों में अधिक आकर्षक था, अफ़गान राजदूत को सम्बोधित करते हुए बीच में ही बोल उठा। उसने कहा कि वह (बैरमखां) उसका एक पुराना और निष्ठावान् दास है, और वह स्वयं को कैद और समर्पण के लिए प्रस्तुत करके केवल वही काम कर रहा है जिसकी एक निष्ठावान् दास से आशा की जाती है। किन्तु अपने और अपने दास के प्रति न्याय के लिए वह अधिक देर तक अपना परिचय छिपाना उचित नहीं समझता, क्योंकि वही वास्तविक बैरमखां है। राजदूत को अबुल कासिम के स्पष्ट कथन पर सरलता से विश्वास हो गया। उसने बैरमखां को मुक्त कर दिया और अबुल कासिम को शेरशाह के पास ले गया जहां उसे अपने साथी के लिए निश्चित किये गए भाग्य का सामना करना पड़ा। मामले की सत्यता का पता चलने पर क्रोध में शेरशाह ने उसका वध करा दिया।[1]

(ग) किसी कार्य (वीरता) के प्रति निष्ठा—तथापि सद्गुण का एक अन्य और कुछ मानों में श्रेष्ठ स्वरूप था किसी विशेष व्यवहार या कार्य के प्रति निष्ठा की भावना। उन दिनों परम्परा बहुत ही पवित्र और सुदृढ़ बन्धन वाली विरासत मानी जाती थी। अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं। किसी भी दशा में, सैनिकों, विशेषकर राजपूतों की दृष्टि में केवल यही एक भावना पवित्र थी। दिल्ली के शक्तिशाली सुल्तान के क्रोध और प्रकोप से बचने के इच्छुक शरणार्थी को अपना संरक्षण और आश्रय प्रदान करना राजपूत समाज का एक सामान्य और प्रसिद्ध नियम था। यह बिलकुल स्पष्ट था कि जो सरदार सल्तनत के शत्रु को आश्रय देने का साहस करता था वह अपने विरुद्ध एक युद्ध को और अपने परिवार के विनाश और अस्त को निमंत्रण देता था। सैनिक परम्परा किसी ऐसे कार्य के परिणामों का विचार करना घृणास्पद समझती थी जिसका उन्हें गौरव की रक्षा के लिए अनुसरण करना पड़ता था। हम वीरता और गौरव की इस भावना को प्रत्यक्ष करने के लिए कुछ उदाहरण देंगे। राजपूत योद्धाओं का इतिहास स्वभावतः हमारी सूचना का मुख्य स्रोत है।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि जब कुतलुगखां ने सुल्तान नासिरुद्दीन के विरुद्ध

---

1. तुलनीय है अ० न० प्रथम, 302।

विद्रोह किया और पराजित हो गया तब वह किसी आश्रय स्थान की खोज में था। उसने एक अत्यन्त छोटे प्रदेश के शासक सान्तु के राणा रणपाल के यहाँ शरण लेने की प्रार्थना की। वीर हिन्दू सरदार ने तुरन्त ही यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया। जैसा कि मुस्लिम वृत्तातकार स्पष्ट करता है, ऐसा करके वह 'शरणार्थियों' की रक्षा करने की अपेक्षा वंश की प्राचीन परम्परा का पालन कर रहा था।[1] रणथम्भौर के हमीर देव की कथा राजस्थान के इतिहास में प्रसिद्ध है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि जब मगोलों ने गुजरात में अलाउद्दीन खिलजी के सेनानायकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तब विद्रोही सरदार मुहम्मदशाह ने हमीरदेव के संरक्षण की प्रार्थना की और उसे आत्म-समर्पण कर दिया। अभिमानी राजपूत ने मगोल सरदार को बता दिया कि वह अब उसकी शरण में आ गया है, अतः यम भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता, एक मुस्लिम सुल्तान की तो बिसात ही क्या? इससे अलाउद्दीन के क्रोध का ठिकाना न रहा और उसने हमीरदेव के वंश का नामोनिशान मिटा दिया तथा उसके राज्य में विनाश का ताण्डव उपस्थित कर दिया। शेष कहानी से इतिहास के विद्यार्थी परिचित हैं। ऐसा कोई राजपूत नहीं जिसे उस प्रसिद्ध वीर के आवेशपूर्ण किन्तु श्रेष्ठ कार्य का अभिमान न हो।[2]

एक अन्य कथा इस भावना को अधिक स्पष्ट करती है। हम सब मारवाड़ के विरुद्ध शेरशाह के आक्रमण के बारे में जानते हैं। अफ़ग़ान शासक के विरुद्ध मालदेव की सहायता के लिए सेना लेकर आये राजपूत सरदारों में से एक कन्हैया था। अफगान शासक ने मुस्लिम आक्रान्ताओं की प्रचलित चाल का प्रयोग किया और वह दो बहादुर राजपूत मित्रों में संदेह का बीज बोने में सफल हो गया, जिनकी संयुक्त शक्ति किसी भी अफगान या विदेशी आक्रमण को व्यर्थ कर देने के लिए पर्याप्त थी। कन्हैया को बहुत विलंब से ज्ञात हुआ कि अफगान शासक अपनी चालबाजी में सफल हो गया है। जब वह अपने मित्र को अपनी निष्ठा और सहयोग का विश्वास दिलाने में असफल रहा तब उसने वही किया जो इस स्थिति में निष्ठा प्रमाणित करने के लिए एक राजपूत से आशा की जाती थी। उसने अपने सैनिकों सहित शत्रु से युद्ध किया और जैसा कि प्रकट था, वह अपने से बड़ी सेना के मुकाबले में लड़ते-लड़ते मर मिटा। राजपूत शौर्य का यह प्रदर्शन विजयी अफ़ग़ानों की राजपूताना से त्वरित वापसी के लिये पर्याप्त था।[3]

(घ) उदारता—श्रेष्ठ सामाजिक स्थिति के व्यक्ति और एक अपेक्षाकृत निम्न स्थिति वाले व्यक्ति के बीच के सम्बन्ध को उदारता का सामान्य नाम देकर

---

1. रेवर्टी, 839 तुलनीय है।
2. वृत्तांतों, विशेषकर हाजी दबीर का वर्णन तुलनीय हैं; पु० प०, 10 भी।
3. तुलनीय, ता० फ० प्रथम, 427।

अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जब कोई शासक किसी अमीर को भेंट देता था या जब अमीर किसी जरूरत-मंद या दरिद्र को छोटी भेंट प्रदान करता, तो दोनों का दृष्टिकोण एक ही रहता था, यद्यपि दोनों के लिए अति भिन्न शब्द प्रयुक्त किये जाते थे। पहले को उदारता का श्रेष्ठ गुण समझा जाता था, जबकि दूसरे को केवल दयालुता का सामान्य कार्य (खैरात)। जैसा कि हमने पहले इंगित किया, हमारा काल अपनी बहुमूल्य भेंटों के लिये और उदारता के सामान्य तथा विस्तृत प्रदर्शन के लिये प्रसिद्ध था। वास्तव में साधारण मितव्ययिता को संकीर्णहृदयता समझा जाता था। लोगों के नैतिक दृष्टिकोण का निरीक्षण करके हमें यह सरलता से मालूम हो जाता है कि फिजूल खर्ची और उड़ाऊपन को सामाजिक दोष न समझा जाकर उसे ऐसा उच्चतम पवित्र कार्य समझकर प्रोत्साहित किया जाता कि जिसका दोनों लोकों में पुरस्कार मिलना निश्चित है।[1] दूसरी ओर मितव्ययिता एक गर्हित पाप और सामाजिक त्रुटि मानी जाती थी। लोगों में एक धार्मिक विश्वास शीघ्र ही घर करने लगा कि इस संसार में किये गये दान का पुरस्कार दूसरे जग में दस गुना मिलता है।[2] हम छोटे दूकानदारों की प्रवृत्ति से सम्बन्ध सार्वजनिक भर्त्सना और सामाजिक कलंक का उल्लेख कर चुके हैं। यह मध्यकालीन योरोप में यहूदियों की हृदयहीन नीचता से भिन्न नहीं है।

इन आचारिक और नैतिक विकासों की तह में कौन से कारण थे इसे समझना कठिन नहीं है। ये, सामाजिक वर्गों के आर्थिक आधार में ढूँढ़े जा सकते हैं। उच्च वर्ग में धन की अधिकता है और निम्न वर्गों में विकट दारिद्र्य और जरूरतें हैं।[3] हमने इस सम्बन्ध में अन्य स्थान पर विस्तृत चर्चा की है। यहां हमें केवल इतना ही कहना है कि विभिन्न वर्गों की यह तुलनात्मक आर्थिक स्थिति एक सामाजिक खतरा उत्पन्न करती थी। विशाल जनता की अत्यधिक दरिद्रता ने सम्पन्न लोगों में भय और घबराहट की भावना पैदा कर दी थी। इस प्रकार उदारता उनकी सहायता के लिए एक बीमा के रूप में सामने आई।[4] उस समय निजी सम्पत्ति या सुरक्षा के

---

1. तुलनीय त०, 17 ब। दो वाक्यों में एक शासक के आदर्श का एक पूर्ववर्ती संक्षिप्तीकरण देखिए। वह युद्ध में लूटमार करता है और शान्तिकाल में उस लूट को उपहार-स्वरूप वितरित कर देता है; उसकी सेना अनवरत रूप से शत्रु की भूमि को रोंदती रहती है और जनसमूह सदैव उसकी ओर कृपा के लिए देखता रहता है। ता० फ० मु० शा०, 51 के अनुसार।
2. देखिए प० (हि०), 300। पु० प०, 23 में विद्यापति ठाकुर द्वारा दिये गये कुछ रोचक उदाहरण।
3. उदाहरण के लिए अमीर खुसरो के विचार तुलनीय कु० खु०, 371।
4. तुलनीय प्रचलित हिन्दू विश्वास, कि मुख्य धन का कुछ प्रतिशत यदि दानकार्य

लिए कानूनी प्रशासन यंत्र द्वारा संगठित संरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं थी जैसी कि आधुनिक राज्यों में है। निजी सम्पत्ति की पवित्रता की भावना उस समय नहीं थी। संपत्ति और ऐश्वर्य किसी भी ऐसे साहसी के पैर चूमते थे जिसने स्थिति पर काबू पाने के लिए आवश्यक शक्ति एकत्र कर ली हो। ऐसी परिस्थितियों में, जैसा कि अमीर खुसरो स्पष्ट करता है, बलात् लूटे जाने की अपेक्षा अपनी सम्पत्ति को उदारतापूर्वक भेंट में बांटना श्रेयस्कर है। उदारता किसी अन्य प्रकार से सम्पत्ति के खोये जाने या विनष्ट होने का एकमात्र विकल्प था।[1]

व्यक्तिगत दान के मामले अनेक हैं और वे अत्यन्त रोचक है। ऐसी जानकारी मिलती है कि खवास खां नामक एक प्रसिद्ध अफ़गान अमीर प्रतिदिन प्रातःकाल पौ फटते ही कुछ अनुचरों तथा प्रचुर मिष्टान्न और चावल के साथ बाहर चला जाता था। वह राह के प्रत्येक भिक्षुक को जगाता और उसे कुछ चावल, मिष्टान्न और एक चाँदी की मुद्रा देने के पश्चात् दूसरे की खोज में बढ़ जाता था।[2] इसी प्रकार एक अन्य अफ़गान अमीर असदखान न केवल उसी तरह मिष्टान्न और चावल का दान करता था, बल्कि कई प्रकार के अचार, पकवान और पान भी दान करता था और चादी की मुद्रा के स्थान पर सोने की मुद्रा देता था।[3] हम बलबन के कोतवाल के बारे में उल्लेख कर चुके हैं जो दीन युवतियों के लिए प्रतिवर्ष एक हजार दहेजों की व्यवस्था करता था। इसी प्रकार ऐसा वर्णन मिलता है कि वह उसी बिस्तर और गद्दे पर दुबारा नही सोता था और न उसी पोशाक को पुनः धारण करता था तथा ये सब दान कर दिये जाते थे।[4]

में लगा दिया जाय तो वह शेष धन की हानि और विनाश से रक्षा करता है। प० (हि०), 177, 323 के अनुसार।

1. तुलनीय म० अ०, 112, 122-3 में खुसरो के अवलोकन देखिए। अफीफ एक स्थान पर महानता प्राप्त करने की रामबाण विधि बताता है। वह हमें बतलाता है कि महान फरीदुन के सम्बन्ध में कुछ भी अद्भुत नहीं था। वह न तो एक देवदूत के रूप में पैदा हुआ था और न ही साधारण हाड़-मास के बदले वह अम्बर या कपूर का बना था; वह केवल दान करने में उदार था। अतः आप यदि उदारता से दान करते हैं तो आप भी अपने युग के फरीदुन हो जाएंगे। (अ०, 208 के अनुसार)। एक स्थान पर खुसरो इस बात को समझाने के लिए एक रूपक का प्रयोग करता है। यदि कोई व्यक्ति पृथ्वी पर नक्षत्रों की भांति चमकना चाहता है तो उसे अपनी सम्पत्ति वितरित कर देनी चाहिये जैसा कि नक्षत्र अपना प्रकाश बांटते है। आ० सि०, 41 के अनुसार।
2. तारीख-ए-दाउदी, 100-102 का वर्णन तुलनीय है।
3. वहीं, 48।
4. ब०, 117।

अधिक महत्त्वपूर्ण थे—दान के लिए स्थापित संस्थान। दरिद्रों और साधुओं को हिन्दुओं द्वारा दान देना आजकल भी सामान्य बात है। आटे, घी, चावल और भोजन की अन्य वस्तुएं याचक को दी जाती थीं।[1] अतिथि सत्कार भारतीय, विशेषकर मुस्लिम उच्चवर्ग का विशिष्ट गुण था। हम अन्य सिलसिले में प्रचुर दानों और मनोरंजनों में उच्च वर्गों के व्यय का उल्लेख पहले ही कर चुके हैं। कभी-कभी निजी अतिथियों की संख्या विस्मयजनक होती थी।[2]

इस सम्बन्ध में सरकारी अतिथियों के मनोरंजन और उनकी देखभाल के लिये राजकीय विभाग का उल्लेख किया जा सकता है। इब्नबतूता ने दिल्ली राज्य में सरकारी अतिथियों के लिए इस व्यवस्था का विस्तार से वर्णन किया है; हम विश्वास कर सकते हैं कि प्रान्तीय राज्यों और दक्खन में भी ऐसी ही व्यवस्था रही होगी।[3] जब राजकीय अतिथि राज्य के सीमान्त के निकट आ जाता तो एक प्रतिष्ठित अधिकारी द्वारा उसका स्वागत किया जाता। फिर उसकी दिल्ली यात्रा के समय रसोइयों और घरेलू सेवकों का एक समूह उसकी सेवा में लगा रहता तथा राह में उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। हम इस व्यवस्था का विवरण उल्लेख नहीं देंगे, किन्तु यह कहा जा सकता है कि यह बहुत व्यय-साध्य होती थी। प्रत्येक विश्राम-स्थल पर अभ्यागत के सम्मुख सर्वोत्तम भोजन, फल, मिष्टान्न और पेय प्रस्तुत किये जाते थे। मनोरंजन के छोटे से छोटे अंग की भी उपेक्षा न की जाती थी। जब वह राजधानी में पहुंच जाता, उसे पर्याप्त धन भेंट-स्वरूप प्रदान किया जाता था। अतिथि से उसके सेवकों

---

1. तुलनीय दान के लिए प० (हिन्दी) 177, 323 तुलनीय; मुस्लिम संस्थानों का ये अनुमान लगाने के लिए कुछ उदाहरण देखिए। दिल्ली में सीदी मौला के खानगाह में 2000 मन वढ़िया आटा, 500 मन साधारण आटा, 300 मन अस्वच्छ और 20 मन स्वच्छ शक्कर प्रतिदिन व्यय होती थी। (ब०, 208-9 के अनुसार); ता० फ०, प्रथम, 161 भी। उपर्युक्त अफ़गान अमीर खवासखान ने दरिद्रों के लिए एक व्यवस्था की थी, जिसमें उनके निवास के लिए 2500 अलग-अलग घर थे। बिना आयु के भेदभाव या आवश्यकता के, प्रत्येक व्यक्ति के लिए दैनिक भत्ते के रूप में दो सेर अनाज निश्चित था। इस स्थायी व्यवस्था के अतिरिक्त जहां भी वह जाता वहां दरिद्रों और विधवाओं के निवास के लिए तम्बू लगवा देता था। यहां भी भोजन-सामग्री, वस्त्र, बिस्तर दिये जाते थे। सुल्तानों के मकबरों से यदा-कदा संलग्न दान-व्यवस्था का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं।
2. खवासखान द्वारा बिना पूर्वसूचना के 40,000 घुड़सवारों को भोजन कराने के लिए तुलनीय *ता० दा०, 100-102*। एक अन्य अवसर पर एक भोज में 400 मन केवल शक्कर की खपत हुई थी।
3. विजयनगर के लिए मेजर में अब्दुर्रज्जाक का वर्णन तुलनीय है।

और अनुचरों की सूची प्राप्त कर ली जाती, सबको उनकी स्थिति और सामाजिक दर्जे के अनुसार वर्गीकृत किया जाता और उन्हें भी समुचित पुरस्कार मिलता था। अतिथि और उसके कर्मचारियों के लिए अत्यन्त उदार परिमाण में आटा, गोश्त, शक्कर, घी, पान और अन्य सामग्रियों की खुराक निश्चित कर दी जाती थी।[1]

(2) दुर्गुण—सद्गुणों के समान उनके दुर्गुण भी थोड़े थे, किन्तु उनकी जड़ें गहरी थीं। उन्हें संक्षेप में केवल दो शब्दों में कहा जा सकता है—मदिरा और स्त्री। दूसरे शब्दों में, विभिन्न प्रकार के विषय-भोगों में अतिशय लिप्तता हमारे काल का अत्यन्त व्यापक दोष प्रतीत होता है। युवा और वृद्ध, हिन्दू और मुस्लिम, सम्पन्न और दरिद्र—सब इनके परिणामों और धार्मिक निषेधों की चिन्ता किए बिना, जहां तक उनके साधन और स्वास्थ्य उन्हें अनुमति देते, इन दुर्गुणों में मुक्त रूप से आसक्त रहते थे।[2] कहने की आवश्यकता नहीं कि कृषकों और श्रमिकों के जनसमूह स्वच्छ और संयमी जीवन बिताने के लिए विवश थे।

(क) मदिरापान—मदिरापान का कुरान में कठोरता से निषेध किया गया है, किन्तु फ़ारसी परम्परा द्वारा उतने ही असंदिग्ध शब्दों में उसे मान्यता दी गई है।[3] मदिरा की सिफारिश अधिक अनुकूल थी क्योंकि यह लोगों को अति उपयुक्त तरीके से उकसाती थी। एक उपदेश के अनुसार 'मदिरा स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त शक्तिवर्द्धक है, बशर्ते कि उसे परिमित मात्रा में लिया जाय। मदिरा की असामान्य मात्रा सेवन करने वाले को हानि पहुंचाएगी जैसी कि अन्य कोई भी लाभप्रद औषधि, यहां तक कि चाहे वह रसायन भी क्यों न हो'।[4] भारत के बाहर, जहां इस्लाम का धार्मिक प्रभाव अधिक था, मुस्लिम सामान्यतः पवित्र ग्रंथ के प्रावधानों को अपने अनुकूल तोड़ने-मरोड़ने की प्रचलित प्रथा का आश्रय लेते थे।[5] हिन्दुस्तान में, जहां जीवन का सामान्य दृष्टिकोण स्पष्टतः

1. इब्नबतूता के दिल्ली आगमन पर उसे 2000 टंके प्रदान किये गए थे। उसके सेवकों और अनुचरों में से प्रत्येक को 200 से 65 टके तक पुरस्कार स्वरूप दिये गए थे; इस प्रकार मूर यात्री के चालीस अनुचरों में 40,000 टके वितरित किये गए थे। वितरण के लिए कि० रा०, द्वितीय, 73-4 द्रष्टव्य है।
2. उदाहरण के लिए इ० सु०, पंचम, 88 देखिए; दे० रा०, 309 भी।
3. पवित्र कुरान 5, 90।
4. फारसी परम्परा के लिए तुलनीय ज० हि०, 28।
5. समकालीन इस्लामी संसार के कुछ उदाहरण देखिए। मार्कोपोलो हमें बतलाता है कि चतुर फारसियों का मदिरापान के हल करने का एक अपना ही तरीका था। वे मदिरा को तब तक उबालते थे जब तक कि उसकी सुगन्ध बदल न जाती और वह स्वाद में मीठी न हो जाती, किन्तु उसका नशीलापन समाप्त न होता था। उनके अनुसार अब वह मुस्लिम कानून की परिभाषा के भीतर निषिद्ध पेय

धर्म-निरपेक्ष था, मदिरापान की आदत को न्यायसंगत बताने के लिए शायद ही कभी कोई दलीलें देने की आवश्यकता पड़ती हो; दूसरी ओर, लोग इसका समर्थन बड़े उत्साह से करते थे, यहां तक कि इस्लाम के प्रावधानों का उल्लंघन करने में गर्व का भी अनुभव करते थे। वास्तव में एक हिन्दू धर्म-सुधारक को बंगाल के राज्य का वर्णन करने के लिए 'मदिरा की चुस्की लेने वाले मुसलमान शासकों की भूमि' से अच्छा नाम नहीं मिला।[1]

मुस्लिम समाज में किसी ऐसे सामाजिक वर्ग का उल्लेख करना कठिन है जो मदिरा का सेवन न करता हो। स्त्रियां मदिरापान करती थीं और अन्य बातों में असंयत या शिथिल जीवन व्यतीत करतीं थीं; बच्चों के शिक्षक मदिरापान का आनन्द लेते थे; धार्मिक वर्ग गुप्त रूप से मदिरा की शरण लेते थे, यद्यपि इसके कई अपवाद थे; और सैनिक तथा सेना के लोग प्रकट रूप से उल्लासपूर्वक इसका सेवन करते थे।[2]

नहीं था; 'क्योंकि सुगन्ध और स्वाद में परिवर्तन हो जाने के कारण उसका नाम परिवर्तित हो जाता था'। यूले, प्रथम, 84 के अनुसार। हनफी विचारधारा की उदारता ने अनेक दुर्गुणों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। उदाहरणार्थ, इब्नबतूता के अनुसार सुल्तान उजबेग 'आबिज' (खजूर का नशीला रस) का, जो वैध था, नशे के योग्य पर्याप्त मात्रा में सेवन करता था। उसकी बेटियां, बहिनें, अमीर, अन्य महिलाएं और रानी—सब एक के पश्चात् एक उसके स्वास्थ्य की शुभकामना हेतु यह पेय प्रस्तुत करती थीं, जिनमें निश्चयत: उसे सम्मिलित होना पड़ता था। सुल्तान की पवित्रता सन्देह से परे थी, क्योंकि वह शुक्रवार की नमाज में सम्मिलित होने से न चूकता था (कि० रा०, द्वितीय, 2089 के अनुसार)। होरमुज के मुसलमान भी ऐसे ही तरीके अपनाते थे। बरबोसा, प्रथम, 96 के अनुसार।

1. दे० सरकार 192। हम पहले ही (ता० मा०, द्वितीय, 64 के अनुसार) हसन निजामी के विचारों का उल्लेख कर आये हैं कि मदिरापान की अनुमति सबको है—सिवाय मूर्खों के, जिनके दिमाग में शरियत का भूत सवार है। खुसरो का स्पष्टीकरण (कि० स०, 131) भी देखिए कि नमक का प्रयोग (तर्थात् मसालेदार पकवान) 'नमक' शब्द पर श्लेष होने के कारण मदिरा को वैध बना देता है। प्रशासकीय अधिकारियों को मदिरा-की रिश्वत के एक रोचक उदाहरण के लिए देखिए ब०, 62।
2. स्त्रियों के मदिरापान के लिए देखिए : म० अ०, 194; आधुनिक काल में दक्षिण में मुस्लिम स्त्रियों में छिपाकर मदिरापान के लिए भी देखिए। क्रुक, हेर्क्लाट्स इस्लाम 47। एक शिक्षक के उदाहरण के लिए, जिसमें मदिरापान हत्या का कारण बनता है। देखिए ब०, 505। फि० फ़ी०, 141 में एक मनोरंजक चर्चा

मदिरोत्सव के स्वरूप और तत्सम्बन्धी उत्सवों का क्रमशः विकास हुआ। किसी अधिपति के स्वास्थ्य की कामना करने का उत्सव विशेषरूप से विस्तार पा गया था। स्वास्थ्य के प्याले सामूहिक रूप से समारोह के साथ पिये जाते थे। मित्रगण और अभ्यागतगण अपने प्याले सामने रखकर एक पंक्ति में बैठ जाते थे। वे 'पृथ्वी के भाग के रूप में' पहले कुछ बूंदें भूमि पर छिड़कते, फिर सब लोग अपने प्याले उठा लेते थे; समूह का नेता स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करता था; लोग मेजबान या सम्माननीय अतिथि, जिसके स्वास्थ्य की कामना की गई थी, की ओर देखते थे और सब लोग अपने प्यालों या पात्रों से गम्भीरतापूर्वक मदिरापान करते थे।[1] शत्रु पर विजय प्राप्त होना मदिरोत्सव का लोकप्रिय अवसर माना जाता था।[2] त्यौहारों और सार्वजनिक समारोहों में भी, जैसा कि हम इंगित कर चुके हैं, सार्वजनिक रूप से मदिरापान होता था। शोकग्रस्त व्यक्ति कभी-कभी अपने दुःखों को 'उफनते प्याले में' डुबा देता था।[3] मदिरा प्रायः मित्रों की सोहबत में ली जाती थी। मदिरापान के साथ स्वाद के

देखिए, जो कहती है कि कुछ मामलों में मदिरा के नशे की अवस्था में लोगों ने अपनी पत्नी को तलाक दे दिया और बाद में सामान्य स्थिति में आने पर उसे वापस लेना चाहा। इससे उलझनें पैदा होती थी, क्योंकि कुछ वर्गों में हनफी कानून के अनुसार तलाक अटल और अन्तिम होता था। धार्मिक वर्गों के सदस्यों में मदिरापन के मनोरंजक उदाहरणों का उल्लेख मिलता है। मादक द्रव्यों का सेवन न करने वाला एक व्यक्ति अपवाद-स्वरूप होने के कारण उल्लेखनीय माना गया; तुलनीय, रेवर्टी 754। अमीर खुसरो की कटु व्याख्या देखिए, जो 'जिस हृदय में कुरान सुरक्षित है उसमें ही मदिरा उड़ेलने के लिए' उलमा की निन्दा है—(म० अ०, 58 के अनुसार)। मदिरा की गन्ध भरी मस्जिद में प्रवेश करने का एक मुअज्जिन (प्रार्थना के लिए आवाज देकर बुलाने वाला) का मामला तुलनीय (इ० खु०, चतुर्थ, 175)। सुल्तान के साहचर्य में एक सन्यासी द्वारा छिपकर मदिरापान और उसकी उन्मत्तता के लिए म० अ०, 85 तुलनीय है। मियां बायज़ीद नामक एक प्रसिद्ध अफ़ग़ान अमीर के लिए देखिए ता० शे० शा०, 33, जो मुग़लों के विरुद्ध युद्ध में बिलकुल मूर्छितावस्था में मारा गया था; अा० ना० प्रथम, 131 भी देखिए, किस प्रकार कुछ मुगलों ने मदिरा के उन्माद की अवस्था में गुजरातियों के विशाल समुदाय को तितर-बितर कर दिया। हिन्दुओं में मदिरापान के प्रचलन के लिए तुलनीय है टेम्पल, 226; प० (हि०), 146, शाह, 163, जिन्हें बदले में अपनी 'अल्प बुद्धि' भी गंवा देनी पड़ती थी।

1. देखिए कि० स०, 133।
2. विजय के पश्चात् एक मदिरोत्सव के वर्णन के लिए देखिए वहीं, 51-2।
3. उदाहरण के लिए देखिए वहीं, 34, 163।

लिए मसालेदार आहार भी लिया जाता था। साधारण लोग सस्ती मदिरा का उपयोग करते थे जो सरलता से उपलब्ध हो जाती थी।[1]

राज्य मदिरापान के दोष के प्रति उदासीन था। कभी-कभी तो, जैसा हम पहले संकेत कर चुके हैं, मदिरा और पेय राज्य द्वारा आयोजित सार्वजनिक उत्सव में मुफ्त बाँटे जाते थे। अलाउद्दीन खिलजी ऐसा पहला शासक था जिसने कुछ समय के लिए मदिरापान को दबाने का प्रयत्न किया। वैसे उसे मदिरापान के प्रति कोई आपत्ति नहीं थी, किन्तु प्रशासकीय कारणों से इस दुर्गुण का उसे दमन करना पड़ा। कुछ समय के लिए उसे मदिरा का विक्रय और उत्पादन बन्द करने के लिए कठोर गुप्तचर पद्धति और क्रूर दण्ड की व्यवस्था करनी पड़ी। इन निषेधात्मक नियमों के उत्तर में लोग 'तस्कर' व्यापार की चिरपरिचित विधि अपनाने लगे। वे मशकों में भरकर, फूस और ईंधन के ढेर के नीचे और अन्य हजारों उपायों से मदिरा का तस्कर व्यापार करने लगे। अन्त में बाध्य होकर सुल्तान को अपने आदेशों में संशोधन करना पड़ा। फलस्वरूप एक नया नियम लागू किया गया, जिसके द्वारा मदिरा के उत्पादन और विक्रय का निषेध नहीं किया गया, बल्कि सार्वजनिक रूप से मदिरा के वितरण और विशाल मदिरोत्सवों के आयोजनों को अवैध ठहरा दिया गया। कानून उस नागरिक के काम में हस्तक्षेप नहीं करता था जो स्वयं मदिरा तैयार करता और निजी रूप से उसका उपभोग करता था।[2] हम उसके मौजी उत्तराधिकारी मुबारक-शाह को इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि यह विश्वास करना कठिन है कि उसने ये संशोधित निषेध जारी रखे होंगे।

मुग़ल सम्राट् अकबर मदिरा के प्रयोग को नियन्त्रित करने में बहुत आगे बढ़ना चाहता था। उसका व्यक्तिगत विश्वास था कि साधारण रूप में मदिरापान निश्चित रूप से अच्छा है, बशर्ते कि कोई चिकित्सक से परामर्श ले और अपने स्वास्थ्य का यथोचित ध्यान रखे और इससे सार्वजनिक उत्पात उत्पन्न न हो। इसलिए सम्राट् ने सरकारी निरीक्षण में सार्वजनिक मदिरागृह खोले जाने का आदेश दिया। राज्य के सन्तोष के लिए कि लोगों के स्वास्थ्य का और उनके सार्वजनिक व्यवहार का समुचित ध्यान रखा जाता है, इसके मूल्यों की निश्चित दरों और विक्रय के विवरण की एक पूंजी की व्यवस्था थी। साधारण शराबियों के लिए अन्य मदिरागृह खोले गए थे, जहां सम्भवतः कुछ कम निषेध थे। यह तरीका एक राजनीतिज्ञ और

---

1. देखिए खुसरो के विचार। आ० सि०, 22 और म० अ० 78।
2. विस्तृत वर्णन के लिए देखिए ब०, 284-6।

प्रशासक का था, इसलिए संकुचित मस्तिष्क वाले धर्मशास्त्रियों ने इसका गलत अर्थ लगाया।[1]

इस सिलसिले में नशीली वस्तुओं के सेवन का उल्लेख किया जा सकता है जो कुछ कम पैमाने पर प्रचलित था। अफ़ीम का बहुत लोग प्रयोग करते थे। कुछ इसे उत्तेजक के रूप में लेते थे[2], और कुछ आनन्द के लिए। कभी-कभी अफ़ीम का प्रयोग किसी खतरनाक व्यक्ति को समाप्त करने के लिए भी किया जाता था।[3] सम्राट् हुमायूं का अफ़ीम-प्रेम प्रसिद्ध है। राजपूतों ने अफीम-सेवन में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है। वे इस निर्बलता के लिए अभी भी बदनाम हैं। अफीम-सेवन अभी भी जनसाधारण में प्रचलित है, यद्यपि राष्ट्रसंघ के हाल के निषेध से इसके उत्पादन और उपभोग पर बहुत प्रभाव पड़ेगा।[4] हिन्दू धार्मिक सम्प्रदायों की प्रिय औषधि भंग थी और धार्मिक साहित्य में उसके अनेकों सन्दर्भ पाए जाते हैं। इस सिलसिले में यह जानना मनोरंजक होगा कि सिख परम्परा में कहा गया है कि मुगल सम्राट् बाबर ने उनके गुरु नानक को एक दरवेश की ओर से दूसरे दरवेश को पवित्र भेंट के रूप में भंग प्रदान की।[5] तम्बाकू पीना समीक्षान्तर्गत काल के पश्चात् प्रारम्भ हुआ था, इसलिए उससे हमारा सीधा सम्बन्ध नहीं है। असाधारण अवसरों पर विष का प्रभाव समाप्त करने के लिए विष भी लिया जाता था। यह आदत स्वभावतः राजाओं तक ही सीमित थी, जिन्हें सदैव विष दिए जाने का खतरा बना रहता था। हिन्दू-जनश्रुति 'विषकन्या' से परिचित है। महमूद शाह और मुज़फ्फरशाह अतिशय विष प्रयोग के

---

1. बदायूनी का वर्णन तुलनीय है। मु० त०, द्वितीय 301-2। धर्मांध इतिहासकार यह न जानते हुए कि मदिरा कैसी होती है, यहाँ तक सन्देह करता है कि मदिरा में सुअर के मांस का सत भी रहता है, यद्यपि 'अल्लाह अधिक अच्छी तरह इसके बारे में जानता है'।
2. पुरुष परीक्षा, 123 का ब्यौरा तुलनीय है।
3. वहीं; दीन स्त्री द्वारा अफ़ीम से आत्महत्या के लिए। अमीर खुसरो मलिक काफ़ूर की मृत्यु का कारण अफ़ीम बताता है। दे० रा०, 265-6 के अनुसार।
4. अफ़ीम के प्रयोग के लिए देखिए इम्पी० गैजे० इण्डि०, आठवां, 308-9। आधुनिक काल में भारतीय मुसलमानों में अफ़ीम के उपभोग के लिए क्रूक का हेर्क्लॉट्स इ०, 325 तुलनीय है। टॉड (जैसे, द्वितीय, 749) मे राजपूतों के अफ़ीम सेवन के अनेक उदाहरण देखिए। वाट के शब्दकोष के अनुसार पूर्व में अफीम के पौधे के प्रचार में अरबों का मुख्य हाथ था।
5. देखिए मेकालिफ, प्रथम, 120-125। आधुनिक उपयोग के एक उदाहरण के लिए देखिए इम्पी० गैजे० इण्डि०, बीसवां, 293।

प्रसिद्ध उदाहरण हैं।[1]

(ख) **वेश्यावृत्ति**—कुछ अर्थों में भारत में वेश्यावृत्ति प्राचीनकाल से प्रचलित थी। हमें अब दक्खन की 'देवदासी' प्रथा के बारे में मालूम हो रहा है। हमारे काल में पवित्र मन्दिरों को लड़कियाँ भेंट करने की यह परम्परा पर्याप्त प्रबल थी। प्राचीन भारतीय परम्परा सार्वजनिक वेश्याओं से परिचित है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये बहुत लोकप्रिय और कई बातों में सम्माननीय भी होती थीं। यौनविज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थ, विशेषकर 'कामसूत्र', जो काम-विज्ञान पर सर्वोत्तम व्याख्या मानी जाती है, मुस्लिमों के पदार्पण के बहुत पहिले लिखे गए थे।[2] हम सुल्तान और अमीरों के हरमों का और वहाँ के निवासियों की विशाल संख्या का वर्णन पहले कर चुके हैं।

यौन के प्रति मुस्लिम दृष्टिकोण क्या था यह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल की एक विलक्षण कथा से भली प्रकार प्रकट होगा। 'तारीख-ए-फ़रिश्ता' में बताया गया है कि एक बार एक दरबारी ने खिलजी शासक से शिकायत की कि यद्यपि उसने (सुल्तान ने) उपभोग की सभी लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का विक्रय सन्तोषजनक तथा समान दर पर किए जाने की व्यवस्था की है, किन्तु उसने बाज़ार की अत्यन्त लोकप्रिय वस्तु के प्रयोग को नियन्त्रित करने की बिलकुल उपेक्षा कर दी है। सुल्तान यह जानकर कुछ विस्मित हुआ कि वेश्याएँ और सार्वजनिक स्त्रियाँ, जिनके घर सैनिकों के अत्यन्त प्रिय अड्डे हैं और जो अनेक युवकों के विनाश का कारण बने हैं, बिलकुल छोड़ दी गई हैं। सम्मोदन की एक मुस्कराहट के साथ सुल्तान ने सार्वजनिक स्त्रियों की शुल्क-सूची निश्चित कर दी और उन्हें एक आदेश दिया गया, जिनके द्वारा उन्हें निर्धारित दरों से अधिक लेने का कठोर निषेध किया गया था।[3] काव्य और रहस्यवाद के ग्रन्थ बहुधा शारीरिक और वैषयिक प्रेम की अभिव्यक्ति से पूर्ण हैं, जिनसे समकालीन समाज की सामान्य यौन प्रतिक्रिया प्रकट होती है। ऐसी स्थिति में वेश्यावृत्ति या विस्तृत पैमाने पर उसके प्रचलन को सिद्ध करने के लिए शायद ही कोई साक्ष्य की आवश्यकता है।[4] सुल्तान

---

1. जनश्रुति में उल्लेख के लिए देखिए पु० प०, 82। मुज़फ़्फ़रशाह द्वारा विपसेवन के विस्तृत विवरण के लिए तुलनीय है बरबोसा, प्रथम, 122।
2. तुलनीय ज० डि० लै०, 1921, 116-7 जहाँ यह······निश्चित किया गया है कि 'कामसूत्र' पश्चिमी भारत में तीसरी शती ई० में संकलित किया जा चुका था।
3. तुलनीय ता० फ०, प्रथम, 199।
4. इ० ख़ु०, 88-9 में अमीर खुसरो का एक कामुक बदचलन स्त्री का वर्णन देखिए; पु० प०, 146, किस प्रकार 'छली पतियों की दृष्टि में वेश्याएँ विषयसुख का सर्वोत्तम कोष थीं'। सिंहल की सार्वजनिक स्त्रियों के बाज़ार के लिए मलिक मुहम्मद जायसी का वर्णन द्रष्टव्य है, ये स्त्रियाँ 'अपने सौन्दर्य से लोगों को सम्मो-

अलाउद्दीन खिलजी के समय दिल्ली में वेश्याओं की संख्या सम्भवतः सरकारी व्यग्रता का कारण बनी; फलतः कुछ सार्वजनिक वेश्याओं का विवाह कर दिया गया, एवं इस व्यवसाय में लगी स्त्रियों की संख्या कुछ कम कर दी गई।[1]

सार्वजनिक वेश्यावृत्ति के प्रति राज्य का दृष्टिकोण कभी भी धार्मिक या नैतिक विचारों से प्रभावित नहीं हुआ था। कभी भी नैतिक आधार पर वेश्यावृत्ति को समाप्त करने या निषिद्ध करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। प्रत्युत जैसा कि हमने अभी ही वर्णन किया, राज्य इस व्यवसाय को सुनियन्त्रित करने में सहायता करता था, क्योंकि यह राजस्व का एक साधन भी था। सार्वजनिक वेश्याएं संगीत और नृत्य से भी अच्छा परिचय रखतीं थीं, जिनका सामाजिक आनन्द-प्राप्ति की योजना में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान था। मुगल सम्राट अकबर भी इसमें मदिरापान के समान एक पग और आगे जाना चाहता था। दिल्ली नगर के बाहर उसने सार्वजनिक स्त्रियों के लिए एक अलग स्थान का निर्माण कराया और परिहास में उसका नाम 'शैतानपुरा' रखा। सब सार्वजनिक स्त्रियों को वहां रहने का आदेश दिया गया। इस मोहल्ले के मामलों का निरीक्षण करने के लिए विशेष सरकारी कर्मचारी नियुक्त किये गए थे। पंजीकरण की एक पद्धति प्रारम्भ की गई थी जिसमें किसी सार्वजनिक स्त्री के साथ रात्रि व्यतीत करने वाले को आवश्यक विवरण भरना पड़ता था। यदि कोई सरकारी कर्मचारी या सार्वजनिक कर्मचारी किसी कुमारी के साथ सम्भोग करना चाहता, तो उसे एक विशेष सरकारी अनुमति पत्र लेना पड़ता था। इन नियमों के उल्लंघन पर कठोर दण्ड दिया जाता था।[2]

इस विषय का हमारा वर्णन अस्वास्थ्यकर वैषयिक आचरण और विकृतियों के उल्लेख के बिना पूरा नहीं होगा। इसके लिए अनेक प्रमाण हैं। पुरुष प्रेमपात्र के प्रति प्रेम (इश्क), जिसका समकालीन फारसी काव्य और साहित्य में प्रमुख स्थान है, एक अस्वास्थ्य-कर यौन-धारणा प्रकट करता है, चाहे इसका तात्पर्य इससे अधिक कुछ भी न हो। सम्भवतः दासप्रथा और परदा के चलन के कारण तथा जनसंख्या के एक अंश के, सामान्य पारिवारिक वातावरण से दूर सैनिक छावनियों में रहने के कारण किसी युवक का वैषयिक सौन्दर्य की अभिलाषा का नहीं, पर असामान्य प्रशंसा का तो केन्द्र हो ही गया था।[3]

हित करने हेतु' छज्जों पर बैठती थीं। प०, 57 के अनुसार। दक्षिण के लिए निकोलो काण्टी का वर्णन तुलनीय है जो एक नगर का प्रत्येक मार्ग वेश्याओं से परिपूर्ण पाता है जो 'सुगन्धों, मृदुलेपों और अपनी वारी उमरिया' से लोगों को लुभाती थीं। फेम्प्टन, 137-8 के अनुसार।

1. ख० फु०, 9 में अमीर खुसरो के अवलोकन द्रष्टव्य है।
2. तुलनीय मु० त०, द्वितीय, 301-2।
3. जाम संजर की मनोरंजक कथा के लिए देखिए एम० डी० प्रथम, 232, जिसे अनेक लोगों ने उसके सौन्दर्य के कारण मुफ्त सेवाएं प्रस्तुत की थीं।

भारत के बाहर फ़ारसी, तुर्क और मूर लोग सामान्यतः पुरुष-मैथुन के 'घृणित पाप' से परिचित थे।[1] हिन्दुस्तान में भी इसी प्रभाव का प्रबल अनुभव किया गया। केवल हिन्दू समाज इस पातक से अपेक्षाकृत मुक्त था।[2] इस विषय में सार्वजनिक नैतिकता असाधारण रूप से पतित हो गई थी। मुईजुद्दीन कैकुबाद और उसके पुरुष प्रेमपात्र के मध्य सम्बन्ध, सुल्तान अलाउद्दीन और मलिक काफ़ूर के मध्य सम्बन्ध और उसके पुत्र और उत्तराधिकारी मुबारकशाह तथा खुसरोखां के मध्य सम्बन्ध तो इतने प्रसिद्ध हैं कि उनके विस्तार की आवश्यकता नहीं है। विलक्षण बात है कि इन दुर्गुणों की इतिहासकार या धार्मिक सन्त नैतिक या धार्मिक आचार पर टीका नहीं करते, यद्यपि वे ही व्यक्ति रजिया पर केवल इसलिए कलंक लगाते हैं कि उसने बुरका उतार फेंका और योग्य अवसीनियाइयों को वे पद दे दिये जो पहले तुर्कों के लिए सुरक्षित थे। वास्तव में शाही शिष्टाचार-सम्बन्धी पुस्तक निश्चित रूप से अमीर वर्ग के लिए पुरुष-मैथुन मान्य करती है।[3] हमारे पास स्त्रियों के साथ अस्वाभाविक यौन-सम्बन्ध का भी एक उल्लेख है, किन्तु अन्य साक्ष्य इसका समर्थन नहीं करते। इस दोष का अस्तित्व होना कदापि असम्भव नहीं है।[4] अमीर खुसरो के कुछ वाक्यांश इस विषय-विशेष में प्रचलित प्रयत्न निम्न आचारों को विशेष रूप से प्रकट करते हैं।[5]

प्रमुख सामाजिक दुर्गुणों की सूची पूरी करने के लिए जूए का उल्लेख किया जा सकता है। हम मनोविनोदों और त्यौहारों के वर्णन के समय जूए का उल्लेख कर ही चुके हैं। हम यह भी इंगित कर चुके हैं कि जूआ खेलना प्राचीन क्षत्रियों की एक प्राचीन और सम्माननीय परम्परा है तथा समीक्षांतर्गत काल के समान अभी भी कुछ त्यौहारों में कुछ धार्मिक सम्मोदन के साथ जूआ खेला जाता है। हमारे लिये केवल यही कहना शेष रह जाता है कि जूए का दुर्गुण केवल हिन्दुओं या मुग़ल सुल्तानों तक कदापि सीमित नहीं था। अमीर खुसरो कहता है कि मुस्लिम जुआरी समाज का एक परिचित अंग था।[6]

---

1. बरबोसा, प्रथम, 91, 96 के अवलोकन द्रष्टव्य हैं।
2. तुलनीय फ्रेम्प्टन, 138; मेजर, 23।
3. देखिए क़ुबुस-नामा (ब्रि० म्यू० पाण्डु०, 47-48); यह विशेष वाक्यांश बम्बई संस्करण से निकाल दिया गया है। व०, 391।
4. तुलनीय तु०, 27 B।
5. तुलनीय इ० खु०, पंचम, 106-113।
6. तुलनीय कु० खु०, 313; म० अ०, 151, जहां खुसरो मुस्लिम जुआरी का शब्द-चित्र देता है। उसकी पत्नी और बच्चे भूखे पेट और गन्दे वस्त्रों में घूमते हैं और कवि के अनुसार, वह अपनी लड़की को भी बेचने में नहीं हिचकेगा। वह विस्मय प्रकट करता है कि मुस्लिम समाज उसे क्यों बर्दाश्त करता है। जूए के एक सन्दर्भ के लिए देखिए मेकालिफ, प्रथम, 160।

अन्य शिष्टाचार

(क) *जनता के समक्ष उपस्थिति और व्यवहार*—*हम सुल्तान के बारे में और अमीर वर्ग की प्रतिष्ठा और सम्मान के बारे में पहले ही लिख चुके हैं। शेष लोग उच्च वर्गों के आचरण और आचार-व्यवहार का अनुसरण करते थे। 'गांभीर्य और वेशभूषा* व्यक्ति की प्रतिष्ठा के द्योतक है'—यह कहावत बहुत लोकप्रिय थी। जनसाधारण में यह विश्वास था कि शासक के समीप जनता का न पहुंच पाना शासक के लिए अत्यंत उपयोगी पूंजी है। लोग उसका सम्मान इसलिए करते थे कि वे उसे केवल पर्याप्त दूरी से ही देख पाते थे।[1] हम पहले ही कह चुके है कि जब अमीरगण बहुमूल्य पालकियों मे बाहर जाते थे तो उनके आगे बहुमूल्य सजावट वाले घुड़सवार चलते थे। और वे प्यादों, तुरही-वादकों, मशालचियों, संगीतज्ञों और सेवकों के समूह से घिरे रहते थे। विशेष अवसरों पर अमीर को राजधानी के बाहर भ्रमण करते समय अपने जुलूस में नगाड़े बजाने का अधिकार था।[2]

सार्वजनिक व्यवहारों के ये विचार व्यक्तिगत शिष्टाचारों पर भी प्रभाव डालते थे। समकालीन रईसों का प्रमुख स्वरूप उनकी शानशौकत और अहंभावना में परिलक्षित होता था। जैसा कि हम उल्लेख कर चुके है, द्वन्द्वयुद्ध होते थे और चुनौती मुक्त रूप से दी जाती तथा स्वीकृत की जाती थी। व्यक्तिगत सम्मान की इन भावनाओं के पीछे कुछ कम युद्ध नहीं लड़े जाते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि वारंगल के राजा ने जब सुल्तान मुबारकशाह खिलजी के सेनानायक खुसरो खां को अपना सारा धन और कोष सौंप दिया तब भी खुसरो खां को सन्देह बना रहा कि वारंगल के राजा ने अपना वायदा ईमानदारी से नहीं निबाहा है। जब राजा को ये दोषारोपण सुनाए गए, उसने सुल्तान के सेनानायक के समक्ष स्वयं को बिलकुल असहाय पाया। किन्तु, इतने पर भी उसने अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रखने के लिए अधिक स्पष्टीकरण देने से इन्कार कर दिया। राजा ने गर्वपूर्वक उसे उत्तर दिया कि उसे खान की धमकियों या अनुग्रह की चिन्ता नहीं है।[3] राजपूत इतिहास या मुस्लिम इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। अमीर खुसरो यह कहकर कुलीन विचारधारा की ठीक ही व्याख्या करता है कि 'पर्वत की चोटी की मौन ऊंचाइयां उसके गौरव और भव्यता की रक्षा करती है।'[4]

---

1. तुलनीय है म० अ०, 106।
2. जनसाधारण मे एक भद्रपुरुष का वर्णन रेवर्टी, 660 मे देखिए; मेजर, 14; नगाड़े बजाने का विशेषाधिकार, अ०, 443।
3. तुलनीय है कल्लियन, 696 मे अमीर खुसरो का वर्णन हिन्दू ईमानदारी के श्रेष्ठ उदाहरणों के लिए ज० हि०, 86 भी देखिए।
4. म० अ०, 113।

किन्तु इतना होने पर भी लोग अत्यन्त शिष्ट और स्नेही होते थे। हम स्त्री-वर्ग के प्रति प्रदर्शित की जाने वाली शिष्टता का उल्लेख कर चुके हैं। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति किसी अमीर से मिलने जाता तो अमीर अपने आसन से उठकर स्वागत के लिए कुछ पग चलकर अतिथि का अभिनन्दन करता था। बैठकखाने में ले जाकर वह अतिथि को आसन पर बैठने के लिए कहता, जो संभवतः उसके अपने आसन से अधिक सुविधाजनक और ऊंचा रहता था। साथ ही अतिथि को वह अपने बाजू से ही बैठने के लिए बाध्य करता था। तुरन्त उसके समक्ष कुछ मीठे मौसमी फल स्वल्पाहार के लिए रख दिए जाते थे। यदि अतिथि कुछ भेंट के साथ आता तो मेजबान विदा के समय बदले में अधिक मूल्य की वस्तु भेंट में देता था। वास्तव में यह प्रथा सर्वसाधारण हो गई और इसे 'दस्तूर-ए-रफ्ता' कहा जाता था।[1] हम इस सम्बन्ध में शाही प्रथा का उल्लेख कर ही चुके हैं।

यदि कोई अमीर दूसरे अमीर से औपचारिक रूप से मिलने जाता तो वह साधारणतः उत्कृष्ट घोड़े पर बैठकर जाता। उसका मेजबान उसका स्वागत करने के लिए कुछ दूर आता था। एक दूसरे के समीप पहुंचने पर वे अपने घोड़ों से उतर जाते और अपनी छत्रियां या अन्य प्रतिष्ठासूचक चिह्न हटाकर एक दूसरे की ओर बढ़ते। मार्ग के बीच में वे सहृदयतापूर्वक गले मिलते, फिर वे साथ-साथ घोड़े पर चढ़कर मेजबान के यहां लौटते, जहां अतिथि को सारी सुविधाएं प्रदान की जातीं और उसे श्रेष्ठ दावत में साथ देने के लिए आमन्त्रित किया जाता था।[2]

(ख) वार्तालाप—औपचारिक सम्मेलन में किसी के साथ वार्तालाप प्रारम्भ करना किसी व्यक्ति के लिये तब तक उचित नहीं समझा जाता था जब तक कि उससे कोई बात प्रारम्भ नहीं की जाती थी। इस कठिनाई का अस्त होने के पश्चात् भी वार्तालाप कुछ एक सुनिर्धारित सीमाओं से आगे नहीं बढ़ पाता था। वह वार्तालाप संक्षिप्त और सुखद होता था। बोलने वाला अपनी सफलताओं या उदारता का उल्लेख नहीं करता था। वार्तालाप कोमल और मधुर ध्वनि में होता था। अपमान-जनक टीका को दूर रखने की बहुत सावधानी बरती जाती थी क्योंकि, जैसा कि उनकी कहावत उन्हें चेतावनी देती थी, 'अविवेकपूर्ण शब्द अत्यन्त भद्दी उलझनों को जन्म देता है।' किन्हीं भी परिस्थितियों में किसी भी प्रकार की अशिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता था। गन्दे परिहास और भद्दी फबतियों का प्रत्युत्तर नहीं दिया जाता था और अट्टहास नहीं किया जाता था। सारांशतः संक्षिप्त और सुखद बातों

---

1. कि० रा०, द्वितीय, 8 में इब्नबतूता का वर्णन तुलनीय है; इ० खु०, द्वितीय, 265-6, रेवर्टी 722-3 भी। भेंट की प्रथा अभी भी उत्तर प्रदेश, विशेषकर ग्रामीण जनता में प्रचलित है।
2. उदाहरण के लिये देखिए अ०, 237।

का प्राधान्य ही वार्तालाप का आदर्श माना जाता था।[1]

सौगंधों का जहां तक प्रश्न है, उत्तर देना कुछ कठिन है। कट्टरपंथी लोग प्राय: किसी भी दशा में सौगंध खाने की अनुमति नहीं देते थे।[2] किन्तु किसी अवसर की गंभीरता को देखकर सौगंध लेने के लिए पवित्र वस्तुओं में से सावधानी से कोई चुन ली जाती।[3] सैनिकों में सौगंध खाने की निर्बलता होती थी। व्यवहार-कुशल सेनानायक अपने को 'हक्का' (ईश्वर को साक्षी बनाना) तक सीमित रखता था।[4] कुछ मामलों में किसी अल्लाह, पैगम्बर, शरियत, इस्लाम, कुरान, तलवार और 'नमक' जैसी सौगंधों द्वारा किसी वादे को प्रमाणित करने की अनुमति दे दी जाती थी।[5] सामान्य जनता की प्रचुर सौगधों और उनके सौगंध खाने की पद्धति को दोहराने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू लोग अपने कथन पर जोर डालने के लिये गंगा की सौगंध लेते थे।[6] राजपूतों में शासक का सिंहासन और 'सतिया' पवित्र मानी जातीं थी।

इस सम्बन्ध में गम्भीर अवसरों पर मित्रता या समझौते की शपथ खाने का उल्लेख किया जा सकता है। राजपूतों में बीड़ा भेंट करना या उसे स्वीकार करना, दोनों—बीड़ा भेंट करने और स्वीकार करने वाले—को आपस में बांधने का द्योतक था। किसी समझौते की शपथ लेने की दूसरी पद्धति थी—कमरबन्दों या एक दूसरे के वस्त्रों के कोनों को साथ बांधकर शत्रु का सामना करने के लिए आगे बढ़ना। यह मौलिक हिन्दू प्रथा बाद में मुसलमानों में भी प्रचलित हो गई।[7]

1. वार्तालाप के नियमों के लिए तुलनीय है म० अ०, 113-117, 66, 68 कि० रा०, द्वितीय, 104।
2. 'तुहफा-ए-नसैयाह', 15 ब का विचार द्रष्टव्य है।
3. कु० खु०, 463 में एक मनोरंजक उदाहरण देखिए। अमीर खुसरो की कुछ टीका से एक सैयद को अपमान लगा। क्षमाप्रार्थना में कवि अपनी अनभिज्ञता के प्रमाण-स्वरूप अत्यंत पवित्र विभूतियों का स्मरण करता है—जैसे: ईश्वर, इस्लाम के पैगम्बर, संत और अंततः (और यह अत्यन्त नाजुक और कहीं अधिक पवित्र था) अपने पीर अथवा आध्यात्मिक गुरु की प्रार्थना का गलीचा।
4. शहीद राजकुमार का उदाहरण देखिए, ब 67।
5. मृत्यु शैय्या पर अलाउद्दीन खिलजी द्वारा मलिक काफ़ूर से ली गई शपथों के लिए दे० रा० 250 तुलनीय है।
6. तारीख-ए-मुजफ्फ़रशाही, 25 में एक संदर्भ देखिए।
7. वा० मु०, 37 ब में एक अफ़गान अमीर मियां काला पहाड़ का वर्णन देखिए; इलि० डाउ०, प्रथम, 113 भी। टॉड परवर्ती मुगल इतिहास से एक रोमांचकारी उदाहरण का उल्लेख करता है, जब मारवाड़ का राजा अभयसिंह 'बीड़ा' स्वीकार करता है। जिल्द द्वितीय, 1040।

(ग) हिन्दू-शिष्टाचार--हिन्दू-शिष्टाचार सामान्यतः मधुर और अनौपचारिक थे और मुसलमानों के शिष्टाचारों के समान उतने अधिक दिखावापूर्ण और प्रदर्शनात्मक नहीं थे। हिन्दू अतिथि के आगमन पर उसका विशेष प्रकार से स्वागत होता था। साधारणतः अतिथि को पान और पुष्प समर्पित किए जाते थे।[1] किसी विशिष्ट अतिथि के आगमन पर ऊंचा आसन बनाया जाता, उस पर पुष्प बिखेर दिए जाते और उसके माथे पर लगाने के लिए चंदन का लेप तैयार रखा जाता था। कुदृष्टि का सम्भावित प्रभाव दूर करने के लिए कुछ दीपकों को उसके सामने डुलाकर 'आरती' की जाती थी।[2] यदि अतिथि परिवार का गुरु या आध्यात्मिक उपदेशक होता तो उसे सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया जाता। आगमन पर उसके पैर धोये जाते, यदि मेज़बान समर्थ होता तो सुगन्धित जल से ऐसा किया जाता। फिर उसकी सारी देह पर चंदन का लेप लगाया जाता, उसके गले पर एक पुष्पहार और सिर पर तुलसी के फूलों का एक गुच्छा चढ़ाया जाता। इन प्रारम्भिक क्रियाओं के पश्चात् मेजबान गुरु के चरणों में दण्डवत् हो, दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करके व्यक्तिगत श्रद्धा प्रकट करता। मेजबान की पत्नी स्वयं गुरु के लिए भोजन पकाती थी।[3] इस गुरु-परम्परा ने वर्तमान हिन्दू-शिष्टाचार पर भी अपनी छाप छोड़ दी है।

---

1. उदाहरण के लिए प० (हिन्दी), 262 प० वां० उन्हत्तरवां; सुदामा-चरित्र, 10 देखिए।
2. प० वां०, तीन सौ वां।
3. देखिए सरकार, 54, 167 सुदामाचरित, 14। इस सम्बन्ध में भारतीय राजनीतिक नेता मो० क० गांधी को लिखे पत्र में एस० सकलातवाला (कुछ समय के लिये बेटरसी के लिए संसद सदस्य) के कुछ विचार तुलनीय हैं। यह पत्र मार्च, 1927 के प्रारम्भ में भारतीय समाचारपत्रों में विस्तृत रूप से प्रकाशित किया गया था। भारतीय जनसमूह के, जो गांधीजी के सामने से हाथ जोड़कर नत नेत्रों से निकलते थे, साधारण व्यवहार की समीक्षा करने के पश्चात्, वे उस दृश्य की टीका करते हैं, जो उन्होंने स्वयं यवतमाल में देखा। 'मेरे ग्रामवासियों को आपके चरण स्पर्श करने और अंगुलियां आंखों पर रखने की आपके द्वारा अनुमति दिये जाने का मैं प्रबल विरोध करता हूं। यह स्पृश्यता, अस्पृश्यता से भी अधिक निन्दनीय प्रतीत होती है और मैं चाहूंगा कि दो व्यक्ति एक दूसरे का स्पर्श ही न करें, बनिस्बत इसके कि एक व्यक्ति दूसरे को इस प्रकार स्पर्श करे जैसे आपको स्पर्श किया गया था। अछूत-वर्ग एक प्रकार की अयोग्यता से पीड़ित थे, किन्तु अछूत-वर्ग के एक व्यक्ति द्वारा अपने मुक्तिदाता के चरण स्पर्श करना कहीं अधिक वास्तविक व्यक्तिगत-हीनता और जीवन का पतन है और आप मुझे चाहे जितना गलत समझें मैं आपसे इस अनर्थ का अन्त करने

(1) हिन्दू नारी—हिन्दू घर में नारी का विशेष सम्मान किया जाता था। यदि वह मां होती तो उसके प्रति विशेष भक्ति होती, जैसा कि हम पहले कह चुके है। उदाहरण के लिए किसी काम पर जाने के पहले हिन्दू अपनी मां के चरणों पर झुकना और उसका आशीर्वाद प्राप्त करना न भूलेगा।[1] सब हिन्दुओं के लिए बिना विह्वल हुए अपनी मा को याद करना कठिन है। पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध कुछ औपचारिक रहते थे यद्यपि वे मधुर और कोमल होते थे। गहन भावनापूर्ण अवसरों पर पत्नी अपनी भक्ति प्रकट करने के लिए के लिए पति के चरणों पर अपना मस्तक या आंखें रगड़ती थी। पति उसके मस्तक पर उतना ही मृदु चुम्बन देकर उसका प्रत्युत्तर देता था। साधारणतः वे प्रकट रूप से इन मर्यादाओं के बाहर नहीं जाते थे। यदि पत्नी नववधू होती तो वह जनसाधारण में अपने पति के सम्मुख लज्जा के कारण अपना चेहरा साड़ी के आंचल से कुछ ढक लेती थी।[2] अन्य पुरुषों और स्त्रियों में सम्बन्ध औपचारिक थे, यद्यपि दोनों वर्गों में अत्यन्त मृदु शील की कमी नही थी।[3]

अन्य हिन्दू शिष्टाचारों में मानवता और दयालुता की सामान्य भावना का उल्लेख किया जा सकता है। दरिद्रों को दी जाने वाली भोजन-सामग्री के अतिरिक्त ग्रीष्म ऋतु में राहगीरों और प्यासे पथिकों को शीतल और ताजा जल भी पिलाया जाता था।[4]

2 अहिंसा—इस सम्बन्ध में गुजरात में हिन्दुओं के एक वर्ग द्वारा अति अहिंसा के पालन का उल्लेख करना अनुचित न होगा। समग्र भारत भूमि के हिन्दू सब प्राणियों के प्रति अति दयावान् थे। पशुवध और खून-खराबी को साधारणतः घृणा

का आग्रह करूंगा।'—'क्या भारत पहले से भिन्न है?' लदन, 1927 (एक पुस्तिका)।

1. तुलनीय सरकार 9 उदाहरण के लिए पृ० (द्वि०) 290।
2. तुलनीय वही 280।
3. 'रक्षा-बन्धन त्यौहार' की प्रशंसा और महत्व के लिए देखिए टॉड, प्रथम, 364-5। राखी या रक्षा-बन्धन उन कुछ अवसरों में से एक है जब कि हिन्दू नारी राखी बाधकर धर्म-भाई बनाती है। राखी के बदले में कभी-कभी रेशमी अंगिया दी जाती है। उपहारों का यह आदान-प्रदान दोनों को अत्यन्त स्निग्ध और घनिष्ठ सम्बन्धों में बांध देता है और जैसा कि टॉड, कहता है, आक्षेपपूर्ण निन्दा भी पुरुष को निष्ठा के अतिरिक्त अन्य किसी सम्बन्ध की ओर संकेत नहीं करती।
4. मुस्लिमों पर इसके प्रभाव के लिए देखिए तु०, 28।
5. देखिए मुस्लिमों पर इसके प्रभाव के लिए देखिए तु० 28।

और उपेक्षा से देखा जाता था ।[1] जैन-धर्म के केन्द्र गुजरात में यह दृष्टिकोण चरम और हास्यास्पद सीमा तक पहुंच गया था । उदाहरण के लिए गुजरात के कुछ लोग कीड़ों और पक्षियों को वध और कैद से बचाने के लिए उन्हें क्रय कर लेते थे । कभी-कभी वे अपराधियों को न्याय से खरीदने के हेतु विशाल राशि भी चुकाते थे । यदि वे रास्ते पर चलते थे तो चींटियों और कीड़ों को देखकर पीछे हट जाते थे । वे अपना भोजन केवल दिन के समय सन्ध्या के पहले लेते थे, ताकि वे रात्रि के अन्धकार में कीड़े मकोड़े न निगल जायें । वास्तव में साधुओं का एक वर्ग तो अपने केशों और शरीर पर जुएं और इल्लियां पालता था और इसके कारण उसका बहुत सम्मान होता था । धूर्त भिक्षुक आत्महत्या का बहाना कर इन गुजरातियों से अनिवार्य दान वसूल करते थे । वरथेमा को गुजरात भ्रमण के पश्चात् पूरा विश्वास हो गया था कि गुजरातियों में ईसाई बपतिस्मा का अभाव होने पर भी वे मुक्ति पा लेंगे, क्योंकि 'वे दूसरों के प्रति ऐसा बरताव नहीं करेंगे जिसकी वे दूसरों से अपने प्रति किये जाने की कामना नहीं करते ।' जैसा कि चतुर यात्री अनुमान लगाता है, हृदय की इस अतिपूर्ण अच्छाई के कारण ही मुस्लिम विजेताओं ने गुजरातियों से उनका राज्य और शासन का अधिकार छीन लिया ।[2]

अन्य बातों में पड़ोसी के कर्तव्य की उपेक्षा नहीं की जाती थी और लोग अपने अनुपस्थित पड़ोसियों के व्यवसाय और मामलों में सहानुभूतिपूर्ण रुचि लेते थे । पड़ोसी की ऐसी सहानुभूति की अत्यधिक उपयोगिता और कीमत तब अधिक अच्छी तरह समझी जा सकती है जब यह अनुभव किया जाय कि सैनिक कार्य के लिए सैनिकों को कई महीनों के लिए बाहर दूर जाना पड़ता था ।[1]

3. **व्यक्तिगत स्वास्थ्य**—हिन्दू शिष्टाचारों का कोई भी वर्णन उनके धार्मिक विचारों का कुछ उल्लेख किये बिना पूरा नहीं हो सकता, जिन्होंने मुस्लिम रिवाजों को भी पर्याप्त सीमा तक प्रभावित कर दिया । हम जाति, प्रथा और घरेलू रीति-रिवाजों का उल्लेख कर ही चुके हैं । व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर भी धार्मिक विश्वासों का तथैव प्रभाव पड़ता था । भ्रष्टता और अपवित्रता का भय एक रूढ़िवादी हिन्दू की कल्पना में असाधारण रूप से छाया रहता था । उदाहरणार्थ, यदि कोई स्त्री मासिक धर्म में होती तो वह उस अवधि में और बाद के बारह दिनों तक अपवित्र मानी

---

1. अमीर खुसरो के आकलन के लिए देखिए कु० खु०, 709, जो यह भी विश्वास करता है कि हिन्दू कृपक की नम्रता के कारण अनिष्टकारी हरिण भी हिंसात्मक कार्यवाही की आवश्यकता के बिना उसके खेत के बाहर चला जाता है । प० प०, 112 में अहिंसा पर विद्यापति की भावनाएं देखिए ।
2. तुलनीय बरबोसा, प्रथम, 111-12; वरथेमा, 109 ।
1. उपदेशात्मक एक कथा के लिए देखिए तारीख-ए-दाऊदी, 14-15 ।

जाती थी । उसे अलग कर दिया जाता और उसे भोजन सामग्री या पुरुष सदस्यों के वस्त्रों का स्पर्श न करने दिया जाता था, या उसका रसोई के भीतर प्रवेश रोक दिया जाता था ।[1] अपवित्रता की वस्तुओं की एक लम्बी सूची थी जिसके कारण, यदि हिन्दू मस्तिष्क में व्यावहारिक प्रतिभा का अभाव होता, तो दैनन्दिन जीवन बिल्कुल असहनीय बन गया होता । इन छूत की वस्तुओं के साथ-साथ शुद्धि कराने वाली बातों का भी उतना ही व्यापक क्षेत्र है, जो अन्य बातों के प्रभाव का प्रतिकार करने में प्रभावात्मक सिद्ध होतीं थी । जो पाठक विस्तृत विवरण पढ़ने के इच्छुक हैं उन्हें अबुल फज्ल के पृष्ठों में इस विषय की आवश्यक जानकारी मिल जायगी ।[2] यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण पुरोहित की सद्भावना प्राप्त करने में सफल हो जाता तो वह अपना जीवन पर्याप्त रूप से अनुकूल और सुखद बना सकता था ।

अन्य शिष्टाचारों में हम यह उल्लेख कर सकते है कि उन भाग्यशाली लोगों को विशेष पवित्र माना जाता था जिन्होंने विहार में कर्मनाशा नदी के पश्चिम की ओर या गंगा के मैदान के ऊपर के भाग में जन्म लिया होता और उसी पवित्र भाग में वे मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते । इन भौगोलिक सीमाओ के बाहर कोई अविवेकपूर्ण कार्य उनके अगले जन्म को पतित कर देता था और अगले जन्म मे जीवन की प्रतिकूल अवस्था में उनका जन्म होने की पूरी आशंका रहती थी । यह विश्वास संशोधित रूप में तथा स्थानीय रूप में अभी भी प्रचलित है ।[3] ऐसी परिस्थितियों मे मुसलमानों के लिए ऐसे तथा और भी हिन्दू विश्वासों और पूर्वाग्रहों को आत्मसात कर लेना स्वाभाविक ही था ।

हमने मुसलमानों पर जाति, प्रथा और हिन्दू घरेलू रिवाजों का प्रभाव देख लिया है । हम इस सम्बन्ध में कुछ और भी विचार करेंगे । जब कोई व्यक्ति मस्जिद में प्रवेश करता तो उसे पहले अपना दाहिना पैर रखना पड़ता और इस नियम का उल्लंघन निन्दनीय माना जाता था ।[4] इसी प्रकार उसे स्वयं को अशुद्धि से बचाए रखने की विशेष सावधानी बरतनी पडती थी । उदाहरणार्थ, औपचारिक शुद्धि के

1. तुलनीय आ० अ०, द्वितीय, 183 ।
2. वहीं, 170 ।
3. बाबर, बा० ना०, 343 ब के विचार तुलनीय हैं । यह विश्वास अभी भी जीवित या मान्य है । इसके लिए 'कर्मनाशा' के अन्तर्गत इम्पी० गॅजे० इण्डि० तुलनीय है । मगहर (बस्ती जिला, उत्तरप्रदेश) मे मृत्यु के कलंक पर कबीर के व्यंग्य के लिए शाह, 144 भी देखिए ।
4. इस नियम के खण्डन पर हुमायूं द्वारा मस्जिद जाने वाले को दण्डस्वरूप वापस भेजने और मान्य पद्धति से पुनः प्रवेश करने का आदेश देने के बारे में देखिए मु० त०, प्रथम, 468 ।

बिना कुरान को स्पर्श करना पाप माना जाता था। अशौचावस्था में किसी का भोजन लेना मना था। मुसलमानों को पूर्ण नग्नावस्था में लघुशंका न करने की चेतावनी दी गई थी। मध्याह्न के भोजन के पश्चात् सोना एक पवित्र कार्य था, जो मैदानों की उष्ण जलवायु के अनुकूल ही था। नियमित स्नान, दांतों की सफ़ाई और अन्य रिवाज दोनों समुदायों के सदस्यों में एक समान थे।[1]

अकबर के शासन के प्रारम्भ के समय का हिन्दुस्तान

हम हिन्दुस्तान के सामाजिक जीवन के पर्यवेक्षण की समाप्ति पर पहुंच चुके हैं। यह पर्यवेक्षण निश्चित ही संक्षिप्त और रूपरेखा-मात्र है। अब अकबर महान् का शासक प्रारम्भ होने के समय के हिन्दुस्तान के सामाजिक विकास का हमारा आकलन सरल हो जायगा। हमने यह कहते हुए प्रारम्भ किया था कि समीक्षान्तर्गत काल भारतीय समाज के निर्माण का काल था। और बाद में जिसने परवर्ती मुग़लों के समय प्रस्तुत स्वरूप ग्रहण किया और अभी भी कुछ अर्थों में जिसके अवशेष विद्यमान हैं। हम यह भी देख चुके हैं कि अकबर के मेधावी और कुशल दरबारी और मित्र अबुल फ़ज्ल द्वारा संकलित अकबर के शासन का सरकारी विवरण कुछ दोषपूर्ण है, क्योंकि वह अपने पूर्ववर्ती शासकों के योगदान के प्रति न्याय नहीं करता। जैसे-जैसे राजनीतिक विकास की धारा प्रकट होती है, यह सत्य स्पष्ट हो जाता है कि सल्तनत के उच्चतम प्रादेशिक विस्तार के साथ सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति भी उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। इस सम्बन्ध में हम यह काफ़ी सीमा तक कह सकते हैं कि अन्य उपयुक्त स्थानों में उल्लिखित कुछ-एक योगदानों को छोड़कर सुल्तान फ़ीरोज़शाह तुग़लक के समय तक, जबकि सल्तनत का विघटन प्रारम्भ हुआ, विशाल पैमाने पर सामाजिक प्रगति हो चुकी थी। भारतीय समाज के शासक और उच्च वर्ग उस युग की संस्कृति द्वारा समुन्नत किये गए अत्यन्त विलासी और उत्कृष्टतम वातावरण में रहते थे। प्रत्येक दृष्टिकोण से दिल्ली एशिया की

1. हिन्दू स्नान के लिए देखिए कु० ख़ू०, 706। किन्तु वे अधिक पैमाने पर स्नानागार का प्रयोग नहीं करते थे (फ़्रेम्प्टन, 142) और उन्हें बहता हुआ जल अधिक प्रिय था। पीने के जल के लिये वे अपने निजी बर्तन रखते थे (यूले, द्वितीय, 342 के अनुसार; आ० सि०, 32 बी) इस सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना मनोरंजक है कि भोजन करने और सारे स्वच्छ कार्यों के लिये केवल दाहिना हाथ प्रयुक्त किया जाता था (यूले, द्वितीय, 342 के अनुसार)। घर में प्रवेश करते समय हिन्दू लोग अपने जूते बाहर छोड़ देते थे। प० (हिन्दी), 250। घर का फ़र्श लीपने के लिये गाय के गोबर का प्रयोग किया जाता था और ऐसा बहुधा करना पड़ता था (वरथेमा, 155 के अनुसार)।

सर्वाधिक प्रगतिशील राजधानी मानी जाती थी। इस सत्य को दृष्टिगत रखते हुए सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी और उसके उत्तराधिकारी पुत्र ने 'इस्लाम के खलीफ़ा' की पदवी धारण कर ली थी। मुहम्मद तुगलक, जो एक नाममात्र के खलीफ़ा को मान्यता देने के लिये झुका, इस्लाम जगत में अपनी अतुलनीय महानता के प्रति पूर्णतः सचेत था।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अल्पसंख्यक उच्चवर्ग की इस संस्कृति और उत्कृष्टता का जनसाधारण के जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था।[1] बहुसंख्यक जनता का जीवन घिसा-पिटा और रूखा था और वह मानसिक संस्कृति के निम्न स्तर का प्रतिनिधित्व करता था। जनता की आर्थिक स्थिति का ज्ञान उनके जीवन के उन कुछ-एक सन्दर्भों से हो जायगा जिनका, उल्लेख समुचित स्थानों पर कर दिया गया है। यदि उनका धार्मिक जीवन और उनकी संस्कृति का अध्ययन इस पर्यवेक्षण मे सम्मिलित कर लिया गया होता तो वह अत्यन्त पुराने अन्धविश्वासो, जादू-टोनों से परिपूर्ण होता। उनकी बौद्धिक संस्कृति ने लोकगाथाओं, लोकगीतो और प्रेतकथाओं से आगे प्रगति नही की थी। जनसाधारण के राजनीतिक जीवन के बारे मे बहुत थोडा कहा जा सकता है, जबकि यह अनुग्रहों और आर्थिक बोझों से परिपूर्ण था। इस युग की महान् उपलब्धियों को समाज के इस अनिवार्य दूसरे पहलू से अलग नहीं किया जा सकता। युग का सारा जीवन और संस्कृति, इसके अच्छे और बुरे तत्त्व, इसकी सुन्दरता और कुरूपता सब एक समष्टि के रूप में है। पतन के कारणों की चर्चा करना हमारे अध्ययन क्षेत्र के बाहर है, किन्तु हम इनमें से अधिकाश कारण इन ज्वलंत सामाजिक विरोधाभासों में पा सकते है।

इस सम्बन्ध में मुगल सम्राट बाबर के कुछ उन विचारों का परीक्षण करना अरुचिकर न होगा जो कुछ प्रसिद्ध और तर्कहीन इतिहासकारों में प्रसिद्ध और पर्याप्त लोकप्रिय हो गए है।

अबुल फज्ल द्वारा अपने संरक्षक और शासक, महान् मुगल सम्राट अकबर की उपलब्धियों पर अबुल फज्ल द्वारा अनुचित जोर दिये जाने के कारण भारतीय सामाजिक इतिहास के दृष्टिकोण पर जो आघात पहुंचा है उसे हम अपनी भूमिका में देख चुके हैं। इस प्रचलित त्रुटिपूर्ण अवधारणा को मुगल-वंश के संस्थापक के अवलोकनों से अतिरिक्त शक्ति और बल मिलता है, जिसकी बौद्धिक ईमानदारी और सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, कुशलता और सुरुचियां विवादहीन हैं। उसमें एशिया की दो प्रबल

1. निकोलो काण्टी के अवलोकनों के लिए देखिए पेरो तेफुर। काण्टी पेरो तेफुर को भारत जाने से रोकना है। वह उसे बताता है कि भारत का भ्रमण करने पर धन का अत्यन्त उपहासास्पद प्रदर्शन देखने में आता है। विशाल मात्रा में मोती, सोना और जवाहिरात देखने को मिलते हैं, किन्तु 'जब उन्हें धारण करने वाले लोग पशु हैं' तो उससे दर्शक को कैसे लाभ होगा।

प्रजातियों—मंगोल और तुर्क—की पौरुषेय विशेषताएं सम्मिलित थीं। इनमें उसने फ़ारसियों की नागरिक सभ्यता का भी समावेश किया। हिन्दुस्तान को एक के बाद एक भव्य-शासकों और साम्राज्य-निर्माताओं—जिनके कार्य अभी भी विद्यमान हैं—की एक परम्परा देने के लिये हम उसके ऋणी हैं। आगरा का ताज, दिल्ली की जामा मस्जिद और किला मुग़लों के गौरव के उतने ही प्रतीक हैं, जितने कि खान-खाना का काव्य, बीरबल की कथाएं, अबुल फ़ज़्ल की प्रतिभा और टोडरमल की प्रशासन कुशलता – जिन्होंने हिन्दुस्तान की संस्कृति को सम्पन्न बनाया है। वास्तव में, मुग़ल सम्राट अकबर की कथा का जनमस्तिष्क में वही स्थान है जो प्राचीनकाल के ऋषियों और मुनियों का था। इसलिये मुग़ल योगदान को नकारने की बात तो दूर, हम भारतीय संस्कृति के भाण्डार का मूल्यांकन करते समय इसे सम्माननीय स्थान देंगे।

यदि हम बाबर के अवलोकनों का अनुसरण करें तो हमें स्वयं को यह विश्वास दिलाना कठिन हो जायगा कि हिन्दुस्तान किसी भी दशा में एक सभ्य देश था—भौतिक और बौद्धिक रूप से उन्नत देश होने की तो बात ही दूर है। बाबर हमें स्पष्टतः बताता है कि उसे हिन्दुस्तान में केवल 'सोने और चांदी का ढेर' और 'हर प्रकार के अनगिनत और अपरिमित कारीगर' ही रुचे। वह आगे कहता है कि 'भारत ऐसा देश है जहां बहुत थोड़े आकर्षण हैं।' 'यहां के लोग सुन्दर नहीं हैं; सामाजिक सम्पर्क के रूप में उन्हें सामाजिक समागम और मुक्त रूप से आपस में मिलने-जुलने का ज्ञान नहीं है; आवागमन से वे अनभिज्ञ हैं, उनमें प्रतिभा और सामर्थ्य नहीं है; उनके शिल्प-कार्यों में कोई स्वरूप या एकरूपता, शैली या उत्कृष्टता नहीं रहती; यहां अच्छे घोड़े, अच्छे कुत्ते, अंगूर, खरबूजे या बढ़िया फल, बर्फ या शीतल जल, बाज़ारों में अच्छी रोटी या पका भोजन, उष्ण स्नानागार, महाविद्यालय, दीपक, मशाल या मोमबत्तियां नहीं हैं।' वह भारतीय जलवायु में भी दोष देखता है, क्योंकि उसके अनुसार यह ट्रांस-आक्सियाई प्रनूपों के प्रयोग के लिये अनुकूल नहीं थी।[1] इससे अधिक पूर्ण या निश्चित निन्दा कभी देखने में नहीं आई।

बाबर ने अपने काल के भारतीय सामाजिक विकास का ऐसा अनैतिहासिक और तुच्छ मूल्यांकन कैसे कर लिया, यह समझने में हम पूर्णतः असमर्थ हैं। यह सम्भव है कि उसके पूर्व 1398 में तिमूर के अभियान ने इस भूमि का इतना विनाश कर दिया था कि अपेक्षाकृत अस्थायी और निर्बल केन्द्रीय प्रशासन और अपेक्षाकृत गृह-युद्ध-मय स्थिति सामाजिक जीवन के भवन को सवा शताब्दी तक पुनर्निर्मित करने में असमर्थ रही। यह हो सकता है—जो कि असम्भव नहीं है—कि वह विजित लोगों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करते समय स्वभावतः एक विजेता में निहित घृणा-

1. देखिए बाबर नामा, 267-8; बेवरिज, द्वितीय, 518-20।

भावना के प्रवाह में बह गया हो। कुछ भी हो यह उसकी आत्मकथा की वैज्ञानिक प्रकृति को हानि पहुंचाता है। यह ऐसे व्यक्ति से सुनना बहुत विस्मयकारी लगता है, जिसने ग्वालियर के महल देखे हैं और दिल्ली, आगरा और लाहौर के आस-पास विचरण किया है। यह सत्य है कि एक अर्थ ऐसा भी है जिसमें ये अवलोकन पूर्णतः उचित कहे जा सकते हैं, किन्तु बाबर उसके प्रकाश में देखने से बहुत दूर था। हम पहले ही देख चुके हैं कि बहुसंख्यक जनता का अल्पसंख्यक उच्च वर्ग की सुविधाओं और उत्कृष्टता मे कोई हिस्सा नहीं था। बाबर इस अर्थ में बिलकुल सही है, यदि वह सामाजिक प्रगति का अति-प्रजातांत्रिक और आधुनिक दृष्टिकोण लेता है। किन्तु हमें यह दृष्टिकोण त्यागना पड़ेगा, क्योंकि उसने और उसके उत्तराधिकारियों ने केवल इस पद्धति को बढ़ावा दिया और उच्च और निम्न वर्गों मे विभेद और भी अधिक ज्वलंत कर दिया।[1]

वास्तव में, जैसा कि हमने भूमिका में बल दिया है, तुर्कों और अफगानों का युग अपने आगामी शासकों के लिये एक नमूना निर्धारित करने के अलावा मुगल साम्राज्य के संस्थापक के शासनकाल की कौन कहे, अकबर के युग से भी अधिक प्रतिकूल नहीं बैठता। काव्य और मानसिक संस्कृति मे अमीर खुसरो, मलिक मुहम्मद जायसी, चण्डीदास और मुकुन्दराम अभी भी हमारी बौद्धिक संस्कृति में ऊंचा स्थान रखते हैं। यह सत्य है कि धार्मिक काव्य मे पश्चात्कालीन तुलसीदास का अतुलनीय और उदात्त स्थान है, किन्तु तुलसीदास को उत्पन्न करने वाले आन्दोलन का प्रारम्भ अकबर तो क्या, बाबर के भी पहले प्रारम्भ हो चुका था। कला और भवन-निर्माण-शिल्प मे यद्यपि मुग़ल सम्राट शाहजहां का गौरव अभी भविष्य के गर्भ में था, तो भी सुल्तानों और प्रान्तीय शासकों के शासनकाल की कृतियां तुलनात्मक दृष्टि से कुछ निम्न श्रेणी की उपलब्धियां नहीं थी। प्रशासन के क्षेत्र में हम केवल यही कह सकते है कि यद्यपि मुग़ल सम्राट अकबर की पूर्वगामी शताब्दी प्रशासकीय प्रतिभा में अधिक भाग्यवान नहीं है, तथापि शेरशाह और अलाउद्दीन खिलजी की सफलताओं को शायद ही इन्कार किया जा सकता है, जो अपने मुगल प्रतिद्वंद्वियों की सारी मौलिकता का श्रेय लूट लाते है। एक बात में, वह युग, जिसका हम अध्ययन कर रहे है, अपने आगे आने वाले युग से श्रेष्ठ है। यह उत्थान का, स्वस्थ जीवनशक्ति का और यौवन का युग था। यह काल परिपक्वता में जाकर मुखरित हुआ, जबकि इसके आगे वाले काल के पश्चात् पतन और विघटन दृष्टिगोचर होता है। पहले काल की संस्कृति का समग्र ढांचा पौरुष और जीवनशक्ति के चिह्न प्रकट करता है, जबकि बाद के

1. शाहजहां के शासन काल के लिए मोरलैंड का मूल्यांकन देखिए 'फ्राम अकबर टु औरंगजेब', पृष्ठ 302-5।

काल की महानता को पतन के कीटाणुओं और ओजहीनता तथा जीवनीशक्ति के ह्रास से विलग नहीं किया जा सकता।[1]

आइए, अब हम बाबर के अवलोकनों की कुछ जांच करें। निकटता से निरीक्षण करने पर हम पाते हैं कि उसके सारे विचार तीन मुख्य सामाजिक तत्त्वों में रखे जा सकते हैं : वैयक्तिक शारीरिक सौंदर्य और आकर्षण, यहां की भूमि के पशु-पक्षी और पेड़-पौधे और भौतिक सुविधाओं की स्थिति। हम इनका क्रमशः परीक्षण करेंगे।

1. शारीरिक सौंदर्य और आकर्षक—बाबर सौंदर्य और आकर्षण की कमी की शिकायत करता है। हम अन्य स्थान पर इंगित कर चुके हैं कि किस प्रकार शारीरिक सौंदर्य को सबसे ऊंचा स्थान दिया जाता था, यहां तक कि इसे हृदय और मस्तिष्क के अन्य गुणों की कीमत पर भी तरजीह दी जाती थी। व्यक्ति के सौंदर्य के प्रति एक श्रेष्ठ कार्य के समान सावधानी और साधना बरती जाती थी। समकालीन साहित्य के विद्यार्थी आदर्श नारी-सौंदर्य की 32 (या अन्य लोगों के अनुसार 16) विशेषताओं से परिचित हैं। इनमें नारी-देह के प्रायः सब पहलू, जैसे उनके केश, गर्दन, नासिका, ओठ, भौंहें, बरौनियां, अंगुलियां और शरीर के शेष अंग आ जाते थे। कामविज्ञान-सम्बन्धी साहित्य परिपूर्ण सौंदर्य के इस आदर्श को सर्व-प्रसिद्ध 'पद्मिनी' नाम प्रदान करता है, जो आजकल घरेलू कहावतों में प्रयुक्त किया जाता है।[2] मनुष्यों और वस्तुओं के सम्बन्ध में जिनके मतों का महत्त्व है, उन लोगों ने इस मनोरंजक प्रश्न के अध्ययन की उपेक्षा नहीं की है। उदाहरणार्थ, अमीर खुसरो समकालीन सौंदर्य—तुर्की, तारतार, फ़ारसी, चीनी, ग्रीक, रूसी और अन्य लोगों के लोकप्रिय प्रकारों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियां अतुलनीय सुन्दर हैं। जबकि अन्य देशों की स्त्रियां कुछ बातों में सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी उनमें अन्य गुणों की शोचनीय रूप से कमी थी, केवल भारतीय स्त्री में सारे नैतिक, शारीरिक और बौद्धिक गुण थे। यद्यपि खुसरो कुछ मात्रा में देशभक्ति-पूर्ण पूर्वाग्रह से विचार प्रदर्शित करता है, उसके आकलन को

---

1. ज० प्रो० ए० सो० बं०, 1913 में मुगल संस्कृति पर हिदायत हुसैन द्वारा लिखा एक अत्यन्त रोचक मसौदा तुलनीय है, 'मिर्जा-नामा' जो यद्यपि मिर्जा कामरान से सम्बन्धित है, सम्भवतः काफी बाद में लिखा गया था।
2. एक पद्मिनी के गुणों के विस्तृत विश्लेषण के लिए तुलनीय पृ०, 76-7, हिन्दी मूलप्रति, 214।

पूर्णतः एकतरफा मानकर नहीं उपेक्षित किया जा सकता ।[1] उसके निष्कर्ष के समर्थन के लिए अन्य साक्ष्य भी कम नहीं हैं ।[2]

2. **पशु-पक्षी और पेड़-पौधे** —अन्य चीजों के साथ बाबर फलों की कुछ कमी की *शिकायत करता है, इसमें वह कुछ अंश तक ठीक है, क्योंकि वह हिन्दुस्तान में* खरबूजों का प्रचलन करने का दावा करता है। किन्तु इस छोटे से योगदान के आधार पर उसके सारे कथन उचित नहीं ठहराये जा सकते । भारत यहां के फलों, पुष्पों में सदैव ही सम्पन्न रहा है और धार्मिक उत्सव भी भारतीय जीवन की योजना में उनका स्थान प्रकट करते हैं । इस विषय का वर्णन हम अन्यत्र कर चुके हैं, तथापि हम अमीर खुसरो का एक अवलोकन इस स्थान पर देंगे। समकालीन पुष्पों के वर्गीकरण में अमीर खुसरो उन पुष्पों की चर्चा करता है जो *बहुत पहले फारस से लाए गए थे, जैसे बनफशा, यसमान, और नासरीन और दूसरे वे पुष्प जो मूलतः* भारतीय थे किन्तु विदेशी नामों से संबोधित किये जाते थे, जैसे गुल-कूजा, गुल-ए-साद-वर्ग । इसके साक्ष्य के रूप में कि बाद में उल्लिखित पुष्पों का वर्ग देशीय है, वह अपने विरोधियों को, इनका अस्तित्व भारत के बाहर कहीं भी सिद्ध करने की चुनौती देता है । अन्य भारतीय पुष्पों में वह कुछ-एक का उल्लेख भी करता है, जैसे बेला, केवड़ा, चम्पा, मौलसिरी, सेवती, दौना, करना और लौंग (जो लोगों में अरबी नाम *करनफल से प्रसिद्ध था) । हम खुसरो के इस कथन से सहमत हैं कि इस सम्बन्ध में अवांछनीय विनम्रता के कारण हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा को बहुत ठेस* पहुंची है, क्योंकि यदि सीरिया या ग्रीस के पास पुष्पों का ऐसा कोष होता तो उन्होंने सारे संसार में अपने गौरव का डंका बजा दिया होता ।[3] हम फलों और उद्यानों का पिछले एक अध्याय में उल्लेख कर ही चुके हैं ।[4]

3. **भौतिक सुविधाएं**—अन्तिम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न जिसे बाबर ने *उठाया है, समकालीन हिन्दुस्तान में भौतिक सुविधाओं और सामाजिक परिष्कृतताओं*

---

1. अमीर खुसरो के आकलन के लिए तुलनीय दे० रा०, 133-4 । कवि भूरे वर्ण के प्रति कुछ सचेत है, किन्तु वह स्वयं को यह संतोष देकर अपना भय दूर करता है कि भूरा रंग गेहूं का भी होता है, जिसने मुस्लिम उपाख्यान के अनुसार *आदम को आकर्षित किया था और इस प्रकार जगत की उत्पत्ति के लिए अप्रत्यक्ष रूप से सहायक हुआ ।*
2. *समकालीन काश्मीरी नारियों के लिए देखिए जकारिया काज्विनी (वस्टनफील्ड* संस्करण 60); राजपूत नारियों के बारे में टॉड भी देखिए ।
3. पुष्पों के विस्तृत वर्णन के लिए तुलनीय दे० रा०, 129-132 ।
4. इस सिलसिले में अमीर खुसरो की लेखनी से लिखित एक अवधी उद्यान का वर्णन देखिए, मिर्जा, 98-9 ।

के स्तर से सम्बन्ध रखता है। दिल्ली के सुल्तानों और अमीरवर्ग की विलासिता और सुविधाओं तथा सामाजिक सुखों का परिचय अमीर खुसरो, जियाउद्दीन बरनी और शम्स-ए-शिराज अफ़ीफ़ जैसे समकालीन वृत्तांत लेखकों के पृष्ठों और मसालिक-उल-अबसार में दिये गये विदेशी यात्रियों के वर्णनों और इब्नबतूता के वर्णनों से प्राप्त हो सकता है। हम अन्यत्र इसका उल्लेख कर चुके हैं। यहां हम हिन्दू-समाज और मालवा तथा बंगाल के प्रान्तीय राज्यों से कुछ उदाहरणों तक ही अपने को सीमित रखेंगे। इन सब में सुख-सुविधाओं का स्तर दिल्ली के सुल्तानों के अधीन उपलब्ध सुख-सुविधाओं से निश्चित ही निम्न था।

अनेक जगह मलिक मुहम्मद जायसी अपने पाठकों को हिन्दू सुख-सुविधाओं से परिचित कराता है। उदाहरणार्थ, एक स्थान पर वह सिंहल (जो, जैसा कि हम भूमिका में जोर दे चुके हैं, दोआब के लिए लागू होता है) में पद्मावती के पिता के राजमहल का दृश्य प्रस्तुत करता है। नायक और नायिका विवाहोपरान्त राज-महल के एक प्रकोष्ठ में सुहागरात मनाते हैं। समूचा वर्णन वास्तविकता का वातावरण प्रस्तुत करता है और सुकोमल रुचि तथा उत्कृष्टता प्रकट करता है। यहां हम स्तम्भों पर खुदे हुए जनसामान्य के दैनंदिन जीवन के दृश्यों का वर्णन पढ़ते हैं। हमें एक इत्र बेचनेवाला मिलता है जो एक हाथ से इत्र प्रस्तुत करता है और दूसरे में चिमनी लगा हुआ दीपक रखे रहता है। अन्य लोग हमारे समक्ष कस्तूरी, सिन्दूर, पान, पुष्पों आदि के साथ उपस्थित होते हैं। उनका अभिनय हमें अपनी पूर्णता और सजीवता से प्रभावित करता है प्रकोष्ठ के मध्य में हमें विवाहित दम्पति की शैय्या दृष्टिगोचर होती है। वह मुलायम रेशम के तकियों से सुसज्जित है। उस पर पुष्प बिखरे हुए हैं। शैय्या के आसपास स्तम्भ हैं जिनमें लाल चिमनी वाले तथा बहुमूल्य पत्थर-जड़े शंख से बने दीपक लगे हैं। फर्श में बहुमूल्य और सुन्दर गलीचे बिछे हैं।[1] यह हिन्दू कुलीन वर्ग के जीवन का दृश्य है। अन्य दृश्यों के लिए हम ग्वालियर और चन्देरी के सम्बन्ध में स्वयं बाबर के वर्णन का उल्लेख करेंगे। उदाहरण के लिए हम धौलपुर के विस्तृत उद्यानों का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, जो धौलपुर की ओर जाने वाले मार्गों पर छाया करते थे।

मालवा से हमें न केवल सुख-सुविधाओं और विलासिता के, अथवा विस्तृत एवं परिष्कृत रुचि के प्रमाण मिलते हैं। उदाहरण के लिए, मुजफ़्फ़रशाह के पदार्पण के समय माण्डू की सजावट के सम्बन्ध में तारीख-ए-फीरोजशाही के वर्णन पर विचार कीजिये। सारे शाही भवन खूब सजाए गए थे। कुछ स्थानों पर जवाहिरातों से जड़े सिंहासन स्थापित किये गये थे और उनके आसपास कृत्रिम वाटिकाएं लगाई गई थीं। ये वाटिकाएँ धातु, जवाहिरातों और बहुमूल्य पत्थरों की मीनाकारी वाले वृक्षों और

1. विवरण के लिये तुलनीय प० (हिन्दी), 131-2।

फलों से परिपूर्ण थीं। नगर को सजाने के लिए विशेष कुशल लोग नियुक्त किये गए थे। बाज़ार के दोनों ओर मोम और सुगन्धित रेशम के अस्तर से बने वृक्षों का एक प्रवेश द्वार बनाया गया था। गवैय्ये और नर्तकियां माण्डू के सुल्तान और सम्माननीय अतिथि—गुजरात के सुल्तान की प्रशस्तियां गाते हुए सब स्थानों पर लोगों का मनोरंजन कर रहे थे। कुछ स्थानों पर नानवाई और हलवाई सोने की तश्तरियों पर प्रत्येक अतिथिको मिष्टान्न, शरबत और पान प्रस्तुत कर रहे थे।[1] इन मनोरजनों की मुख्य रूपरेखा दिल्ली के मनोरजनों के समान थी।

आइए, हम 'किताब-ए-नियमत-खान-ए-नासिर-शाही' द्वारा दी गई सूचना का परीक्षण करें। यह पुस्तक, हमारा अनुमान है कि, मालवा में खिलजी सुल्तानों के समय में संकलित की गई थी। सकलनकर्ता हमें विभिन्न पेयों, सौन्दर्य-प्रसाधनों और पकवानों से परिचित कराता है और उनके बनाने की विधि भी बताता है। मदिराओं में वह चन्दन की लकड़ी, केशर, गुलाब, अम्बर इत्यादि से सुवासित मदिरा तैयार करने का उल्लेख करता है।[2] सौन्दर्य-प्रसाधनों की संगणना में यह पुस्तक केवल साधारण उबटनों का ही उल्लेख नहीं करती, बल्कि यह बाजू के लिये, श्वास को सुवासित करने के लिये और दांतों को रंगने के लिए अलग-अलग चूर्णों (पाउडरों) की विशेषताओं का भी उल्लेख करती है। सूंघनियों की उपेक्षा नहीं की गई है और शिकार की सामग्री का सावधानी से विस्तारपूर्वक विवरण प्रस्तुत किया गया है।[3] पाक-विधियों में लगभग असीमित पकवानों का उल्लेख है जिनमें उत्कृष्ट हिन्दू और मुस्लिम पकवान भी सम्मिलित हैं। इन सारे पकवानों को तैयार करने की अनगिनत विधियां हैं। विभिन्न ऋतुओं—वर्षा ऋतु, वसन्त ऋतु—जबकि शीतल और ताजगीदायक वायु बहती है—के लिये विशेष पकवान बताये गये हैं। भोजों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। शिकार और विहारों की व्यवस्था इसकी अन्य विशेषताएं हैं। किन्तु इतने से ही

---

1. विवरण के लिए देखिए तारीख-ए-मुजफ्फरशाही, 49-50।
2. तुलनीय कि० नि० खा०, 177-8।
3. सौन्दर्य-प्रसाधनों और चूर्णों (पाउडर) के विस्तृत वर्णन के लिये देखिए कि० नि० खा०, 121-4। शिकार की सामग्रियों के लिये देखिए वहीं, 153-5। संकलनकर्ता विस्तृत विवरण देता है। अन्य वस्तुओं के साथ वह सलाह देता है कि 'शिकार के थैले' में वायुप्रवाह की दशा जानने के लिए एक रूमाल, वस्त्रों का एक विशेष जोड़ा, समय के जानने के लिए एक समय-दर्शक-यन्त्र, एक सुवहनीय शिकारी झोंपड़ी, यहां तक कि जूते और जुर्राब पहिनने के पहले पैरों में मलने के लिए चन्दन की लकड़ी और कपूर भी होना चाहिये। वह यह भी सलाह देता है कि पसीने की दुर्गन्ध दूर करने के लिए जूतों के भीतर कुछ कपूर सा लेना चाहिये।

सूची समाप्त नहीं हो जाती ।[1] हम उस समय आधुनिक नज़ाकत की कमी, कुछ चमक-दमक और सोने के प्रबल और अनावश्यक प्रदर्शन की कुछ शिकायत कर सकते हैं, किन्तु ये बातें उस काल में सामान्य ही थीं ।

हम अब बंगाल से अन्तिम उदाहरण लेंगे । हमें रिज़कुल्ला मुश्तकी के आधार पर ज्ञात हुआ है कि बंगाल की विलासिताएँ देखकर तो हुमायूं बिलकुल हक्का-बक्का रह गया था । इतिहासकार की चित्रमय भाषा में सम्राट ने 'बंगाल के कोने-कोने में अप्सराओं से भरा विलासितापूर्ण महलों से परिपूर्ण एक अतुलनीय स्वर्ग' पाया । इन महलों के उद्यानों में फव्वारे अठखेलियां कर रहे थे; फर्शों पर बहुमूल्य गलीचे बिछे थे । इनके आले और आलमारियां सोने के काम वाले इत्र के पात्रों से भरे थे । भवनों के खम्भे चन्दन की लकड़ी के बने थे । फर्श चीनी टाइलों के बने थे । कक्षों की दीवारों पर भी ऐसी ही टाइलें प्रयुक्त की गईं थीं । बहुमूल्य उपस्कर और विलासितापूर्ण परदों से महलों के कक्ष सुसज्जित थे । उद्यान फूलों की क्यारियों और पानी की प्रस्तर-नलिकाओं से पूर्ण था । जब हुमायूं इनमें से एक भवन में रहने गया तो वह सारे वातावरण से इतना विमुग्ध हो गया कि उसने दो माह तक अपने आनन्दोपभोग को भंग करने से इन्कार कर दिया और इस काल में कोई भी सार्वजनिक दरबार नहीं लगा ।[2] बाबर के पुत्र ने अपने पिता के सम्बन्ध में एक इतिहासकार और पर्यवेक्षक के रूप में बड़ा तुच्छ मत निर्धारित किया होगा ।

---

1. वहीं, 156-8 में विशेष भोजनों की संगणना देखिए ।
2. विवरण के लिए देखिए वा० मु०, 45 ।

परिशिष्ट (क)

कुछ सामान्य सूचनाएँ

इस परिशिष्ट में हम सामान्यतः कुछ-एक तथ्यों पर विचार करेंगे—जैसे, जनसंख्या, दिल्ली राज्य की राजधानी, समय और दूरी की माप, सिक्के और तौल। अन्त में टंका नामक चांदी के सिक्के का आधुनिक मुद्रा में समतोल देने का प्रयास किया जायगा।

1. जनसंख्या—समीक्षान्तर्गत काल में हिन्दुस्तान की जनसंख्या का कोई स्पष्ट अनुमान लगाना कठिन है। शासन द्वारा राज्य की जनसंख्या का कोई व्यवस्थित लेखा नहीं रखा जाता था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक बार जब सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली की जनता को राहत देने का निश्चय किया तब उसने न्यायिक कर्मचारियों को राजधानी के विभिन्न मोहल्लों की जनगणना की पंजियां बनाने का आदेश दिया। इस एकमात्र प्रयत्न के भी परिणाम अज्ञात है। आगे, हम यह नहीं जानते कि राहत कार्य के संगठन मे यही सामान्य पद्धति थी या दिल्ली नगर के बाहर के क्षेत्र भी इसकी परिधि मे आते थे।[1] सरकारी अंक-विवरण के अभाव में हमारे अधिकांश प्रयत्न अनुमान-मात्र ही होंगे।

इतिहासकारों और वृत्तांतों में जामी-उत्-तवारीख ही एक ऐसी कृति है जिसने कुछ कामचलाऊ अंक दिये है। उसकी सूचना भी किसी अन्य स्रोत से ली गई प्रतीत होती है।[2] लेखक का अनुमान है कि 'सवालक' प्रदेश मे 1,25000 नगर, गुजरात मे 80,000 'ग्राम' और मालवा में 8,93,000 ग्राम थे।[3] लेखक ने अपने द्वारा वर्गीकृत

---

1. इब्नबतूता, कि० रा०, द्वितीय 51 का वर्णन देखिए।
2. हमें बताया गया है कि 'सवालक' का क्षेत्र गुजरात और मालवा के पड़ोस में था और आधुनिक राजपूताना के स्थान पर रहा होगा। 'सवालक' के लिए निर्धारित जनसंख्या का अंक (जिसका अर्थ है सवा लाख) क्षेत्र के नाम के शब्दार्थ से इतना निकट सम्बन्ध रखता है कि यह कुछ अन्तःसम्बन्ध प्रकट करता है, जो काल्पनिक होते हुए भी असंगत नहीं है।
3. तुलनीय इलियट, 42-3।

नगरों, कस्बों और ग्रामों की जनसंख्या के औसत आकार की चर्चा करने की चिन्ता नहीं की । जामी-उत्-तवारीख के इस अनुमान के अनुसार पश्चिमी हिन्दुस्तान के ग्रामों की संख्या लगभग 10 लाख होती है । यदि हम सवालक, गुजरात और मालवा का संयुक्त प्रदेश हिन्दुस्तान के क्षेत्रफल का चौथाई मान लें और उसे सर्वाधिक आबादीवाला न समझें तो समग्र हिन्दुस्तान के लिए ग्रामों की संख्या लगभग 40 लाख हो जायगी, जो समग्र भारतीय प्रायद्वीप के ग्रामों की वर्तमान संख्या का भी अतिक्रमण कर जाता है।[1] इस मूर्खतापूर्ण ऊंचे आकलन को अस्वीकार करने के लिए किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है ।

विशाल नगरों की जनसंख्या के सम्बन्ध में अत्यन्त सामान्य एवं और अनिश्चित सूचना प्राप्य है । बंगाल के प्रमुख नगर 'गौरो' (गौड़) की जनसंख्या 2 लाख अनुमानित की गई है ।[2] यदि यह अनुमान ठीक मान लिया जाय, जो असंगत भी नहीं है, तो कई स्पष्ट कारणों से दिल्ली की जनसंख्या 'गौरो' की अपेक्षा सम्भवतः अधिक थी । हम हिन्दुस्तान के अन्य बड़े नगरों—जैसे कैम्बे (खम्भायत), मुल्तान, लाहौर, आगरा, पटना और अन्य धार्मिक केन्द्रों —जैसे, मथुरा, बनारस और उज्जैन की जनसंख्या के सम्बन्ध में अन्धकार में हैं । सम्भवतः उनकी जनसंख्या पर्याप्त होने पर भी दिल्ली से काफ़ी कम थी । शहरी और ग्रामीण जनसंख्या के ये दोनों आकलन समग्र हिन्दुस्तान के लिए कोई ठीक अनुमान लगाने में सहायता नहीं देते । श्री मोरलैंड का मत है कि 1605 ई० के लगभग मुल्तान से मुंगेर तक उत्तर भारत के मैदान की जनसंख्या तीन करोड़ से अधिक और चार करोड़ से सम्भवतः कुछ ही कम रही होगी । वह समग्र भारत के लिये 10 करोड़ जनसंख्या अनुमानित करता है ।[3]

2. **केन्द्रीय सरकार की राजधानी**—सुल्तान सिकन्दर लोदी के शासन के पूर्व शासन की राजधानी दिल्ली में स्थित थी, सिवाय उस स्वल्प मध्यान्तर के, जब सुल्तान मुहम्मद तुग़लक इसे देवगिरि ले गया, जिसका कि नाम बदलकर उसने 'दौलताबाद' रखा । 909 हिज्री (1503 ई०) में जब सिकन्दर लोदी ने राजधानी आगरा में बदली तो आगरा सल्तनत की राजधानी हो गया और वह तब तक राजधानी बना रहा जब तक कि मुग़ल सम्राट शाहजहां ने दिल्ली में फिर राजधानी स्थापित न कर ली ।[4]

---

1. इण्डियन इयर बुक, 1931 समग्र भारत (भारतीय राज्यों को मिलाकर) के ग्रामों की संख्या 6, 85, 665 या 10 लाख से कम बताती है। इण्डि० इ० बु०, 1931, 16 के अनुसार ।
2. बरबोसा, द्वितीय, 246 (परिशिष्ट) ।
3. तुलनीय मोरलैंड, इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर, 22 ।
4. तुलनीय ज० ब०, तृतीय, 853: थामस, 365 भी ।

सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने सम्भवतः अनुभव किया कि चूंकि दिल्ली उत्तर में बसा है इसलिए यह दक्खन तक विस्तृत साम्राज्य की राजधानी के लिए उपयुक्त नहीं है। उसने दिल्ली की अपेक्षा अधिक केन्द्र में स्थित और सुव्यवस्थित राजधानी की खोज की। ऐसा कहा जाता है कि ऐतिहासिक महत्त्व और भौगोलिक स्थिति के कारण उज्जैन का सुभाव दिया गया था। इस मनोरंजक सुभाव के अस्वीकृत किये जाने का कारण नहीं दिया गया है।[1] चुनाव बुद्धिमतापूर्ण होने के बावजूद भी दुर्भाग्य-वश देवगिरि का प्रयोग असफल रहा। सुल्तान ने दिल्ली की सारी आबादी सामूहिक रूप से देवगिरि स्थानान्तरित कर दी और लोगों को वापस हिन्दुस्तान ही लाया गया। अन्ततः भारतीय साम्राज्य की योजना फलीभूत नहीं हुई और सुल्तान मुहम्मद तुगलक के उत्तराधिकारियों को उत्तर के अधीनस्थ प्रदेशों से संतोष करना पड़ा।

3. समय के माप—'काल' और 'कल्प' के काल्पनिक मापों को छोड़कर एक शती के नीचे समय का अधिकतम माप था 'कर्ण' जो 31 वर्ष का होता था।[2] चन्द्रमा पर आधारित पंचांग, जो अभी भी प्रचलित है, प्रयुक्त किये जाते थे, यद्यपि हिन्दू गणना अधिक लोकप्रिय थी, ऐसा प्रतीत होता है।[3] हिन्दुओं के त्यौहार और वस्तुतः सारे उत्सव चान्द्र दिनों या 'तिथियों' के अनुसार नियमित होते हैं। हिन्दू चान्द्रमास में 30 चन्द्र-दिन होते हैं और यह पूर्णिमा या नवचन्द्र के दिन प्रारम्भ होता है। पूर्णिमा के साथ समाप्त होने वाले पखवाड़े को 'शुक्लपक्ष' और नवचन्द्र से समाप्त होने वाले पखवाड़े को 'कृष्णपक्ष' कहते हैं। दूसरी ओर मुसलमानों का हिजी सम्वत चन्द्रमा से

---

1. तुलनीय फरिश्ता ता० फ०, प्रथम, 242 का वर्णन।
2. ब० 115। हिन्दुओं ने भी समय की माप के इसी प्रकार अति सूक्ष्म विभाग किये। उन्होंने एक पल को 80 वसियों में और 1 वसिया को 60 विसियों में विभाजित किया।
3. इस सिलसिले में यह ध्यान में रखने योग्य है कि यद्यपि रेवर्टी इस अवलोकन से सहमत होते है और सरकारी प्रयोग के लिए हिन्दू महीनों के प्रयोग का सुभाव रखते है (पादटिप्पणी, पृ० 748 के अनुसार), उनके पाठांतर के अध्ययन से ऐसा निष्कर्ष शायद ही निकाला जा सकता है। रेवर्टी ने तबकात-ए-नासिरी के मूल पाठ में एक स्थान पर असाढ़ (हिन्दू माह) पढ़ा है। तबकात की ब्रि० म्यू० पाण्डुलिपि (अतिरिक्त पाण्डु०, 26, 189) में बिना किसी संकेत चिह्न के (पादटिप्पणी 203) लिखा है जिसे विद्वान अनुवादक ने 'अहार' पढ़ लिया है और इससे अपना निष्कर्ष निकालकर वे इसका सम्बन्ध हिन्दू माह से स्थापित करते हैं। मूलपाठ को 'बहार' और मुहावरा 'वक्त-ए-असाढ़'—जो स्पष्ट ही त्रुटिपूर्ण होगा—को 'वक्त-ए-बहार' (वसन्त का समय) पढ़ना अधिक ठीक होगा।

पूर्णतः सम्बन्धित होने पर भी इसके महीने चन्द्रमा की गति से तीस वर्षीय चक्र के द्वारा व्यवस्थित किये गये हैं, जिसमें 354 दिन के 19 सामान्य वर्ष और 355 दिन के 11 मालवर्ष होते हैं। अतः इस चक्र में 10, 631 दिन होते हैं और यह 29 जूलियन वर्षों तथा 39 दिनों के तुल्य होता है। प्रत्येक वर्ष 12 महीनों में विभाजित किया जाता है और मालवर्षों के अन्तिम महीने को छोड़कर—जो सदैव ही 30 दिन का होता है—सब महीने पारी-पारी से 30 और 29 दिन के होते हैं। चक्र के 2 रे, 5वें, 7वें, 10वें, 13वें, 16वें, 18वें, 21वें, 24वें, 26वें और 29वें वर्ष माल वर्ष होते हैं। हिज्रा महीने, नक्षत्र-विज्ञान के सिद्धान्तों पर निर्मित नहीं किये गये हैं। महीना उस सन्ध्या से प्रारम्भ होता है जिस दिन नवचन्द्र दिखता है। महीने की अवधि वातावरण की स्थिति पर निर्भर करती है और परस्पर समीप स्थित दो भिन्न स्थानों पर विभिन्नता पूर्ण हो सकती है। कोई भी महीना 29 दिन से कम का और 30 दिन से अधिक का नहीं हो सकता। हिन्दू और मुस्लिम महीनों के नाम क्रमशः निम्न-लिखित हैं[1] :—

हिन्दू माह	मुस्लिम माह
1. वैसाख	1. मुहर्रम
2. ज्येष्ठ	2. सफ़र
3. असाढ़ (आषाढ़)	3. रबी-उल्-अव्वल
4. श्रावण	4. रबी-उस्-सानी
5. भाद्र	5. जुमाद-उल्-अव्वल
6. आश्विन	6. जुमाद-उस्-सानी
7. कार्तिक	7. रजब
8. अग्रहायण	8. शबान
9. पौष	9. रमज़ान
10. माघ	10. शव्वल
11. फाल्गुन	11. ज़ुलक़दा
12. चैत्र	12. ज़ुलहिज्जा

दिन और रात्रि का विभाजन घण्टों में करने के लिये समग्र रात्रि और दिन को 8 पहर (फ़ारसी, पस) में विभाजित किया गया। प्रत्येक पहर आधुनिक तीन घण्टों के तुल्य होता था। ये 8 पहर 60 घड़ियों में विभाजित किये गये थे और

1. रास, फीस्ट्स इ० । भूमिका और पृष्ठ 115 (परिशिष्ट) ।

प्रत्येक घड़ी हमारी गणना के 24 मिनटों के तुल्य होती थी। प्रत्येक घड़ी 60 पलों में विभाजित की गई थी, जिससे एक दिनरात में 3600 पल होते थे। पहर या घड़ी की ठीक कालावधि नक्षत्र-विज्ञान की गणना द्वारा तय की जाती थी, जिससे पंचांग की सहायता से ठीक समय ज्ञात करने में शायद ही कोई कठिनाई होती थी। बाबर और अबुलफज्ल ने इस सिलसिले में विस्तार से लिखा है। जैसा कि एकाधिक बार कहा जा चुका है, समय ज्ञात करने के लिए जलघड़ी का और मुख्य शहरों में लोगों को घण्टे की सूचना देने के लिए घड़ियालों का प्रयोग किया जाता था।

4. **दूरी का माप**—दूरी का लोकप्रिय माप क्रोह (जो आज 'कोस' है) था। यह शब्दनाम अकबर के समय तक सर्वत्र प्रचलित था। हम एक क्रोह को वर्तमान दो मीलों के तुल्य मान सकते है।[1] प्रशासकीय गणनाओं की सुविधा के लिए, हरकारों के लिए और सेना के आवागमन इत्यादि के लिए क्रोह को तीन धावों में बांट दिया गया था।[2]

भारतीय गज का इतिहास अत्यन्त उतार-चढ़ाव वाला रहा है। गज के विभिन्न माप प्रयुक्त किए जाते थे जो एक स्थान से दूसरे स्थान में यहां तक कि विभिन्न वस्तुओं के लिए भी अलग-अलग, होते थे। सुल्तान सिकन्दर लोदी ने सरकारी गणना हेतु गज का नवीन माप चालू किया, जो (एक इंच के 1/84 अंश को जोड़ते हुए) वर्तमान 30 इंचो के तुल्य होता है।[3] इसलिए हमारा वर्तमान गज मोटे तौर पर इसके 6:5 के अनुपात में बैठता है।

5. **सिक्के**—इस काल के सिक्कों की विशेषता उनका मुद्रा-मूल्य है, न कि उनका सांकेतिक मूल्य। यहां तक कि कुछ परिस्थितियों में दक्षिण में स्वर्णकारों और सोना-चांदी के व्यापारियों को ठीक तौल और वास्तविक मूल्य के सिक्के बनाने के अधिकार भी दिए गए थे। राज्य, सिक्के की शुद्धता और तौल को कायम रखने के लिए प्रत्येक प्रकार की सावधानी बरतता था।[4] सम्भवतः केवल सुल्तान अलाउद्दीन ने सिक्कों का वास्तविक मूल्य कम करने का वस्तुतः साहसी प्रयत्न किया। उसने चांदी के

---

1. बाबर के संस्मरणों के अनुवाद मे श्रीमती ए० एस० बेवरिज का मत देखिए; सम्पूर्ण प्रश्न की विस्तृत चर्चा के लिए आ० अ०, प्रथम, 597 भी।
2. इब्नबतूता का मत देखिए। कि० रा०, द्वितीय, 2; इलि० डाउ०, तृतीय, 587 भी।
3. एडवर्ड थामस, 371 का मत देखिए आ० अ०, प्रथम, 295-6 में एक विस्तृत चर्चा; ता० फ०, प्रथम, 394-5 भी।
4. थामस 344। सुल्तान फीरोज तुगलक के वजीर की एक अत्यन्त रोचक कथा के लिए तुलनीय अ०, 345 जो स्वयं एक ऐसे अपराधी के छुटकारे में सहायक था, जिस पर सिक्कों में मिलावट करने का आरोप लगाया गया था। वजीर ने

टंके को 175 ग्रेन चांदी से 140 ग्रेन चाँदी का कर दिया ।[1] सांकेतिक सिक्के जारी करने का सुल्तान मुहम्मद तुग़लक का एकमात्र प्रयत्न असफल रहा । अतः हम मान सकते हैं कि सिक्के शुद्ध धातु और प्रामाणिक तौल के होते थे ।

सर्वाधिक पुराने सिक्के, जिनका इस काल में उल्लेख है, 'बैल और घुड़सवार' पद्धति के 'देल्हीवाल' थे ।[2] यद्यपि इन सिक्कों और बाद के सिक्कों में समानता स्वीकार करना आवश्यक नहीं है, हमारे ताम्बे के जीतल हिन्दू काल के इन पुराने देल्हीवालों की ही परम्परा में थे ।[3] जीतल तब तक प्रयुक्त किये जाते रहे जब तक कि सुल्तान बहलोल लोदी द्वारा प्रचलित 'बहलोली' ने उसका स्थान न ग्रहण कर लिया । हम पुनः इन विकासों का उल्लेख करेंगे । ताम्बे के जीतल के समान सुल्तान इल्तुतमिश द्वारा प्रचलित 175 ग्रेन के टकसाली प्रमाण का चांदी का टंका भी पुरानी हिन्दू वित्त-पद्धति से सम्बन्धित था । टंका तब तक बना रहा जब तक कि उसका स्थान शेरशाह और अकबर के 'रुपया' और आज के 'रुपया' ने न ले लिया । हमें सोने की मोहरों के भी कुछ सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, किन्तु सम्भवतः वे लेनदेन की मुद्रा के रूप में प्रयुक्त नहीं किए जाते थे और यहां हमारा सम्बन्ध उनसे नहीं है ।

मुस्लिम लोग चांदी के सिक्के को ताम्बे के सिक्कों में परिवर्तित करने की पुरानी पद्धति का ही प्रयोग करते रहे । हिन्दू लोग गणना के चतुर्थांश पैमाने का प्रयोग करते थे । वे पांच और दस की मात्रा से अपरिचित थे और उनके लिये दशमलव का कोई महत्त्व न था ।[4] इसलिए सुल्तानों ने चांदी के टंके को 64 जीतलों या ताम्बे की कानियों में या 8 हश्तकानियों (8 जीतलों के तुल्य एक हश्तकानी) में

सुल्तान को समझाया कि सिक्का सुल्तान के लिए वैसी ही वस्तु है जैसी कि कुमारी पुत्री अपने पिता के लिए । यदि संयोग वश, सच्चाई से या ईर्ष्यापूर्वक भी किसी कुमारी की पवित्रता पर सन्देह या छींटाकशी की जाती या उसके चरित्र की निन्दा की जाती, तो उसे विवाह के लिए कोई वर नहीं मिल सकता था चाहे उसमें कितनी भी शारीरिक और मानसिक परिष्कृति क्यों न हो । बुद्धिमान खानजहां ने स्पष्ट किया कि इसी प्रकार धातु की शुद्धता और सिक्के की ठीक तौल का भी जनता में वही स्थान था ।

1. देखिए थामस, 158-9 और टिप्पणी ।
2. देखिए इम्पी॰ गॅजे॰ इण्डि॰, द्वितीय, 144; थामस, 47 । एलफिन्स्टन का अभिमत है कि प्रारंभिक मुस्लिम शासक बगदाद के खलीफ़ाओं की 'दीनारों' और दिरहमों का प्रयोग करते थे और सिक्कों का स्थान क्रमशः 'टंका' और 'जीतल' ने ले लिया (हिस्ट्री 479-80) ।
3. देखिए इम्पी॰ गॅजे॰ इण्डि॰, द्वितीय, 144; थामस, 47 ।
4. देखिए थामस, 220 ।

विभाजित किया।[1] बहलोल लोदी ने अपनी बहलोली प्रचलित की जो शेरशाह और अकबर के दाम के समान टंके का चालीसवा भाग था। सुल्तान सिकन्दर लोदी ने अपना ताम्बे का टंका प्रचलित किया जिसके 20 सिक्के एक चांदी के सिक्के के तुल्य होते थे। यह सिक्का जैसा का तैसा रहा।[2] यह 'सिकन्दर टंका' या दोहरा 'दाम' अकबर के 'दाम' का पूर्वज था।[3] टंका का मूल्य स्थिर मान लेने पर सिकन्दरी टंका 64/20 या 3.2 जीतलों और शेरशाह और अकबर का 'दाम' या 'बहलोली' 64/40 या 1.6 जीतलों के तुल्य होते हैं।

ताम्बे और चांदी तथा सोना और चादी के सापेक्षिक मूल्य समयानुसार परिवर्तित होते रहते थे। शेरशाह के समय के लगभग ताम्बे का मूल्य 64 से 73:1 तक गिर गया।[4] बाद के काल के लिए मोरलैंड बताते है कि जबकि चांदी प्रायः स्थिर रही (बंगाल को छोड़कर), 1616 तक ताम्बे का मूल्य 80 गुजराती पैसों तक बढ़ा और 1627 के बाद 60 गुजराती पैसे या उससे कम रहा। शाहजहां के शासन-काल के अन्त तक यह सामान्य स्तर तक पुनः व्यवस्थित हो गया।[5] सोना और चांदी का अनुपात जो प्रारम्भिक काल में 1:8 था और अलाउद्दीन द्वारा दक्षिण की विजय के पश्चात् 1:7 तक गिर गया था, शेरशाह के समय तक 1:9·4 तक आ गया था।[6] ताम्बा और चांदी के सापेक्षिक मूल्यों मे इन प्रगतिगामी परिवर्तनों के कारण

---

1. 'मसालिक-उल-अबसार' के अभिमत के लिए देखिए इलि० डाउ०, तृतीय, 582-3; इब्नबतूता के अवलोकनों के लिए कि० रा०, द्वितीय, 142 भी देखिए। 'मसालिक' निश्चित रूप से 'कानी' और 'जीतल' की एकरूपता और 8 हश्तकानी एक टंका के तुल्य होने के सम्बन्ध मे कहती है। इब्नबतूता 8 दिरहम को 'दिल्ली की एक दीनार' के तुल्य कहता है, जो क्रमशः 'हश्तकानी' और टंका की स्थानापन्न है। चांदी के टंका या 'श्वेत टंका' (टंका-ए-सफ़ीद) के विपरीत जीतल को 'काला-टंका' (टंका-ए-सियाह) कहा जाता था। त० अ०. प्रथम, 199 के अनुसार। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि फरिश्ता (मूलप्रति प्रथम 199) का विश्वास है कि टका 50 जीतल के तुल्य होता था। वह निश्चित बयान नही देता, किन्तु इतना ही कहकर चुप हो जाता है कि लोग टंका के बदले 50 जीतल देते थे। यह विनिमय के मापदण्ड को प्रकट नहीं करता और सम्भवतः यह विनिमय की स्थानीय परिस्थितियों के कारण रहा होगा।
2. यामस, 367।
3. वहीं 44।
4. इम्पी० गॅजे० इण्डि०, चतुर्थ, 514।
5. तुलनीय मोरलैंड, अकबर से औरंगजेब तक, 182-5।
6. इम्पी० गॅजे० इण्डि० चतुर्थ, 514।

शेरशाह कुछ मुद्रा-सम्बन्धी सुधारों की ओर प्रवृत्त हुआ। उसने पहले प्रचलित चांदी और ताम्बे की अनिश्चित मिलावट का अन्त करके घटिया धातुओं अर्थात् चांदी और ताम्बे के सापेक्षिक मूल्यों में संशोधन और पुनर्व्यवस्था करके सारी व्यवस्था को नवीन रूप दिया। उसका 178 ग्रेन का सिक्का उस पुराने टंके से 3 ग्रेन अधिक था जिसका वह स्थानापन्न था।[1] अकबर का रुपया भार में $172\frac{1}{2}$ ग्रेन था और आधुनिक रुपए से वजन में समान था, जिसमें 165 ग्रेन शुद्ध चांदी होती है।[2] वर्तमान समय में रुपए का मूल्य स्टर्लिंग की तुलना में 1 शिलिंग और 6 पेंस स्थिर कर दिया गया है।[3]

6. तौल और अंक—तौल प्रणाली में कोई एकरूपता नहीं थी। मूल्यवान् धातुओं के व्यापारी, अनाज-विक्रेता, इत्र-विक्रेता, सबकी अपनी तौल-पद्धति थी, जो एक स्थान से दूसरे स्थान में भिन्न थी। उदाहरण के लिए अबुल फज्ल के अनुसार अकबर के पहले सेर वजन में कहीं 18 'दाम', कहीं 22 'दाम' कहीं 28 'दाम' था और अबुलफज्ल के लिखने के समय 30 'दाम' था।[4] इन अराजकतापूर्ण परिस्थितियों में जब एक बुद्धिमान शासक ने तौल या माप के एकीकृत और एकसमान माप लागू किए तो यह सुधार चारणों और कवियों के गीतों में मुखरित हो उठा।[5] दिल्ली के सुल्तानों के अधीन एक मन औसतन 28.78 पौंड या हन्ड्रेवेट के चतुर्थांश से कुछ ऊपर या आधे बुशल गेहूं से कुछ कम के बराबर निश्चित किया गया है।[6] सेर और छटांक का हिसाब तदनुसार लगाया जा सकता है। यह हिसाब 'मसालिक-उल्-अबसार' के वर्णन पर और इब्नबतूता के फ्रेंच संस्करण पर आधारित है। हमें निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि यह पूर्ववर्ती और परवर्ती काल के लिए कहां तक लागू होता है। यदि हम अबुलफज्ल के वर्णन को अकबर के शासनकाल के लिए प्रामाणिक मानें तो उसका मन (एक मन=40 सेर मानते हुए) भार में व्यावहारिक प्रयोग के लिए 388, 725 ग्रेन या 55 पौंड अथवा मोटे तौर पर 56 पौंड या आधा हन्ड्रेवेट आयगा। अतः अकबर का 40 मन एक टन के तुल्य होगा जबकि आज

1. शेरशाह के मुद्रा-सम्बन्धी सुधारों और वर्तमान व्यवस्था से उनके सम्बन्ध के लिए देखिए वहीं, प्रथम, 145-6।
2. मोरलैंड, इण्डिया इ०, 55; इम्पी० गैजे० इण्डि०, छठवां भी।
3. देखिए इण्डि० इ० क्वा०, 1931, 869।
4. आ० अ०, द्वितीय, 60।
5. 15वीं शती के मारवाड़ के इतिहास से एक उदाहरण के लिए देखिए टॉड, द्वितीय, 946।
6. थामस, 162।

साधारण प्रयोग में प्रचलित 27 मन एक टन के तुल्य होते है।[1]

हमें यहां यह ध्यान रखना उचित होगा कि लाख, सौ हजार के; मिलियन 10 लाख के; और करोड़ 10 मिलियन के तुल्य हैं।

टंका की क्रयशक्ति और आयों का स्तर—*हम औसत आय निश्चित करने की कठिनाई का उल्लेख पहले ही कर चुके हैं। हम अब श्रेष्ठतर मूल्यांकन और तुलना-हेतु केवल कुछ अंकों का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे।* मुहम्मद तुगलक और फ़ीरोज़ तुगलक के दासों के पारिश्रमिकों को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि सुल्तान के एक कर्मचारी की निम्नतम मासिक आय 10 टंके थी। सैनिक को 19½ टंके प्रतिमाह दिया जाता था। यदि हम 'तारीख-ए-दाऊदी' और 'मसालिक-उल-अबसार' द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों को आधार मानें तो एक औसत परिवार का रहन-सहन का खर्च 5 *टंके मासिक आता है। ये सारे अंक स्पष्टतः अनुमानित और कामचलाऊ है और विभिन्न सामाजिक वर्गों की आय की भ्रामक भिन्नता को ध्यान में रखकर नहीं निर्धारित किये गए हैं।*

टंका की वर्तमान क्रयशक्ति निर्धारित करना भी उतना ही कठिन है। हम अन्यत्र उन तत्त्वों की ओर संकेत कर चुके हैं जो बाज़ार-मूल्य के अंकों पर आघात पहुंचाते हैं। यह सोचकर कि श्री मोरलैंड ने अकबर के रुपए की क्रयशक्ति का हिसाब लगाया है, हम कह सकते हैं कि टंका मोटे रूप में अकबर के 'रुपए' का दोगुना था, अर्थात् अकबर के शासनकाल के चांदी के सिक्के से जितनी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती थी, *टंका उनसे दोगुनी आवश्यकताएँ पूरी करता था।*[2] *इससे हमारे टंका की क्रयशक्ति महायुद्ध के पूर्व वर्तमान रुपये की क्रयशक्ति से बारह गुनी होती है।*

---

1. मोरलैंड, इण्डिया, इत्यादि, 53। वर्तमान सरकारी प्रामाणिक मन का वजन 82.28 पौंड होता है (इम्पी॰ गैजे॰ इण्डि॰, द्वितीय, सातवां)। उत्तर भारत में *पूरी तौर से और मद्रास और बम्बई में कुछ कम प्रयुक्त किए जाने वाले वजनों* का वर्तमान माप इस प्रकार लिखा जा सकता है : एक मन 40 सेर, एक सेर-16 छटांक या 80 तोले। सेर का वास्तविक वजन जिले-जिले में, यहाँ तक कि ग्राम-ग्राम में भिन्न है, किन्तु प्रामाणिक पद्धति में एक तोला 180 ग्रेन (रुपए का शुद्ध वजन) का होता है और इस प्रकार सेर का वजन 2·05 पौंड और मन का 82·28 पौंड होता है। (इम्पी॰ गैजे॰ इण्डि॰, भूमिका, सातवीं के अनुसार)। इस प्रकार मोटे हिसाब के लिए हमारे काल का प्रामाणिक मन अकबर के प्रामाणिक मन का आधा होता था। अतः हम मोटे तौर पर कह सकते है कि हमारा मन वर्तमान मन के 27:80 के अनुपात में आता है, या हमारे 31 मन, वजन में वर्तमान एक मन के तुल्य होगे।
2. *आइए, हम इस सिलसिले में कुछ तथ्यों पर विचार कर लें। चांदी का अनुपात ताम्बे से 1:64 रहा है, 'टंका' का वजन चांदी और ताम्बे के सापेक्षिक मूल्य के*

यह हमारे टंका को महायुद्ध के पूर्व से वर्तमान रुपए की तुलना में बारह गुना क्रयशक्ति प्रदान करेगा।

अनुसार 179 और 175 ग्रेन शुद्ध चाँदी के बीच में रहा है। अकबर का 'दाम' मूल्य में टंका का 1$\frac{3}{5}$ गुना होता है या 5:8 का अनुपात रखता है। हम यह भी जानते हैं कि अकबर का 'मन' वजन में हमारे 'मन' का दुगुना होता था। सिकन्दरी गज और अकबर के गज में 1/84 इन्च का अति सूक्ष्म अन्तर था। हमने एक परिवार के लिए रहन-सहन का अधिकतम औसत खर्च 5 टंका प्रतिमाह निर्धारित किया है। श्रमिकों—जैसे, ईंट बनाने वालों, बढ़ईयों, राजगीरों, बंदूकचियों, और धनुर्धारियों का पारिश्रमिक 5 रुपए और 1$\frac{1}{8}$ रुपए के बीच स्थिर किया गया है (थामस, 429-30 के अनुसार)। आइए, हम अकबर के समय आवश्यक वस्तुओं की कीमतों की तुलना सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय की कीमतों से करें जिसे हमने अपने काल के मानक के रूप में लिया है। हमने अकबर के समय की कीमतें जीतलों में परिवर्तित कर दीं हैं :—

वस्तुएं	अकबर के समय		अलाउद्दीन के समय
(कीमत प्रति मन)	'दामों' में	जीतलों में	जीतलों में
1. गेहूं	19	9$\frac{3}{5}$	7$\frac{1}{2}$
2. गेहूं का आटा	22 से 15	12	—
3. जौ	8	6$\frac{2}{5}$	4
4. चावल	20	16	5
5. दालें	18	14$\frac{2}{5}$	—
6. माश	16	12	5
7. अनाज	16$\frac{1}{2}$	13$\frac{1}{5}$	5
8. मोठ	12	9$\frac{3}{5}$	3
9. ज्वार	10	8	—
10. शक्कर सफ़ेद	128	102$\frac{2}{5}$	100
11. शक्कर मटमैली	56	44$\frac{4}{5}$	20
12. घी	105	84	16
13. तेल	80	64	13$\frac{3}{10}$
14. नमक	16	12$\frac{4}{5}$	5
15. मांस	65	52	—
16. भेड़ का मांस	54	43$\frac{1}{5}$	10

हम कह सकते हैं कि हमारे काल की कीमतें अकबर के शासनकाल की कीमतों में सामान्यतः 1:2 के अनुपात पर बैठती हैं। मोरलैंड ने हिसाब लगाया है

कि अकबर का रुपया सामान्य उपभोग के लिये महायुद्ध के पूर्व काल के 6 रुपयों की क्रयशक्ति के तुल्य क्षमता रखता था; या, दूसरे शब्दों में, पांच रुपये की मासिक आय उतनी ही आवश्यकताएं पूरी करेगी जितनी की 1912 में तीस रुपयों की आय पूरी करेगी। (इण्डिया आन द डेथ आफ अकबर, 56 के अनुसार)। अन्य शब्दों में, यदि हमारे हिसाब एकदम भ्रमपूर्ण नहीं है तो हम कह सकते हैं कि समीक्षान्तर्गत काल का एक टंका 1914 के पूर्व एक रुपये से क्रय की जाने वाली आवश्यकताओं से 15 गुनी आवश्यकताएं क्रय द्वारा पूरी करेगा। अवश्य ही यह एक मोटा हिसाब है, किन्तु यह आर्थिक जीवन के कुछ-एक तथ्यों का श्रेष्ठतर मूल्यांकन करने में हमारा सहायक होगा।

परिशिष्ट (ख)

दिल्ली के सुल्तानों का कालक्रम

1200—1556 A.D.

दास वंश

हि० (हिजरी)	ई० सन्
602 कुतुबुद्दीन ऐबक	1206
607 आराम शाह	1210
607 शम्सुद्दीन इल्तुतमिश	1210
633 रुक्नुद्दीन फीरोजशाह, प्रथम	1235
634 रजिया	1236
637 मुईजुद्दीन बहरामशाह	1239
639 अलाउद्दीन मसऊदशाह	1241
644 नासिरुद्दीन महमूदशाह, प्रथम	1246

बलबन वंश

664 गयासुद्दीन बलबन	1265
686 मुईजुद्दीन कैकुबाद	1287

खिलजी वंश

689 जलालुद्दीन फीरोजशाह, द्वितीय	1290
695 रुक्नुद्दीन इब्राहीमशाह, प्रथम	1295
695 अलाउद्दीन मुहमदशाह, प्रथम	1295
715 शिहाबुद्दीन उमरशाह	1315
716 कुतुबुद्दीन मुबारकशाह, प्रथम	1316
720 नासिरुद्दीन खुसरोशाह	1320

तुग़लक वंश

720 गयासुद्दीन तुग़लकशाह, प्रथम	1320
725 मुहम्मद द्वितीय बिन तुग़लक	1324

हि० (हिजरी)	ई० सन्
752 फीरोजशाह, तृतीय	1351
790 गयासुद्दीन तुग़लकशाह, द्वितीय	1388
791 अबू बक्रशाह तुग़लक	1388
792 मुहम्मद तुग़लक, तृतीय	1389
795 सिकंदरशाह तुग़लक, प्रथम	1392
795 मुहम्मदशाह तुग़लक, द्वितीय	1392
797 नुसरतशाह (राज्यान्तरकाल)	1394
802 महमूद तुग़लक, द्वितीय (पुनःस्थापन)	1399
815 दौलतखां लोदी	1412
सैयद वंश	
817 खिज्रखां	1414
824 मुईजुद्दीन मुबारकशाह, द्वितीय	1421
837 मुहम्मदशाह, चतुर्थ	1433
847 अलाउद्दीन आलमशाह	1443
लोदी वंश	
855 बहलोल लोदी	1451
894 सिकंदर बिन बहलोल, द्वितीय	1488
923 इब्राहीम बिन सिकंदर, द्वितीय	1517
मुग़ल वंश	
932 बाबर	1526
937 हुमायूं	1530
सूर वंश	
946 शेरशाह	1539
952 इस्लामशाह	1545
960 तीन अन्य	1552
मुग़ल वंश	
962 हुमायूं (पुनःस्थापित)	1554
963 अकबर	1556

परिशिष्ट (ग)

ग्रंथसूची

टिप्पणी—मूल प्रतियां और पाण्डुलिपियां मोटे टाइप में दिखाई गई हैं और उन्हें उनके नाम के अनुसार वर्गीकृत किया गया है, लेखकों के अनुसार नहीं। जहां दो या अधिक पाण्डुलिपियां उपयोग में लाई गई हैं, उनके लिये प्र० या द्वि०—ये संकेत लिख दिये गए हैं। प्रयुक्त किए गए संक्षिप्त-नाम भी साथ में दिये गए हैं। मुद्रित कृतियों के लिए लेखक के उपनाम (सरनेम) का प्रयोग किया गया है, और जहां एक से अधिक मुद्रित कृतियों का उपयोग किया गया है वहां संक्षिप्त नाम लिखा गया है। अन्य प्रकाशित ग्रन्थ पादटिप्पणियों में दर्शाए गए हैं।

ब्रि० म्यू० —ब्रिटिश म्यूज़ियम

बिब्लि० इण्डि०—बिब्लिओथिका इण्डिका सिरीज़।

इ० आ०—इण्डिया आफिस।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
आ० ह०	1. फख्र मुदब्बिर कृत **आदाब-उल-हर्ब** ब्रि० म्यू० Add. 16, 853।
आ० मु०	2. उपर्युक्त लेखक द्वारा लिखित **आदाब-उल-मुलूक**। इ० आ० 2767।
अ०	3. अफ़ीफ़—देखिए **तारीख-ए-फ़ीरोज़शाही**।
	4. अहमद, एम० जी० ज़ेड०—**कॉन्ट्रिब्यूशन आफ इण्डिया टु अरेबिक लिटरेचर**, पी० एच० डी० प्रबन्ध, लंदन विश्व-विद्यालय, 1929।
आ० अ०	5. अबुल फज़्ल-कृत **आइन-ए-अकबरी**; 3 भागों में। कलकत्ता, 1872-3 (बिब्लि० इण्डि०)।
	6. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेज़ी अनुवाद। देखिए ब्लाकमैन।
आ० सि०	7. अमीर खुसरो कृत **आइन-ए-सिकन्दरी**। अलीगढ़, 1917-18।
	8. × × ×
अ० ना०	9. अबुलफज़्ल-कृत **अकबरनामा**; 3 भागों में। कलकत्ता, 1877 (बिब्लि० इण्डि०)।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
	10. मलिक मुहम्मद जायसी कृत अखरावट, बनारस, 1904।
	11. अर्नाल्ड, सर टी० डब्ल्यू०—दि कैलिफेट, आक्सफोर्ड, 1924।
	12. बाबर के संस्मरण—(तुर्की मूलप्रति से)। देखिए 'बेवरिज'।
बा० ना०	13. बाबरनामा (तुजुक-ए-बाबरी या वाकयात-ए-बाबरी)—अब्दुर्रहीम खान-ए-खाना द्वारा किया गया फ़ारसी अनुवाद, ब्रि० म्यू० Add. 24, 416।
	14. वाल०, यू० एन०—मेडीव्हल इण्डिया। कलकत्ता, 1929।
ब०	15. बरनी—देखिए—'तारीख-ए-फीरोजशाही'।
	16. बरबोसा—देखिए 'ड्रार्ते बरबोसा'।
	17. बेवरिज, ए० एस०—दि मेमॉयर्स आफ बाबर, [illegible] जिल्दें। लंदन, 1912।
	18. भण्डारकर, आर० जी०—वैश्नविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजियस सिस्टम्स, स्ट्रासबर्ग, 1913।
	19. बीजक—कबीर, देखिये शाह।
	20. बीजक आफ कबीर—हिन्दी मूलप्रति। बम्बई 1911।
	21. ब्लाण्ड, एन०—दि पर्शियन गेम आफ चेस, लंदन, 1850।
	22. ब्लाकमैन एण्ड जैरेट—आइन-ए-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद); 3 जिल्दें, कलकत्ता 1873-94 (बिब्लि० इण्डि०)।
	23. 'बुक आफ दि कोर्ट'—डब्ल्यू० जे० थामस, लंदन, 1844।
	24. ब्रेश्नीडर, ई०—मेडीव्हल रिसर्चेज फ्राम ईस्टर्न एशियाटिक सोर्सेज; 2 जिल्दें, लंदन, 1888।
	25. ब्राउन, ई० जी०—लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया; 4 जिल्दें, कैम्ब्रिज, 1928।
कैं० हि० इ०	26. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, जिल्द तीसरी। सर वूल्जले हेग द्वारा सम्पादित, कैम्ब्रिज, 1928।
	27. कारपेन्टर, जे० ई०—थीइज्म इन मेडीव्हल इण्डिया, लंदन, 1921।
	28. केटलाग आफ दि इण्डियन म्यूजियम—देखिए 'विक्टोरिया और अल्बर्ट म्यूजियम'।
	29. सेन्टेनरी व्हाल्यूम—रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन।
	30. कुमार स्वामी, ए० के०—सती, लंदन, 1913।
	31. कुमार स्वामी, ए० के०—राजपूत पेन्टिंग; 2 जिल्दें, लंदन, 1916।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
फ० ज०	49. जियाउद्दीन बरनी कृत फतवा-ए-जहांदारी। इ० आ०, 1149।
फि० फी०	50. फिक-ए-फीरोजशाही। इ० आ०, 2987।
	51. फ्लूगल—कन्कार्डेन्स टु कुरान एण्ड टेक्स्ट।
	52. फोर्ब्स, डन्कन—आब्ज़र्वेशन्स आन दि ओरिजिन एण्ड प्रोग्रेस आफ चेस। लंदन, 1855।
	53. फ्रेम्प्टन, जान—मार्कोपोलो (फ्राम दि एलिजाबेथन ट्रान्सलेशन आफ जान फ्रेम्प्टन) टुगेदर विथ दि ट्रैवल्स आफ निकोलो काण्टी (संपादक एन० एन पेंजर), लंदन, 1920।
फु०	54. सुल्तान फीरोजशाह तुगलक कृत फुतूहात-ए-फीरोजशाही, ब्रि० म्यू० Or. 2039।
	55. गनी, एम० ए०—ए हिस्ट्री आफ पर्शियन लंग्वेज एण्ड लिटरेचर, इ०, इलाहाबाद, 1929।
	56. घोपाल, यू० एन०—ए हिस्ट्री आफ हिन्दू पोलिटिकल थ्योरीज़, मद्रास, 1927।
	57. घोपाल, यू० एन०—एग्रेरियन सिस्टम इन एन्शेंट इण्डिया कलकत्ता, 1930।
	58. घोपाल, यू० एन०—कान्ट्रिब्यूशन्स टु दि हिस्ट्री आफ हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम। कलकत्ता, 1929।
	59. गिब, एच० ए० आर०—इब्नबतूता। लंदन, 1929।
	60. ग्रान्ट जेम्स—एन इन्क्वायरी इन टु दि नेचर आफ जमींदारी टेन्योर्स। द्वितीय संस्करण, लंदन।
	61. ग्रीवन, आर०—दि हीरोज़ फाइव—इलाहाबाद, 1898।
	62. ग्रियर्सन, सर जी० ए०—दि मोनोथीइस्टिक रिलीजन आफ एन्शेंट इण्डिया, ए पेपर। लंदन, 1908।
	63. ग्रियर्सन, सर, जी० ए०—बिहार पीजेंट लाइफ। कलकत्ता, 1885।
	64. ग्रियर्सन और बारनेट—लल्ला वाक्यानी। लंदन, 1920।
	65. ग्राउसे, एफ० एस०—मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमॉयर। द्वितीय संस्करण कलकत्ता, 1880।
गु०	66. गुलबदन बेगम—देखिए 'हुमायूंनामा'।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
	67. गुप्ता, जे० एन० दास—बंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चरी कलकत्ता, 1914 ।
हा० यु० हि०	68. हार्म्सवर्थ्स युनिवर्सल हिस्ट्री आफ दि वर्ल्ड । लंदन, 1928-29 ।
ह० बि०	69. अमीर खुसरो कृत हश्त-विहिश्त । अलीगढ़ 1998 ।
	70. हैवेल, ई० बी०—दि हिस्ट्री आफ आर्यन रूल इन इण्डिया लंदन, 1918 ।
	71. हैवेल, ई० बी०—ए शार्ट हिस्ट्री आफ इण्डिया । लंदन, 1924 ।
	72. हैवेल, ई० बी०—इण्डियन आर्किटेक्चर । लंदन, 1915 ।
हि० रा०	73. सैयद मीर कृत हिदायत-उर-रामी । ब्रि० म्यू० Add. 26, 306 ।
	74. हिन्दुस्तान रिव्यू, दि—कलकत्ता (पीरियोडिकल) ।
	75. हिन्दुस्तान रिव्यू—दि प्लेस आफ क्वाएन्स । आर० बर्न, ए रिप्रिंट । इलाहाबाद, 1905 ।
	76. हाब्स, लेवियाथन (संपादक डब्ल्यू० जी० पारसन स्मिथ) आक्सफोर्ड, 1909 ।
	77. होली कुरान—देखिए कुरान ।
	78. हुअर्ट क्लीमेंट—एन्शेंट पर्शिया एण्ड ईरानियन सिविलिजेशन । अनुवाद, आर० डोबी, लंदन, 1927 ।
	79. ह्यूग्स टी० पी०—डिक्शनरी आफ इस्लाम, लंदन, 1885 ।
	80. गुबदन बेगम कृत हुमायूंनामा । मूलप्रति और अनुवाद । (संपादक ए० एस० बेवरिज), लंदन, 1902 ।
	81. खांद मीर का हुमायूंनामा । ब्रि० म्यू० Or. 1762 ।
इ० खु०	82. अमीर खुसरो कृत इलाज-ए-खुसरवी; पांच भागों में । लखनऊ, 1875-76 ।
इ० गै० इ०	83. इम्पीरियल गैजेटियर आफ इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1908 ।
इ० इ० बु०	84. इण्डियन इयर बुक । टाइम्स प्रेस । बम्बई, 1931 ।
इ० ना०	85. शाह ताहिर अल-हुसैनी कृत इंशानामा । ब्रि० म्यू० । Harl. 499 ।
	86. इकबाल, सर मुहम्मद—पयाम-ए-मशरिक । लाहौर 1924 ।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
	87. इरविन, ई०—दि इनकम्परेबल गेम आफ चैस। लंदन, 1820।
इ० क०	88. इस्लामिक कल्चर, दि—हैदराबाद (पत्रिका)।
	89. जकोलियत, एल०—आकल्ट साइंस इन इण्डिया—(अनु०—डब्ल्यू० एस० फेल्ट) लंदन, 1884।
	90. जफर शरीफ़—कानून-ए-इस्लाम। देखिए क्रुक का हेक्लॉट्स इस्लाम, इत्यादि।
	91. जैन, एल० सी०—इंडीजीनस बैंकिंग इन इण्डिया। लंदन, 1929।
ज० हि०	92. मुहम्मद अवफी कृत जवामी-उल-हिकायत। ब्रि० म्यू० 16, 882 (प्र०), Or. 236 (द्वि०; Or. 1734 (तृ०)।
	93. जान्सन—पर्शियन डिक्शनरी। लंदन, 1582।
ज० ए० सो० बं०	94. जर्नल आफ—दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल। कलकत्ता।
ज० डि० लै०	95. जर्नल आफ—दि डिपार्टमेंट आफ लेटर्स। कलकत्ता युनिवर्सिटी।
ज० इ० हि०	96. जर्नल आफ—इण्डियन हिस्ट्री। इलाहाबाद।
ज० रा० ह० सो०	97. जर्नल आफ—दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन।
	98. जर्नल आफ—दि यूनाइटेड प्राविन्सेज हिस्टारिकल सोसाइटी, कलकत्ता।
	99. के—कबीर एण्ड कबीर पन्थीज, इ० 1922। लंदन यूनिवर्सिटी, शोध-प्रबंध।
ख० कु०	100. अमीर खुसरो कृत खजाइन-उल-फुतूह, ब्रि० म्यू० Add. 16, 838, Or. 1700 (द्वि)।
खांद	101. खांद मीर—देखिए 'हुमायूंनामा'।
कि० नि० खा०	102. किताब-ए-नियामत खाना-ए-नासिर शाही। इ० आ० 149।
कि० र०	103. किताब-उर-रहला आफ इब्नबतूता; 2 जिल्दें। काहिरा, 1870-71।
	104. कोवालेव्स्की, मेक्सिम—माडर्न कस्टम्स एण्ड एन्शॅट लाज आफ रशिया। लंदन, 1891।
	105. क्रेप, ए० एच०—दि साइंस आफ फोक-लोर। लंदन, 1930।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
	106. क्रेमर वान—ओरियन्ट अण्डर दि केलिफ्स (अनु० एस० खुदाबख्श) कलकत्ता, 1920 ।
कु० खु०	107. अमीर खुसरो कृत कुल्लियात-ए-खुसरो; ब्रि० म्यू० Add. 21, 104 ।
	108. लल्ला, दि वर्ड आफ—देखिए 'टेम्पल' ।
	109. लल्ला वाक्यानी—देखिए 'ग्रियर्सन' और 'बार्नेट' ।
	110. लेनपूल, स्टेनले—मेडीव्हल इण्डिया अण्डर मुहमडन रूल । लंदन, 1903 ।
	111. ले बान गुस्ताव—ला सिविलिजेशन्स दा इन्दे (उर्दू अनु० सैयद अली बिलग्रामी) आगरा, 1913 ।
	112. लेटर्स आफ मुहम्मद सेकेण्ड एण्ड बायजीद सेकेण्ड आफ टर्की । ब्रि० म्यू० Or. 61 ।
	113. लुडोविक वरथेमा—दि ट्रेव्हल्स आफ, लंदन, 1863 ।
	114. लिबेर, ए० एच०—दि गवर्नमेंट आफ दि आटोमन एम्पायर, इ० । कैम्ब्रिज मास, 1913 ।
	115. मेकालिफ, एम० ए०—दि सिख रिलीजन; 6 जिल्दें । आक्सफोर्ड, 1909 ।
	116. नूर अल्लाह अल-शुस्तरी कृत मजालिस-उल-मुमिनीन । इ० आ० 1400 ।
	117. अली हैदर कृत मजमुअत-उल-मुरासिलात । ब्रि० म्यू० Add. 7, 688 ।
	118. मेजर—इण्डिया इन दि फिफ्टीन्थ सेंचरी । लंदन, 1857 ।
म०	119. मलफुजात-ए-तिमूरी (तैमूर की आत्मकथा) ब्रि० म्यू० Or. 158 ।
	120. मार्कोपोलो, दि बुक आफ सेर—देखिए 'यूले' ।
म० अ०	121. अमीर खुसरो कृत मत्ला-उल-अनवार । लखनऊ 1884 ।
	122. मेमॉयर्स आफ बायजीद—देखिए, बी० पी० सक्सेना ।
	123. मेमॉयर्स आफ मुहम्मद तुग़लक—एक अंश । ब्रि० म्यू० Add. 25, 785 ।
	124. मिल, जेम्स—दि हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया; जिल्द 1 और 2, लंदन, 1840 ।
	125. मिर्जा, एम० डब्ल्यू०—लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीर खुसरो, 1929 । लंदन विश्वविद्यालय—शोध-प्रबन्ध ।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
	126. मिसलेनियस एक्सट्रेक्ट्स (फ़ारसी पाण्डुलिपियों से); ब्रि० म्यू० Or. 1858।
	127. माडर्न रिव्यू, दि—कलकत्ता (पत्रिका)।
	128. मोरलैंड, डब्ल्यू० एच०—दि एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया। केम्ब्रिज, 1929।
	129. मोरलैंड डब्ल्यू० एच०—इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर। लंदन, 1920।
	130. मोरलैंड, डब्ल्यू० एच०—फ्राम अकबर टु औरंगजेब। लंदन, 1923।
	131. मोरगन, एल० डब्ल्यू०—एन्शेंट सोसाइटी। न्यूयार्क, 1877।
	132. मुल्ला, डी० एफ०—प्रिंसिपल आफ हिन्दू ला, तृतीय संस्करण। बम्बई 1929।
	133. म्योर, सर विलियम—दि केलिफेट। लंदन, 1891।
	134. मुल्ला, डी० एफ0—प्रिंसिपल्स आफ मुहम्डन ला, नवम संस्करण। बम्बई, 1929।
मु० त०	135. अल बदायूनी कृत मुन्तखब-उत-तवारीख। कलकत्ता; तीन भागों में (विब्ल० इण्डि०)।
	136. मुस्लिम रिव्यू, दि—कलकत्ता (पत्रिका)।
	137. नसाइह निजाम-उल-मुल्क, ब्रि० म्यू० Or. 256।
	138. नीबोर, एच० जे०—स्लेव्हरी एज-एन इण्डस्ट्रियल सिस्टम। द्वितीय संस्करण। दि हेग, 1910।
	139. नोतिसेज एत एकस्त्रेक्स द मेन्युस्क्रिप्ट्स द ला बिब्लओथे दु रोए। टोम तेरहवां पेरिस, 1838।
	140. ओमन, जे० सी०—कल्ट्स, कस्टम्स एण्ड सुपर्स्टीशन्स आफ इण्डिया। लंदन, 1908।
	141. आउटलाइन आफ माडर्न नालेज। संपादक—विलियम रोज़। लंदन, 1931।
प० वं०	142. विद्यापति ठाकुर कृत पदावली बंगीय (अनु०—कुमारस्वामी और अरुण सेन) लंदन, 1915।
प०	143. मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत (विब्लि० इण्डि०) संपादक—ग्रियर्सन और द्विवेदी, कलकत्ता, 1911।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
प० (हिन्दी)	144. पद्मावत—हिन्दी मूलप्रति। कलकत्ता, 1896।
	145. पद्मावत—उर्दू अनुवाद, कानपुर, 1899।
	146. पेरो तेफुर, ट्रेवल्स एण्ड एड्वेन्चर्स (अनु०—मेलकाम लेटर्स) लंदन, 1926।
	147. पिल्लई, स्वामिकर्ण—इण्डियन एफेमेरिस; 6 जिल्दें। मद्रास, 1922।
	148. प्रसाद, ईश्वरी—हिस्ट्री आफ मेडिविल इण्डिया। इलाहाबाद, 1925।
पु० प०	149. विद्यापति ठाकुर कृत पुरुष-परीक्षा (अनु० आर० नेल्कर)। बम्बई।
	150. कानूनगो, कालिकारंजन—शेरशाह, कलकत्ता, 1921।
क०	151. बद्र-ए-चाच कृत कसाइद। कानपुर, 1877।
कि० सा०	152. अमीर खुसरो कृत किरानुस्सादैन। लखनऊ, 1845।
	153. कुरान होली (मूलप्रति, अनुवाद और टीका) मौलवी मुहम्मद अली। लंदन, 1917।
	154. रेवर्टी—देखिये तबकात-ए-नासिरी।
	155. रालिन्सन, एच० जी०—फाइव ग्रेट मानर्कीज; 3 जिल्दें। लंदन, 1871।
	156. लालिन्सन, एच० जी०—सेवन्थ ग्रेट ओरियंटल मानर्की लंदन, 1876।
	157. रेउ—केटलाग आफ पर्शियन मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दि ब्रिटिश म्यूजियम।
रि० इ०	158. महमूद गावां कृत रियाज-उल-इशां। ब्रि० म्यू० Or. 1739।
	159. रास, सर इ० डेनीसन—केटलाग आफ अरेबिक एण्ड पर्शियन मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दि ओरियंटल पब्लिक लायब्रेरी एट बांकीपुर।
	160. रास, सर ई० डेनीसन—हिन्दू-मुहम्मडन फीस्ट्स, कलकत्ता, 1914।
स० शे० स०	161. सहायक शेख सद्रुद्दीन—इ० आ० 2169।
	162. साल्जमेन, एल० एफ०—इंग्लिश लाइफ इन दि मिडिल एजेज। आक्सफोर्ड, 1926।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
	163. शारदा, हरविलास—महाराणा कुम्भा। अजमेर, 1917।
	164. शारदा, हरविलास—महाराणा सांगा। अजमेर, 1918।
	165. सक्सेना, बी० पी०—मेमॉयर्स आफ बायजीद। इलाहाबाद, 1929।
	166. सैयद अहमद खां—असर-उस-सनादीद, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1854।
	167. सेनार्त, एमिली—कास्ट इन इण्डिया (अनु०—सर इ० डेनीसन रास)। लंदन, 1930।
	168. शाह, अहमद—दि बीजक आफ कबीर, हमीरपुर, 1917।
	169. शास्त्री, आर० एस०—इव्होल्यूशन आफ इण्डियन पालिटी। कलकत्ता, 1920।
	170. सीदी अली रायस—देखिए 'वेम्ब्रो'।
	171. सिंग, पूरन—दि बुक आफ दि टेन मास्टर्स। लंदन, 1926।
	172. सरकार, जदुनाथ—चैतन्याज पिलग्रिमेजेस एण्ड टीचिंग्स कलकत्ता, 1913।
	173. स्लेटर, गिलबर्ट—दि द्राबीडियन एलीमेंट इन इण्डियन कल्चर, लंदन, 1924।
	174. स्मिथ, विन्सेन्ट—दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया। द्वितीय संस्करण। आक्सफोर्ड, 1923।
पै०	175. स्पेकुलम,— दि जर्नल ऑफ मेडीवल स्टडीज। केम्ब्रिज मास।
	176. स्प्रेन्जर एलाएस—ए लिटररी डेसिडराटा, इत्यादि। लंदन, 1840।
	177. नरोत्तम दास का सुदामाचरित्र। दिल्ली, 1876।
	178. साइक्स, सर परसी—ए हिस्ट्री आफ पर्शिया; दो जिल्दें। तृतीय संस्करण। लंदन, 1930।
त० अ०	179. निजामुद्दीन अहमद कृत तबकात-ए-अकबरी (बिब्ल० इण्डि०); जिल्द प्र०, कलकत्ता।
	180. तबकात-ए-अकबरी—मूलप्रति। लखनऊ, 1875।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
त० ना०	181. मिनहाज-उस-सिराज कृत **तबकात-ए-नासिरी** ब्रि० म्यू०, 26189।
	182. **तबकात-ए-नासिरी**, मेजर रैवर्टी द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद, लंदन, 1873।
	183. **तबकात-ए-नासिरी**, नसाऊ लीस द्वारा संपादित, बिब्लि० इण्डि०। कलकत्ता, 1864।
ता० मा०	184. हसन निजामी कृत **ताज-उल-मासिर**—ब्रि० म्यू० Add. 7623 (प्र०); Or. 163 (द्वि०); Add. 24, 951 (तृ०); Add. 7624 (चतु०)।
	185. **तारीख-ए-अलाई** देखिए 'खजाइन-उल-फुतुह'।
ता० बै०	186. मसूद कृत **तारीख-ए-बैहाकी** (संपादक डब्ल्यू० एच० मोर्ले)। बिब्लि० इण्डि०, कलकत्ता।
ता० दा०	187. अब्दुल्ला कृत **तारीख-ए-दाउदी**। ब्रि० म्यू०, Or. 197।
ता० फ० मु०	188. **तारीख-ए-फख्रुद्दीन-मुबारकशाह** (संपादक सर० इ० डेनीसन रास) लंदन, 1927।
ता० फ०	189. **तारीख-ए-फरिश्ता**; दो जिल्दें (ब्रिग्स और खैरात अली) बम्बई, 1831।
	190. जियाउद्दीन बरनी कृत **तारीख-ए-फीरोजशाही** (सैयद अहमद द्वारा संपादित) कलकत्ता, 1891 बिब्लि० इण्डि०।
	191. जियाउद्दीन बरनी कृत **तारीख-ए-फीरोजशाही**, ब्रि० म्यू०, Or. 2039।
	192. शम्स-ए-सिराज अफ़ीफ़ कृत **तारीख-ए-फीरोजशाही** (विलायत हुसैन द्वारा संपादित), बिब्लि० इण्डि०, कलकत्ता।
ता० गु०.	193. हमदुल्ला मुस्तौफ़ी कृत **तारीख-ए-गुजीदा** (ई० जी० ब्राउन द्वारा संपादित) लंदन, 1910।
प० ज० गु०	194. अलाउद्दीन जवैनी कृत **तारीख-ए-जहान-गुशा** (गिब मेमोरियल फण्ड) लंदन, 1912।
ता० मु० शा०	195. यह्या इब्न अहमद सरहिंदी कृत **तारीख-ए-मुबारकशाही**। ब्रि० म्यू०, Or. 1673।
	196. **तारीख-ए-मुश्तकी**—देखिए 'वाकयात-ए-मुश्तकी'।
	197. **तारीख-ए-मुजफ्फरशाही** ब्रि० म्यू० Add. 26,279।
	198. **तारीख-ए-नासिरशाही**। ब्रि० म्यू०, Or. 1803।

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
ता० शे० शा०	199. अब्बास खां शेरवानी कृत तारीख-ए-शेरशाही। ब्रि० म्यू०, Or. 164।
	200. मीर मुहम्मद मासूस कृत तारीख-ए-सिंध। ब्रि० म्यू०, Add. 2409।
	201. टेलर कार्ल सी०—रूरल सोशेओलोजी। न्यूयार्क, 1926।
	202. अब्दुल्ला वस्साफ कृत तज्जियत-उल-अमसार। ब्रि० म्यू० Add. 23, 517 (प्र०); Add. 7, 625 (द्वि)
त० वा०	203. जोहर आफताबची कृत तजकिरात-उल-वाकयात। ब्रि० म्यू०, Add. 16,711।
	204. टेम्पल, सर रिचर्ड सी०—दि वर्ड आफ लल्ला। केम्ब्रिज, 1924।
	205. थामस, एडवर्ड – दि क्रानिकल्स आफ दि पठान किंग्स आफ देल्ही। लंदन, 1871।
	206. थॉमस, एफ० डब्ल्यू—म्युचुअल इन्फ्लुएन्स आफ मुहम्मडन्स एण्ड हिन्दूज इन इण्डिया। केम्ब्रिज, 1892।
	207. थामस, डब्ल्यू० जे०—देखिए, "बुक आफ दि कोर्ट"।
	208. टाइटस, एम० टी०—इण्डियन इस्लाम। मद्रास, 1930।
	209. टॉड, जेम्स—एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ—राजस्थान, सपादक डब्ल्यू० क्रुक।
तु० ना० (हि०)	210. अमीर खुसरो कृत तुग़लकनामा (हैदराबाद के मौलवी हाशमी)
	211. यूसुफ गदा कृत तुहफा-ए नसाइह। इ० आ०, 2194; [illegible] जिल्दें। लंदन, 1923।
	212. अण्डरहिल, एम० एन०—दि हिन्दू रिलीजस इयर। मद्रास, 1921।
	213. वेम्ब्री, एन०—सीदी अली रायस ट्रैवल्स एण्ड एडवेन्चर्स आफ टर्किश एडमिरल, लदन, 1899।
	214. वरथेमा—देखिए 'लुडोविक वरथेमा'।
	215. विक्टोरिया एण्ड अलवर्ट म्यूजियम—ब्रीफ गाइड। लंदन, 1929।
	216. विश्वभारती, दि—बोलपुर (भारत) पत्रिका।
वा० मु०	217. रिज्कुल्लाह मुश्तकी कृत वाकयात-ए मुश्तकी। ब्रि० म्यू०, Add. 11,633

संक्षिप्त नाम	कृति का नाम
	218. वेन्सिन्क—हैन्डबुक आफ अर्ली मुहम्मडन ट्रेडीशन, लीडन।
	219. यूले, सर हेनरी—दि बुक आफ सेर मार्कोपोलो; 2 जिल्दें। लंदन, 1903।
	220. यूसुफ अली, ए०—हिन्दुस्तान के माशरती हालात (उर्दू)। इलाहाबाद, 1928।
	221. यूसुफ अली, ए०—दि मेकिंग आफ इण्डिया, लंदन, 1925।
	222. ज़ाद-उल-मआद। ब्रि० म्यू०, or. 3207।
जा० ना०	223. शर्फुद्दीन अली यज्दी कृत ज़फरनामा। ब्रि० म्यू०, Add. 25, 024।
ज० ना० खा०	224. निज़ाम शामी कृत ज़फरनामा-ए-ख़ाखानी। ब्रि० म्यू०, Add.23, 980।
ज० व०	225. फज़रुल वलीह, इ०—एन अरेबिक हिस्ट्री आफ गुजरात (संपादक सर ई० डेनीसन रास। लंदन, 1921-8।
	226. ज़का उल्लाह—तारीख़-ए-हिन्दुस्तान (उर्दू); 3 जिल्दें। दिल्ली, 1875।
ज० मु०	227. शेख हमदानी कृत ज़खीरत-उल-मुलूक। ब्रि० म्यू०, Add. 7,618।

पारिभाषिक शब्दावली

अमीर :	सैनिक पदाधिकारी, सामन्त । अमीर, मलिक और खान—ये सैनिक पदाधिकारी और सामंत हुआ करते थे । अमीर का पद सब से छोटा और मलिक का उससे बड़ा होता था । इनके बीच में भी कई श्रेणियां होती थी; जैसे—अमीर-उल-उमरा (अमीरों में सर्वश्रेष्ठ) और उलुग खान या खान-ए-खानान (खानों में सर्वश्रेष्ठ)
अमीर-ए-आखूर :	अश्वशालाधिपति—यह शाही घुड़साल का अधीक्षक था। इसे आखूरबक और शाहना-ए-आखूर भी कहते थे ।
अमीर-ए-शिकार :	शाही शिकार का प्रबन्धक । यह बादशाह के शिकार खेलने का सामान्य प्रबन्ध करता था ।
अलम :	शाही झंडा ।
अलम खाना :	शाही कारखाना (देखिए 'कारखाना') में शाही झंडे रखने का स्थान था ।
अहल-ए-कलम :	लेखक, विद्वान वर्ग ।
अहल-ए-दौलत :	राज्य करने वाला वर्ग । इसमें शाही कुटुंब के लोग, सामन्त और सेना के अधिकारी सम्मिलित थे ।
अहल-ए-मुराद :	आमोद-प्रमोद से सम्बन्धित वर्ग । इसमें संगीतकार और सुन्दर युवक और युवतियां सम्मिलित है ।
अहल-ए-सादात :	यह इस्लाम धर्म के विद्वानों (उलमा) और सैयद लोगों का वर्ग था । इनका कार्य राज्य को धार्मिक मामलों में सुझा देना, मुकदमों को निपटाना और न्याय करना था ।
अहल-ए-तेग :	सेना के सिपाही और सरदार।
आफताबची :	बादशाह के स्नानागार का प्रबंधक । सुल्तानों के काल में इसे 'सर-आबदार' कहा जाता था, मुगलों के समय में आफ़ताबची ।
बआखूर बक :	देखिए 'अमीर-ए-आखूर' ।
आलिम-उल-मुल्क :	एक उपाधि जिसके अर्थ होते है विश्व-विद्वान ।
इक़्ता :	राजस्व अधिन्यास । सरकारी प्रशासनीय क्षेत्र । इसका अधिकारी इक़्तादार या मुक़्ती कहलाता था ।

इमाम : इस्लाम धर्म के प्रधान ।

इमाम-ए-आदिल : धर्म में प्रधान और न्यायपालक—यह बादशाह की एक उपाधि थी ।

इमाद-उल-मुल्क : एक सामंतीय उपाधि जिसके अर्थ हैं देश के (भवन का) स्तंभ ।

उमरा : अमीर का बहुवचन, अर्थात् सामंतगण ।

उलमा : आलिम का बहुवचन, अर्थात् इस्लाम धर्म-सम्बंधी मामलों के विद्वान ।

उलुग़ख़ां : एक सामंतीय उपाधि, जिसका अर्थ हैं—'खानों में श्रेष्ठ' ।

क़स्र-ए-फ़ीरोज़ी : जय-भवन ।

क़स्र-ए-सफ़ेद : श्वेत-आवास ।

कारख़ाना : शाही भंडार—इसमें शाही ध्वज का कमरा (अलम ख़ाना), पुस्तकालय (किताब ख़ाना), जवाहरख़ाना, घड़याल ख़ाना होते थे । यहां सिलाई, कढ़ाई आदि भी होती थी—जैसे : शाही कपड़े और खिलअत बनाना । इसका अध्यक्ष एक अमीर होता था और कारख़ाने के प्रत्येक अंग के अलग अधीक्षक (मुतसर्रिफ़) होते थे ।

कारवानी : बंजारा ।

किताब ख़ाना : पुस्तकालय, शाही पुस्तकालय के लिये देखिए 'कारख़ाना ।'

कुश्क-ए-सब्ज़ : हरित-आवास ।

कोर्निश : बादशाह के समक्ष भूमि पर झुकने और चूमने की प्रथा ।

ख़रीतादार : शाही लेखन-सामग्री का प्रबंधक और उसकी देखभाल करने वाला ।

ख़ान : सामंतों में सबसे बड़ा पद (देखिए 'अमीर') । इसमें भी, कई उपाधियाँ थीं; जैसे—ख़ान-ए-ख़ानान (ख़ानों में सर्वश्रेष्ठ) ख़ान-ए-जहां (विश्व का ख़ान) ख़ान-ए-ज़मा (समय का ख़ान) इत्यादि ।

ख़िताब : पदवी, उपाधि

ख़िदमती : देखिए 'नज़र' ।

खिलअत : सम्मान-सूचक पोशाक—बादशाह इसे सामन्तों और अन्य सम्माननीय लोगों को देता था । इसमें ज़री का अंगरखा और कमर-पेटी होते थे ।

खुतबा और सिक्का :	ये सुल्तान के विशेषाधिकारों का एक प्रमुख अंग और प्रतीक-भूत थे। खुतबा, मसजिदों में सुल्तान के नाम का पढ़ा जाता था और उसी के नाम के सिक्के चलते थे। किसी अन्य व्यक्ति के नाम का खुतबा और सिक्का नहीं हो सकता था। जब कोई विद्रोह करके अपने को सुल्तान घोषित करना चाहता था, तभी वह अपने नाम का खुतबा और सिक्का चलवाता था।
खुरासानी :	यह विदेशी मुस्लिम व्यापारी के अर्थ में ही मध्यकालीन भारत में प्रचलित था। वैसे खुरासानी के शाब्दिक अर्थ है—'खुरासान का निवासी'।
खुदावन्द-ए-आलम :	'संसार का स्वामी', सुल्तान की एक उपाधि।
ख्वाजा सरा :	*शाही हरम का हिजड़ा अधीक्षक।*
गिलमान :	सुन्दर और सुसज्जित लड़के। यह महफ़िल और दरबार में काम करते थे।
चाशनीगीर :	यह शाही रसोई घर की देखभाल करता था। वह सुल्तान को स्वयं भोजन परोसता था। मुगल काल में इसे 'बकावल' कहते थे।
छत्र और दूरबाश :	शाही छत्री और राजदण्ड। ये भी सुल्तान के विशेषाधिकार के मुख्य अंग और राजशक्ति के चिह्न थे।
जिहाद :	मुस्लिमों का ग़ैर-मुस्लिमों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध।
जीतल :	सुल्तानों के काल में प्रचलित तांबे का सिक्का। यह टंका (रुपये का अग्रग) का लगभग 1/50 होता था।
जौहर	यह 'जीव' और 'हर' दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसके अर्थ हैं—प्राण-हानि या आपत-काल, जैसे आक्रमण के समय स्त्रियों (विशेषकर राजपूतों में) का सामूहिक रूप से अग्नि में भस्म हो जाना।
तहवीलदार :	शाही बटुए की देख-रेख रखने वाला।
तशतदार :	यह सुल्तान के सामने पानी की सुराही और हाथ धोने का पात्र लेकर *आता था। यह मदिरा तथा अन्य पेय भी लेकर* आता था।
तमस्सुक :	वित्तीय पत्र—बांड।
दबीर :	लेखन-विभाग का पदाधिकारी।

दवातदार : शाही कलमदान रखने वाला।

दीवान : राजस्व-विभाग,—इस शब्द का प्रयोग राजस्व-मंत्री के अर्थ में भी होता है।

दूरबाश : देखिए 'छत्र'।

दो अस्पा : दो घोड़े रखने वाला सैनिक।

नदीम : दरबारी—यह विशेषकर सुल्तान के कृपापात्र एवं शराब पीने वाले साथियों के लिये लागू होता है।

नक़ीब यह शाही जलूस में राजदण्ड लेकर चलता था।

नायब : प्रति, उप।

निसार : उतारा, आरती।

नज़र : सुल्तान को भेंट, इसे *'खिदमती'* भी कहते थे।

नौबत : शाही दरबार में बाजे और ढोल का वाद्यवृन्द। 'वाद्यवृन्द' में विभिन्न वाद्य—जैसे : तुरही, नगाड़े, बांसुरी, शहनाई इत्यादि सम्मिलित थे।

नौरोज़ : फ़ारस में वसन्त का त्यौहार।

पीर : धर्म-गुरु।

फरमान : शाही आज्ञा, आज्ञप्ति।

फरगूल : फर का कोट।

बकावल : देखिए 'चाशनीगीर'।

बख्शी : सेना-विभाग का सर्वोच्च अधिकारी।

बज्म-ओ-रज्म बज्म के अर्थ हैं महफ़िल, समारोह। रज्म के अर्थ हैं युद्ध। मध्यकालीन जीवन को इन दो शब्दों में निहित समझा जाता है।

बहलोली : बहलोल लोदी का चलाया तांबे का सिक्का इसका मूल्य टंका का 1/40 था।

बारबक : बारबक का कार्य था दरबार में सुल्तान के पास लोगों के प्रार्थना-पत्र पहुंचाना। वह सेना में भी पद रखता था।

बेअत : सुल्तान के प्रति निष्ठा (भक्ति) की शपथ। यह अधिकतर सुल्तान का हाथ चूमकर ली जाती थी।

बेअत-ए-आम : दरबार में सुल्तान के प्रति निष्ठा (भक्ति) की जनता की ओर से शपथ।

बन्दगान-ए-खास : शाही दास, सुल्तान के निजी दास।

मशालदार : यह राजमहल में प्रकाश की व्यवस्था—अर्थात् दीपकों, दीवटों और फ़ानूसों की देख-रेख का उत्तरदायी था।

मुतसर्रिफ : नीची श्रेणी के पदाधिकारी-अधीक्षक।

मुहरदार : शाही मुहर रखने वाला।

मलिक : देखिए 'अमीर'।

मिल्क : शाही भूमि—सुलतान देश का मालिक होने के साथ-साथ काफ़ी कुछ उपजाऊ भूमि का मालिक भी था। उसकी भूमि के प्रशासन के लिये उत्पादन-क्षमता में वृद्धि के लिये शासन का एक अलग वर्ग होता था। 'मिल्क' उस वस्तु को भी कहा जाता था जो कि सुल्तान किसी को, किसी भी समय के लिये दे देता था।

मुक़द्दिम : गांव का अधिकारी।

मुक्ता या मुक्ती : इक्ता का अधिकारी।

वज़ीर : मंत्री, प्रधान-मंत्री।

वकील-ए-दर : इसे रसूल-ए-दर और हाजी-उल-इरसाल भी कहते थे। यह दरबार के सचिवालय-सम्बन्धी कार्यों को सम्पन्न करता था। शाही महल के फाटक की कुंजियां भी इसके पास रहती थीं।

शहना-ए-बारगाह : दरबार का अधीक्षक। इसे 'शहना-ए-बार' भी कहते थे। यह दरबार के सामान्य अधीक्षक का कार्य करता था।

शहना-ए-बहर-ओ-कश्ती : नदियों और शाही नौकाओं का अधीक्षक।

शहना-ए-पील : शाही हाथीखाने का अधीक्षक, गजाधीक्षक।

शुस्तरी : एक तरह का कपड़ा।

सायबान : शाही छत्री, जो प्रायः लाल रंग की होती थी।

सर जांदार : शाही अंगरक्षक। ये शाही दासों में से चुने जाते थे।

सर सिलहदार : शाही कवच वाहकों का मुखिया—इसके पास शाही तलवार रहा करती थी।

सर आबदार : मुगलों के आफ़तावची का पूर्वज; यह सुल्तान के स्नान और वस्त्र व सज्जा का भी प्रबन्धक होता था।

सर खेल्प : सैनिक पदाधिकारी। अधिकतर यह सौ सैनिकों का सरदार होता था।

सिपहसालार : 'सरखेल' से बड़ा लेकिन 'अमीर' से छोटा सैनिक पदाधिकारी।

सद्र : अर्थ है सभापति, लेकिन मुस्लिम शासनकाल में यह न्यायाधीश की उपाधि थी।

सद्र-उस-सुदूर : सर्वोच्च न्यायाधिकारी।

हुक्का : आग फेंकने वाला एक यंत्र—रॉकेट।

हज़रत-ए-आला : शाही खिताब—विशेषकर तैमूर के आक्रमण के उपरान्त जब सैयद शासकों में सुल्तान की उपाधि ग्रहण करने का साहस नहीं था तो उन्होंने हज़रत-ए-आला (श्रेष्ठ सिंहासन) मसनद-ए-आला (उच्च सिंहासन) और रायात-ए-आला (उच्च ध्वज) की उपाधि ग्रहण कर ली।

हरम : शाही महल में स्त्रियों का निवासस्थान।

हाकिमा : हरम की अधीक्षिका।

हाजिब : इसके कार्यों की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है। दरबार में यह सुल्तान के निकट खड़ा रहता था। इसे सैयद-उल-हुज्जाब, मलिक खास हाजिब और मलिक-उल-हुज्जाब भी कहते थे इसका उप नायब अमीर हाजिब हो सकता है।